पुराण विषय अनुक्रमणिका

(अ से इ तक)

वैदिक टिप्पणियों सहित

विपिन कुमार व राधा गुप्ता



पुराण विषय अनुक्रमणिका

(अ से इ तक)

लेखक :

विपिन कुमार तथा राधा गुप्ता,
एम०ए० (संस्कृत),
पी०एच०डी०, डी० लिट्०

प्रकाशक :

श्रीमती राधा गुप्ता
जे - १७८, एम०आई०जी कालोनी,
इन्दौर
पिन - ४५२००८

१९९५

पु० वि० अ० - १

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली द्वारा प्रदत्त
आर्थिक सहायता से प्रकाशित

मूल्य :

पुराण विषय अनुक्रमणिका

भूमिका

डा० फतहसिंह के निर्देशन में वेदाध्ययन करते समय यह अनुभव किया गया कि वैदिक मन्त्रों की सम्यक् व्याख्या तभी सम्भव है जब मन्त्रों में प्रकट हुए एक-एक शब्द की व्याख्या पहले कर ली जाए। शब्दों की व्याख्या के बहुत से प्रयास पहले हो चुके हैं जिनमें यास्क के निघण्टु व निरुक्त उल्लेखनीय हैं। किन्तु ऐसा अनुभव किया गया कि वेदों के शब्दों की व्याख्या पुराणों में कथाओं के माध्यम से बहुत पहले ही की जा चुकी है, केवल पुराणों की कथाओं को सम्यक् रूप से समझने की आवश्यकता है। पुराण कथाओं को समझने का एक प्रयास पं० श्री हरिशंकर जोशी द्वारा अपनी पुस्तक वैदिक विश्वदर्शन भाग ४ (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी) में किया गया है। दूसरा प्रयास डा० फतहसिंह से वार्तालाप पर आधारित वैदिक तत्व मंजूषा भाग १-५ (अभी तक केवल माइक्लोस्टाइल द्वारा मुद्रित) में किया गया है। पुराण कथाओं की इन व्याख्याओं के समय पुराणों में किसी विशिष्ट शब्द को ढूंढने के लिए पुराण विषय अनुक्रमणिका की आवश्यकता का अनुभव किया गया। वर्तमान समय में बाजार में केवल एक ही अनुक्रमणिका "पौराणिक कोश" (ले० : श्री राणा प्रताप शर्मा; प्रकाशक : ज्ञान मण्डल प्रकाशन, वाराणसी) के नाम से उपलब्ध है लेकिन यह अनुक्रमणिका मुख्य रूप से ५ पुराणों पर आधारित है। प्रस्तुत अनुक्रमणिका में सभी मुख्य पुराणों से रुचि के अनुसार शब्दों का चयन किया गया है तथा समझने के लिए यत्र-तत्र लेखक-द्वय द्वारा टिप्पणियां भी की गई हैं। टिप्पणियों के पश्चात ऐसा प्रतीत हो रहा है कि पुराणों का एक-एक शब्द स्वयं में महत्वपूर्ण है और शब्दों के चयन का जो कार्य पहले केवल रुचि के आधार पर किया गया था, उसको विस्तृत रूप देने की आवश्यकता पड़ेगी। किन्तु कार्य की विशालता को ध्यान में रखते हुए यह निश्चय किया गया है कि जितने शब्दों का चयन किया गया है, उनको ही यथासंभव टिप्पणी सहित प्रकाशित कर दिया जाए।

प्रस्तुत अनुक्रमणिका में नामों के अतिरिक्त विभिन्न विषयों से सम्बन्धित शब्दों के चयन को व्यापक बनाने के लिए श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवा संस्थान, मथुरा द्वारा प्रकाशित श्रीमद् भागवत पादानुक्रमणिका तथा नाग प्रकाशक, दिल्ली द्वारा प्रकाशित पुराण श्लोक अनुक्रमणिकाओं का उपयोग किया जा रहा है। यदि भागवत की भांति प्रत्येक पुराण के श्लोकों की पादानुक्रमणिका उपलब्ध होती तो अनुक्रमणिका में शब्दों के चयन को और अधिक व्यापक रूप दिया जा सकता था। महाभारत की नामानुक्रमणिका गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा बहुत पहले ही प्रकाशित की जा चुकी है। इस नामानुक्रमणिका के अतिरिक्त विषयों से सम्बन्धित शब्दों का महाभारत से चयन करके उन्हें वर्तमान अनुक्रमणिका में स्थान दिया गया है जिससे शब्द को समझने का व्यापक आधार प्रस्तुत किया जा सके।

वर्तमान अनुक्रमणिका में पुराणों के अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण, योगवासिष्ठ, लक्ष्मीनारायण संहिता और कथासरित्सागर से चयन की गई सामग्री को भी स्थान दिया गया है। लक्ष्मी नारायण संहिता की भाषा से ऐसा प्रतीत होता है कि यह रचना बहुत प्राचीन नहीं है। लेकिन तथ्यों की दृष्टि से इस ग्रन्थ को अद्वितीय पाया गया है। कथा सरित्सागर की कथाओं का पौराणिक दृष्टि से यद्यपि कोई महत्व नहीं है, किन्तु वर्तमान अनुक्रमणिका के आधार पर यह निर्णय करने का अवसर मिलेगा कि क्या कथा सरित्सागर की कथाएं भी वैदिक शब्दों की व्याख्याओं का प्रयास हैं?

प्रस्तुत पुराण विषय अनुक्रमणिका के प्रणयन के शैशव काल से ही लेखकों को प्रोफेसर पुष्पेन्द्र कुमार, दिल्ली विश्वविद्यालय से सतत् प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा है। लेखक-द्वय श्री वेद प्रकाश गुप्ता, मै० वैक्यूम इन्स्ट्रूमेंट्स कम्पनी, नई दिल्ली तथा श्री अम्बरीष कुमार, मै० वैक्यूम इक्विपमेण्ट कम्पनी, नई दिल्ली के आभारी हैं जिन्होंने पुराण विषय अनुक्रमणिका के इस भाग के संरक्षक बनना स्वीकार किया है।

अनुक्रमणिका के कम्प्यूटर-टंकण के लिए श्री गुलशन कुमार नागपाल धन्यवाद के पात्र हैं जिन्हें अनुक्रमणिका को सुन्दर रूप प्रदान करने और लेखकों द्वारा बार-बार किए गए संशोधनों का समावेश करने में काफी परिश्रम करना पड़ा।

विपिन कुमार
व
राधा गुप्ता

मुख्य ग्रन्थ सूची

अग्नि पुराण (नाग प्रकाशक, दिल्ली; हिन्दी अनुवाद : कल्याण विशेषांक वर्ष ४४ व ४५, गीताप्रेस, गोरखपुर)

कथासरित्सागर (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना; हिन्दी अनुवाद सहित)

कूर्म पुराण (नाग प्रकाशक, दिल्ली)

गरुड पुराण (चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी तथा नाग प्रकाशक, दिल्ली)

गर्ग संहिता (हिन्दी अनुवाद मात्र; कल्याण विशेषांक वर्ष ४४ व ४५, गीताप्रेस, गोरखपुर)

देवीभागवत पुराण (नाग प्रकाशक, दिल्ली)

नारदीय पुराण (नाग प्रकाशक, दिल्ली)

पद्म पुराण (नाग प्रकाशक, दिल्ली)

ब्रह्म पुराण (नाग प्रकाशक, दिल्ली)

ब्रह्मवैवर्त पुराण (राधाकृष्ण मोर, कलकत्ता; मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली)

ब्रह्माण्ड पुराण (कृष्ण दास अकादमी, वाराणसी)

भविष्य पुराण (नाग प्रकाशक, दिल्ली)

भागवत पुराण (गीताप्रेस, गोरखपुर; हिन्दी अनुवाद सहित)

मत्स्य पुराण (कल्याण विशेषांक वर्ष ५८ व ५९, गीताप्रेस, गोरखपुर, हिन्दी अनुवाद सहित; नाग प्रकाशक, दिल्ली)

महाभारत (गीताप्रेस, गोरखपुर, हिन्दी अनुवाद सहित)

मार्कण्डेय पुराण (मनसुखराय मोर, कलकत्ता; नाग प्रकाशक, दिल्ली)

योगवासिष्ठ (मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली)

लक्ष्मीनारायण संहिता (चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी)

लिंग पुराण (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)

वराह पुराण (मेहरचन्द लछमनदास, दिल्ली)

वामन पुराण (कल्याण वर्ष ५६ विशेषांक, गीताप्रेस, गोरखपुर, हिन्दी अनुवाद सहित; नाग प्रकाशक, दिल्ली)

वायु पुराण (आनन्दाश्रम, पूना; नाग प्रकाशक, दिल्ली)

वाल्मीकि रामायण (गीताप्रेस, गोरखपुर, हिन्दी अनुवाद सहित)

विष्णु पुराण (गीताप्रेस, गोरखपुर, हिन्दी अनुवाद सहित; नाग प्रकाशक, दिल्ली)

विष्णु धर्मोत्तर पुराण (नाग प्रकाशक, दिल्ली)

शिव पुराण (नाग प्रकाशक, दिल्ली)

स्कन्द पुराण (नाग प्रकाशक, दिल्ली)

हरिवंश पुराण (गीताप्रेस, गोरखपुर, हिन्दी अनुवाद सहित)

सहायक ग्रन्थ सूची

अथर्ववेद (सायण भाष्य सहित; विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थानम् , होशियारपुर, पंजाब)

अथर्ववेद (अवशिष्ट मन्त्रों का अभिनव सायण भाष्य; गंगेश्वर इण्टरनेशनल वेद मिशन न्यास, बम्बई)

अथर्ववेद परिशिष्ट (सं० रामकुमार राय; चौखम्बा ओरियण्टालिया, वाराणसी)

अभिधान राजेन्द्र कोश (अभिधान राजेन्द्र कोश प्रकाशन संस्था, अहमदाबाद)

आपस्तम्ब श्रौत सूत्र (मुन्शीराम मनोहरलाल, दिल्ली)

आश्वलायन गृह्य सूत्र (लालबहादुर शास्त्री केंद्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली)

उणादि कोश (वैदिक पुस्तकालय, अजमेर)

उपनिषत्संग्रह (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)

उपनिषद्वाक्य महाकोश (सं० गजानन शम्भु साधले; रूपा बुक्स प्रा० लि०, जयपुर)

ऋग्वेद (सायण भाष्य सहित; वैदिक संशोधन मण्डल, पूना)

ऐतरेय ब्राह्मण (आनन्दाश्रम, पूना)

ऐतरेय आरण्यक ( )

कन्कार्डेंस टु प्रिंसिपल उपनिषद्स एंड गीता (सं० कर्नल जी०ए० जैकब; मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)

काठक संहिता (स्वाध्याय मण्डल, पारडी)

काण्व शतपथ (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)

कात्यायन श्रौत सूत्र (लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली)

कात्यायन यज्ञ पद्धति (ले० मनोहर लाल द्विवेदी; राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली)

काशकृत्स्न धातु व्याख्यानम् (सं० युधिष्ठिर मीमांसक; रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ, सोनीपत)

कुन्ताप सूक्त सौरभम् (भाष्यकार : जगन्नाथ वेदालंकार; गुरु गंगेश्वर चतुर्वेद प्रकाशन संस्थानम्, वृन्दावन)

कौशिक सूत्र (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)

गोपथ ब्राह्मण (रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ, सोनीपत)

छान्दोग्य ब्राह्मण (संस्कृत कालेज, कलकत्ता, १९५८)

जैमिनीय ब्राह्मण (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)

जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति)

ताण्ड्य ब्राह्मण (चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली)

तैत्तिरीय ब्राह्मण (आनन्दाश्रम, पूना)

तैत्तिरीय संहिता (आनन्दाश्रम, पूना)

द्राह्यायण श्रौत सूत्र (गंगानाथ झा केंद्रीय संस्कृत विद्यापीठ, प्रयाग)

निघण्टु (यास्क प्रणीत; वैदिक पुस्तकालय, अजमेर)

निरुक्त (यास्क प्रणीत; मेहरचन्द लछमनदास, दिल्ली)

निरुक्त (यास्क, हिन्दी टीकाकार श्री चन्द्रमणि, विद्यालंकार; आर्ष कन्या गुरुकुल, नरेला, दिल्ली)

पदानुक्रम कोश संहिता भाग (विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थानम्, होशियारपुर)
पदानुक्रम कोश ब्राह्मण भाग (विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थानम्, होशियारपुर)
पदानुक्रम कोश उपनिषद् भाग (विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थानम्, होशियारपुर)
पदानुक्रम कोश वेदांग भाग (विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थानम्, होशियारपुर)
पुराण विषय अनुक्रमणिका भाग १ (सं० राजबली पाण्डेय; काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)
पुराण विषय अनुक्रमणिका भाग २ (सं० लल्लन जी गोपाल; काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)
पैप्पलाद संहिता (   )
पौराणिक कोश (सं० राणाप्रसाद शर्मा; ज्ञानमण्डल प्रकाशन, वाराणसी)
बृहद् देवता (अनु० रामकुमार राय; चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी)
बौधायन श्रौत सूत्र (मुन्शीराम मनोहरलाल, दिल्ली)
ब्राह्मणोद्धार कोश (विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थानम्, होशियारपुर)
भागवत पादानुक्रमणिका (श्रीकृष्ण जन्म स्थान सेवासंघ, मथुरा)
महाभारत श्लोक पाद-सूची (भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना)
यजुर्वेद (उव्वट-महीधर भाष्य; निर्णय सागर प्रेस, बम्बई)
वाचस्पत्यम् (ले० तारानाथ तर्कवाचस्पति; चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी)
वैदिक कन्कार्डेन्स (सं० एम० ब्लूमफील्ड; मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)
वैदिक तत्व मंजूषा (डा० फतह सिंह से वार्तालाप के अंश; मामचन्द बलबीर सिंह, देवबन्द)
शतपथ ब्राह्मण (नाग प्रकाशक, दिल्ली)
शब्दकल्पद्रुम (सं० राजा राधाकान्त देव; नाग प्रकाशक, दिल्ली)
शांखायन आरण्यक (आनन्दाश्रम, पूना)
शांखायन श्रौत सूत्र (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)
षड्विंश ब्राह्मण (केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति)
संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी (आप्टे व अन्य ; प्रसाद प्रकाशन, पूना)

मुख्य ग्रन्थ संकेत - सूची

अग	अग्नि पुराण	ब्रव	ब्रह्म वैवर्त पुराण	वर	वराह पुराण
कस	कथा सरित्सागर	ब्रड	ब्रह्माण्ड पुराण	वम	वामन पुराण
कू	कूर्म पुराण	भ	भविष्य पुराण	वा	वायु पुराण
गड	गरुड पुराण	भा	भागवत पुराण	रा	वाल्मीकि रामायण
गर्ग	गर्ग संहिता	म	मत्स्य पुराण	वि	विष्णु पुराण
देभा	देवीभागवत पुराण	मा	मार्कण्डेय पुराण	विध	विष्णु धर्मोत्तर पुराण
न	नारदीय पुराण	योव	योगवासिष्ठ	शि	शिव पुराण
प	पद्म पुराण	लन	लक्ष्मी नारायण संहिता	स्क	स्कन्द पुराण
ब्र	ब्रह्म पुराण	लि	लिंग पुराण	ह	हरिवंश पुराण

अ

अ स्कन्द ४.१.२१.३४ (अकार की अक्षरों में श्रेष्ठता का उल्लेख), ५.१.४.२८ (ब्रह्मा से उत्पन्न अकार अग्नि का ब्रह्मा से भोजन पाकर संतुष्ट होना, ब्रह्मा द्वारा अकार अग्नि को तेज में स्थान देना); दृ. उकार, ओंकार

अंश विष्णु १.१५.१३१ (द्वादश आदित्यों में से एक), २.१०.१३ (० आदित्य की सूर्य रथ पर स्थिति), हरिवंश ३.५३.१४ (कुजम्भ से युद्ध), ३.५६ ब्रह्माण्ड १.२.३६.११ (तुषित देवताओं में से एक), योगवासिष्ठ ६.२.१३.२९ (इन्द्र के कुल के एक राजा अंशक का उल्लेख)

टिप्पणी : वेद में अंश की १२ आदित्यों के अन्तर्गत परिगणना की गई है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१.९.२ तथा मैत्रायणी संहिता १.६.१२ के अनुसार अदिति देवी द्वारा ब्रह्मोदन का उच्छिष्ट भाग भक्षण करने से अंश व भग मिथुन की उत्पत्ति होती है। ऋग्वेद २.१.४ में अग्नि को अंश का देवों में विभाजन करने वाला कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण ५.३.५९ में अभिषेक कर्म में वीर्य से अभिषेक करते समय कहा गया है कि वीर्य अंश है, वीर्य भग भी है। उपरोक्त वर्णन से प्रतीत होता है कि भोजन से जो अंश रूप शक्ति प्राप्त होती है, उसका देवशक्तियों में सम्यक वितरण करना अंश और भग/भाग का कार्य है। ब्रह्मसूत्र २.३.४१ के अनुसार जीव अंश शक्ति का उपयोग कितव/जूए के रूप में करता है। जाबालदर्शनोपनिषद ८.४ में धारणा के अंतर्गत शरीर के भागों को पांच महाभूतों के अंश कहा गया है। सरस्वती रहस्योपनिषद ३.२३ में समाधि से व्युत्थान के अंतर्गत अंशपंचकों अस्ति, भाति, प्रिय, रूप व नाम की गणना की गई है जिनमें पहले तीन ब्रह्म रूप हैं और अंतिम २ जगत रूप। मैत्रायणी उपनिषद ५.२ में ब्रह्मा, विष्णु व रुद्र को राजसिक, सात्विक व तामसिक अंश कहा गया है।

अंशु विष्णु ४.१२.४३ (पुरुमित्र - पुत्र, सत्वत - पिता, क्रोष्टु/यदु वंश), वायु १००.८९ (हरित गण के १० देवों में से एक), भविष्य ३.४.१८.१७ (संज्ञा व सूर्य के विवाह के अवसर पर प्रांशु आदित्य के शकटासुर से युद्ध का उल्लेख), मार्कण्डेय ११७.१ (प्रांशु : वत्सप्री व सुनन्दा के १२ पुत्रों में से एक)

टिप्पणी : अंशु का सामान्य अर्थ किरण होता है। सोमलता जिससे सोम निचोडा जाता है, का नाम भी अंशु है। वैदिक साहित्य में अंशु एक वचन और बहु वचन में आता है। व्यक्तित्व के सर्वोच्च कोश में स्थित सोम से नीचे के सात कोश अंशुओं द्वारा प्रकाशित होते हैं (अथर्ववेद १९.६.१६)। इन अंशुओं या प्राणों को अन्तर्मुखी करने की आवश्यकता होती है। शतपथ ब्राह्मण ४.१.१.१, ४.६.१.१ तथा ११.५.९.२ के अनुसार प्राण, मन, चक्षु यह सब अंशु हैं। लेकिन यह अंशु नीचे के स्तरों तक आते-आते बहुत दुर्बल पड गए हैं। उनमें इतनी शक्ति नहीं है कि वह हमारे व्यक्तित्व के शत्रुओं का नाश कर सकें और न ही वह कोई आनंद प्रदान करते हैं। शतपथ ब्राह्मण में इन अंशुओं का शोधन करके उन्हें उच्चतर स्तरों पर स्थापित करने का वर्णन है। इस प्रकार प्राण का रुपांतरण उदान में, मन का वाक् में तथा चक्षु का श्रोत्र में करने का उल्लेख है। इस रुपांतरण करने में आत्मा या व्यान प्राण शोधन करने वाले उपकरण का कार्य करते हैं। इस रुपांतरण को श्येन का रुप दिया गया है जिसके प्राण और उदान दो पक्ष हैं और आत्मा मध्य भाग है। श्रौत ग्रन्थों में इस प्रक्रिया का विस्तार से वर्णन है। ऋग्वेद ९.६८.६ तथा ४.२६.६ में उल्लेख है कि श्येन उड्कर स्वर्ग से जो सोम लाया, उसका स्वरुप अन्धा है। उस अन्धे सोम का सम्यक् परिमार्जन करके उसमें चमकते हुए अंशु आदि उत्पन्न करने की आवश्यकता होती है। यजुर्वेद ५.७ के सार्वत्रिक यजु के अनुसार सोम ऐसा होना चाहिए जिसका एक-एक अंशु इन्द्र को आह्लाद से अभिभूत कर दे। ऐसे सोम को ही देवगण स्वीकार करते हैं। ऋग्वेद ४.५८.१, ९.८९.६ तथा ९.९१.३ आदि में ऐसे अंशु को घृत व मधु की सृष्टि करने वाला व महान नाद करने वाला कहा गया है।

जैमिनीय ब्राह्मण १.११४ व १.११५ में एक ऐसी एकाक्षरा गायत्री वाक् की कल्पना की गई है जो अक्षर है। प्राण इसका अंशु है। यह वाक् स्वयं भी अंशु हो सकती है। चन्द्रमा की १६वीं कला को जो भक्षण करने पर भी अक्षीण रहती है, अंशु कहा गया है (अथर्ववेद ७.८६.६)।

पुराणों में प्रांशु आदित्य के शकटासुर से युद्ध का उल्लेख है। शकट का उल्लेख रोहिणी की शकट के संदर्भ में आता है। यह आरोहण -अवरोहण करने वाली शक्ति है। चन्द्रमा / शीतांशु की १६वीं कला इस आरोहण -अवरोहण से मुक्त है।

पुराणों में अंशु को पुरुमित्र का पुत्र कहने का तात्पर्य शतपथ ब्राह्मण ४.१.१.१ तथा ४.६.१.१ में दिए गए उपांशु ग्रह व अंशु ग्रह के वर्णन से समझा जा सकता है। इस वर्णन के अनुसार प्रजापति आत्मा है, वही अंशु है, अर्थात अपने प्राणों को आत्मोन्मुखी बनाने की आवश्यकता है। पुराणों में इस व्यक्तित्व या शरीर रूपी पुर में स्थित आत्मा को पुरु और अंतर्मुखी प्राणों को पुरुमित्र कहा गया है।

अंशुक्रमथ लक्ष्मी नारायण ३.२९ (०राजर्षि की भक्ति से साधु नारायण व साध्वी नारायणी का प्राकट्य)

अंशुमती स्कन्द ३.३.७ (द्रविक गंधर्व-कन्या, धर्मगुप्त राजकुमार से विवाह), स्कन्द ४.१.२९.३९ (गंगा सहस्रनामों में से एक), स्कन्द ७.१.३४४.३ (० नदी की जरद्गव तीर्थ में स्थिति)

टिप्पणी : ऋग्वेद ८.९६.१३, अथर्ववेद २०.१३७.७ तथा बृहद्देवता ६.१०९ में अंशुमती नदी के तट पर इन्द्र व मरुतों का कृष्ण नामक असुर से युद्ध दिखाया गया है। तैत्तिरीय आरण्यक १.६.३ में मन्त्र की व्याख्या

करते हुए अंशुमती को पृथ्वी कहा गया है जिसमें संवत्सर स्थित रहता है।

अंशुमान भागवत ९.८ (असमंज-पुत्र, सगर-पौत्र, कपिल की स्तुति), वा.रामायण १.३८, १.४१ (असमंजस-पुत्र, रसातल से यज्ञीय अश्व को लाना, गंगा अवतरण हेतु तप), नारद १.८.११८ (असमंजा-पुत्र, सगर-पौत्र, कपिल को प्रसन्न करके वर प्राप्ति), ब्रह्माण्ड २.३.५४.२३ (वही), हरिवंश१.१५.१३ (पंचजन-पुत्र, दिलीप-पिता), वामन ५६.७० (०द्वारा स्कन्द को ५ प्रमथगण प्रदान करना)

टिप्पणी : अथर्ववेद ८.१.२ में अंशुमान सोम को मनुष्य की मृत्यु से रक्षा करने वाला कहा गया है। अथर्ववेद १३.२.७ में सूर्य के रथ को अंशुमान कहा गया है।

अंशुमाला स्कन्द ४.१.२९.३९ (गंगा सहसनामों में से एक), नारद १.९१.६६ (अंशुमालिनी : ईशान शिव की पंचम कला का नाम)

अकबर भविष्य ३.४.२२ (निरुक्ति, पूर्व जन्म में मुकुन्द ब्राह्मण), द्र. ऋग्वेद में अकवारि सरस्वती

अकम्पन ब्रह्माण्ड २.३.७.१३६ (खशा-पुत्र), वा.रामायण३.३१ (रावण को खर-दूषण की मृत्यु का समाचार देना, सीता हरण का परामर्श), ६:५५ (रावण-सेनानी, हनुमान द्वारा वध), ६.५९.१४ (रावण-सेनानी, स्वरूप), ७.५.४० (सुमाली व केतुमती - पुत्र), कथासरित् १५.२.१९ (राजर्षि, स्व कन्या मन्दर देवी का नरवाहन दत्त से विवाह आदि), वायु ६९.१६७ (खशा -पुत्र, राक्षस), द्र. कम्पन

अकृतव्रण ब्रह्माण्ड २.३.२५.७४ (परशुराम द्वारा व्याघ्र से मोचित द्विज पुत्र का नाम), ब्रह्माण्ड २.३.३४+ (परशुराम-शिष्य), विष्णु धर्मोत्तर १.४५ (परशुराम द्वारा साल्व को प्रेषित दूत), भागवत १०:७४.९ (युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के ऋत्विजों में से एक), १२.७.५ (पुराणों के ६ आचार्यों में से एक)

अक्रम कथासरित् ८.७.२४ (सूयप्रभ -श्रुतशर्मा विद्याधर युद्ध में प्रियंकर द्वारा अक्रम का वध)

अक्रूर भागवत १०.३६ (कंस द्वारा कृष्ण को लाने के लिए प्रेषण), १०.३८ (व्रज यात्रा, कृष्ण दर्शन की उत्कंठा), १०.३९ (स्नान करते समय कृष्ण-बलराम के दर्शन, कृष्ण की स्तुति), १०.४८ (कृष्ण का ० गृह आगमन, अक्रूर द्वारा स्तुति), भा १०.४९ (हस्तिनापुर गमन, धृतराष्ट्र को परामर्श), १०.५७ (स्यमन्तक मणि हरण के लिए शतधन्वा को प्रेरणा, द्वारका से पलायन, अनावृष्टि निवारण हेतु पुनः आगमन, कृष्ण को मणि देना), ११:३० (भोज से युद्ध), पद्म ६.८९ (पूर्व जन्म में चन्द्रशर्मा नामक देवशर्मा-शिष्य), मत्स्य ४५.२६ (वृषभ-जयन्ती पुत्र), हरिवंश १.३४.११ (श्वफल्क-गान्दिनी पुत्र), १.३९ (स्यमन्तक मणि प्राप्ति, कृष्ण को दान व प्रतिदान), १.३९.३१ (०की अनुपस्थिति से अनावृष्टि), ह २.२२.८५ (कंस द्वारा कृष्ण को मथुरा लाने की आज्ञा), २.२५ (कृष्ण का दर्शन), ह २.२६ (यमुना में अनन्त और विष्णु के दर्शन का प्रसंग), २.३६.२ (कैशिक से युद्ध), वराह १५५ (० तीर्थ माहात्म्य: सुधन वैश्य का ब्रह्मराक्षस द्वारा धर्षण कथा), स्कन्द २.४.१३ (पूर्व जन्म में चन्द्र नामक देवशर्मा-शिष्य), ५.१.२६.३५ (० लिंग माहात्म्य), स्कन्द ५.२.३९ (० लिंग माहात्म्य, भृंगिरिटि द्वारा क्रूर बुद्धि विनाश हेतु स्थापना), ब्रह्म १.१५ (स्यमन्तक मणि हरण कथा), ब्रह्म १.८३ (कृष्ण दर्शन की लालसा, गोकुल गमन, यमुना जल में कृष्ण दर्शन आदि) ब्रह्मवैवर्त ४.६५ (कृष्ण को लाने की आज्ञा से हर्ष), ४.७० (कृष्ण समीप गमन), विष्णु ४.१३.१०८ (स्यमन्तक मणि प्राप्ति के पश्चात यज्ञ में प्रवृत्ति, द्वारका त्याग व अनावृष्टि निवारण हेतु पुनः आगमन), ५.१५+ (कंस की आज्ञा से कृष्ण-बलराम को मथुरा लाने का उद्योग), ५.१८ (यमुना जल में स्नान के समय कृष्ण -बलराम के दर्शन, मोह), गर्ग १.५.२४ (दक्ष प्रजाजति का अंश), ५.३ (कंस की आज्ञा से नंद ग्राम गमन), ५.४ (कृष्ण से भावी वियोग पर गोपियों द्वारा अक्रूर व उनके रथ का ताडन), ५.५ (यमुना जल में स्नान पर कृष्ण के परब्रह्म रूप का दर्शन व स्तुति), गर्ग ५.९.३७ (कृष्ण आज्ञा से हस्तिनापुर से पाण्डवों का समाचार लाना), ७.२.२० (प्रद्युम्न को विजय नामक शंख भेंट), ७.८.१२ (शिशुपाल-मित्र द्युमान से युद्ध), गर्ग ७.२०.३४ (प्रद्युम्न सेनानी, यज्ञकेतु ये युद्ध) १०.४९.१७ (कर्ण से युद्ध), ब्रह्माण्ड ३.४.४४.५० (लिपि न्यास प्रसंग में एक व्यंजन के देवता का नाम)

टिप्पणी : गोपथ ब्राह्मण १.२.१८, १.२.२० तथा वराह पुराण में अक्रूर तीर्थ के प्रसंगों से ज्ञात होता है कि अक्रूर का प्रसंग रात्रिकाल में सतत् जागरण से सम्बन्धित है। पुराणों में अक्रूर की व्रज यात्रा का प्रसंग अरिष्टासुर व केशी असुर वध प्रसंगों के बीच में आता है। अरिष्टासुर को समझने के लिए अरिष्ट पर टिप्पणी पठनीय है। संक्षेप में, पर्जन्य वर्षण से अरिष्टताति प्राप्त होती है। दिव्य रस की वृष्टि पाकर हमारी इन्द्रियां, जो हमारी प्रजा हैं, मृत्यु को प्राप्त नहीं होती, अरिष्ट या अहिंसित रहती हैं, रस पाने की आशा में हमारे नियंत्रण में रहती हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.४.७.२ तथा पैप्पलाद संहिता ६.९.८ में इन्द्र से प्रार्थना की गई है कि वह यजमान को एक ऐसा अक्रूर वृषभ बना दे जैसा सर्पि / घृत होता है जिससे वह इन्द्र की सहायता से सब शत्रुओं को जीत सके (तुलनीय : पुराणों में अक्रूर - पिता वृषभ का उल्लेख तथा अक्रूर की उपस्थिति से वृष्टि होने के उल्लेख)।

ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लेख है कि यज्ञों में जब पशु का सांस रोककर उसे मारते हैं तो यज्ञ में यह न कहे कि उसे मार रहे हैं। यह तो क्रूर कर्म हो जाएगा। अतः कहा जाता है कि उसका संज्ञपन किया जा रहा है। संग्राम में अपने शत्रुओं का वध करना भी क्रूर कर्म में आता है (शतपथ ब्राह्मण १.२.५.१९)। शतपथ ब्राह्मण ५.४.३.१२ में कहा गया है कि क्रूर कर्म के प्रायश्चित्त के रूप में अथवा अक्रूरत्व के लिए यजमान पहले स्वयं को गायों के बीच स्थित करता है और फिर बहुत सी गाएं दान करता है (तुलनीय : पुराणों में अक्रूर -माता गन्दिनी द्वारा गाएं दान करने का उल्लेख)।

याज्ञिक कर्मकाण्ड में यजमान को अपने घर में जीवन पर्यन्त सदैव एक अग्नि को प्रज्वलित रखना होता है जिसे आहिताग्नि कहते हैं। सतत् जागरण के लिए यह आवश्यक है कि शरीर की अग्नि रात्रि में निरंतर प्रज्वलित रहे। गोपथ ब्राह्मण १.२.१८ तथा १.२.२० के अनुसार इस वैश्वानर या जातवेदा अग्नि का भरण करने पर इसे अघोर व अक्रूर बनाना होता है। तब यह अग्नि एक अश्व बन जाती है। यह अश्व क्रूर होता है। इस अश्व को अक्रूर बनाने के लिए इसकी आथर्वण शांति नामक उपाय करना होता है (तुलनीय : पुराणों में कृष्ण द्वारा अश्व रूप धारी केशी असुर का वध)। उस अश्व को निचोड कर उसका रस निकाला। वह रस ही रथ कहलाता है। उपरोक्त वर्णन के आधार पर प्रतीत होता है कि अग्नि और सोम, दोनों द्वारा अक्रूरता प्राप्ति के तथ्य का उल्लेख अक्रूर द्वारा कृष्ण को रथ पर बैठाकर मथुरा लाने की कथा में कर दिया गया है। वराह पुराण में सुधन वैश्य द्वारा ब्रह्मराक्षस को जागरण का पुण्य दान न देकर नृत्य के पुण्य दान से उद्धार करने के प्रसंग से प्रतीत होता है कि जागरण का कृत्य अरिष्टताति में आता है जबकि नृत्य का कार्य अश्व शान्ति में, अश्व को रथ बनाने के अन्तर्गत आता है।

अक्ष भागवत २.१.१८ (मन व बुद्धि की सहायता से अक्षों को विषयों से हटाने का निर्देश), ७.१५.४२ (शरीर रूपी रथ में अक्ष रूपी १० प्राणों का उल्लेख), १०.६१.२८ (अनिरुद्ध के विवाह के पश्चात रुक्मी व बलराम में अक्ष क्रीडा का वर्णन : रुक्मी द्वारा बलराम को अक्षक्रीडा में अभिज्ञ कहना), विष्णु २.८.६ (सूर्य के रथ के दो अक्षों का युग प्रमाण कथन), मत्स्य १३३.१७ (त्रिपुर वधार्थ निर्मित शिवजी के रथ में मन्दर पर्वत का अक्ष होने का उल्लेख), ब्रह्म २.५३.२४ (देवों की ओर से असुरों से युद्ध करते हुए राजा दशरथ के रथ के अक्ष के छिन्न होने और कैकेयी द्वारा स्वहस्त को अक्ष बनाने का वृत्तांत), भविष्य १.५२.१५ (सूर्य के एक चक्र रथ में क्षणों के अक्ष दण्ड होने का उल्लेख; चक्र के अक्ष में निबद्ध होने व अक्ष के ध्रुव में समर्पित होने आदि का कथन), ४.६४.३ (नल के अक्ष/द्यूत क्रीडा में पुष्कर से हारने का उल्लेख), नारद १.७१.७२ (शत्रु के विरुद्ध अभिचार कर्म के अन्तर्गत शत्रु प्रतिमा को अक्ष काष्ठों द्वारा प्रज्वलित अग्नि में फेंकने का उल्लेख), लिंग १.५५.७ (सूर्य के तीन नाभियों वाले एक चक्र के रथ में चक्र का अक्ष में व अक्ष का ध्रुव में निबद्ध होने आदि का कथन), वायु ९६.२३८ (कृष्ण-पुत्र), ब्रह्माण्ड २.३.६.११ (दनु-पुत्र), स्कन्द १.२.३८.५ (सूर्य के रथ के दो अक्षों के योजन प्रमाणों का कथन; तु. विष्णु पुराण), ४.२.५५.१२ (पंचाक्षेश लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य), ४.२.५५.१५ (त्र्यक्ष लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य), ४.२.५७.९१ (कूणिताक्ष विनायक का संक्षिप्त माहात्म्य), लक्ष्मी नारायण २.२३५.२६ (कृष्ण द्वारा तामसाक्षि भक्त चाण्डाल के जलमग्न परिवार की रक्षा), २.२४५.४९ (जीव रथ में विचार रूपी ०), ३.१३२.५९ (ऋग्वेद की अक्षसूत्र सहित पूजा का उल्लेख); द्र. अभयाक्ष, अमोहाक्ष, कमलाक्ष, कांचनाक्षी, कामाक्षा, कुटिलाक्ष, कोटराक्ष, ताम्राक्ष, तारकाक्ष, धूम्राक्ष, पिंगाक्ष, पुष्कराक्ष, बिडालाक्ष, मकराक्ष, यूपाक्ष, रत्नाक्ष, रुद्राक्ष, लम्बाक्ष, लोहिताक्ष, विरूपाक्ष, विशालाक्षी, शकटचक्राक्ष, शक्त्यक्षि, शताक्षी, शोणिताक्ष, षोड्शाक्ष, सहस्राक्ष, सुचक्राक्ष, सुधूम्राक्ष, सुपर्णाक्ष, सुवर्णवर्माक्ष, सूर्पाक्षी, स्थूलाक्ष, हर्यक्ष, हिरण्याक्ष, द्यूत

महाभारत द्रोण १३०.१९, १५१.१० (युद्ध में बाणों की द्यूत में अक्षों से साम्यता का उल्लेख), अनुशासन ४२.२५, ४३.५ (विपुल ब्राह्मण द्वारा स्वर्ण-रजत अक्षों से द्यूतक्रीडा करते हुए ६ पुरुषों के दर्शन, पुरुषों का ऋतुओं के रूप में परिचय पाना)

टिप्पणी : महाभारत में वन पर्व में नलोपाख्यान के अंतर्गत आता है कि नल राजा ऋतुपर्ण का सारथी बना। रास्ते में ऋतुपर्ण ने बिभीतक का पेड देखकर उसके पत्ते व फल तुरंत गिनकर बता दिए। वह अक्ष विद्या जानता था। नल ने उससे अश्व विद्या के बदले अक्ष विद्या सीख ली। अक्ष विद्या सीखते ही कलि उसके शरीर से निकल कर बाहर खडा हो गया।

ऋग्वेद १०.३४.१३ में आता है कि अक्षैः मा दीव्येत्, कृषिमित् कृषस्व। अक्ष अर्थात अपनी इन्द्रियों के साथ जुआ न खेले। उनका दुरुपयोग न करे। उनका उपयोग शक्ति के कर्षण के लिए, शक्ति का आरोहरण करने के लिए करे। आंख को अक्षि कहते हैं। जब तक आंखें इधर-उधर जाती हैं, तब तक वह आंखों का जुआ है। नल अश्व विद्या जानता है। अश्व का अर्थ होगा जिसकी चेतना व्याप्त हो गई है। यह सामूहिक आरोहण है। इसके विपरीत अक्ष सीधे आरोहण करने की एकांगी साधना है। अक्ष विद्या जानते ही कलि बाहर निकल जाता है। -फतहसिंह

वैदिक साहित्य में अक्ष शब्द क्या वास्तव में इन्द्रियों के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है? इसका प्रमाण शतपथ ब्राह्मण ५.३.१.१०, अथर्ववेद ५.३१.६ तथा

६.७०.१ के इस कथन से मिलता है कि द्यूत क्रीडा में अक्ष/पांसे जिस कपडे पर गिराए जाते हैं उसे अधिदेवन कहते हैं। यह अधिदेवन या अधिदेव अग्नि हो सकता है, जबकि अक्ष अंगार हैं। अधिदेव का उल्लेख यह संकेत करता है कि यह इन्द्रियों की ओर संकेत है क्योंकि इन्द्रियों के संदर्भ में अधिभूत, अध्यात्म और अधिदेव की चर्चा की जाती है। त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद १.८ में चन्द्रमा, ब्रह्मा, दिशा, वायु, अर्क, वरुण, अश्विनौ, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, प्रजापति व यम नामक १२ अक्ष अधिदेवताओं को गिनाया गया है। ५ अधिभूतों के रूप में आकाश, वायु, अग्नि, जल व पृथिवी का नाम आता है। इन ५ तत्वों के सात्विक अंशों से क्रमशः श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना व घ्राण नामक ५ ज्ञानेंद्रियों का प्रादुर्भाव होता है (श्रीधीश गीता, ६.८)। ५ अधिभूतों के राजसिक अंश से क्रमशः वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ व गुदा नामक ५ कर्मेन्द्रियों का प्रादुर्भाव होता है। इन ५ अधिभूतों के तामसिक अंशों से पांच महाभूतों का जन्म होता है। इसके अतिरिक्त मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार का जन्म उपरोक्त ५ तत्वों की समष्टि से होता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गन्ध को ५ तन्मात्राएं कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण ५.४.४.२३ के अनुसार जो अक्षों का अधिदेवता अग्नि है, वह पृथु है, विस्तीर्ण आयामों वाला है। अतः जब इस अधिदेवन पर अंगार रूपी अक्षों को फेंका जाता है तो इसका अर्थ होगा कि अक्ष भी अग्नि की विस्तीर्ण चेतना में समाहित हो जाएं (शतपथ ब्राह्मण का उपरोक्त कथन राजसूय यज्ञ के संदर्भ में है जिसमें अभिषेक के पश्चात द्यूत क्रीडा का कर्म सम्पन्न होता है)। लेकिन अक्षों में विकार होने के कारण इस क्रिया में बाधा आती है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.४.१६.१ से संकेत मिलता है कि अक्षों का विभाजन मुख्यतः चार युगों के अनुसार कृत, त्रेता, द्वापर व कलि में किया जा सकता है। इनमें से कृत और कलि का उल्लेख प्रायः वेद मन्त्रों में (उदाहरणार्थ अथर्ववेद ७.५२.८) अक्ष के संदर्भ में आता है। कृत अक्ष वह हैं जिन्हें यजमान ने जीत लिया है। आपस्तम्ब श्रौत सूत्र ५.१.९.२ व ५.२०.१ के अनुसार यजमान कृत से जिस धन को प्राप्त करता है, उससे सभासदों को अन्न प्रदान करता है/ओज देता है। बौधायन श्रौत सूत्र २२.१९.१० में अक्षों का वर्गीकरण सौवर्ण, राजत, नागदन्त व बैभीतक इन चार में किया गया है। षड्विंश ब्राह्मण ५.६.४ में चार युगों का सम्बन्ध क्रमशः कुहू अमावास्या, राका पूर्णिमा, सिनीवाली अमावास्या व अनुमति पूर्णिमा से किया गया है। अतः कहा जा सकता है कि कृत अक्षों की प्राप्ति पर कुहू-कुहू की वाणी सुनाई पडती है। त्रेता के संदर्भ में षड्विंश ब्राह्मण में त्रेता को खर्व (वामन) कहा गया है। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३५१ तथा आश्वलायन गृह्य सूत्र २.६.२ में वामदेव या वामन प्रकार के अक्षों का वर्णन है। वामन अक्षों के संदर्भ में इनके पादों का हृदय में स्थित होने का उल्लेख किया गया है। मैत्रायणी उपनिषद ७.११ में दक्षिण व सव्य अक्षियों में स्थित इन्द्र व इन्द्राणी का उल्लेख है जिनका समागम हृदयाकाश में होता है। हो सकता है कि यह भी वामन के पादों से सम्बन्धित हो। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.४.१६.१ में त्रेता के साथ आदिनवदर्श का उल्लेख है। अथर्ववेद ७.११४.४ के अक्ष सूक्त में भी आदिनव का उल्लेख आया है जिसकी प्रकृति को अधिक स्पष्ट करना अपेक्षित है। द्वापर प्रकार के अक्षों के संदर्भ में महाभारत सभापर्व में युधिष्ठिर के साथ द्यूत खेलने वाला शकुनि द्वापर का अंश है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में द्वापर के साथ बहिः सदम् शब्द को रखा गया है। कलि प्रकार के अक्षों का वर्णन पुराणों में नल आदि की कथाओं में पर्याप्त रूप से मिलता है। अथर्ववेद ७.११४.१ में कहा गया है कि घृत द्वारा कलि को शिक्षा देनी है। शतपथ ब्राह्मण ५.४.४.६ में कलि को अयान अभिभूः कहा गया है तथा इसके साथ ५ दिशाओं का सम्बन्ध कहा गया है। इसके प्रतीक रूप में राजसूय यज्ञ में यजमान के हाथों में ५ अक्ष रखते हैं। कलि अक्ष बिभीतक प्रकार के हैं। बिभीतक अर्थात जिनमें मृत्यु का भय छिपा हुआ है। महाभारत में नल-दमयन्ती की कथा का आधार कलि ही है। यह अन्वेषणीय है कि महाभारत सभापर्व में इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर व ब्रह्मा का सभाओं का वर्णन का क्या कलि की ५ दिशाओं से सम्बन्ध हो सकता है? यह भी विचारणीय है कि अथर्ववेद १९.५३.२ में काल के जिस अमृत अक्ष का उल्लेख है, क्या काल भी कलि का विकसित रूप है ?

वैदिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से उल्लेख आता है कि जब सोमलता को ढोने वाली शकट के अक्षों व चक्रों के घर्षण से ध्वनि उत्पन्न होने लगे तो यजमान पत्नी यज्ञशेष घृत हाथों में लेकर उसे अक्षों में लगाती है (तुलनीय : पुराणों में कैकेयी द्वारा स्वहस्त को अक्ष बनाना) तथा जो वाक् उत्पन्न हुई है वह आसुरी न बने, इस हेतु अक्रन्ददाग्निः इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करती है (आपस्तम्ब श्रौत सूत्र १६.१२.७, कात्यायन श्रौत सूत्र ८.३.२८, शतपथ ब्राह्मण ३.५.३.१३, ६.८.१.१०)। ऋग्वेद १.१६४.१३ की ऋचा के अनुसार सूर्य के रथ का अक्ष ऐसा है कि उस पर बहुत भार होते हुए भी उसका तापन नहीं होता, उसमें घर्षण नहीं होता। इस संदर्भ में यज्ञशेष घृत को अक्षों में लगाने वाली यजमान-पत्नी से क्या तात्पर्य हो सकता है ? बृहदारण्यक उपनिषद ४.२.२ के अनुसार दक्षिण अक्षि/अक्षन् में स्थित पुरुष की विराट पत्नी है। अतः जब अक्ष, घृत व विराट चेतना का मिलन होगा तब दैवी वाक् का, स्तुति का जन्म होगा, अन्यथा अक्षों से आसुरी वाक् ही निकलती रहेगी। महाभारत में अक्षों को बाण कहने का तात्पर्य भी वाण या स्तुति से हो सकता है। तैत्तिरीय संहिता ६.२.९.१ में दुर्वाक् उत्पन्न करने वाले अक्ष को वरुण कहा गया है जो सत्यानृत का निर्णय करता है। तैत्तिरीय संहिता ६.१.९.१ के अनुसार यह जो अक्ष चक्र की नाभि से लगातार सम्पर्क करके आगे बढता है, यह उसका शोधन करता है। शोधन वरुण का कार्य है। दूसरी ओर, पत्नी जिसके द्वारा सुवाक् उत्पन्न होती है, मित्र के समान है। शतपथ ब्राह्मण ५.१.२.१५, कात्यायन श्रौत सूत्र १४.२.६ तथा जैमिनीय ब्राह्मण १.७७ आदि में उल्लेख आता है कि अध्वर्यु ऋत्विज सोम ग्रह को हविर्धान शकट के अक्ष के

ऊपर धारण करता है, जबकि नेष्टा ऋत्विज सुरा ग्रह को अक्ष के नीचे धारण करता है। दोनों ग्रहों को अलग-अलग रखा जाता है। तैत्तिरीय संहिता २.६.३.३ में प्रश्न उठाया गया है कि पुरोडाश के नीचे व ऊपर आज्य का लेप क्यों किया जाता है ? इसके उत्तर में कहा गया है कि जैसे अक्ष के ऊपर व नीचे आज्य न लगाने से वह नष्ट हो जाता है, इसी प्रकार पुरोडाश भी है। पुरोडाश के ऊपर और नीचे के पृष्ठ द्यावापृथिवी के प्रतीक होते हैं। अक्ष के संदर्भ में भी सार्वत्रिक रूप से वर्णन आता है कि इन्द्र ने द्यौ व पृथिवी को आकाश में स्थिर किया (तैत्तिरीय ब्राह्मण २.४.५.२, ३.७.७.१, शतपथ ३.५.३.१४, ऋग्वेद १०.८९.४), वैसे ही जैसे अक्ष के दोनों ओर दो चक्र स्थित रहते हैं। ऐसा अनुमान है कि द्यौ के पृथिवी से पृथक् होने के रूप में उदान प्राण के विकास का चित्रण किया गया है। पुराणों में उदान प्राण की यह पुष्टि नैषध नल-दमयन्ती कथा के माध्यम से चित्रित की गई है क्योंकि बल दक्षिणाग्नि का अधिष्ठाता है जिस पर ओदन पकाया जाता है।

वैदिक साहित्य में एक ओर रथ के अक्ष के लिए अक्ष शब्द का प्रयोग हुआ है तो दूसरी ओर अक्षियों/चक्षुओं के लिए भी अक्ष का प्रयोग किया गया है (उदाहरण के लिए, शतपथ १०.५.२.७)। अथर्ववेद १९.६०.१ से संकेत मिलता है कि अक्षियों में चक्षु को स्थापित करना पड़ता है। अत: चक्षु व अक्षि का अलग-अलग अर्थ है। अक्षियों को अक्ष कहने के पीछे तात्पर्य निमेष-उन्मेष को चक्र मानने से हो सकता है। अथवा सूर्य और चन्द्रमा के दो चक्र हो सकते हैं।

महाभारत में नल और पुष्कर में द्यूत क्रीडा के संदर्भ में पुष्कर कौन है ? इस संदर्भ में मैत्रायणी उपनिषद ६.१ तथा शतपथ ब्राह्मण १०.५.२.७ का कथन है कि यह आदित्य जो आकाश में विचरण करता है, जिस आकाश में दिशाएं पर्णों के रूप में स्थित हैं, यही पुष्कर है। आन्तरिक रूप में हिरण्मय पुरुष के लिए हृदय पुष्कर है।

ऋग्वेद १०.८५.१२ तथा अथर्ववेद १४.१.१२ में सूर्या सावित्री के मनोमय अन:/शकट के अक्ष में व्यान प्राण की उपस्थिति का उल्लेख है। अथर्ववेद १४.१.३५ में अक्षों में वर्चस् होने का उल्लेख है। ऊपर अक्षों के चार युगों में विभाजन करने के संदर्भ में डा० फतहसिंह का विचार है कि अन्नमय और प्राणमय कोश की संधि एक युग है जिसके दोनों ओर अन्नमय कोश और प्राणमय कोश रूपी दो चक्र लगे हैं। दूसरा युग प्राणमय और मनोमय कोश के बीच, तीसरा मनोमय और विज्ञानमय के बीच और चौथा विज्ञानमय और हिरण्यय कोश के बीच है। इनमें नीचे के २ युगों में दर्श और पूर्णमास का एक युगल और ऊपर के दो युगों में दूसरा युगल है।

ऋग्वेद के सूक्त १०.३४ व अथर्ववेद के सूक्तों ७.५२ व ७.११४ के देवता अक्ष हैं। वेद में अक्ष एक वचन और बहुवचन में आता है। जब अक्ष बहुवचन में आता है तो उनको ग्रहण (अंतर्मुखी) करना आना चाहिए (अथर्ववेद ७.११४.५)। अथर्ववेद ४.३८.४ के अनुसार अक्षों में शुच व क्रोध को धारण करने वाली आनन्दिनी व प्रमोदिनी अप्सराओं का वास है। अथर्ववेद ७.११४.२ में अग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह अप्सराओं के लिए घृत दे, अक्षों से धूलि को निकाल दे। अथर्ववेद ७.११४.१ के अनुसार बभ्रु नामक देव अक्षों में रह कर शरीर को वश में कर लेता है तथा घृत द्वारा कलि को शिक्षा देनी है। अथर्ववेद २.२.५ में अक्षकामा, मन को मोहने वाली गन्धर्व -पत्नियों अप्सराओं को नमन किया गया है।

जब अक्ष शब्द का प्रयोग एकवचन में हुआ है तो वह रथ चक्र का वहन करने वाला होता है (उदाहरण के लिए ऋग्वेद १.१६४.१३)।

अक्षकुमार वा.रामायण ५.४७ (रावण-पुत्र, रथ वर्णन, प्रमदावन में हनुमान से युद्ध व मृत्यु), पद्म ५.३६.३१ (मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी को हनुमान व अक्षकुमार के युद्ध होने का उल्लेख)

अक्षक्षपणक कथासरित् १२.७.१४८ (कितव जुआरी, कर्कशा माता का वृत्तांत वर्णन)

अक्षत विष्णु धर्मोत्तर २.१२७.४३ (शान्ति, पुष्टिकर होम द्रव्यों में से एक), ३.२२१.२४ (वैशाख शुक्ल तृतीया को अक्षतों द्वारा विष्णु की पूजा, अक्षतों द्वारा स्नान आदि के कारण तिथि का अक्षता नाम होना), ब्रह्म १.११०.४९ (यज्ञ वराह द्वारा पितृ तर्पण में अक्षतों द्वारा देवता रक्षा करने का उल्लेख; अक्षतों के अक्षत नाम के कारण का कथन), लक्ष्मी नारायण १.४५१.७५ (पूजा में करणों का प्रतीक)

टिप्पणी : अथर्ववेद की पैप्पलाद संहिता १९.४०.१५ में कहा गया है कि जो ओदन पुत्रकामा अदिति पकाती है, तथा जो ओदन वैश्वदेव उद्देश्य के लिए पकाया जाता है वह हमारे लिए अक्षत भाग है। पैप्पलाद संहिता १०.९.३ में कहा गया है कि हमारे प्राण और अपान अक्षत रहें। पैप्पलाद संहिता ५.३०.४ में प्रार्थना की गई है कि हमारा धान्य सहस्रधार हो व अक्षत रहे।

अक्षपादशिव ३.५.४२ (२७वें द्वापर में सोमशर्मा -शिष्य), स्कन्द १.२.५५.५ (अहल्या -पति गौतम ऋषि का नाम), ४.२.९७.६९ (० मुनि द्वारा वरणा तट पर सिद्धि प्राप्ति का उल्लेख), लिंग १.२४.१२३ (२७वें द्वापर में सोमशर्मा नामक शिव - अवतार के शिष्यों में से एक)

अक्षमाला स्कन्द १.१.११.१०. (गणेश द्वारा दस भुजाओं में धारित आयुधों में से एक), ३.२.१८.६२ (मातंगी देवी द्वारा भुजाओं में धारित आयुधों में से एक), ६.१४३.२९ (रम्भा अप्सरा के दर्शन से जाबालि ऋषि के हाथ से अक्षमाला का छूट कर पृथिवी पर गिरने का उल्लेख), ७.१.१२९ (अन्त्यज कन्या, दुर्भिक्ष में वसिष्ठ ऋषि से विवाह, अरुन्धती बनना, अक्षमाला

लिंग पूजा) लक्ष्मी नारायण १.५३९ (वही), विष्णु धर्मोत्तर ३.५६.६ (अग्नि रूप के वर्णन के अन्तर्गत अग्नि द्वारा अक्षमाला धारण का उल्लेख), ३.६६.८ (जयन्ती देवी के अक्षमाला धारी रूप का उल्लेख), ३.७१.९. (भद्रकाली देवी के आयुधों में से एक), ३.७७.३ (धर्म की मूर्ति के स्वरूप वर्णन में धर्म के दक्षिण कर में अक्षमाला होने का उल्लेख; अक्षमाला काल का प्रतीक), भागवत ८.१८.१६ (वामन अवतार के उपनयन संस्कार में सरस्वती द्वारा अक्षमाला प्रदान करने का उल्लेख), १२.१०.१२ (शिव के स्वरूप के ध्यान में शिव द्वारा धारित आयुधों में से एक)

टिप्पणी : अक्षमालिका उपनिषद दृष्टव्य है।

अक्षय भविष्य ४.३० (०तृतीया व्रत, धर्म वणिक् दृष्टान्त), स्कन्द २.७.२३ (वैशाख में ० तृतीया, माहात्म्य), मत्स्य ६५ (० तृतीया व्रत विधि, वैशाख शुक्ल तृतीया, विष्णु पूजा), नारद १.११८.२३ (० नवमी को अश्वत्थ मूल में तर्पण, कार्तिक शुक्ल तृतीया), पद्म १.३६.४४ (अक्षयराज नृप : प्रजा के रक्षणार्थ देवों के तेज से उत्पत्ति वर्णन), वायु १०५.४५, १११.१६ (गया में अक्षय वट पर श्राद्ध महिमा)

अक्षर ब्रह्माण्ड २.३.७०-२३ (सुयज्ञ-पिता), भविष्य १.१४४.१५ (सूर्य के क्षर व अक्षर रूपों का निरूपण), ब्रह्म १.१३३ (कराल जनक -वसिष्ठ संवाद में क्षर-अक्षर जगत निरूपण), ब्रह्म १.१३६ (प्रकृति का गुणों से क्षर-अक्षर होना), देवीभाग ७.३६.५ (उपनिषद धनुष, उपासना शर व अक्षर लक्ष्य), लक्ष्मी नारायण १.११३ (कृष्ण के अक्षर बदरी धाम में कृष्ण -पत्नियों का नर स्वरूप होना), १.२६३.९ (अक्षरा: पुरुषोत्तम की पत्नी, एकादशी व्रत प्रसंग), २.८५.६१+ (कृष्ण द्वारा पुलस्त्य -पत्नी ऐलविला से अक्षर -क्षेत्र का माहात्म्य वर्णन), २.९२.७४ (० परम ब्रह्म निरूपण), २.१६८.१ (० नामक कृष्ण -पार्षद द्वारा यज्ञ में आमन्त्रण पत्र का वितरण), २.१७३.२० (०.धाम निरूपण), २.२५५.७५ (क्षर -अक्षर जगत का निरूपण), २.२५६.२ (जीव को क्षर से अक्षर प्राप्त न होने का कारण), ४.११५.८७ (कृष्ण के अक्षर बदरी धाम की शोभा व माहात्म्य), दृ. एकाक्षर, वर्ण मातृका, स्वर

टिप्पणी : ताण्ड्य ब्राह्मण ८.६.१३ के अनुसार जीवन रूपी यज्ञ में जो कुछ अनृत बोला जाता है वह यज्ञ में छिद्र रूप है जिसका पूरण अक्षर द्वारा करते हैं। ऋग्वेद १.१६४.३९ व १.१६४.४२ में गौ से क्षरने वाले अक्षर के लक्षण कहे गए हैं -वह विश्वेदेवों को जीवित रखता है। ऋग्वेद १.१६४.२४ के अनुसार अक्षर से सात वाणियां निकलती हैं। ऐतरेय अरण्यक ३.२.१ में उष्माण, स्पर्श, स्वर व अन्तस्थ अक्षरों का शरीर के अस्थि मज्जा आदि से उद्भव कहा गया है। उपनिषदों में क्षर -अक्षर का पर्याप्त विवेचन किया गया है। योगशिखोपनिषद ३.२ में अक्षर को परम नाद, शब्दब्रह्म कहा गया है। सुबालोपनिषद २ व १५ के अनुसार अक्षर को तमस या मृत्यु में लीन करना होता है जिससे परम पद की प्राप्ति होती है।

अक्षसूत्रा ब्रह्म २.६०.२ (आपस्तम्ब-भार्या, कर्कि-माता)

अक्षोट लक्ष्मी नारायण १.४४१.८६ (वृक्ष, धनद देवता का रूप)

अक्षोभ्य नारद १.८५.३७ (मुनि, तारा की आराधना)

अक्षोभ्या स्कन्द ४.१.२९.१८ (गंगा सहस्रनामों में से एक), देवीभाग १२.११.१३ (६४ कलाओं में से एक)

अखण्ड नारद १.१२१.६१ (० द्वादशी व्रत विधि), स्कन्द २.५.१२.१९ (अखण्ड एकादशी व्रत विधि व माहात्म्य), ५.१.६८.३० (महाकाल वन में अखण्ड सरोवर में स्नान का माहात्म्य), भविष्य ४.११० (सम्पूर्ण व्रत विधि), दृ. खण्ड

अगम्यागमन पद्म ४.१८ (प्रायश्चित्त विधि), ब्रह्माण्ड ३.४.८ (० दोष वर्णन), नारद १.१५.९४ (अयोनि वीर्य त्याग पर नरक यातना वर्णन), न १.३०.५७ (० प्रायश्चित्त विधि), दृ. मैथुन, सम्भोग, सुरत

अगस्ति वराह १८० (पितर-नाम, विरूपकनिधि दासी द्वारा ध्रुव-तीर्थ में श्राद्ध से मुक्ति), विष्णु ३.११.९५ (अन्न पाचक अग्नि का नाम), स्कन्द ४.२.६१.१७७ (० तीर्थ का माहात्म्य)

अगस्त्य वामन १८ (विन्ध्य को नीचा करना), विष्णु धर्मोत्तर १.२४.८ (इन्द्रपद पर आसीन नहुष द्वारा शिविका वाहक अगस्त्य पर पदाघात, शाप प्राप्ति कथा), विष्णु धर्मोत्तर १.११८ (गोत्रकार), विष्णु धर्मोत्तर १.२१३ (विन्ध्य को ह्रस्व करने पर दिव्य देह प्राप्ति), विष्णु धर्मोत्तर ३.७३ (मूर्ति रूप), वराह ४९ (भद्राश्व को उसके पूर्व जन्म का वृत्तान्त कथन), ६९ (इलावृत्त में घटित आश्चर्य वर्णन), वराह ५१ (अगस्त्य-गीता), भविष्य ४.११८ (अर्घ्य दान, चरित्र वर्णन में इल्वल -वातापि प्रसंग, समुद्र शोषण,

कालकूट विष का हिमालय में वितरण, श्वेत राजा की सहायता आदि), भागवत ४.१.३६ (पुलस्त्य व हविर्भू -पुत्र, जठराग्नि उपनाम), ४.२८.३२ (मलयध्वज -पुत्री से दृढच्युत नामक पुत्र प्राप्ति) भा ८.४ (राजा इन्द्रद्युम्न को गज बनने का शाप) स्कन्द १.१.१८.७७ (० द्वारा बलि से दान में ऐरावत की प्राप्ति), १.२.१३ (ब्रीही लिंग पूजा, शतरुद्रिय प्रसंग), २.१.२६ (तुम्बुरु-पत्नी का मण्डूक योनि से उद्धार, पतिव्रता धर्म कथन), २.१.३१ (दक्षिण दिशा में गमन से पृथ्वी का समतल होना, सुवर्णमुखरी नदी को उत्पन्न करना) स्कन्द २.१.३७ (वेंकटाचल पर शंख के साथ तप, विष्णु दर्शन), ३.१.१३ (अगस्त्य-अनुज एकांत रामनाथ द्वारा तप व मोक्ष की कथा) स्कन्द ३.१.२३ (यज्ञ में प्रतिहर्ता), ३.१.४९ (रामेश्वर स्तुति), ३.१.१६ (० तीर्थ माहात्म्य, कक्षीवान विवाह प्रसंग), ४.१.३+ (आश्रम शोभा वर्णन, काशी से दक्षिण गमन, विन्ध्य का नमन, महालक्ष्मी की स्तुति) स्कन्द ५.१.३५ (० लिंग माहात्म्य), ५.१.५५ (रेवा जल से भूमि के उद्धार के लिए विन्ध्यवासिनी की स्तुति), ५.२.१ (० लिंग, ० की ब्रह्महत्या से मुक्ति) स्कन्द ५.३.६४ (० तीर्थ माहात्म्य), ६.३३ (विन्ध्य का नमन, हाटक लिंग स्थापना) स्कन्द ६.३५ (कालेय दैत्यों के वधार्थ विशोषिणी विद्या द्वारा समुद्र शोषण, चित्रेश्वर पीठ स्थापना), ७.१.१७.११७ (० पुष्प महिमा), ७.१.७८ (०-लोपामुद्रा का पूर्व जन्म वृत्तान्त, पूर्वजन्म में शुक, वैश्वानर लिंग पूजा) स्कन्द ७.१.२८५ (० आश्रम माहात्म्य, वातापि-इल्वल कथा, क्षुधा शान्ति), स्कन्द ७.१.३४६ (कालकेय दैत्यों के वधार्थ समुद्र का शोषण, देवों से हाटक लिंग की पूज्यता वराह की प्राप्ति) ब्रह्म २.१४.६ (अंजना व अद्रिका को पुत्र प्राप्ति वर दान), ब्रह्म २.४८ (विन्ध्य का नमन कथा) ब्रह्म २.५४ (इन्द्र द्वारा दिति गर्भ छेदन पर इन्द्र को शाप), २.६० (आपस्तम्ब मुनि को त्रिदेवों में शिव भक्ति का आदेश), २.८८ (आंगिरस गणों को गंगा तट पर तप करने का आदेश), मत्स्य ६१ (इन्द्र द्वारा शापित वायु व अग्नि का संयुक्त रूप), ६१ (अर्घ्य दान विधि) म १४५.९२ (तप से ऋषिता प्राप्ति), २०२ (वंश, गोत्र) ब्रह्माण्ड १.२.११.२६ (पुलस्त्य व प्रीति -पुत्र, दानाग्नि का रूप), २.३.३६ (परशुराम को कृष्ण प्रेमामृत स्तोत्र कथन), ३.४.५ (कांची में हयग्रीव से मुक्ति उपाय पृच्छा), गरुड १.११९ (० अर्घ्य व्रत), कूर्म १.१३.१० (जन्मांतर में पुलस्त्य व प्रीति -पुत्र दम्भोजि) वा.रामायण १.२५.९ (यक्षी ताटका व ताटका-पुत्र मारीच को शाप से राक्षस बनाना. ताटका-पति सुन्द को मारना), रा ३.११ (राम द्वारा अगस्त्य-भ्राता व अगस्त्य के आश्रम का दर्शन व वर्णन), ३.४३.४३ (वातापि को पचाना), ६.१०५ (० द्वारा राम को आदित्य हृदय स्तोत्र देना), रा ७.७६ (० द्वारा राम का सत्कार व आभूषण भेंट), ७.७७+ (राम को राजा श्वेत की कथा सुनाना), वायु २८.२२ (जन्मान्तर में पुलस्त्य-पुत्र दत्तोलि), अग्नि २०६ (० हेतु अर्घ्य दान व ० पूजा कथन), विष्णु १.१०.९ (पुलस्त्य -प्रीति पुत्र दत्तोलि का जन्मांतर में रूप) लक्ष्मी नारायण १.३२१ (चित्र बाहु नृप का पूर्व जन्म वृत्तांत कथन), १.४५५+ (विन्ध्याचल निग्रह के पश्चात महालक्ष्मी का दर्शन व स्तुति, काशी की देवियों द्वारा अगस्त्य व लोपामुद्रा को पुनः काशी में लाना) लक्ष्मी नारायण १.५४५ (आतापी, वातापि व इल्वल विनाश की कथा), १.५४६+ (भद्राश्व राजा को आत्मज्ञान का उपदेश), १.५५० (समुद्र पान कथा), १.५५२ (कृष्ण भक्ति से दिव्यता, चिरंजीविता प्राप्ति), २.९५ (उष्णालय खण्ड में गमन, मुनियों को विज्ञान दान), २.१०६.४८ (दक्षजवंगर राजा के वैष्णव होम के ब्रह्मा नामक ऋत्विज), ३.१३७ (अगस्त्य उदय दिवस पर घट लक्ष्मी व्रत), गर्ग ७.१२.१२ (प्रद्युम्न को जगत के मिथ्यात्व -अमिथ्यात्व के बारे में उपदेश, बन्धन मुक्ति का उपाय कथन), देवीभाग ६.९.५२ (नहुष द्वारा शिबिका वाहक अगस्त्य का कशा से ताड़न, शाप से सर्प बनना), १०.६+ (विन्ध्य का नमन करने के लिए काशी से दक्षिण में आना), पद्म १.१९ (कालकेय दैत्यों के वधार्थ समुद्र पान), १.२२.१८ (इन्द्र द्वारा शापित अग्नि का रूप, मित्रावरुण-उर्वशी से उत्पत्ति कथा, ० को अर्घ्य दान विधि), १.३६ (राम को राजा श्वेत द्वारा शव भक्षण की कथा सुनाना), १.३७.५ (दण्डक वन प्रसंग में राम से राजा दण्ड -अरजा कन्या प्रसंग कथन), ५.६+ (राम से मिलन के लिए आगमन, रावण के जन्म का वृत्तांत कथन, ब्रह्महत्या के निवारण हेतु राम को अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान का सुझाव, अश्वमेध हेतु राम की अश्वशाला से अश्व का चुनाव), योगवासिष्ठ १.१.४ (अगस्त्य द्वारा सुतीक्ष्ण को कर्म या ज्ञान से मोक्ष प्राप्ति उपाय कथन); ६.१.११८.१३ (जगत जाल तरंगों से पूरित काल समुद्र का पान करने वाले)

टिप्पणी : उपरोक्त कथाओं में विन्ध्याचल पर्वत को अहंकार का प्रतीक माना जा सकता है। काल समुद्र पान के लिए अपेक्षित साधना के लिए ऋग्वेद प्रथम मण्डल के अन्त में अगस्त्य ऋषि के सूक्त दृष्टव्य हैं। अगस्त्य और इनके शिष्य तोलकप्पियार (तमिल भाषा के प्रथम व्याकरणकार) के सम्बन्ध में कथा और उसके निहितार्थ के लिए केन्द्र भारती पत्रिका के अक्टूबर १९८० के अंक में डा० फतहसिंह का लेख दृष्टव्य है।

अगुरु लक्ष्मी नारायण १.४४१.८३ (वृक्ष, गणेश का रूप), लक्ष्मी नारायण १.४५१.७५ (इन्द्रिय पुष्प, धूप अगुरु वपु), स्कन्द २.२.१५.८ (पुरुषोत्तम क्षेत्र में अगुरु वृक्ष के नीचे नृसिंह की स्थिति का उल्लेख), कथासरित् १०.५.३ (अगुरु दाही वैश्य की कथा : अगुरु काष्ठ का अंगार/कोयला बनाना)

अग्नि भागवत ४.२४ (वसिष्ठ शाप से अन्तर्धान -पुत्र बनना), ५.१.२५ (प्रियव्रत व बर्हिष्मती के १० पुत्रों के रूप में उत्पत्ति), ६.९.१२ (अन्वाहार्यपचन नामक ०, वृत्र की उत्पत्ति), ६.१८.४ भा १०.१७.२१ (यमुना तट पर गोपों को व्यथा, कृष्ण द्वारा शान्ति), (पुरीष्य नामक ०, विधाता व क्रिया -पुत्र), भा १०.१९ (दावाग्नि, कृष्ण द्वारा गौ-गोपों की रक्षा), १०.६६ (सुदक्षिण द्वारा यज्ञ से उत्पन्न कृत्या रूप, कृष्ण के सुदर्शन चक्र से नष्ट होना), भा ११.७.३३ (दत्तात्रेय-गुरु), स्कन्द १.१.१८ (कपोतक रूप ग्रहण), स्कन्द १.१.२७ (शिव वीर्य भक्षण, कुमार जन्म प्रसंग), १.२.२९ (शिव वीर्य धारण, कुमार जन्म प्रसंग), १.२.४२.१७५ (प्राण, जिह्वा, चक्षु, त्वक् आदि ७ पावकों का उल्लेख), १.२.४४.५० (० द्वारा पुरुष की सत्यता परीक्षा), २.३.२+ (बदरी क्षेत्र में ० तीर्थ महिमा, अग्नि का सर्वभक्षी दोष से मुक्त होना, ० तीर्थ में पांच शिलाओं का माहात्म्य), स्कन्द २.७.१९.२० (देवों में अग्नि की आपेक्षिक महिमा का कथन), ३.१.२२ (० तीर्थ माहात्म्य, सीता की अग्नि परीक्षा कथा, दुष्पण्य पिशाच की मुक्ति), ३.१.४९ (रामेश्वर सेतु-स्तुति), स्कन्द ४.१.१०.२८ (० की अर्चिष्मती पुरी प्राप्ति के उपाय), स्कन्द ४.१.११ (वैश्वानर बालक द्वारा तप से अग्निपद प्राप्ति), ४.१.२१.३५ (० की प्रतापियों में श्रेष्ठता), ४.२.८४.७३ (० तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य), ४.२.८९.४६ (दक्ष यज्ञ में जिह्वा छेदन), स्कन्द ४.२.९७.११९ (अग्नीश लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य : अग्नि लोकप्रापक), ५.१.४.११ (ब्रह्मा के तप काल में व्याहृति से उत्पन्न अग्नि का क्षुधा से रोदन, ब्रह्मा द्वारा अग्नि का अकार आदि में विभाजन करके भोजन व स्थान की व्यवस्था करना), ५.१.४.९२ (अग्नि के भृगु व अंगिरा पुत्रों द्वारा अग्नि को द्वैधा विभाजित करना, शमी गर्भ से उत्पन्न अश्वत्थ में अग्नि द्वय का संयोग होना, अग्नि की भार्गव व अंगिरस संज्ञा होना), स्कन्द ५.२.२० (हंस रूप में शिव-पार्वती रति में विघ्न), ५.३.२२ (ब्रह्मा के मानस पुत्र, स्वाहा-पति, नर्मदा तथा १६ नदियों की पत्नी रूप में प्राप्ति, नदियों का धिष्णि नाम), ५.३.३३ (दुर्योधन कन्या सुदर्शना की भार्या रूप में प्राप्ति, ० तीर्थ माहात्म्य), ५.३.१२७ (० तीर्थ माहात्म्य), स्कन्द ६.९० (० तीर्थ माहात्म्य), ६.९० (विश्वामित्र द्वारा शुनः मांस पकाने पर अग्नि का अदृश्य होना, देवों द्वारा अन्वेषण, अग्नि का गज, शुक, मण्डूक को शाप), ६.११३ (० कुण्ड माहात्म्य, अग्नि के स्वेद से उत्पत्ति कथा, अब्राह्मण का कुण्ड में स्नान से विस्फोट युक्त होना), स्कन्द ६.१९२ (सावित्री द्वारा सर्वभक्षी होने का शाप, ब्रह्मा यज्ञ प्रसंग), स्कन्द ७.१.२९ (० तीर्थ माहात्म्य), ७.१.१०५.४९ (१८वें कल्प का अग्नि नाम), ७.३.२ (अश्व रूप ० का उत्तंक द्वारा कुण्डल प्राप्ति में सहायक होना), ७.३.३० (० तीर्थ माहात्म्य, विश्वामित्र द्वारा शुनः मांस पकाने पर अग्नि का अदृश्य होना, शुक, गज व मण्डूक द्वारा देवों को अग्नि निवास स्थान कथन), ब्रह्म २.२८ (० तीर्थ वर्णन, मधु-दैत्य द्वारा भ्राता जातवेदा की हत्या पर अग्नि का अदृश्य होना, देवों के अनुरोध पर पुनः प्राकट्य), ब्रह्म २.५५ (उलूक द्वारा ० उपासना से बल प्राप्ति, कपोतों से युद्ध, कपोती द्वारा अग्नि की स्तुति), २.५६ (० और आपः में ज्येष्ठता निर्णय के लिए ऋषियों का तप, सरस्वती वाक् द्वारा आपः की ज्येष्ठता कथन), ब्रह्म २.५८ (शिव से प्राप्त वीर्य के अंश को स्व-पत्नी स्वाहा में स्थापित करना, सुवर्ण व सुवर्णा कन्या का जन्म, सुवर्णा कन्या का धर्म से विवाह आदि) हरिवंश १.२६.४१ (पुरूरवा द्वारा गन्धर्वों से ० प्राप्ति, त्रेताग्नि बनने का वृत्तांत), १.३३ (कार्तवीर्य अर्जुन से भिक्षा), २.१२२ (जातवेदस ० गण, स्वधाकार ० गण, वषटकार ० गण, शोणित पुर में युद्ध), २.१२२ (आह्वनीय ०, शोणित पुर में गरुड द्वारा शान्ति), ३.९ (प्रलय में कारण, नारायण का रूप), ह ३.२९.५(ब्रह्मदण्ड नामक देवों द्वारा अस्त्र भेंट), ३.६२ (महिमा वर्णन, बलि सेना की पराजय, बृहस्पति द्वारा स्तुति), भविष्य १.१२४ (सूर्य अनुचर पिंगल रूप में अवतार), १.१२५.३० (० नाम), २.१.१४ (विभिन्न ज्वालाएं, होम), भ २.१.१७ (विभिन्न कर्मों में नाम, होम द्रव्य), भ २.२.१४ (स्व गृह्याग्नि कर्म विधान कथन), २.२.१५ (विभिन्न होमों में ० जिह्वाओं का विनियोग), २.२.१५ (० कर्म में कुशकण्डिका, स्थालीपाक विधान), ४.९३ (अंगिरा द्वारा ०-कार्य प्रतिस्थापन, ० का बृहस्पति रूप में अंगिरा - पुत्र बनना), ४.१४२.३८ (शान्ति होम में घृतार्चि नामक ० का आह्वान, स्वरूप, पांच मुखों में चार वेदों के अनुसार आहुतियां), ब्रह्माण्ड १.२.१२.१४ (आह्वनीय), १.२.२४.६ (त्रिविध), १.२.१२.२१ (स्थान, नाम), योगवासिष्ठ १.१६.१४ (चिन्ता ज्वाला, चित्त अग्नि), ६.२.७५ (महाकल्पान्त अग्नि का वर्णन), ब्रह्मवैवर्त १.४

(उत्पत्ति), ब्रह्मवैवर्त ४.१८.७७ (सप्तर्षि पत्नियों पर मोहित होना, अंगिरा द्वारा सर्वभक्षी होने का शाप), ४.४९ (त्रिलोकी को भस्म करने को उद्धत, शिशुरूपी विष्णु का अग्नि की दाहक शक्ति समाप्त करना), शिव २.५.३६.८ (० का शंखचूड -सेनानी गोकर्ण से युद्ध), ३.१५ (गृहपति द्वारा तप से अग्निपद प्राप्ति), शि ७.२.२७ (अग्नि कार्य हेतु कुण्ड निर्माण, स्वनाभि से अग्नि के प्राकट्य की कल्पना), पद्म १.२० (० व्रत माहात्म्य व विधि), १.२२.१८ (समुद्र शोषण की इन्द्र की आज्ञा का उल्लंघन, अगस्त्य रूप में जन्म), १.४० (मरुत नाम), २.२२ (दुःख रूपी, उपमा), ५.१४ (दमन राक्षस से भय प्राप्ति, भृगु द्वारा सर्वभक्षी होने का शाप), ६.१३९ (अग्निपालेश्वर तीर्थ माहात्म्य, कहोड द्वारा कुकर्दम राजा के प्रेत की मुक्ति, मातृका तीर्थ), ६.१६८ (इन्द्र से ब्रह्महत्या अंश की प्राप्ति), मत्स्य ५१ (० वंश वर्णन), ५१.२४ (विहरणीय अग्नि के ८ पुत्र नाम व कर्म), म ६१ (समुद्र शोषण की अवज्ञा करने पर इन्द्र द्वारा शाप, अगस्त्य रूप में जन्म), म १५८.२४ (शिव वीर्य को ग्रहण करने की कथा), म २६१.९ (प्रतिमा रूप), ब्रह्माण्ड १.२.२४ (प्रकार), २.३.७.२१ (० से ऊर्जा नामक अप्सरा गण की उत्पत्ति), २.३.११.९७ (होम में ० स्वरूप से सिद्धि ज्ञान), ३.४.१५.२१ (ललिता को किरीट भेंट), नारद १.५१.४८ (० स्वरूप कथन), १.६५.२५ (० की १० कलाओं के नाम), वामन ९.४७ (अन्धक -सेनानी मय से युद्ध), ५४.४१ (हंस रूप धारण कर शिव गृह में प्रवेश, शिव का वीर्य ग्रहण करना), वामन ५७.६५ (स्कन्द को २ गण प्रदान करना), ७४.१३ (ह्लाद असुर का अग्नि के पद पर आसीन होना), वराह १८ (महाभूतों में क्षोभ व ब्रह्मा के कोप से उत्पत्ति, पर्यायवाची शब्दों की निरुक्ति), ५६ (मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा को अग्निरूपी जनार्दन की पूजा विधि), १२६.६६ (कुब्जाम्रक क्षेत्र में अग्नि तीर्थ वर्णन), विष्णु धर्मोत्तर १.१२२ (देवों द्वारा अग्नि से दैत्यों को जीतने की प्रार्थना), १.१३६ (पुरुरवा प्रसंग में गार्हपत्य आदि अग्नियों का चतुर्व्यूह से तादात्म्य), १.१९९ (० द्वारा भृगु पत्नी पुलोमा की पुलोमा दानव से रक्षा), १.२२८ (शिव-पार्वती रति को भंग करने की कथा) विष्णु धर्मोत्तर २.२० (अग्नि ज्वालाओं के लक्षणों से नृप की जय-पराजय का अभिज्ञान) विष्णु धर्मोत्तर २.१३२.१० (आग्नेयी शान्ति के स्वर्ण वर्ण का उल्लेख), २.१३६ (औत्पातिक अग्नि लक्षण), ३.५६ (० का मूर्ति रूप), ३.१४३ (फाल्गुन शुक्ल चतुर्थी को अग्नि हेतु चतुर्मूर्ति व्रत), देवीभाग ३.१२.४८ (गार्हपत्य आदि ०, प्राण, अपान आदि से तादात्म्य), देवीभाग ५.२.२८ (रम्भ दानव को त्रैलोक्य विजयी महिषासुर पुत्र प्राप्ति का वरदान), देवीभाग ८.४ (प्रियव्रत व बर्हिष्मती के १० पुत्रों के नाम, अग्नि संज्ञा) देवीभाग ९.२२ (शंखचूड -सेनानी गोकर्ण से युद्ध), ११.२२ (प्राण, अपान आदि मन्त्रों के ऋषि, नाम), देवीभाग १२.८ (तृण को जलाने में असमर्थता, गर्व खंडन), लिंग १.५९ (० प्रकार), गरुड १.२०५.६६ (आह्वनीय आदि अग्नियां : त्रिदेवों का रूप), १.२०५.१४८ (आह्वनीय आदि अग्नियों की शरीर में मुखादि में स्थिति), कूर्म २.३४.११२ (आवसथ्य नाम, रावण द्वारा हरण पर सीता द्वारा ० की स्तुति), वा.रामायण १.१७.१३ (नील वानर रूप में जन्म), वायु ५.१६ (तमोगुण प्रकाशक), वा २९ (० वंश वर्णन), २९.१० (गार्हपत्य अग्नि : पवमान/निर्मथ्य अग्नि का रूप), ५३.५ (शुचि, वैद्युत आदि ० प्रकार वर्णन), ५६.२० (संवत्सर का रूप), वा १०४.८५ (दक्षिणाग्नि की ऊर्ध्व ओष्ठ में स्थिति), अग्नि २४ (कुण्ड निर्माण आदि अग्नि कार्य वर्णन), अग्नि ८१.४५ (सात जिह्वाओं के नाम व बीज मन्त्र), २५५.३८ (० द्वारा सत्यानृत/दिव्यता परीक्षा), लक्ष्मी नारायण १.३३.४२ (हरि द्वारा पांच कामाग्नियों की सृष्टि), १.२०६ (अग्नि का सर्वभक्षित्व दोष परिहारक अग्नि तीर्थ), १.२११ (वंश वर्णन), १.३०१.४ (सृष्टि आरंभ में प्रजा द्वारा अग्नि का स्वागत न होना, अग्नि द्वारा क्षुधापीड्ति होकर लोकालोक पर्वत का भक्षण करना व हिरण्य को पुत्र रूप में उत्पन्न करना, कृष्ण -पूजा से मुख में प्रतिष्ठित होना), लक्ष्मी नारायण १.४६९ (सप्तर्षि पत्नियों का अदृश्य रूप में भोग करने पर अंगिरा द्वारा नपुंसक आदि होने का शाप), १.४८१ (शिव वीर्य से लिप्त अग्नि स्पर्श से सप्तर्षि पत्नियों का गर्भवती होना), १.४९५ (विश्वामित्र द्वारा शुनः मांस पकाने पर अदृश्य होने की कथा), लक्ष्मी नारायण १.५३७ (समुद्र में बड्वा अग्नि क्षेप तीर्थ महिमा), २.१५७.३६ (आह्वनीय आदि अग्नियों के अंगन्यास में स्थान), २.२१२.२९ (० स्वरूप व स्तुति), ३.४१.८ (चन्द्रमा पिता, रवि पितामह व अग्नि के प्रपितामह पद का उल्लेख), ३.४५.१३ (तैर्थिकों द्वारा अग्निलोक की प्राप्ति का उल्लेख), ३.९१.१२७ (कृशांग चाण्डाल द्वारा द्विज बनने के लिए तप करना व कृशानु अग्नि पद प्राप्त करना), कथासरित् ३.३.९७ (ब्राह्मण रूपी अग्नि द्वारा गुहचन्द्र को स्त्री वशीकरण हेतु अग्नि उपासना मंत्र दान कथा), ८.५.१२५ (अग्निक नामक सेनापति की कन्या के हरण का प्रसंग), ८.७.३४ (प्रकम्पन नामक दानव से युद्ध), कथासरित् १०.५.९ (जल कुम्भ में अग्नि धारण का प्रयास), गर्ग १.५.२८ (द्रोणाचार्य रूप में अवतरण), ७.२.२६ (प्रद्युम्न को परिघ प्रदान करना), मार्कण्डेय ९९.१३ (गुरु भूति द्वारा शिष्य

शान्ति को अग्नि की रक्षा करने का कार्य सौंपना, अग्नि के अदृश्य होने पर शान्ति द्वारा अग्नि की स्तुति); दृ. कालाग्नि, जमदग्नि, दक्षिणाग्नि, अनल, वह्नि, अन्वाहार्यपचन, पवमान, पावक, यज्ञ, शुचि, होम

टिप्पणी : वेद में अग्नि की स्तुति में बहुत से सूक्त हैं। अग्नि का तत्व समझने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों में कुछ आख्यान रचे गए हैं। अग्नि पृथिवी पर था। देवताओं ने अग्नि से कहा -तुम स्वर्ग में चलो, हम तुम्हें अपना दूत बनाएंगे। तुम्हें तरह - तरह की आहुतियां मिलेंगी। यम स्वर्ग में था। यम से पितरों ने कहा - तुम पृथिवी पर चलो, हम तुम्हें राजा बनाएंगे। इस आख्यान का निहितार्थ यह है कि इस समय जो अग्नि कामाग्नि, जाठराग्नि आदि के रूप में उपस्थित है, जो पृथिवी पर रहने वाली है, इसका असली स्थान ॐ लोक है। साधना का लक्ष्य है इस अग्नि को पृथिवी से उठा कर ब्रह्म लोक में पहुंचा देना। यह तब हो सकता है जब पितर शक्तियों के रूप में उपस्थित हमारे आवेगों जैसे भूख, प्यास, निद्रा आदि, जो हमारा पालन करते हैं, के ऊपर यम का आधिपत्य हो जाए, यह आवेग अनियंत्रित न रह कर हमारे नियंत्रण में आ जाएं - फतहसिंह

अग्निकेतु वा.रामायण ६.४३.११ (रावण-सेनानी, राम से युद्ध)

अग्निजिह्व स्कन्द ४.२.६८.७३ (० वेताल का संक्षिप्त माहात्म्य)

अग्नितेजा विष्णु ३.२.३१ (११वें मन्वन्तर में ऋषि)

अग्निदत्त वराह १५५.६३ (अग्निदत्त ब्राह्मण का इष्टकाओं की चोरी के कारण ब्रह्मराक्षस बनना, सुधन वणिक द्वारा पुण्य दान से मुक्ति), कथासरित् १.७.४२ (गोविन्द दत्त ब्राह्मण की पत्नी अग्निदत्ता : पांच मूर्ख पुत्रों की माता), ८.६.२०० (० द्वारा स्वकन्या सुन्दरी का गुणशर्मा से विवाह करना)

अग्निध्र वायु २९.१८ (धिष्ण्य अग्नि का एक नाम, अग्नि व नदी - पुत्र), ३१.१७ (स्वायम्भुव मनु - पुत्र), ३३.९ (अग्नीध्र : प्रियव्रत-पुत्र, जम्बू द्वीप अधिपति), दृ. आग्नीध्र

अग्निप पद्म ६.१२८ (वेदनिधि - पुत्र, अप्सराओं की आसक्ति, शाप -प्रतिशाप से पिशाच बनना, माघ -स्नान से मुक्ति, विवाह)

अग्निपाल पद्म ६.१३९ (० तीर्थ माहात्म्य : कहोड द्वारा कुकर्दम राजा के प्रेत की मुक्ति, मातृका तीर्थ)

अग्निप्रभ वराह १४५ (तीर्थ, माहात्म्य)

अग्निबाहु विष्णु २.१.७ (प्रियव्रत-पुत्र, योग साधना रत), वायु १००.११६ (१४वें मन्वन्तर में भौत्य मनु-पुत्र), मत्स्य ९.४ (स्वायम्भुव मनु-पुत्र)

अग्निबिन्दु स्कन्द४.२.६० (मुनि, पंचनद तीर्थ में विष्णु स्तुति), स्कन्द ४.२.६१ (० द्वारा विष्णु से काशी के तीर्थों का माहात्म्य श्रवण, सुदर्शन चक्र के स्पर्श से ज्योति रूप में कौस्तुभ मणि से एकाकार होना)

अग्निमीड भविष्य ४.४६ (नहुष-पुरोहित, मानमानिका-पति)

टिप्पणी : ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र अग्निमीडे पुरोहितम् इति है।

अग्निमुख पद्म ५.१११ (शिव/वीरभद्र - गण, दुष्ट विधृत राजा की मृत्यु से रक्षा, मृत्यु को शूली पर आरोपित करना), ब्रह्माण्ड १.२.२०.२६ (दैत्य, तृतीय तल में वास)

अग्निरात लक्ष्मी नारायण४.८२ (० द्वारा शिष्य नन्दिभिल्ल को नागविक्रम राजा से युद्ध न करने का परामर्श)

अग्निवेश्य भागवत ९.२.२१ (देवदत्त-पुत्र, अग्नि-अवतार, जातूकर्ण्य व कानीन उपनाम), वामन ९०, शि ३.५, वायु २३.२०७ (२४वें द्वापर में शूली-पुत्र), योगवासिष्ठ १.१.९ (कारुण्य -पिता, पुत्र को कर्म से मोक्ष प्राप्ति उपाय कथन)

अग्निशर्मा स्कन्द ५.१.२४ (सुमति व कौशिकी - पुत्र, दुष्ट चरित्र, सप्तर्षियों में से अत्रि द्वारा बोध, वाल्मीकि बनना), लक्ष्मी नारायण १.४.७९ (वही) वायु १०६.३३ (गया में यज्ञ हेतु ब्रह्मा के मानस से सृष्ट ऋत्विज, ० द्वारा मुख से गार्हपत्य आदि ५ अग्नियों की सृष्टि), मत्स्य १९९.७ (कश्यप कुल के गोत्र प्रवर्तक ऋषि अग्निशर्मायण), कथासरित् १८.५.१०४ (सोमशर्मा-पुत्र, मूर्ख, शकुन देवता द्वारा मृत्यु दण्ड से रक्षा की कथा)

अग्निशिख पद्म ५.११० (राजा द्वारा शिव पूजा से वीरभद्र का ० नामक गण बनना), कथासरित् १.२.३० (सोमदत्त ब्राह्मण का उपनाम, वसुदत्ता-पति, वररुचि-पिता), कस ७.५.६० (बक रूप धारी राक्षस, स्व कन्या रूपशिखा का राजकुमार श्रृंगभुज से विवाह करना), १८.२.२३ (राजा विक्रमादित्य के अनुचर ० वेताल द्वारा दुराचारी कापालिक का वध तथा अन्य वेताल यमशिख से विक्रमादित्य के प्रभाव का वर्णन करना), १८.२.५४ (० द्वारा कितव से रूप व प्रभाव के बदले महामांस का क्रय करना), १८.२.६४ (कितव द्वारा ० को कूप में धकेलना, ० द्वारा ब्रह्मराक्षसों से युद्ध व मैत्री करना, ठिण्ठाकराल नामक कितव का वृत्तांत सुनना), १८.२.२०५ (० का कूप से निकल कर ब्राह्मण के भक्षण को उद्यत होना, विक्रमादित्य द्वारा ब्राह्मण की रक्षा)

अग्निशौच कथासरित् ९.६.३५१ (कर्कोटक नाग

द्वारा राजा नल को प्रदत्त वस्त्र का नाम, ० का महत्व कथन)

अग्निष्टोम भागवत ४.१३.१५ (चक्षु व नड्वला -पुत्र), वायु ९.४९ (ब्रह्मा के पूर्व दिशा के मुख से ० यज्ञ की उत्पत्ति), विष्णु १.५.५३ (वही) मत्स्य ५३.३२ (भविष्य पुराण दान से ० फल की प्राप्ति), ५८.५३ (वर्षाकालीन जल वाले तडाग की प्रतिष्ठा से ० फल प्राप्ति), ब्रह्माण्ड २.३.१५.११ (अतिथि को पायस दान से ० फल प्राप्ति), लक्ष्मी नारायण २.१५७.३२ (यज्ञों के अंगन्यास में अग्निष्टोम का लिंग में न्यास), २.२६१.३१ (० के नारायण नाम- का कारण), स्कन्द १.२.३४.६७ (शिव लिंग का क्षीर व पंचामृत से स्नान कराने पर अग्निष्टोम फल की प्राप्ति), २.१.३४.१९ (मकर संक्रान्ति को अग्निस्त्येश लिंग के दर्शन से सहस्र अग्निष्टोम फल की प्राप्ति), ३.१.३६.९१, ३.१.३६.१७३ . (एकादशी को महालय श्राद्ध करने से अग्निष्टोम आदि यज्ञों के फल की प्राप्ति, न करने से किए हुए ० यज्ञ का निष्फल होना), ३.१.४२.४२ (नल तीर्थ में स्नान से ० आदि फल प्राप्ति), ५.३.१२७.३ (अग्नि तीर्थ में कन्या दान से अग्निष्टोम व अतिरात्रों से भी सौ गुने फल की प्राप्ति), ५.३.१२८.४ (भृकुटेश्वर तीर्थ में शिव की पूजा से ० से आठ गुने फल की प्राप्ति), ६.९०.६७ (अग्नितीर्थ में अग्नि सूक्त का जप करने के पश्चात ब्रह्माजी के दर्शन करने पर ० फल की प्राप्ति), ६.१७९.६६+ (पुष्कर -त्रय की स्थिरता हेतु ब्रह्मा द्वारा अग्निष्टोम -त्रय के यजन का वर्णन : दीक्षा कर्म हेतु ब्रह्मा की पत्नी सावित्री के यज्ञ में न आने पर इन्द्र द्वारा गोपकन्या को गौ शरीर से पारण द्वारा शुद्ध करके ब्रह्मा की पत्नी गायत्री बनाना; यज्ञ के प्रथम दिन एकादशी को कपाली रुद्र का उपद्रव व शान्ति, दूसरे दिन सर्प द्वारा होता का वेष्टन आदि, तीसरे दिन नागर अतिथि का आगमन और अतिथि द्वारा सिद्धि प्राप्ति के हेतुभूत पिंगला, कुरर, सर्प, भ्रमर, इषुकार व कन्या रूपी ६ गुरुओं से शिक्षा प्राप्ति का वर्णन, यज्ञ के चतुर्थ दिन राक्षस द्वारा होम हेतु सुरक्षित पशु के अंगों में से गुद के भक्षण का वृत्तांत, यज्ञ के पांचवें दिन पर्वत-कन्या औदुम्बरी द्वारा उद्गाता को शंकु प्रचार कर्म के सम्बन्ध में प्रबोधन और स्वर्ग गमन, सावित्री का यज्ञान्त में यज्ञ में आगमन और गायत्री को ब्रह्मा-पत्नी बनाने पर देवों को शाप, गायत्री द्वारा देवों को वरदान आदि), कूर्म १.१४.९ (अग्निष्टुत् : मनु के १० पुत्रों में से एक), भविष्य १.१३५.४४ (सूर्यदेव का वारि, पयः पायस, घृत, मधु, व इक्षु रस से स्नान कराने पर क्रमशः अग्निष्टोम, गोमेध, ज्योतिष्टोम, वाजपेय, राजसूय व अश्वमेध फल की प्राप्ति), ४.५७.१८ (कार्तिक कृष्ण अष्टमी को शिव की रुद्र नाम से अर्चना करने पर ० फल की प्राप्ति), शिव ५.३०.१५ (चाक्षुष मनु व नड्वला के १० पुत्रों में से एक), ७.१.१२.५९ (० की ब्रह्मा के पूर्व दिशा के मुख से तथा अन्य मुखों से अन्य यज्ञों की उत्पत्ति), विष्णु धर्मोत्तर १.१०७.३६ (वही), १.१६६.३५ (कार्तिक मास में द्विज गृह में दीप दान से ० फल की प्राप्ति), १.१८१.२ (षष्ठम चाक्षुष मन्वन्तर वर्णन के संदर्भ में चाक्षुषमनु के १० पुत्रों में से एक), २.९५.१५ (सोम संस्था वाले ७ यज्ञों में से एक), ३.२१८.९ (कार्तिक में दशाह व्रत से ० फल प्राप्ति का उल्लेख), ३.२६७.१४ (संग्राम में शूरता का अग्निष्टोम आदि यज्ञों के फल से अधिक महत्व होने का उल्लेख), ३.२९६.१३ (वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, वसन्त व ग्रीष्म ऋतुओं में तडाग में जल उपलब्ध कराने पर क्रमशः अग्निष्टोम, द्वादशाह, गोसव, पौण्डरीक, वाजपेय व अश्वमेध फल की प्राप्ति), ३.३१३.७ (विभिन्न प्रकार के वस्त्रों के दान के संदर्भ में मृगलोम निर्मित वस्त्र दान से ० फल की प्राप्ति), ३.३४१.७८ (आरण्य मृगों व पक्षियों के दान से ० फल की प्राप्ति), ३.३४१.१६६ (बकुल निर्यास से जनार्दन का अनुलेप करने पर ० फल की प्राप्ति), वराह १४०.१९ (कोकामुख / बदरी क्षेत्र में विष्णुधारा में स्नान से सहस्र अग्निष्टोमों के फल की प्राप्ति), २१५.६८ (पंचनद तीर्थ में स्नान से ० फल की प्राप्ति), पद्म १.३.१११ (ब्रह्मा के पूर्व दिशा के मुख से ० की उत्पत्ति), १.३०.१११ (बलि द्वारा पुरंदर के दर्शन को अग्निष्टोम आदि यज्ञों के फल के तुल्य कहना), ३.११.१९ (तीर्थयात्रा के फल की अग्निष्टोम आदि के फल से श्रेष्ठता), ३.१२.५ (अगस्त्य आश्रम में आकर पितृ व देव अर्चना करने पर ० फल की प्राप्ति), ३.१२.१३ (नर्मदा नदी में पितरों व देवों के तर्पण से ००), ३.२४.३ (दक्षिण सिन्धु में आने से ००), ३.२४.४ (चर्मण्वती नदी में आने से रन्तिदेव द्वारा अनुज्ञात ००), ३.२४.७ (प्रभास तीर्थ में ००), ३.२५.८ (मणिमान में आने से ०), ३.२५.१९ (चमसोद्भेद में स्नान से ००, शिवोद्भेद में स्नान से गो सहस्र फल का उल्लेख), ३.२६.१० (पारिप्लव तीर्थ में आने से ००), ३.२६.१२ (सर्प नीवि तीर्थ में आने से ००), ३.२६.४६ (सूर्य तीर्थ में आने से ००), ३.२६.४९ (लवर्णक द्वारपाल के तीर्थ में सरस्वती में स्नान से ००), ३.२६.६७ (आपगा नदी में स्नान आदि से ००), ३.२६.७१ (सर्वक तीर्थ में समन्तक ह्रद आदि में स्नान से ००), ३.२७.४२ (सरस्वती-अरुणा संगम पर स्नान आदि से ००), ३.२७.६५ (अस्थिपुर में पावन तीर्थ में तर्पण से ००), ३.२८.४ (कलापवन तीर्थ में स्नान से ००), ३.३२.१६ (कार्तिक माघ तीर्थ में आने से ००),

३.३२.४४ (गोमती-गंगा संगम पर आने से ००), ३.३८.३४ (विशाला नदी पर आने से ००), ३.३९.८ (शोण व ज्योतिरथ्या के संगम पर तर्पण से ००), ३.३९.३५ (कन्याश्रम में गमन मात्र से शत ००), ३.३९.५३ (मेधावन में आकर तर्पण करने से ००), ६.१२३.८ (मास उपवास के फल की अग्नि ष्टोम के फल से श्रेष्ठता का उल्लेख), महाभारत वन २२२.६ (अग्निष्टोम में भरत/नियत अग्नि के निवास का उल्लेख)

टिप्पणी : शुक्ल यजुर्वेद के अध्याय ४ से ८.३२ तक अग्निष्टोम के मन्त्र हैं। जैमिनीय ब्राह्मण १.६६ -१.३६४ में अग्निष्टोम की व्याख्या की गई है। राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली से प्रकाशित पुस्तक कात्यायन यज्ञ पद्धति में कात्यायन श्रौत सूत्र और शतपथ ब्राह्मण के आधार पर अग्निष्टोम यज्ञ का हिन्दी में विस्तृत वर्णन किया गया है।

स्कन्द पुराण के नागर खण्ड में वर्णित ब्रह्मा जी के अग्निष्टोम यज्ञ के संदर्भ में, अग्निष्टोम यज्ञ का सम्पादन पांच दिनों में किया जाता है। प्रथम दिन यजमान और उसकी पत्नी दीक्षा ग्रहण करते हैं। दूसरे दिन के मुख्य कर्मों में सोमक्रयण, सोमशकटारोहण आतिथ्येष्टि तथा प्रवर्ग्य कर्म हैं। प्रवर्ग्य कर्म को प्रात: और सायंकाल दो बार किया जाता है तथा यह कर्म चौथे दिन तक प्रतिदिन किया जाता है। तीसरे दिन के कर्मों में वेदिमान (वेदी की स्थापना) प्रमुख कर्म है। चतुर्थ दिन के कर्मों में अग्नीषोमीय याग प्रमुख कर्म है जिसमें पशु का संज्ञपन (वध) किया जाता है। इसके अतिरिक्त सदोमध्य में औदुम्बरी शाखा की स्थापना की जाती है। यज्ञ का पांचवा दिन सुत्या अह कहलाता है और यही दिन सबसे महत्वपूर्ण होता है। इस दिन प्रात: सवन में सोम याग, सोम का अभिसवन व चात्वाल स्थान पर बहिष्पवमान नामक सामगान होता है। मध्यन्दिन सवन में सोम अभिषवण, सोमयाग व यजमान द्वारा ऋत्विजों को दक्षिणा दान कर्म होते हैं। तृतीय सवन में आर्भव पवमान आदि कर्म होते हैं। इसके पश्चात अवभृथ स्नान आदि किया जाता है। स्कन्द पुराण में वर्णित यज्ञ क्रम के अनुसार सर्वप्रथम तक्र बेचती हुई गोपकन्या का गायत्री में रूपांतरण किया जाता है। शतपथ ब्राह्मण ३.२.४.१ के अनुसार यज्ञ का आरंभ सोम प्राप्ति के प्रयासों से होता है जिसमें श्येन द्वारा स्वर्ग से अपहृत सोम को वेद जानने वाले गन्धर्व हर लेते हैं और वाक् रूपी पत्नी के बदले उसे मुक्त करते हैं। इसके पश्चात यजमान द्वारा सोमविक्रयी से गौ, अज, हिरण्य आदि के बदले सोम के विधिवत् क्रय का वर्णन आता है। स्कन्द पुराण में जिस गोपकन्या को पकड कर गौ शरीर से पारण कराकर गायत्री बनाया गया, वह एक दम कहां से आ गई? ऐसा अनुमान है कि सोम संस्था पर आधारित अग्निष्टोम यज्ञ के पूर्व अग्निहोत्र आदि हविर्यज्ञों का अनुष्ठान करना होता है और यह वाक् रूपी गोपकन्या, जो अपने सिर पर तक्र रूपी सोम ढो रही है, का विकास उन्हीं हविर्यज्ञों से हुआ होगा (पुष्टि के लिए दृष्टव्य : जैमिनीय ब्राह्मण २.५०)। उन यज्ञों से प्राप्त सोम का रूप तक्र जैसा है। डा० फतहसिंह का विचार है कि "गोपकन्या ऊर्ध्वमुखी चेतना रूपी गौ की मनोमय कोश के स्तर पर अवतरित शक्ति है। मनोमय के स्तर पर आकर यह तक्र ही बेच सकती है, पयस तो ऊपर के कोशों में ही रह गया। इन्द्र रूपी परब्रह्म परमात्मा को इस तक्र की आवश्यकता नहीं है वह इसे फेंक देता है। इस गोपकन्या को मेध्य बनाने के लिए इन्द्र इसे ऊर्ध्वमुखी चित्तवृत्तियों रूपी गौ के मुख में डालता है।" ऐसा भी संभव है कि हविर्यज्ञों द्वारा वाक् की व्याप्ति मनोमय कोश में हो जाती हो जबकि प्राणमय कोश रूपी गौ में वाक् की व्याप्ति अथवा प्राणमय कोश को सचेतन बनाने का प्रयत्न अग्नि ष्टोम द्वारा करना पडता हो। पुराणों में यज्ञ के प्रथम दिन कपालधारी रुद्र के उपद्रव तथा रूप प्राप्ति का वर्णन है। प्रथम दिन दीक्षा का तथा महावीर नामक पात्र निर्माण हेतु मृत्तिका सम्भरण का है। हो सकता है कि दीक्षा की पराकाष्ठा रुद्र के रौद्र रूप को शान्त करने में, रुद्र के वास्तविक स्वरूप का अभिज्ञान करने में हो। पुराणों में यज्ञ के दूसरे दिन सर्प के उपद्रव का वर्णन है। यज्ञ में दूसरे दिन से प्रवर्ग्य कर्म का आरंभ होता है। यह अन्वेषणीय है कि शक्ति के सर्पण के उपद्रव के रूप में यज्ञ के किस अंग की ओर संकेत किया गया है। पुराणों में यज्ञ के तीसरे दिन अतिथि के प्रकट होने और उसके द्वारा अपनी सिद्धियों की प्राप्ति के उपायों के रूप में ६ गुरुओं से शिक्षा प्राप्ति का वर्णन है। वास्तविक यज्ञ में सोम रूपी अतिथि के लिए आतिथ्य इष्टि यज्ञ के दूसरे दिन की जाती है। इसका अर्थ होगा कि यद्यपि आतिथ्य इष्टि दूसरे दिन की जाती है, लेकिन उस इष्टि के प्रभाव तीसरे दिन ही प्रकट होते हैं। यह उल्लेखनीय है कि यज्ञ के आरंभ से ही सोम के रूप को विकसित करने के प्रयास चल रहे हैं। श्येन द्वारा अपहृत सोम अन्धा था, तक्र था। फिर यजमान गौ के बदले सोम का क्रय करता है। इस सोम को दो बैलों वाली शकट पर लादते हैं। इसके पश्चात सोम को अतिथि का रूप देना होता है जो कलाओं से रहित होता है। इसके प्रतीक के रूप में यजमान दो बैलों की शकट में सोमलता को ढोकर पहले उसे राजासन्दी पर रखता है और फिर शकट के बैलों (अनड्वान) को एक-एक करके शकट से अलग कर देता है। अब शकट स्थिर हो जाती है। शकट अथवा रथ से उतरने पर ही अतिथि का स्वागत-सत्कार किया जाता है। उसे बाहों में भरा जाता है। यह अन्वेषणीय है कि अतिथि रूपी सोम के ६ गुरुओं के रूप में यज्ञ के किस अंग की व्याख्या की गई है। पुराणों में यज्ञ के चतुर्थ दिन राक्षस रूप धारी विश्वावसु गन्धर्व द्वारा यज्ञार्थ पशु के अंगों में से गुदा भक्षण का उल्लेख है। वास्तविक यज्ञ में चतुर्थ दिन अग्नीषोमीय पशु का संज्ञपन किया जाता है और उसकी गुदा का उपयोग आहुति देने के लिए किया जाता है। निहितार्थ अपेक्षित है। यज्ञ के वर्णन के अनुसार पशु के हृदय, जिह्वा आदि अंगों में से गुदा ही एक ऐसा भाग है जिसके स्थूल, सूक्ष्म आदि तीन भाग किए जाते हैं। इस गुदा में जो आसुरी तत्व

है, उसका विश्वावसु राक्षस भक्षण करके उसे सूक्ष्म रूप देता है।

पुराणों में यज्ञ के पांचवें दिन उद्गाता के शंकु प्रचार कर्म में औदुम्बरी कन्या का प्रकट होकर उद्गाता को प्रबोधन करने तथा औदुम्बरी के स्वर्ग गमन का वर्णन है। वास्तविक यज्ञ में औदुम्बरी शाखा का सदोमध्य में रोपण चतुर्थ दिन किया जाता है। शतपथ ब्राह्मण ३.५.१.१ तथा ३.६.१.१ के अनुसार उद्गाता विभिन्न दिशाओं में शंकुओं (शं कुरुते इति शंकु) की स्थापना द्वारा स्त्री शरीर रूपी यज्ञ वेदी का निर्माण करता है। सदो मध्य में औदुम्बरी शाखा की स्थापना की जाती है। कहा गया है कि औदुम्बरी शाखा की ऊंचाई पुरुष जितनी होती है। उदुम्बर पुरुष की ऊर्जा का रूप है, यह ओंकार की शक्ति है। उद्गाता का शंकु कर्म तभी सफल होगा जब औदुम्बरी शक्ति प्रकट हो जाएगी।

पुराणों में यज्ञ के अन्त में ब्रह्मा की पत्नी सावित्री के यज्ञ में आगमन के संदर्भ में, यज्ञ के अंतिम दिन तृतीय सवन में सावित्र ग्रह का वर्णन आता है (शतपथ ब्राह्मण ४.४.१.१)। सावित्री को सविता नामक आदित्य की पत्नी कहा जाता है। सविता अर्थात सवन करने वाला, शोधन करने वाला अथवा प्रेरणा देने वाला। पुराणों में सत्यवान-सावित्री कथा में अश्वपति द्वारा सावित्री की उपासना के माध्यम से सावित्री को अश्व से सम्बद्ध किया गया है, जबकि गायत्री को गौ कहा जाता है। गौ प्राणों से सम्बन्धित है, जबकि अश्व मन से। प्राण को समझने के लिए कौशीतकी उपनिषद ३.३ का यह कथन उपयोगी है कि प्राण प्रज्ञात्मा है। सबसे पहले वाक् रूपी ऋक् या योषा है जिसकी प्रतिष्ठा प्राण साम में है (छान्दोग्य उपनिषद १.१.५)। प्राण ब्रह्म के लिए मन दूत का काम करता है (कौशीतकी उपनिषद २.१)। अतः अग्निष्टोम यज्ञ में पहले वाक् और प्राण की प्रतिष्ठा की जाती है और उसके पश्चात मन रूपी अश्व की प्रतिष्ठा हेतु सावित्री के प्राकट्य का विधान किया गया है। शतपथ ब्राह्मण ४.४.१.१ के अनुसार मन प्राण का सविता है तो प्राण मन का। सावित्री द्वारा देवों को शाप आदि के निहितार्थ अन्वेषणीय हैं।

स्कन्द पुराण में ब्रह्मा के अग्निष्टोम यज्ञ में जिन १६ ऋत्विजों के नामों का उल्लेख है, उसी की पुनरावृत्ति पद्म पुराण १.३४.१३ में भी की गई है। अग्निष्टोम यज्ञ के विभिन्न कर्मों में ऋत्विजों के कार्यों के अनुसार पुराणों में ऋत्विजों के नामों की पुष्टि अपेक्षित है। शतपथ ब्राह्मण में यजमान द्वारा ऋत्विजों को दक्षिणा दान के संदर्भ में ही कुछ एक ऋत्विजों के नामों का उल्लेख आया है, जैसे होता रुद्र (पुराणों में भृगु), उद्गाता बृहस्पति (पुराणों में गोभिल), ब्रह्मा यम (पुराणों में नारद)।

स्कन्द पुराण में ब्रह्मा द्वारा अग्निष्टोम-त्रय के यजन के संदर्भ में, ब्राह्मण ग्रन्थों में १२ दिन में सम्पन्न होने वाले द्वादशाह नामक यज्ञ का वर्णन आता है। इस यज्ञ के पहले तीन दिनों की संज्ञा क्रमशः ज्योति, गौ और आयु है। इन तीन दिनों की विकसित रूप में पुनरावृत्ति अन्य ९ दिनों में होती है। छठे दिन वृत्र का मरण होता है। इसके पश्चात तीन दिनों की संज्ञा छन्दोम है। १०वें दिन अतीन्द्रिय स्थिति हो जाती है (ऐतरेय ब्राह्मण)। अंगिरस ऋषि गण द्वादशाह के माध्यम से प्रगति करते हैं। लेकिन आदित्य गण तीव्र गति से एक दिन में ही साधना पूरी करना चाहते हैं। अतः अग्निष्टोम के पांचवें सुत्या अह के प्रातःसवन को प्रथम त्रिरात्र का रूप, माध्यन्दिन सवन को द्वितीय त्रिरात्र और तृतीय सवन को तृतीय त्रिरात्र का रूप दिया गया है। दसवां दिन स्वयं अग्निष्टोम है (ताण्ड्य ब्राह्मण १०.५.१७, जैमिनीय ब्राह्मण ३.८)। यह तीन सवन क्रमशः पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग लोकों के प्रतीक हैं। जैमिनीय ब्राह्मण २.३४० के अनुसार ज्योति, गौ व आयु त्रिवृत अग्निष्टुत् की अग्निष्टोम संज्ञा होती है। षड्विंश ब्राह्मण ४.३.१ में भी अग्निष्टोम को त्रिवृत् कहा गया है। अन्यत्र (ताण्ड्य ब्राह्मण २०.१.३, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१२.५.६, तैत्तिरीय संहिता ७.१.५.३ आदि) कहा गया है कि पृथिवी लोक में वसुओं की जय अग्निष्टोम द्वारा, अन्तरिक्ष में रुद्रों की उक्थ्य यज्ञ द्वारा और द्युलोक में आदित्यों की अतिरात्र यज्ञ द्वारा होती है। यहां अग्निष्टोम, उक्थ्य और अतिरात्र द्वारा क्रमशः ज्योति, गौ व आयु की प्राप्ति होती है (जैमिनीय ब्राह्मण २.३७५)।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वर्षा जल से तडाग की पूर्ति करने पर अग्निष्टोम फल की प्राप्ति के संदर्भ में यह समझना महत्वपूर्ण है कि आध्यात्मिक रूप में वर्षा आदि का क्या अर्थ है। जैमिनीय ब्राह्मण २.५१ के अनुसार चक्षु का (आनन्द से) आर्द्र होना वर्षा है जिसका विराट स्तर पर रूप पर्जन्य वर्षण होता है। इससे आगे अन्य ऋतुओं का वर्णन आता है। जैमिनीय ब्राह्मण २.३७८ में भी अग्निष्टोम को वर्षा करने वाला कहा गया है। यह विचारणीय है कि क्या यह आनन्द अश्रुओं की वर्षा सोम अतिथि के आगमन के कारण उत्पन्न हर्ष से होती है।

भविष्य पुराण में सूर्यदेव का जल से अभिषेक करने पर अग्निष्टोम फल की प्राप्ति के उल्लेख के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि अग्निष्टोम द्वारा पहले आदित्य को उदित किया जाता है। अग्निष्टोम यज्ञ में पांचवें दिन तृतीय सवन में आदित्य ग्रह का उल्लेख आता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गया है कि आदित्य की उदित होती हुई अवस्था अग्निष्टोम है, जब सूर्य मध्य में होता है तो वह ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ का रूप हो जाता है। आदित्य के उदित होने के पश्चात उसका अभिषेक किया जाता है। भविष्य पुराण से मिलता जुलता उल्लेख जैमिनीय ब्राह्मण १.३८ में भी आया है।

पुराणों में सार्वत्रिक रूप से अग्निष्टुत्/अग्निष्टोम को चाक्षुष मनु के पुत्र कहने के संदर्भ में काठक संहिता ३४.८, तैत्तिरीय संहिता ७.२.९.१ आदि में उल्लेख है कि साधना के प्रथम चरण में अग्नि को अग्निष्टोम / अग्नि-स्तोम का रूप दिया जाता है। दूसरे चरण में अतिरात्र यज्ञ रूपी चक्षुओं में अग्निष्टोम-द्वय रूपी कनीनिकाओं (आंख के अंदर काला भाग) की स्थापना की जाती है। जैमिनीय ब्राह्मण २.४९ के अनुसार प्राण ही

अग्निष्टोम स्तोम है। उससे पूर्व जो यज्ञ हैं, उनके द्वारा वाक् की प्रतिष्ठा की जाती है। अग्निष्टोम के पश्चात जो यज्ञ है, वह चक्षुओं के समान हैं। जैमिनीय ब्राह्मण २.५१ के अनुसार साधना में चक्षुओं का (आनन्द से) आर्द्र होना वर्षा के समान है। विराट स्तर पर इसका रूप पर्जन्य वर्षण हो जाता है। तैत्तिरीय संहिता ७.२.९.२ में ज्योतिष्पक्षा गायत्री श्येन के पक्षों को अग्निष्टोम -द्वय कहा गया है। ताण्ड्य ब्राह्मण १९.१०.१ के अनुसार पक्षी स्तोम का रूप है। इस स्तोम के ९, १५, १७, २१, २०, ३३ आदि विभिन्न स्तर होते हैं जो क्रमशः प्राण/तेज/ब्रह्मवर्चस, वीर्य और आत्मा, पशु/अन्न, प्रतिष्ठा व वर्ष्म/शरीर/ब्रध्नस्य विष्टप के प्रतीक हैं। ताण्ड्य ब्राह्मण में विभिन्न स्थानों पर इन स्तोमों द्वारा विभिन्न कामनाओं की प्राप्ति के वर्णन हैं। ऐतरेय ब्राह्मण की कंडिका ३.३९ से आरंभ करके कुछ कंडिकाओं में अग्निष्टोम शब्द की व्युत्पत्ति आदि का वर्णन किया गया है।

अग्निष्वात्त स्कन्द ५.१.५८ (पितरगण, क्रौंच पर्वत में निवास) हरिवंश १.१८.२६ (पितरों का गण, वंश वर्णन) देवीभाग. ८.२१ (पितरगण, अतल लोक से ऊपर स्थिति, वंशजों के कल्याणकामी) ब्रह्माण्ड १.२.१३.६ (यज्ञ न करने वाले गृहस्थ पितर), गरुड १.८९.४१ (पितर, प्राची दिशा के रक्षक), वायु ५२.६८ (आर्त्तव रूप पितर)

अग्निसत्यपद वराह १४१ (बदरी तीर्थ में क्षेत्र, महिमा)

अग्निस्वामी कथासरित् १२.९.६ (ब्राह्मण, मन्दारवती-पिता, तीन तरुण ब्राह्मणों की कथा) कस १८.५.९१ (देवस्वामी-पिता)

अग्निहोत्र भविष्य १.१८२.३९ (अग्निहोत्र और दारकर्म में मैथुन की समानता के कारण विवाह का दाराग्निहोत्र नाम), शिव १.२४.७ (अग्निहोत्र की भस्म के त्रिपुण्ड्र धारण में उपयोग का उल्लेख), पद्म १.१४.८३ (अग्निहोत्र की प्रशंसा), ३.३१.१२३ (शालग्राम शिला के चक्र में श्रीहरि की अर्चना करने से अग्निहोत्र फल की प्राप्ति का उल्लेख), ५.३७.९ (आरण्यक मुनि का राम के दर्शन को अग्निहोत्र के फल की प्राप्ति कह कर हर्षित होना), नारद १.५५.७९ (फलित ज्योतिष के संदर्भ में अग्निहोत्र गृह में जीव / बृहस्पति द्वारा जन्म लेने का उल्लेख), विष्णु धर्मोत्तर १.५८.१७ (अग्निहोत्र से केशव की तुष्टि का उल्लेख), २.५१.१४ (अग्निहोत्र के फल के रूप में वेदों का उल्लेख आदि), स्कन्द २.१.५.२१ (रावण द्वारा सीताहरण के प्रसंग में अग्निहोत्रगत अग्नि द्वारा वास्तविक सीता के स्थान पर कृत्रिम सीता के प्रतिस्थापन का उल्लेख), २.८.६.२०१ (गोविंद को धूप समर्पित करने से अग्निहोत्र फल प्राप्ति का उल्लेख), ५.३.१३९.८ (सोम तीर्थ के सहस्र अग्निहोत्र के बराबर फल का उल्लेख), ५.३.२०८.५ (देव ऋणों में से एक अग्निहोत्र का उल्लेख), ६.२१५.१९ (अग्निहोत्र के फल के रूप में वेदों का उल्लेख), ७.१.४.५९ (श्री सोमेश्वर की यात्रा से अग्निहोत्र आदि के फल की प्राप्ति का उल्लेख), ७.१.१२९.१५ (शूद्रान्न से निवृत्ति न होने पर अग्निहोत्री की आत्मा, ब्रह्मा और तीनों अग्नियों के नाश का उल्लेख), ७.१.१२९.१७ (शूद्रान्न से अग्निहोत्र आहुति देने पर द्विज के चण्डाल होने का उल्लेख), ७.१.२०७.५० (अग्रज के होते हुए दाराग्निहोत्र संयोग करने पर परिवेत्ता संज्ञा होने का उल्लेख), कूर्म २.२४ (० कर्म महत्व), वायु १०४.८३ (० की आनन में स्थिति) भागवत ६.१८.१ (सविता व पृश्नि -पुत्र), ३.१३.३६ (यज्ञ-वराह के चर्वण का रूप), भा ३.१३.३८ (यज्ञ वराह की सात धातुओं में से एक का रूप), ७.१५.४८ (अशान्ति उत्पन्न करने वाले प्रवृत्तिपरक कर्मों में से एक), ९.११.१८ (श्रीराम द्वारा परलोक गमन से पूर्व १३ सहस्र वर्षों तक अखण्ड अग्निहोत्र करने का उल्लेख), ९.१५.२५ (सहस्रबाहु अर्जुन द्वारा जमदग्नि ऋषि की अग्निहोत्री गौ के हरण व परशुराम द्वारा गौ की पुनः प्राप्तिका वर्णन), ब्रह्माण्ड १.२.२१.१६० (० कर्म से पितृयान मार्ग में गति), मत्स्य १२४.९८ (पितृयान मार्ग पर प्रजाकामी अग्निहोत्री ऋषियों की स्थिति) म १८३.८१ (अविमुक्त क्षेत्र में सुवर्ण-पुष्प दान से ० फल की प्राप्ति) विष्णु ६.८.३० (विष्णु पुराण श्रवण से ० फल की प्राप्ति), लक्ष्मी नारायण ३.३४.१०७ (कल्याणिका -पति व कल्याणी लक्ष्मी -पिता अग्निहोत्र द्विज का उल्लेख)देवीभाग. ११.२२.२३ (प्राणाग्नि होत्र विधि -वर्णन), ७.२०.३१ (वाक्य अनृत होने पर अग्निहोत्र आदि क्रियाओं के विफल होने का उल्लेख), लिंग २.१२.५ (शिव द्वारा भूमि, आपः अग्नि आदि अपनी आठ मूर्तियों का अग्निहोत्र में सूर्य में अर्पण करने का उल्लेख), महाभारत आदि ११.२ (अग्निहोत्र में रत खगम ब्राह्मण द्वारा सहस्रपाद ऋषि को सर्प होने के शाप का वृत्तांत), १.२१३.८ (अग्निहोत्र कर्म के लिए उद्यत अर्जुन का नागकन्या उलूपी द्वारा नागलोक में कर्षण, अर्जुन द्वारा नागलोक में अग्निकर्म सम्पन्न करना व उलूपी से इरावान नामक पुत्र उत्पन्न करना), सभा (५.११३ (नारद -युधिष्ठिर संवाद के अन्तर्गत वेदों के फल अग्निहोत्र इत्यादि श्लोक का उल्लेख), वन ८२.३६ (कार्तिक पूर्णिमा को पुष्कर में वास से अग्निहोत्र फल प्राप्ति का उल्लेख), १३६.१७ (रैभ्य ऋषि द्वारा उत्पन्न राक्षस से भयभीत होकर यवक्रीत मुनि का पिता भरद्वाज के अग्निहोत्र गृह में प्रवेश करना तथा वहां शूद्र द्वारा पकडे जाने पर राक्षस द्वारा यवक्रीत का वध आदि), १८६.१७ (अग्निहोत्र से प्रकट

सरस्वती देवी द्वारा तार्क्ष्य मुनि को अग्निहोत्र क्रिया की सफलता के लिए याजक के अपेक्षित गुणों का वर्णन करना), २२०.१८ (अग्निहोत्र होने पर तप / पांचजन्य के पुत्र बृहदुक्थ की प्रतिष्ठा का उल्लेख), २२१.२३ (अग्निहोत्र कर्म में दुष्टता / त्रुटि पर विभिन्न अग्नियों के लिए इष्टि विधान का वर्णन), २२२.४, २२४.२८+ (सह अग्नि व मुदिता के पु.. अद्भुत नामक अग्नि की गृहपति नाम से प्रतिष्ठा, अद्भुत द्वारा आह्वनीय अग्नि में हुत आहुति को देवताओं तक पहुंचाना, अद्भुत अग्नि की सप्तर्षि -पत्नियों पर आसक्ति, समागम से स्कन्द कार्तिकेय के जन्म का विस्तृत वर्णन), २९३.११ (अग्निहोत्र से प्रकट सावित्री द्वारा राजा अश्वपति को कन्या प्राप्ति का वरदान, सावित्री - सत्यवान प्रसंग), ३११.१०+ (मृग रूप धारी यक्षद्वारा ब्राह्मण के अग्निहोत्र के उपकरणों अरणि व मन्थ का हरण, पांचों पाण्डवों द्वारा मृग का पीछा करना, तृषित होने पर सरोवर से जल पान की चेष्टा करने पर यक्ष द्वारा प्राणरहित करना, युधिष्ठिर का बक रूप धारी यक्ष से वार्तालाप, युधिष्ठिर द्वारा प्रश्नों के उत्तर देने पर यक्ष का यम/धर्म के रूप में प्रकट होना, अरणि व मन्थ की प्राप्ति आदि), विराट ४.२ (राजा विराट के नगर में अज्ञातवास से पूर्व पाण्डवों द्वारा अग्निहोत्र की रक्षा का कार्य पुरोहित धौम्य को सौंपना), शान्ति ११०.९ (अग्निहोत्र परायण होकर अपनी दारा से समागम करने पर दुर्गुणों से पार होने का उल्लेख), २९२.२१ (विप्र को वेद -त्रयी रूपी आहिताग्नि की प्राप्ति होने पर अग्निहोत्र क्रिया की अनिवार्यता का उल्लेख), आश्रम १५.३ (युद्ध के अन्त में राजा धृतराष्ट्र द्वारा अग्निहोत्र को आगे करके वन गमन का उल्लेख); द्र. यज्ञ

टिप्पणी : शुक्ल यजुर्वेद के तीसरे अध्याय में अग्निहोत्र के मन्त्र हैं। जैमिनीय ब्राह्मण १.१ -१.६५ में अग्निहोत्र की व्याख्या है। प्राणाग्निहोत्र उपनिषद में प्राण रूपी अग्नि में आहुति देने की आध्यात्मिक विधि की स्थापना की गई है। इसके अतिरिक्त लगभग प्रत्येक ब्राह्मण ग्रन्थ में अग्निहोत्र से सम्बन्धित उपयोगी वर्णन दिया गया है। अग्निहोत्र के संदर्भ में आहुति और इध्म की व्याख्या इन शब्दों की टिप्पणियों के अन्तर्गत की गई है जिनका पूर्व पढना अपेक्षित है।

लौकिक अग्निहोत्र कर्म में केवल एक ही अग्नि में आहुति दी जाती है। लेकिन वैदिक अग्निहोत्र में गार्हपत्य अग्नि, दक्षिणाग्नि और आहवनीय अग्नि, इन तीन अग्नियों की स्थापना करनी होती है। यदि किसी यजमान ने अपने गृह में आहिताग्नि की स्थापना कर ली है तो उसी से गार्हपत्य अग्नि को प्रज्वलित किया जाता है और गार्हपत्य अग्नि से आहवनीय अग्नि को। आहिताग्नि की अनुपस्थिति में अरणि और मन्थ उपकरणों द्वारा मन्थन करके अग्नि को प्रकट किया जाता है। गार्हपत्य अग्नि पर आहुति द्रव्य का श्रपण (पकाना) किया जाता है और उसके पश्चात आहवनीय में आहुति दी जाती है। फिर गार्हपत्य में आहुति दी जाती है। आहुति द्रव्य के संदर्भ में उल्लेख है कि पय / दुग्ध की आहुति देनी चाहिए। यदि पय न हो तो व्रीहि - यव की, यदि व्रीहि न हो तो आरण्यक धान्य की, आदि आदि (जैमिनीय ब्राह्मण १.१९)। इस पयस् की प्राप्ति किस गौ से होगी, कौन उसका वत्स बनेगा, कौन गौ का दोहन करेगा, पयस् को पकाने की विधि क्या होगी, यह वैदिक अग्निहोत्र के आधारभूत प्रश्न हैं। जैमिनीय ब्राह्मण १.१९ के अनुसार वाक् ही अग्निहोत्री / गो है, मन उसका वत्स है। शतपथ ब्राह्मण ११.५.३.५ में उद्दालक ऋषि कहते हैं कि इडा ही उनकी मानवी अग्निहोत्री है, वायव्य वत्स है। इसके बारे में ब्राह्मण ग्रन्थ केवल यह कह कर चुप हो जाते हैं कि यह अन्नाद्य, अन्नों में सर्वश्रेष्ठ है। लेकिन देवीभागवत पुराण में प्राणाग्निहोत्र के संदर्भ में उल्लेख है कि प्रणव ही पयः है। यही कारण है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में जहां भी अग्निहोत्र का वर्णन है, वहां पयस् के श्रपण की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन भी विस्तार से किया गया है (उदाहरण के लिए, ऐतरेय ब्राह्मण ५.२६)। पयस् के प्रणव रूप का संकेत शतपथ ब्राह्मण १.५.२.२० आदि से मिलता है जहां वर्णन है कि ओ (ओम्) श्रावय से देवों ने विराज गौ का आह्वान किया, अस्तु श्रौषट् से वत्स के मुख में स्तनों को दिया, ----वषट्कार से गौ को दुहा आदि। इसी स्थान पर यह भी वर्णित है कि योग में इस दुग्ध दोहन का क्या अर्थ है -पुरोवात उत्पन्न होती है, अभ्र / बादल उत्पन्न होते हैं, विद्युत व स्तनयित्नु / गर्जन उत्पन्न होते हैं, वर्षा होती है।

जिस वाक् को धेनु कहा गया है, वह क्या है। आहुति शब्द की टिप्पणी में स्पष्ट किया गया है कि अग्निहोत्र में पूर्व आहुति वाक् द्वारा, दुन्दुभी बनी वाक् द्वारा दी जाती है। उत्तर आहुति मन से दी जाती है। बृहदारण्यक उपनिषद १.५.३ में आत्मा के तीन भागों का उल्लेख है - वाक्, मन और प्राण। इन तीनों में अंतर समझाने के लिए कहा गया है यह क्रमशः पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ, या भूत, वर्तमान और भविष्य, या ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद आदि हैं। वाक् का विकास अग्नि के रूप में, मन का आदित्य के रूप में और प्राण का चन्द्रमा के रूप में होता है। साधारण शब्दों में हमारी प्रत्येक अभिव्यक्ति - चलना, बैठना, खाना, सोना, बोलना वाक् कहलाता है। जब हमारी सारी अभिव्यक्तियां ओंकार के रूप में समाहित हो जाएं तो यह वाक् ओंकार रूपी धेनु, (नृसिंहोत्तर तापनीयोपनिषद), अथर्ववेद में वर्णित विराज धेनु बन जाती है। महाभारत में अग्निहोत्र से सावित्री, सरस्वती आदि के प्राकट्य से यही अभिप्राय हो सकता है। महाभारत में बक रूप धारी यक्ष से युधिष्ठिर के संवाद में बक को भी वाक् का रूप माना जा सकता है। इस बक/वाक् का यम या धर्म में रूपांतरण अपेक्षित है। वाक् का यह सारा रूपांतरण गार्हपत्य अग्नि प्रज्वलित करने से पहले ही कियां जाना है, इसीलिए यक्ष अरणी व मन्थ का हरण कर लेता है। जैमिनीय ब्राह्मण १.२२ आदि में राजा जनक गौतम से पूछते हैं कि वह

अग्निहोत्र की किस रूप में उपासना करता है। गौतम का उत्तर है कि यश के रूप में, लेकिन यश से पूर्व युधिष्ठिर बन कर यक्ष की एकांगी साधना करनी पड़ेगी।

वाक् को एक अन्य ढंग से भी समझा जा सकता है। हमारे शरीर के कण-कण की, प्रत्येक अंग की एक विशिष्ट वाक् है, आवाज है, आधुनिक विज्ञान की भाषा में एक आवृत्ति है या फ्रीक्वेंसी है जिस पर वह हमसे वार्तालाप का प्रयत्न कर रहा है। अन्नमय शरीर के स्तर पर यह सब आवृत्तियां बिखरी रहती हैं। लेकिन जब शरीर का विकास होता है तो शरीर में संवाद प्रेषण क्रिया त्वरित गति वाली विद्युत द्वारा होने लगती है और इस स्थिति में यह हो सकता है कि सारी आवृत्तियां एक इकाई बन जाएं जिसे तैत्तिरीय संहिता ६.१.७.५ में दो मुख वाली अदिति गौ कहा गया है जो आदित्य को जन्म देती है।

पुराणों और महाभारत में अग्निहोत्र फलं वेदाः इत्यादि श्लोक का सार्वत्रिक रूप से उल्लेख आता है जिसके आगे के पदों में श्रुत का फल शीलवृत्त, जाया का फल रति और पुत्र, तथा धन का फल दत्त और भुक्त होने का उल्लेख है(?)। प्रथम दृष्टि में ऐसा प्रतीत होता है कि श्लोक के चार पद परस्पर असम्बद्ध हैं। लेकिन वास्तव में यह ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित अग्निहोत्र के रहस्यों की ही व्याख्या है। युधिष्ठिर ने श्रुत पर ध्यान दिया, उसकी उपेक्षा नहीं की, इससे शील की प्राप्ति की। ब्राह्मण ग्रन्थों में सार्वत्रिक रूप से अग्निहोत्र को मिथुन कहा गया है। मिथुन का स्वरूप यह है कि यजमान -पत्नी गार्हपत्य अग्नि के समीप बैठती है और यजमान आहवनीय अग्नि के समीप। आहवनीय अग्नि या संवत्सर गृहपति है, गार्हपत्य अग्नि या पृथिवी गृहपत्नी है (शांखायन ब्राह्मण ३.९, जैमिनीय ब्राह्मण ३.४)। सांयकाल होने पर आदित्य आहवनीय अग्नि में प्रवेश कर जाता है और इस प्रकार यजमान ही रात्रि काल में आदित्य के रूप में स्थित होकर पृथिवी रूपी पत्नी से मिथुन करता है और प्रातःकाल आदित्य रूपी पुत्र को जन्म देता है। मिथुन के इसी तथ्य को पुराणों में दारा शब्द से व्यवहृत किया गया है। दारा अर्थात जो हमारे सारे व्यक्तित्व का दारण कर दे, झिंझोड कर रख दे। यही 'महाभारत' में अर्जुन व उलूपी के मिथुन द्वारा दर्शाया गया है। श्लोक के चतुर्थ पाद में जिस धन से भुक्त व दत्त की बात कही गई है। इस संदर्भ में पुराणों में अन्यत्र भी अग्निहोत्र से धन आदि की प्राप्ति के उल्लेख आए हैं जिनका वर्तमान अनुक्रमणिका में संकलन नहीं किया गया है। जैमिनीय ब्राह्मण १.२४ में अग्निहोत्र का यजन वित्त प्राप्ति के रूप में करने का वर्णन है। बृहदारण्यक उपनिषद १.५.१५ में उल्लेख आता है कि संवत्सर प्रजापति १६ कलाओं वाला है जिसमें से १५ कलाएं तो उसका वित्त हैं और आत्मा १६वीं कला है। आत्मा नाभि है और वित्त परिधि।

पुराणों में अग्निहोत्र को सोमेश लिंग से सम्बद्ध करके एक ऐसी दिशा की ओर संकेत किया गया है जिसका ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रत्यक्ष वर्णन नहीं है। यह विचारणीय विषय है।

अग्नीषोम नारद १.४२.२१ (अग्नि व सोम : चन्द्र व सूर्य के रुप में विराट विष्णु के नयन), १.८०.२८६ (कृष्ण के अग्नीषोमात्मक रुप का ध्यान), हरिवंश १.४०.५४ (स्थूल देह के स्तर पर शुक्र व शोणित तथा कफ व पित्त के उदाहरणों से जगत को अग्नीषोमात्मक कहना), १.४९.२० (अग्नीषोममय लोक में अग्नि व सोम के सनातन विष्णु होने का उल्लेख), २.२५.११ (अक्रूर की व्रज यात्रा के प्रसंग में अक्रूर का सायंकाल अग्नीषोमात्मक संधि में व्रज में प्रवेश करने का उल्लेख), शिव ७.१.२८(विश्व की अग्नीषोमात्मक स्थिति : शिव व शक्ति का रूप) ब्रह्माण्ड २.३.७२.१८८ (अग्नीषोम विधिज्ञ : शिव का विशेषण/नाम), योगवासिष्ठ ६.१.८१.८० (जगत की अग्नीषोमात्मकता की व्याख्या के रूप में सूर्य द्वारा सोम का पान करने पर सोम का सूर्य की किरणों में परिवर्तित होना, शुक्ल पक्ष में सोम का पुनः आप्यायन होना, वड्वामुख अग्नि द्वारा समुद्र का पान करके धूम उद्गार के रुप में पुनः जल को प्रकट करना आदि; बाह्य व आन्तरिक संक्रान्तियों को जानने का निर्देश), महाभारत सभा ७.२१ (अग्नीषोम-द्वय का इन्द्र सभा में उपस्थित रहने का उल्लेख), वन २२.१.१५ (मनु/भानु व निशा के पुत्रों में से दो), शान्ति १८२.१८ (अग्नीषोम/चन्द्रार्क का उल्लेख), २८८.३३ (इस जगत को अग्नीषोमात्मक जान लेने पर अद्भुत भावों/माया से मुक्ति का उल्लेख), ३४१.५० (अग्नीषोम द्वय के एक योनि होने का उल्लेख), ३४२.१ (अग्नीषोम के एक योनि होने के कारण की विस्तृत व्याख्या : सृष्टि के आदि में पुरुष से ब्रह्म/ब्राह्मण/सोम तथा क्षत्र/क्षत्रिय अग्नि का प्राकट्य, वेद मन्त्रों में अग्नि का ब्राह्मणत्व सिद्ध होना, वड्वामुख द्वारा समुद्र के लवण जल को पीकर शुद्ध करना, इन्द्र-त्वष्टा विश्वरूप व इन्द्र-नहुष आख्यान आदि), अनुशासन ६३.४० (अग्नीषोम-द्वय द्वारा प्राणियों को उत्पन्न करने वाले शुक्र की पुष्टि करने का उल्लेख), ८५.८६ (स्वर्ण की उत्पत्ति के संदर्भ में स्वर्ण के अग्नीषोमात्मक होने का उल्लेख), ९७.१० (बलि - वैश्वदेव कर्म में सर्वप्रथम अग्नीषोम को आहुति देने का निर्देश)

टिप्पणी : हमारे भीतर ही जो ऊर्जा नीचे से ऊपर को जाती है, वह है अग्नि। ऊपर से नीचे को आने वाली ऊर्जा सोम कहलाती है। इन दोनों के मिलन से एक ज्योति उत्पन्न होती है जिस पर ध्यान केंद्रित करने से सारी चित्त वृत्तियां समाहित हो जाती हैं, बंध जाती हैं, यही अग्नीषोमीय पशु है। फतहसिंह

महाभारत अनुशासन पर्व में स्वर्ण के अग्नीषोमात्मक होने का कथन अग्नीषोम सम्बन्धी कथाओं को समझने

की पहली कुंजी है। शिव पुराण आदि में इस स्वर्णिम अवस्था को भस्म नाम दिया गया है। शतपथ ब्राह्मण १.६.३.१९ में पौर्णमास यज्ञ के अंतर्गत अग्नीषोम के संदर्भ में इन्द्र द्वारा त्वष्टा-पुत्र विश्वरूप व वृत्र वध का आख्यान वर्णित है लेकिन इस कथा का पूर्ण रूप केवल महाभारत शान्ति पर्व में ही उपलब्ध है जहां हिरण्यकशिपु हिरण्यगर्भ/वसिष्ठ के बदले विश्वरूप को अपना पुरोहित बना लेता है। तब इन्द्र विश्वरूप व तत्पश्चात वृत्र का वध करते हैं। इसका निहितार्थ होगा कि अग्नीषोम रूपी स्वर्णिम ज्योति का विकास सबसे पहले हिरण्यकशिपु के रूप में होता है जिसका उपयोग चाहे तो वसिष्ठ पुरोहित द्वारा दैवभाग को पुष्ट करने के लिए किया जा सकता है, अथवा विश्वरूप पुरोहित के रूप में आसुरी भाग को पुष्ट करने में। कथा में विश्वरूप के तीन शिरों का इन्द्र द्वारा छेदन की कथा का मूल वेदमन्त्रों में ढूंढना अपेक्षित है। हो सकता है कि तीन सिर आहवनीय अग्नि, गार्हपत्य अग्नि और दक्षिणाग्नि से सम्बन्धित हों। वृत्र की उत्पत्ति के संदर्भ में पुराण कथाओं में त्वष्टा द्वारा अवशिष्ट सोम से होम की बात कही गई है, जबकि ऋग्वेद १.९३.४ में बृसय के शेष से वृत्र की उत्पत्ति प्रतीत होती है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.८.७.९ में बृसय के स्थान पर प्रथय शब्द आया है। कथा में इन्द्र द्वारा वृत्र पर वज्र प्रहार करने के संदर्भ में ब्राह्मण ग्रन्थों में सार्वत्रिक रूप से वर्णन आता है (उदाहरणार्थ तैत्तिरीय संहिता २.५.२.१) कि वज्र प्रहार करने के समय अग्नीषोम - द्वय ने इन्द्र से कहा कि प्रहार मत करो, हम वृत्र के मुख में बैठे हुए हैं। तब इन्द्र ने उनको वृत्र के मुख से छुटकारा दिलाने का उपाय किया। अग्नीषोम-द्वय ने वृत्र के मुख से बाहर निकलने पर पुरस्कार मांगा। तब इन्द्र ने उन्हें पूर्णिमा को अग्नीषोमीय एकादश कपाल पुरोडाश देने की व्यवस्था की। अग्नीषोम-द्वय द्वारा वृत्र के मुख से बाहर निकलने पर उनका तेज वृत्र के अंदर ही रह गया। तब गौ को भेजकर, जो सबकी मित्र है, उस तेज को प्राप्त किया गया। पुरस्कार रूप में गौ के दुग्ध में घृत और पयः दोनों को रखने की व्यवस्था की गई जिसे पीकर देवता तृप्त होते हैं। पुराणों में इस आख्यान के बदले सार्वत्रिक रूप से वृत्र रूपी ब्रह्महत्या के भय से जल में कमलनाल में छिपने और नहुष द्वारा इन्द्र पद प्राप्ति आदि की कथा आती है जिसका निहितार्थ अपेक्षित है। इन्द्र द्वारा वृत्र पर चलाये गए दधीचि की अस्थियों से निर्मित वज्र के संदर्भ में ऐसा प्रतीत होता है कि वज्र का निर्माणं अमावास्या को किया गया होगा क्योंकि दर्श-पूर्णमास यज्ञ में अमावास्या को ही इन्द्र हेतु दधि की हवि का विधान है।

पौर्णमास यज्ञ में पांच हवियों का विधान है जो इस प्रकार है - पांच प्रयाज, दो आघार, २ आज्य भाग (आग्नेय व सौम्य), आग्नेय पुरोडाश, अग्नि स्विष्टकृत (गोपथ ब्राह्मण १.३.१० आदि)। आज्यभाग-द्वय के विषय में ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गया है कि वृत्र के मुख से निकलने पर अग्नीषोम-द्वय की पहली मांग यह थी कि हमें आज्य भाग प्राप्त हो। यह आज्य-द्वय सूर्य और चन्द्रमा रूपी चक्षु-द्वय के प्रतीक हैं।

योगवासिष्ठ का यह कथन कि अग्नीषोम के द्वारा संक्रान्तियों/सन्धियों को समझना चाहिए, अग्नीषोम को समझने की दूसरी कुंजी है जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। शतपथ ब्राह्मण १.६.३.२४ के अनुसार अग्नीषोमीय उपांशु याज से अहोरात्रों को प्राप्त करते हैं तथा अग्नीषोमीय पुरोडाश से अर्धमासों को प्राप्त करते हैं। शतपथ ब्राह्मण ११.२.६.५ के अनुसार आग्नेय पुरोडाश दक्षिण पक्ष है, अग्नीषोमीय उपांशुयाज हृदय की भांति मध्य में स्थित है जबकि अग्नीषोमीय पुरोडाश उत्तर पक्ष है। उपांशु याज कर्म तूष्णीं किया जाता है, जबकि पुरोडाश कर्म उच्च स्वर में। उपांशु याज में आज्य से यजन किया जाता है जो असुरों का नाश करता है क्योंकि आज्य वज्र है (द्र. आज्य पर टिप्पणी; शतपथ ब्राह्मण १.६.३.२७)। पुरोडाश को समझने के संदर्भ में कहा जाता है कि यह कूर्म प्राण का, उदान प्राण का रूप है जिसने मेधा का, मस्तिष्क का रूप ग्रहण कर लिया है। यह पशु की, जिसको मेध्य बनाना है, एक प्रतिमा है, लघु रूप है (ऐतरेय ब्राह्मण २.९)। इस पुरोडाश में से अंगुष्ठ-द्वय मात्र निकाल कर प्रत्येक ऋत्विज भक्षण करता है। शतपथ ब्राह्मण ९.४.३.१० में अग्नि चयन के संदर्भ में दसों दिशाओं में अग्नीषोमीय पशु पुरोडाश की हवि का उल्लेख है, क्योंकि अग्नि दस दिशाओं में व्याप्त है। अग्निषोमीय पुरोडाश कर्म के पश्चात अग्नि स्विष्टकृत कर्म होता है। पुरोडाश ग्रहण करने से ही अग्नि का अनिष्ट स्विष्ट में बदलता है (शतपथ ब्राह्मण ५.३.३.१०)।

दर्श-पूर्ण मास याग में जहां अग्नीषोमीय - पुरोडाश के रूप में यजमान रूपी पशु की केवल प्रतिमा मात्र का संस्कार किया गया था, अग्निष्टोम नामक यज्ञ में पूरे यजमान पशु का ही संस्कार कर दिया जाता है। यज्ञ में प्रथम दिन दीक्षा कर्म होता है जो श्रद्धा का रूप है। (शतपथ ब्राह्मण १२.१.२.१)। यह ऐसे है जैसे यजमान रूपी पशु को अग्नीषोम ने भोजन के लिए अपने मुख में रख लिया हो (शतपथ ब्राह्मण ३.३.४.२१)। यज्ञ के चतुर्थ दिन, जो यज्ञ के मुख्य सुत्या नामक पांचवें दिन से पहला दिन होता है, को उपवसथ संज्ञा दी गई है। इस दिन यजमान रूपी अग्नीषोमीय पशु का वास्तविक संस्कार करके उसे पांचवें दिन देवों को हवि देने योग्य बनाया जाता है। वास्तविक यज्ञ कर्म में यजमान के स्थान पर छाग (छिन्न गति यस्य स छागः ?) का उपयोग किया जाता है। अथर्ववेद ९.६.६ का कथन है कि अग्नीषोमीय पशु का संस्कार अतिथि को तृप्त करने जैसा है (यत् तर्पणमाहरन्ति य ----)। जैमिनीय ब्राह्मण १.२१ के अनुसार अग्नीषोमीय कर्म गौ से दुग्ध प्राप्त कर लेने जैसा है, जबकि दुग्ध दुहने का काल अश्विनौ जैसा है। वास्तविक यज्ञ कर्म में यजमान रूपी पशु का संज्ञपन किया जाता है, उसकी चेतना को विस्तीर्ण चेतना या संज्ञा का रूप दिया जाता है जिसका यज्ञ कर्म में स्थान उत्तरवेदी होता है। हो सकता है कि महाभारत शान्तिपर्व आदि में अग्नीषोम के संदर्भ में जिस वडवामुख महर्षि द्वारा समुद्र जल के क्षारीय जल को

पीकर शुद्ध करने का वर्णन है, वह चेतना की यही उत्तर स्थिति हो। ऋग्वेद १.९३.५ भी इस संदर्भ में दृष्टव्य है जहां अग्नीषोम द्वारा सिन्धु को पाप से मुक्त करने का उल्लेख है।

शान्तिपर्व में अग्नीषोम के संदर्भ में आख्यानों के माध्यम से क्षत्रत्व का ब्रह्मणत्व में व ब्रह्मणत्व का क्षत्रत्व में परिवर्तन वैदिक साहित्य में अग्नीषोम के वर्णन को समझने की तीसरी कुंजी है। वैदिक साहित्य में जब क्षत्रिय को शत्रुओं से रक्षा का कार्य, वृत्र वध का कार्य करना होता है, उसका निरूपण ११ अक्षरों वाले त्रिष्टुप छन्द से किया जाता है। इसी के प्रतीक रूप में अग्नीषोमीय पुरोडाश को ११ कपाल वाला बनाया जाता है। इसके द्वारा अनिष्टकृत अग्नि स्विष्टकृत (सु -इष्टकृत) बनती है (शतपथ ब्राह्मण १२.८.३.१९)। जब ब्रह्मवर्चस की, सोम की प्राप्ति करनी होती है तो ८ कपालात्मक अग्नीषोमीय पुरोडाश का विधान है (तैत्तिरीय संहिता २.३.३.३)। अग्नीषोम में अग्नि अन्नाद है, अन्न का भक्षण करने वाली है, जबकि सोम अन्न है (तैत्तिरीय संहिता ३.४.३.३)। अथवा दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि अग्नि का विकास इस स्तर तक किया जाता है कि वह अन्न का भक्षण करके उसे देवों तक पंहुचा सके। दूसरी ओर सोम को ऐसा सर्वश्रेष्ठ अन्न बनना है जिससे देव गण तृप्त हो सकें। अथर्ववेद ३.१३.५ तथा तैत्तिरीय संहिता ५.६.१.३ में कुम्भ इष्टिका मन्त्र के संदर्भ में कहा गया है कि आप: भद्र हों, घृत जैसे हों जो अग्नि को बुझायें नहीं, अपितु प्रज्वलित करें।

ऋग्वेद १.९३, १०.१९.१ व अथर्ववेद १.८.१. , ६.५४, ६.९३.३, ७.११९ सूक्त अग्नीषोम देवता के हैं लेकिन इनमें से ऋग्वेद १.९३ सूक्त का सार्वत्रिक रूप से अग्नीषोमीय कर्म में विनियोग हुआ है (उदाहरण के लिए तैत्तिरीय ब्राह्मण २.८.७.९)। तैत्तिरीय संहिता ३.४.३.१ में अग्नीषोम की सोम व अग्नि आदि से उत्पत्ति के संदर्भ में एक आख्यान का वर्णन किया गया है।

अग्नीष्टिका भविष्य ४.१७३ (अंगीठी/अग्नीष्टिका दान विधि)

अग्रदत्त कथासरित् १२.१०.४८ (वणिक, स्व कन्या वसुदत्ता का समुद्रदत्त से विवाह, वसुदत्ता के जार कर्म की कथा)

अग्रभुक् भविष्य ३.४.२२ (सन्त, पूर्व जन्म में वरेण्य)

अघ लक्ष्मी नारायण ३.१६७.४६ (० नाश हेतु विभिन्न देवों का आह्वान), द्र. अघासुर, अनघ, पाप, मघा, माघ

टिप्पणी : अघ शब्द के लिए अहंकार पर विचार करना चाहिए । वेद में अकेला घ अक्षर घनता को प्रदर्शित करने के लिए प्रयुक्त होता है। विभिन्न देवों से अघ का नाश करने की प्रार्थना के अतिरिक्त वेद में पांचों दिशाओं से अघ के नाश होने की प्रार्थना की गई है (ऋग्वेद १०.४२.११, अथर्ववेद ५.१०.१)। अथर्ववेद १२.८.५ के अनुसार ब्रह्मगवी गौ द्वारा अघों के भक्षण करने पर दुःस्वप्न स्वयं पक जाते हैं?

अघमर्षण अग्नि ७२.३६ (० कर्म विधि), २१५.४१ (० सूक्त ऋतं च इति के ऋषि, देवता व छन्द कथन), स्कन्द ४.१.३५.१४७ (० मन्त्र माहात्म्य), नारद १.६६.६१ (विधि), भागवत ६.४ (०तीर्थ में दक्ष का तप), कूर्म २.१८.७२ (०स्नान महिमा), ब्रह्माण्ड १.२.३२.११७ (विश्वामित्र गोत्र/प्रवर के एक ऋषि), मत्स्य १४५.११२ (वही), १९८.१२ (वही), लक्ष्मी नारायण ३.९.६४ (अघमर्षण खण्ड में तुंगभद्रा तापसी द्वारा राक्षसों के वध हेतु लक्ष्मी की पुत्री रूप में प्राप्ति)

टिप्पणी : ऋग्वेद १.९७.१ इत्यादि में आप: से अघ को शुद्ध करने की प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद १०.१९० अघमर्षण सूक्त है।

अघासुर भविष्य ३.४.१८ (अर्यमा से युद्धः संज्ञा विवाह प्रसंग), भागवत १०.१२ (कृष्ण द्वारा उद्धार), गर्ग २.६ (शंखासुर-पुत्र, अष्टावक्र के शाप से सर्प बनना, कृष्ण द्वारा उद्धार)

टिप्पणी : ऋग्वेद १.११६.६ तथा अथर्ववेद १०.४.१० में अघाश्व का उल्लेख है। अथर्ववेद १०.४.१० में इन्द्र से अघ करने वाले अहि को मारने की प्रार्थना की गई है। वेदों में कई स्थानों पर अघशंस आया है जो अघासुर का पिता शंख प्रतीत होता है। जैमिनीय ब्राह्मण २.२६६ में अहियों और अजगरों को अघला कहा गया है। कृष्णोपनिषद १५ में अघासुर को महाव्याधि कहा गया है।

अघोर लिंग २.१४.८ (शिव नाम, धर्म आदि अष्ट अंग युक्त), २.१४.१३ (शरीर में चक्षु की भांति), २.१४.१८ (पादेन्द्रिय रूप) लि २.१४.२३ (रूप तन्मात्रात्मक, जातवेदस जनक), २.२६ (अघोर शिव अर्चन विधि), २.४९ (० शिव माहात्म्य, स्वरूप), स्कन्द ३.३.१२.१० (० शिव से दक्षिण दिशा की रक्षा की प्रार्थना), ४.२.९७.८६ (अघोरेश लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य : वाजिमेध फल की प्राप्ति), ७.१.९२ (० रुद्र माहात्म्य) वायु २३.२७ (ब्रह्मा द्वारा घोर/अघोर शिव का ध्यान), २३.७६ (कल्प विशेष में शिव का घोर/अघोर रूप कथन), शिव ३.१.२२ (शिव कल्प में ब्रह्मा के समक्ष ० शिव का प्राकट्य) अग्नि ३२१ (० अस्त्र जप से शान्ति वर्णन), ३२४ (कल्पाघोर रुद्र शान्ति वर्णन) अग ३२३.३८ (अघोरास्त्र मन्त्र कथन), नारद १.९१.७० (० शिव की ८ कलाओं का कथन), १.९१.१७९ (० शिव मन्त्र विधान), शिव ६.३.२८ (० शिव की ८ कलाओं की मकार में स्थिति), ६.६.७३ (० की ८ कलाओं का हृदय, कंठ आदि में न्यास),

६.११.१७ (अघोर : शिव का हृदय रूप), ६.१४.४२ (अहंकार, चक्षु, पाद, रूप व पावक की ० ब्रह्म द्वारा व्याप्ति), ६.१६.५९ (० शिव से विद्या कला की उत्पत्ति), ७.२.३.८ (शिव की धर्म आदि अष्ट अंगों से युक्त मूर्ति की महिमा, अघोर मूर्ति में चरण, चक्षु आदि की स्थिति)

टिप्पणी : शुक्ल यजुर्वेद १६.२ में रुद्र के अघोर तनु का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त अथर्ववेद ७.६२.१, १४.२.१२ तथा १४.२.१७ में अघोर चक्षु होने का उल्लेख है। बृहज्जाबालोपनिषद १.५ में अघोर से क्रमशः वह्नि, विद्या, रक्तवर्णा सुरभि व गोमय भस्म उत्पन्न होने का उल्लेख है। नारद पूर्वतापिन्योपनिषद १.३ में अघोर को ओंकार की अकारादि मात्राओं में मकार कहा गया है।

अंक भविष्य २.८.३७ (देवताओं के लिए अंकों का निर्धारण) ; दृ. मृगांक, शशांक

टिप्पणी : अथर्ववेद १.१२.२ के आधार पर प्रतीत होता है कि शरीर के अंगों में ज्योति उत्पन्न होने पर किसी प्रकार के अंक/चिन्ह/लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऋग्वेद ४.४०.४ के अनुसार दधि बिखेरने वाले अश्व के पथ में अंक बिखरते हैं? ऋग्वेद १.१६२.१३ में भी अंकों को अश्व का भूषण कहा गया है। अथर्ववेद ७.१२०.१ में अलक्ष्मी नाश के लिए अयोमय अंक का उपयोग किया गया है। ऋग्वेद ३.४५.४ में इन्द्र से कहा गया है कि वह अंकी की भांति वृक्ष के पक्व फल को धुनकर वसु ग्रहण करे।

अंकपाद स्कन्द ५.१.२७ (उज्जायिनी में कृष्ण के चरण चिन्हों का स्थान, कृष्ण द्वारा सान्दीपनि-पुत्र की यम से प्राप्ति कथा)

अंकुर योगवासिष्ठ ४.३३.३६ (अहंकार अंकुर, मन हल, आत्मा क्षेत्र), कथासरित् ८.४.७५(चक्रवाल राजा द्वारा अंकुरी राजा का वध), लक्ष्मी नारायण १.५२.९६ (अंकुर न उत्पन्न करने वाले धान्य की अज संज्ञा का उल्लेख)

अंकुश ब्रह्माण्ड ३.४.१५.२० (विश्वकर्मा द्वारा ललिता को भेंट), योगवासिष्ठ १.२१.१० (मनुष्य रूपी हाथी को अज्ञान रूपी निद्रा से जगाने के लिए शम रूपी अंकुश) दृ. आयुध

टिप्पणी : ऋग्वेद ८.१७.१० में इन्द्र के अंकुश के दीर्घ होने व वसु प्रदान करने की कामना की गई है। ऋग्वेद १०.१३४.६ में दीर्घ अंकुश से मन को वश में करने वाली शक्ति प्राप्त करने का उल्लेख है। ऋग्वेद १०.४४.९ में सुकृत रूपी अंकुश से हाथियों आदि को पीड़ित करने का उल्लेख है। अथर्ववेद ६.८२.३ में बृहद् हिरण्यय अंकुश से उत्पन्न जाया को प्राप्त करने का उल्लेख है। मुक्तिकोपनिषद २.४४ में चित्त रूपी हाथी पर जय प्राप्त करने के लिए अध्यात्म विद्या, साधु संगति, वासना त्याग आदि युक्तियों को अंकुश कहा गया है।

अंकूर स्कन्द ५.३.१६८ (० लिंग तीर्थ माहात्म्य, अंकूर नामक कुम्भ-पुत्र व कुम्भकर्ण-पौत्र द्वारा तप करके अमरता वर प्राप्ति)

अंकोल पद्म १.२८.३० (वृक्ष, कुल वृद्धिकारक)

अंग भागवत ४.१३.१७ (उल्मुक व पुष्करिणी पुत्र, सुनीथा-पति, पुत्रेष्टि द्वारा वेन पुत्र प्राप्ति), पद्म २.३० (अत्रि-पुत्र, सुनीथा से परिणय, वेन पुत्र) मत्स्य ४८.७७ (सुदेष्णा व बलि का क्षेत्रज पुत्र), वा.रामायण १.९ (देश, रोमपाद राजा, ऋष्यश्रृंग मुनि के आगमन से वृष्टि), १.१३.१४ (देश, काम द्वारा शरीर त्याग का स्थान), वायु ४८.१५ (० द्वीप वर्णन), ९९.१०० (बलि-पुत्र, वंश वर्णन), विष्णु धर्मोत्तर २.१६५ (० विद्या), ३.२४ (अभिनय में अंगों की स्थिति) लक्ष्मी नारायण २.१०९.९९ (शिव द्वारा अंग -शिक्षांग देश के राजा श्रृंगशेक का वध), २.११०.७३ (शिव का अंग -शिक्षांग देश का राजा बनना), २.१६७.४२ (अंगराज का विषय ऋषि के साथ यज्ञ में आने का उल्लेख), २.१९१.८३ (अनंग/कर्दम -पुत्र, सुनीथा -पिता, वेन प्रसंग), २.१९२ (अंगराज : रंगरजा-पति, कृष्ण का स्वागत करना) विष्णु १.१३.६ (कुरु व आग्नेयी -पुत्र, सुनीथा-पति), ब्रह्माण्ड १.२.३६.१०८ (ऊरु व आग्नेयी -पुत्र), वायु ६२.९२ (वही), मत्स्य ४.४४ (वही), १०.३ (स्वायम्भुव मनु-वंशज) देवीभाग. १०.९.१ (चाक्षुष मनु-पिता), स्कन्द ४.२.८८.६३ (सती के रथ में शिक्षा, कल्प आदि अंगों द्वारा रक्षकों का कार्य), गर्ग ७.१५.१ (० देश पर प्रद्युम्न की विजय) कथासरित् १२.४.१०९ (कमलाकर द्वारा अंगराज को परास्त करना), १२.१९.४ (० देश के राजा यशःकेतु की कथा), वर ३६.५, कस १२.१५.३, १२.१९.१४० दृ. वंश ध्रुव, अनंग, कामांगी, चक्रांका, चित्रांग, न्यास, वज्रांग, वरांगी, वारांगना, शरीर, शुभांगी, शुभ्रांग, समंग हर्यंग, हेमांग

टिप्पणी : ऋग्वेद १०.१३८ सूक्त का ऋषि ऊरु - पुत्र अंग है। सामान्य जीवन में पति और पत्नी के अंग से अंग मिला कर एक होने की पराकाष्ठा ऋग्वेद १०.१०९.५ में दिखाई गई है जहां ब्रह्मचारी देवताओं के साथ एक -अंग होता है। अथर्ववेद के बहुत से मन्त्रों में अंगों से व्याधियों को निकालने का उल्लेख है। समाधि तथा मृत्यु के पूर्व अंगों से प्राणों का प्रत्याहार करना होता है। अथर्ववेद २.३४.५, ४.५.४, १८.२.२४ इत्यादि में इस तथ्य का उल्लेख है। कहा गया है कि ऐसा न हो कि प्रत्याहार में किसी अंग से प्राणों का कर्षण छूट जाए और प्रेत पूर्णांग होकर यात्रा न कर सके। अथर्ववेद १०.७ सूक्त स्कम्भ सूक्त है जो समाधि के व्युत्थान की अवस्था प्रतीत होती है। इस

सूक्त में प्रश्न उठाया गया है कि शरीर रूपी ज्योति स्तम्भ के किस अंग में तप, श्रद्धा, सत्य आदि के स्थान हैं। अथर्ववेद ११.९.६ के अनुसार जैसे माता के गर्भ में बालक के अंग होते हैं। ऐसे ही यज्ञ के अंगों का निर्माण उच्छिष्ट (शेष) शक्ति से होता है। अथर्ववेद १.१२.२ यह संकेत करता है कि अंगों में दिव्य ज्योति आने पर कोई अंक/लक्षण विकसित होता है।

अंगद वा.रामायण ४.६५ (गमन शक्ति कथन), ६.१७.३८ (विभीषण शरणागति विषयक विचार व्यक्त करना), ६.२४.१४ (नील के साथ वानर सेना के उरोदेश में स्थिति), रा ६.२६.१७ (सारण द्वारा रावण को परिचय), ६.३७.२७ (लंका के दक्षिण द्वार पर महापार्श्व व महोदर से युद्ध), ६.६९.८१ (नरान्तक का वध), ६.७६ (कम्पन व प्रजंघ का वध), ६.९८ (महापार्श्व का वध), ७.१०२ (लक्ष्मण-पुत्र, अंगदीया पुरी राजा), पद्म ६.२४३.१३ (राम को ताम्बूल व कर्पूर भेंट), ६.२१६ (देवदास व उत्तमा -पुत्र), स्कन्द ३.१.४९ (रामेश्वर स्तुति), ब्रह्माण्ड २.३.७.२१९ (वालि व तारा -पुत्र, ध्रुव-पिता), ३.४.३५.९२ (अंगदा : चन्द्रमा की १६ कलाओं में से एक), भागवत ९.१०.४४ (राम के वन से अयोध्या आगमन पर ० द्वारा राम की खड्ग का वहन) ९.११.१२ (लक्ष्मण-पुत्र), वायु ९६.२४७ (पुरु व बृहती -पुत्र), भविष्य ३.३.३२.६¢ (महीराज-सेनानी, रुद्रवर्मा से युद्ध), पद्म ५.५० (अश्वमेध अश्वानुगामी शत्रुघ्न का दूत बनकर सुरथ राजा के पास जाना) दृ. कनकांगदा, चन्द्रांगद, चित्रांगद, धर्मांगद, बर्हिषांगद, वज्रांगद, रुक्मांगद, स्वर्णांगद, हेमांगद

टिप्पणी : वैदिक साहित्य में अंगद जैसा कोई शब्द नहीं है। व्याकरण के नियमों के अनुसार अगद शब्द से अंगद शब्द की व्युत्पत्ति होती है। गद का साधारण अर्थ रोग होता है और रोग से मुक्ति पाना अगद कहलाता है। योग की भाषा में गद का अर्थ होगा गद्गद होना, गुद्गुदी उत्पन्न होना। इस गुद्गुदी से मुक्त होना अगद प्राप्त करना है। अगद शब्द अथर्ववेद तथा पैप्पलाद संहिता के कई मन्त्रों में प्रयुक्त हुआ है जहां अग्नि, सोम, ओषधियों आदि से अगद प्रदान करने की प्रार्थना की गई है, लेकिन यह अगद किस प्रकार प्राप्त होगा, यह प्रक्रिया अंगद के चरित्र के माध्यम से पौराणिक साहित्य में ही उद्घाटित की गई है। अंगद वालि का पुत्र है। वाल का अर्थ है शरीर में सूक्ष्म बालों की तरह फैली हुई ऊर्जा जो गुद्गुदी उत्पन्न करती है। यदि इस शक्ति का सम्यक् उपयोग न किया जाए तो यह आसुरी शक्ति बन जाती है (आश्वलायन श्रौत सूत्र ३.१०.३१), रोग बन जाती है, उन्मत्तता उत्पन्न करती है (पैप्पलाद संहिता ५.१७.६)। अगद प्राप्त करने के लिए इस वाल शक्ति का संयोग तारा से, विज्ञानमय कोश की शक्ति से करना होता है। तब अंगद का जन्म होता है। बाजूबन्द आदि आभूषण को भी अंगद कहा जाता है। जो शक्ति पहले बिखरी पडी थी, अब वह आभूषण बन गई है। इसी कारण से वाचस्पत्यम् शब्दकोश आदि में अंगद शब्द की निरुक्ति अंगं दायते इति, अर्थात अंग का शोधन करने वाले के रूप में की गई है। पद्म पुराण में अंगद द्वारा राम को ताम्बूल व कर्पूर भेंट करना भी इसी लक्ष्य का द्योतक हैं। जब अंगों से कर्पूर की सुगन्ध उठने लगे तो वह अंगद का कार्य समझना चाहिए।

रामायण में सुग्रीव द्वारा अंगद को दक्षिणापथ में सीता की खोज का कार्य सौंपा जाता है। कात्यायन श्रौत सूत्र १२.२.१८ के अनुसार अगद प्राप्त करना, दक्षता प्राप्त करना, यह दक्षिणापथ का कार्य है। यह असुरों से संघर्ष है। जब असुरों से संघर्ष समाप्त हो जाएगा, तब अंगद का क्या होगा? रामायण ७.१०२ में वर्णन आता है कि लक्ष्मण-पुत्र अंगद को कारुपथ में स्थित अंगदीया पुरी का राजा बनाया गया। यह कारुपथ उत्तर का मार्ग है (कारु स्तुति को कहते हैं)। ऐसा अनुमान है कि संहिताओं और श्रौत सूत्रों में जहां सोम से अगद प्रदान करने की प्रार्थना की गई है, वह कारुपथ का प्रतिनिधित्व करता होगा।

लोक में प्रचलित कथा के अनुसार रावण की सभा में अंगद द्वारा स्थापित पद को विचलित न कर सकने के तथ्य को ब्रह्माण्ड पुराण में ध्रुव-पिता अंगद के उल्लेख से समझा जा सकता है। अगद स्थिति स्वयं ही ध्रुवता की स्थिति है। अंगद द्वारा रावण-सेनानियों प्रजंघ, महोदर आदि के वध के संदर्भ में शरीर के विभिन्न अंगों में उत्पन्न होने वाले रोगों के वर्णन के रूप में अथर्ववेद का सूक्त ९.१३ उल्लेखनीय है।

अंगार स्कन्द ४.२.८४.७४ (० तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य : निष्पापता प्राप्ति), मत्स्य २२.३५ (अंगार-वाहिका : नदी, श्राद्ध हेतु प्रशस्त तीर्थ), वायु ४३.२६ (अंगार-वाहिनी :भद्राश्व वर्ष की एक नदी), ब्रह्माण्ड ४.३३.६१ (अंगार पातन : एक नरक का नाम) दृ. लोहांगार, शिलांगारखानि

टिप्पणी : ऋग्वेद १०.३४.९ तथा शतपथ ५.३.१.१० में अक्षों/पांसों की पराकाष्ठा को दिव्य अंगारों की संज्ञा दी गई है जो शीतल होते हुए भी हृदय को जला देते हैं। जैमिनीय ब्राह्मण १.४५ तथा शतपथ १४.९.१.१२, गोपथ १.३.१३ में चार दिशाओं की अग्नियों में आहुति पडने से उत्पन्न अंगारों, अर्चि, धूम इत्यादि का वर्णन किया गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.२.८.१० तथा काठकसंहिता ३१.७ में अंगार द्वारा अप के पतन पर एकत, द्वित व त्रित के जन्म का उल्लेख है। जैमिनीय ब्राह्मण ३.२६३ तथा ऐतरेय ब्राह्मण ३.३४ में अंगारों से अंगिरसों व बृहस्पति के जन्म का उल्लेख है। अभिधान राजेन्द्र कोश के अनुसार राग -द्वेष वाला आहार लेने पर अंगारों के साथ धूम भी उत्पन्न होता है। काठक संहिता ६.७ के अनुसार स्थूल अंगार ऋतु और लघु अंगार अर्ध मासों के रूप हैं। छान्दोग्य उपनिषद २.१२.१ में साम गान में हिंकार, प्रस्ताव आदि में प्रतिहार कर्म को अंगारों की उपमा दी गई है।

अंगारक नारद १.६९.७२ (० पूजा विधि, ० न्यास व व्यूह) भविष्य ४.३१ (शिव से उत्पत्ति, निरुक्ति, व्रत, अंग न्यास), स्कन्द ४.२.९७.६७ (० तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य), ५.१.३७ (शिव के ललाट स्वेद से उत्पत्ति, ० लिंग माहात्म्य), स्क ५.२.४३ (० लिंग माहात्म्य, शिव गात्र से उत्पत्ति, ० द्वारा महाकाल वन में लिंग पूजा), ५.३.११५ (० तीर्थ माहात्म्य, ० द्वारा तप से ग्रह पद प्राप्ति), ७.१.४५ (० लिंग माहात्म्य, भूमि पर पतित शिव क्रोध से अंगारक की उत्पत्ति, ग्रहत्व प्राप्ति), वा.रामायण ६.१०२.३५ (राम -रावण युद्ध के समय ० ग्रह की स्थिति कथन) पद्म १.२४ (ग्रह, वीरभद्र का प्रतिष्ठित रूप, ० पूजा -दर्शन से विरोचन को रूप प्राप्ति), १.८१ (शिव से उत्पत्ति, शुक्र का रूप, पूजा विधि), मत्स्य ७२ (० व्रत विधि, विरोचन द्वारा रूप प्राप्ति, वीर भद्र की उत्पत्ति, अंगारक बनना), ब्रह्माण्ड १.२.१०.७८ (शर्व व विकेशी -पुत्र), १.२.२४.९१ (विकेशी व अग्नि -पुत्र), ब्रड २.३.३.७० (सुरभि व कश्यप -पुत्र, एकादश रुद्रों में से एक), कथासरित् २.३.३७ (असुर, अंगारकावती -पिता), कस १६.२.२७ (अंगारका -पिता, शूकर रूप, राजा चण्डमहासेन द्वारा वध), वा २७.५१ लन १.५७२ दृ. कुज, मंगल, रक्षांगारक

टिप्पणी : जैमिनीय ब्राह्मण १.४५ तथा शतपथ १४.९.१.१२ में चार दिशाओं? में चार प्रकार की अग्नियों में आहुति से उत्पन्न अंगारों व अंगारक ग्रह की उत्पत्ति में साम्य प्रतीत होता है। अंगों के अंगार बनने पर उत्पन्न रस से अंगिरस की उत्पत्ति (जैमिनीय ब्राह्मण ३.२६३) को पुराणों की रूप प्राप्ति कह सकते हैं।

अंगारका स्कन्द ३.१.३९ (राक्षसी, श्वेत मुनि के तप में विघ्न, मुक्त होकर घृताची बनना), वा.रामायण ४.४१.२६ (दक्षिण समुद्र में वास, छाया द्वारा प्राणियों को ग्रहण करके खाना), कथासरित् १६.२.२८ (अंगारक राक्षस -पुत्री, राजा चण्डमहासेन द्वारा प्राप्ति)

टिप्पणी : जैमिनीय ब्राह्मण १.४५ में अशनि को अंगार कहा गया है। अशनि अर्थात शनि का विलोम। शनि छाया ग्रह है। शनि का कार्य मृत्यु समय में आत्मा के तैजस सत्व मात्र को ग्रहण करके प्रयाण कराना है। यदि अंगों में पहले ही अंगार बन चुके हों तो शनि अपना कार्य नहीं कर पाएगा। अंगों की अविकसित स्थिति अंगारका प्रतीत होती है। अथवा अंगों के दूषित रस का भक्षण करने वाली अंगारका राक्षसी हो सकती है।

अंगारपर्ण पद्म ६.६.९० (जालन्धर - सेनानी, अश्विनौ से युद्ध)

अंगारप्रभ कथासरित् ८.१.१७ (चन्द्रप्रभ पिता)

अंगारसेतु हरिवंश १.३२.८७ (सेतु - पुत्र, गान्धार -पिता, ययाति के वंशज, मान्धाता से युद्ध व मृत्यु)

अंगिरस ब्रह्म २.७४ (अंगिरा व आत्रेयी - पुत्र, अंगिरा द्वारा पत्नी को परुष वचन भाषण, पत्नी का परुष्णी नदी बनना), २.८५ (आदित्यों से प्राप्त भूमि के दोष देखकर आदित्यों से कपिला गौ के बदले भूमि का विनिमय करना), ब्र २.८८ (ब्रह्मा से उत्पन्न १० अंगिरस गण : माता शाप से तप में सिद्धि न मिलने पर अगस्त्य परामर्श से गंगा पर तप), विष्णु धर्मोत्तर १.५६.१२ (अंगिरसों में आयु नामक अंगिरस की श्रेष्ठता), १.११२ (अंगिरा व सुरूपा -पुत्र, १० नाम, वंश वर्णन), मत्स्य १३३.६२ (अंगिरा -पुत्र बृहस्पति का नाम : दण्ड हाथ में लेकर रुद्र के रथ चक्र की रक्षा), भागवत १०.३४.१३ (सुदर्शन विद्याधर द्वारा उपहास पर सर्प होने का शाप), वायु १०.१०१ (० की ब्रह्मा के शिर से उत्पत्ति), ६५.९७ (अग्नि -पुत्र, अथर्वण उपनाम, सुरूपा, स्वराट व पथ्या भार्याओं से वंश वर्णन), नारद १.११९.५५ (० दशमी पूजा : १० अंगिरस देव नाम), ब्रह्माण्ड १.२.९.५५ (स्मृति -पति), स्कन्द ४.१.१७.३४ (अंगिरा -पुत्र ० द्वारा शिव स्तुति से जीव संज्ञा धारण करना), ५.३.११२ (अंगिरस तीर्थ : अंगिरा द्वारा तप से पुत्र प्राप्ति का स्थान), लक्ष्मी नारायण १.२७५.३८ (० दशमी पूजा : १० अंगिरस देव नाम), विष्णु धर्मोत्तर ३.१७७ (१० अंगिरस नाम, ० व्रत), दृ. आंगिरस

टिप्पणी : जैमिनीय ब्राह्मण ३.२६३ इत्यादि के अनुसार अंगिरसों का जन्म अंगारों से हुआ है। यह निष्क्रिय अंगों में, अग्नि के प्रवेश से उत्पन्न रस है। शतपथ ब्राह्मण १४.४.१.२१ के अनुसार प्राण अंगों का रस बन सकते हैं। इन सब प्राणों की प्रवृत्ति दिव्य भक्ति रस का आस्वादन करने की है। ब्राह्मण ग्रन्थों में सार्वत्रिक उल्लेख है (शतपथ ब्राह्मण ३.५.१.१९ इत्यादि) कि अंगिरसों और आदित्यों में स्वर्ग जाने के लिए प्रतिस्पर्धा हुई। अंगिरसों ने दो दिन के यज्ञ द्वारा स्वर्ग पहुंचने का संकल्प किया, लेकिन आदित्य तो पहले ही दिन स्वर्ग पहुंच गए। इसके पश्चात आदित्यों द्वारा अंगिरसों को पृथिवी दक्षिणा में देना, पृथिवी का सिंही रूप देखकर अंगिरसों द्वारा पृथिवी को वापस करके श्वेत अश्व रूपी सूर्य को प्राप्त करने का उल्लेख आता है (ऐतरेय ब्राह्मण ६.३५ इत्यादि)। पुराणों के अनुसार अंगिरसों ने पृथिवी के बदले कपिला गौ प्राप्त की थी। इस कथा में आदित्य एकांगी साधना का रूप है; वह अग्निष्टोम यज्ञ हैं (जैमिनीय ब्राह्मण २.१२१), वह गौ का रूप हैं (ऐतरेय ब्राह्मण ४.१७), वह छलांग

लगाकर (ऐतरेय ब्राह्मण ४.१७) अभिप्लव षडह के द्वारा सारी साधना पूरी करके स्वर्ग लोक पहुंच जाते हैं, वह एक दिन के यज्ञ द्वारा ही साधना पूरी कर लेते हैं। एक दिन आत्मा के अनुदिश साधना का प्रतीक है (जैमिनीय ब्राह्मण २.२३५)। दूसरी ओर अंगिरस सर्वांगीण साधना का रूप हैं, वह प्रत्येक प्राण को साथ लेकर चलते हैं, वह उक्थ यज्ञ हैं, वह पृष्ठ्य षडह यज्ञ द्वारा धीरे धीरे आगे बढते हैं। वह दो दिन के यज्ञ द्वारा साधना पूरी करना चाहते हैं। दूसरा दिन प्रजा के अनुदिश साधना का प्रतीक है। आदित्य साधना का उत्तर पक्ष हैं तो अंगिरस दक्षिण पक्ष (जैमिनीय ब्राह्मण २.३६६)। पुराणों में ५ अंगिरसों द्वारा उत्तर की ओर व ५ द्वारा दक्षिण की ओर साधना का उल्लेख है। गोपथ ब्राह्मण १.२.१८ के अनुसार पृथिवी आदित्य का पद है। पुराणों में अंगिरसों को अंगिरा के पुत्र कहा गया है। इसका स्पष्टीकरण मुण्डकोपनिषद १.१.२ से मिलता है। ब्रह्मा ने ब्रह्मविद्या का उद्घाटन सर्वप्रथम अथर्वा को किया, अथर्वा ने अंगिरा को, अंगिरा ने भारद्वाज को कहा और भारद्वाज ने अंगिरस को। इसके पश्चात अंगिरस महाशाल को परा और अपरा विद्याओं का कथन करते हैं। भरद्वाज को मन का प्रतीक माना जाता है। ब्रह्मविद्या का यह कथन -उपकथन समाधि से व्युत्थान पर चेतना की ५ क्रमिक अवस्थाओं अस्ति, भाति, प्रिय, नाम व रूप के लिए है। मुण्डकोपनिषद ३.२.८ में अंगिरस? द्वारा नाम व रूप त्यागने का उपदेश है। गोपथ ब्राह्मण १.३.१९ में भी उल्लेख है कि जो केवल अपनी आत्मा में लीन रहता है, वह अथर्वा है। जो स्वयं व दूसरों के नाम का परित्याग कर देता है (अर्थात अपनी चेतना को दूसरों की चेतना में लीन कर देता है), वह अंगिरस है। गोपथ ब्राह्मण १.२.२४ के अनुसार ओम अथर्वण है तो जनत् प्रवृत्ति अंगिरस है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में अंगिरसों का उल्लेख दो प्रकार से आता है -अथर्वांगिरस और भृगु -अंगिरस। भृगु को यदि भर्जन करने वाली, भूनने वाली अग्नि माना जाए तो पुराणों में अंगिरसों के अग्नि -पुत्र होने के उल्लेख की पुष्टि हो जाती है। गोपथ ब्राह्मण १.५.२४ में जहां आदित्य को सामवेद का देवता कहा गया है, वहां भृगु -अंगिरस (अथर्व?) का अधिपति चन्द्रमा और विद्युत को कहा गया है यही यज्ञ के ब्रह्मा नामक ऋत्विज हैं। शतपथ ब्राह्मण ४.१.५.१ में च्यवन ऋषि की कथा के संदर्भ में च्यवन को भार्गव और आंगिरस दोनों कहा गया है। ऋग्वेद १०.६२ तथा अथर्ववेद २.१२.४ सूक्तों के देवता अंगिरस पितरगण हैं। पुराणों में जहां अंगिरसों को सुरूपा -पति कहा गया है, ऋग्वेद में इनका विरूपाः विशेषण आया है (३.५.३.७, १०.६२.५)। विरूप शब्द का अर्थ अंतर्मुखी होता है (ऋग्वेद १०.४७.६)। उषा के लिए अंगिरस्तमा विशेषण का प्रयोग हुआ है (ऋग्वेद ७.७५.१) और साथ ही उसे पथ्या भी कहा गया है। पुराणों में पथ्या अंगिरसों की भार्याओं में से एक है। इन्द्र अंगिरसों की सहायता से अंगिरस्तम बनता है (ऋग्वेद १.१००.४) और अंगिरसों के लिए गायों के निवासस्थान गोत्र को खोल देता है (ऋग्वेद १.५१.३)। अंगिरस पितरों द्वारा यम का वर्धन होता है (ऋग्वेद १०.१४.३)। अंगिरस तप से गौ की सृष्टि करते हैं (ऋग्वेद १०.१६९.२)। पुराणों में अंगिरसों के आत्मा, आयु, मन, दक्ष, मद, प्राण, हविष्मान, गतीष्ट, ऋत और सत्य जो १० नाम आए हैं वह वैदिक मन्त्रों में उनके कार्यों के रूप में प्रकट हुए हैं। ऋग्वेद ६.७३.१ में बृहस्पति को आंगिरस अर्थात अंगिरसों का पुत्र कहा गया है। अश्विनौ के लिए अंगिरस्वन्त होकर स्तोता के आह्वान पर आने का उल्लेख है (ऋग्वेद ८.३५.१४)। मरुद्गण सामों के द्वारा अंगिरसों की भांति विश्वरूप हो जाते हैं (ऋग्वेद १०.७८.५)। डा० फतहसिंह के अनुसार किसी शब्द के अन्त में स जोड देने पर वेद में वह मानुषी स्तर का प्रतीक बन जाता है।

अंगिरा ब्रह्म २.७४ (अग्नि से उत्पत्ति, आत्रेयी -पति, अंगिरस गण -पिता, पत्नी को परुष वचन बोलने के कारण पत्नी का परुष्णी नदी बनना), भविष्य ३.४.२१.१४ (० का कलियुग में कण्व -पौत्रों के रूप में जन्म) ४.९३ (शुभा -पति, उतथ्य से श्रेष्ठता विषयक विवाद, सूर्य व अग्नि के कार्यों का प्रतिस्थापन, अग्नि का बृहस्पति रूप में पुत्र बनना), वामन ५२.३१ (सप्तर्षियों की ओर से हिमालय को शिव -पार्वती विवाह का प्रस्ताव), स्कन्द ३.१.४९ (रामेश्वर स्तुति), ४.१.१८.२० (० द्वारा हरिकेश वन में स्थापित अंगिरेश्वर लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य), ४.१.१९.१११ (० द्वारा ध्रुव को परम पद प्राप्ति हेतु कमलकान्त की आराधना करने का निर्देश), ६.१८० (ब्रह्मा के यज्ञ में सुब्रह्मण्य), स्क ७.१.२१.५ (दक्ष से २ कन्याओं की प्राप्ति), स्क ७.१.२३ (चन्द्रमा के यज्ञ में उन्नेता), पद्म १.३४ (ब्रह्मा के यज्ञ में उद्गाता), ६.५७ (मान्धाता को पद्मा एकादशी व्रत कथन), विष्णु धर्मोत्तर १.११२ (सुरूपा -पति, १० अंगिरसों के पिता) मत्स्य ३.६ (अंगिरा सहित सप्तर्षियों की ब्रह्मा से उत्पत्ति का क्रम), म १५.१६ (हविष्मान नामक पितरों के पिता), म १२६.१० (श्रावण -भाद्रपद मास में सूर्य रथ पर स्थिति), १४५.१०५ (अंगिरा गोत्रीय, मन्त्र कर्ता ३३ ऋषियों के नाम), १६७.४३ (मार्कण्डेय - पिता), म १९६ (ब्रह्मा वीर्य के अग्नि में होम से उत्पत्ति, वंश व गोत्र वर्णन), भागवत ३.२४.२२ (कर्दम -पुत्री श्रद्धा से परिणय), ४.१.३४ (श्रद्धा से बृहस्पति, उतथ्य पुत्रों व सिनीवाली, कुहू, राका व अनुमति कन्याओं की प्राप्ति), ६.६.१९ (दक्ष -पुत्रियों स्वधा व सती से विवाह, स्वधा से पितरों की व सती से अथर्वांगिरस वेद की पुत्रों के रूप में उत्पत्ति), ६.१४+ (राजा चित्रकेतु को पुत्रवान होने का आशीर्वाद, पुत्र की मृत्यु पर राजा को वैराग्य का उपदेश), ९.२.२६ (संवर्त ऋषि -पिता), भा ९.६.२ (रथीतर की भार्या से पुत्रों की उत्पत्ति), वायु ६५.९७ (अग्नि -पुत्र, अथर्वण

उपनाम : सुरूपा, स्वराट् व पथ्या भार्याओं से वंश वर्णन), वा २९.९ (अथर्वण अग्नि -पुत्र), शिव ३.४.१७ (चतुर्थ द्वापर में व्यास), शि ७.२.४.५० (गंगाधर शिव का रूप), ब्रव १.२२.८ (निरुक्ति), २.५१.१६ (सुयज्ञ नृप द्वारा अतिथि द्विज के तिरस्कार पर ० की प्रतिक्रिया), ४.१८ (सप्तर्षि पत्नियों पर आसक्ति के कारण अग्नि को सर्वभक्षी होने का शाप, सप्तर्षि पत्नियों को द्वापर में याज्ञिक द्विज पत्नियां बनने का शाप, पुनः वरदान), वामन २.१० (चन्द्रा -पति, दक्ष द्वारा यज्ञ में आमंत्रण), मार्कण्डेय १००.३१ (भौत्य मन्वन्तर में सप्तर्षियों में से एक), हरिवंश २.१२२.३५ (कृष्ण से युद्ध, पराजय), ब्रह्माण्ड १.१.५.७५ (ब्रह्मा के शिर से प्राकट्य), २.३.१.४० (ब्रह्मा द्वारा अंगारों पर शुक्र होम से उत्पत्ति, अग्नि -पुत्र बनना), लिंग १.२४.२३ (चतुर्थ द्वापर में व्यास), कूर्म २.११.१२८ (भारद्वाज को ज्ञान दान), वायु ६५.९७ (० वंश वर्णन), विष्णु १.११.४५ (ध्रुव को परमपद प्राप्ति का उपाय कथन), लक्ष्मी नारायण १.२५७.८५ (० द्वारा मान्धाता राजा को राज्य में वृष्टि हेतु एकादशी व्रत का परामर्श), १.५४०.८१ (० द्वारा अन्य ऋषियों को राजा वृषादर्भि से प्रतिग्रह रूप में स्वर्ण पूरित उदुम्बर स्वीकार न करने के लिए प्रेरित करना), कथासरित् १४.१.२२ (मुनि, अश्रुता -पति, ० की सावित्री पर आसक्ति के कारण पत्नी द्वारा आत्महत्या की चेष्टा)

टिप्पणी : पुराणों में अंगिरा को अंगिरसों के पिता कहा गया है। इसकी पुष्टि वैदिक साहित्य में भी होती है। जैसा कि अंगिरस की टिप्पणी में कहा जा चुका है, मुण्डकोपनिषद १.१.२ के अनुसार ब्रह्मा ने ब्रह्मविद्या का उद्घाटन सर्वप्रथम अथर्वा को, अथर्वा ने अंगिरा को, अंगिरा ने भारद्वाज को और भारद्वाज ने अंगिरस को किया। यह समाधि से व्युत्थान की क्रमिक अवस्था है। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३८२ के अनुसार सर्प अंगिरामुख होकर मधु का पान करते हैं, जबकि अंगिरस अथर्वमुख होकर घृत? का पान करते हैं। जैमिनीय ब्राह्मण २.११६ के आधार पर ऐसा कहा जा सकता है कि जब अंगिरा शब्द का प्रयोग बहुवचन में हो तो वह अंगिरसों का सूचक है।

पुराणों में आत्रेयी को अंगिरा - पत्नी कहा गया है। जैमिनीय ब्राह्मण १.८१ के अनुसार अंगिराओं के लिए सोम तीन भागों में बंट जाता है। इससे ऊपर तुरीयावस्था में सोम की प्राप्ति बृहस्पति को होती है। इस प्रकार पुराणों की आत्रेयी को जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति का एकीकृत रूप कह सकते हैं (अत्रि की व्युत्पत्ति अत्रि से तथा अद् -भक्षणे धातु से की जाती है, अर्थात तीनों अवस्थाओं का भक्षण करके एक रूप हो जाना)।

शतपथ ब्राह्मण ६.५.२.५, ६.५.३.१०, ६.५.४.१७ आदि में वसुओं, रुद्रों, आदित्यों और विश्वेदेवों द्वारा अंगिरस्वत होकर उखा के निर्माण का उल्लेख आता है। वहीं उल्लेख है कि प्राण ही अंगिरा हैं। शुक्ल यजुर्वेद १२.५३ तथा २७.४५ में यज्ञ में ध्रुवा पात्र के अंगिरस्वत स्थित होने का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण १०.५.१.२ में इस कथन की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि आत्मा के तीन रूप हैं -स्त्री, पुमान और नपुंसक। तीन ही रूप वाक् के हैं। जब ध्रुवा के अंगिरस्वत स्थित होने की कामना की जाती है तो यह सर्वा, अर्थात सर्वांगीण प्रकृति के स्थित होने की कामना की जाती है (तुलनीय : पुराणों में अंगिरा द्वारा ध्रुव को उपदेश)। इसके विपरीत जब कहते हैं कि "न अंगिरस्वत् ध्रुवं सीद इति" तो यह पुरुष रूप, आदित्य का रूप है, यह मृत्यु रूप है। गोपथ ब्राह्मण २.६.१४ से ऐसा प्रतीत होता है कि अंगिरा होकर राधा नामक आनंद की प्राप्ति की जाती है।

पुराणों में श्रद्धा को अंगिरा - पत्नी कहा गया है। लेकिन गोपथ ब्राह्मण १.५.२४ में श्रद्धा और वैश्वानर से अंगिरा के जन्म का उल्लेख है। ऋग्वेद १.१.६ के अनुसार अग्नि स्तोता के जिस अंग को भद्र बनाती है वह सत्य अंगिरः हो जाता है। ऋग्वेद में कई स्थानों पर अग्नि को अंगिरा नाम से संबोधित किया गया है (उदाहरण के लिए १.३१.१)। दूसरी ओर अग्नि के लिए अंगिरस्तम, अंगिरों में सर्वोच्च, विशेषण भी आया है। (ऋग्वेद ८.४३.३७)। इन्द्र के लिए भी कहा गया है कि वह अंगिराओं के द्वारा अंगिरस्तम हो गया (ऋग्वेद १.१००.४)। उषा के लिए अंगिरस्तमा विशेषण प्रयुक्त हुआ है (ऋग्वेद ७.७५.१)।

अंगुल पद्म २.८.१४ (गर्भ का २५ अंगुल विकास होने पर माता को प्रसव पीडा होने का उल्लेख), मत्स्य १४५ (विभिन्न युगों में अंगुल अनुसार शरीर परिमाण), ब्रह्माण्ड १.२.७.९६ (० मान), वायु ८.१०२ (० मान), ५९.६ (शरीर का अंगुल परिमाण), अग्नि २४.१ (अग्नि कुण्ड निर्माण में खात, मेखला आदि के अंगुल मानों का वर्णन), ४४ (प्रतिमा के अवयवों का अंगुलि मान), ब्रह्माण्ड १.२.३२ (प्रजा उत्सेध/ऊंचाई का ० मान), मार्कण्डेय ८२ (अर्क के तेज से देवी की पादांगुलियों व वसुओं के तेज से करांगुलियों की रचना), विष्णु धर्मोत्तर ३.३.६.१ (शरीर के अंगों के अंगुल परिमाण का वर्णन), भविष्य १.१३२.७ (आदित्य की ८४ अंगुल मान की मूर्ति में विभिन्न अंगों के अंगुल मान), १.१४९.२ (काल चक्र के ६४ अंगुल प्रमाण व ८ अंगुल नेमि आदि का उल्लेख), २.१.१२.५ (८४ अंगुल प्रतिमा के विभिन्न अंगों के अंगुल मान), २.१.१९.७ (यज्ञ के सुवा आदि यज्ञ पात्रों के अंगुल मान), २.१.२१.६८ (अनंत, वासुकि, तौलिक आदि नागों का अंगुल परिमाण कथन),

अंगुल पद्म २.८.१४ (गर्भ का २५ अंगुल विकास होने पर माता को प्रसव पीडा होने का उल्लेख), मत्स्य १४५ (विभिन्न युगों में अंगुल अनुसार शरीर परिमाण), ब्रह्माण्ड १.२.७.९६ (० मान), वायु ८.१०२ (० मान), ५९.६ (शरीर का अंगुल परिमाण),

अग्नि २४.१ (अग्नि कुण्ड निर्माण में खात, मेखला आदि के अंगुल मानों का वर्णन), ४४ (प्रतिमा के अवयवों का अंगुलि मान), ब्रह्माण्ड १.२.३२ (प्रजा उत्सेध/ऊंचाई का ० मान), मार्कण्डेय ८२ (अर्क के तेज से देवी की पादांगुलियों व वसुओं के तेज से करांगुलियों की रचना), विष्णु धर्मोत्तर ३.३६.१ (शरीर के अंगों के अंगुल परिमाण का वर्णन), भविष्य १.१३२.७ (आदित्य की ८४ अंगुल मान की मूर्ति में विभिन्न अंगों के अंगुल मान), १.१४९.२ (काल चक्र के ६४ अंगुल प्रमाण व ८ अंगुल नेमि आदि का उल्लेख), २.१.१२.५ (८४ अंगुल प्रतिमा के विभिन्न अंगों के अंगुल मान), २.१.१९.७ (यज्ञ के स्रुवा आदि यज्ञ पात्रों के अंगुल मान), २.१.२१.६८ (अनंत, वासुकि, तौलिक आदि नागों का अंगुल परिमाण कथन)

टिप्पणी : अंगुल के सम्बन्ध में सबसे ज्वलन्त समस्या ऋग्वेद १०.९०.१ के पुरुष सूक्त की सार्वत्रिक ऋचा की व्याख्या है जहां कहा गया है कि सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष, सहस्रपाद पुरुष ने भूमि को आवृत करके दस अंगुल अतिक्रमण किया। जैमिनीय ब्राह्मण २.७० के अनुसार जो दशरात्र यज्ञ के स्तोम हैं, वही यह दस अंगुल हैं।

अग्नि पुराण में अग्नि कुण्ड आदि निर्माण में अंगुल मानों के संदर्भ में तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.२.९.११ में उल्लेख है कि वेदी देवों से पलायन कर गई। देवों ने उसे चार अंगुल द्वारा जाना। अत: चार अंगुल खनन करते हैं। चार अंगुल ही ओषधियों की प्रतिष्ठा होती है।

पुराणों में शरीर के अंगों के अंगुल परिमाणों का वर्णन करते समय शीर्ष आदि भाग को २४ अंगुल परिमाण वाला कहने के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण १०.२.१.३ का कथन है कि यह जो पुरुष है, यह यज्ञ का ही रूप है। अत: इसके अवयवों का मान भी यज्ञ के अनुरूप ही है। २४ अंगुल गायत्री के २४ अक्षरों से सम्बन्धित हैं। काठक संकलन २१.१ तथा अथर्ववेद परिशिष्ट २२.२.२ में शरीर की कल्पना अरणी के रूप में की गई है जिसका मन्थन करके अग्नि को उत्पन्न करना है (द्र. अरणि शब्द पर टिप्पणी)। यहां अरणि के विभिन्न अवयवों के अंगुल मान दिए गए हैं। भविष्य पुराण में स्रुवा आदि यज्ञपात्रों के अंगुलमानों के संदर्भ में अथर्ववेद परिशिष्ट २३.३.३ आदि दृष्टव्य हैं।

अंगुल के अन्य उपयोगी संदर्भों में आपस्तम्ब श्रौत सूत्र ७.३.६ तथा षड्विंश ब्राह्मण ५.४.१६ दृष्टव्य हैं जहां यज्ञ में यूप के ऊपर चषाल (वलय) को स्थापित करते समय चषाल को यूप के शिखर से एक या दो या तीन या चार अंगुल नीचे रखते हैं। चषाल इन्द्र देवता का है और चषाल से ऊपर का स्थान साध्य देवों का है।

अंगुलि वा.रामायण ४.४४.१२ (अंगुलीयक:राम द्वारा अभिज्ञान हेतु हनुमान को अंगुलीयक देना), पद्म ३.५२.१६ (अंगुष्ठ मूल में ब्राह्म तीर्थ, अंगुष्ठ व प्रदेशिनी अंगुलि के बीच पितृ तीर्थ, कनिष्ठिका मूल में प्राजापत्य तीर्थ, अंगुल्यग्र में दैव, मूल में दैव-आर्ष व मध्य में आग्नेय तीर्थ की स्थिति), मत्स्य १८७.४२ (बाण-पत्नी अनौपम्या की ननंद कुम्भीनसी द्वारा सर्वदा अंगुलि भंग कर्म करना), वराह ९८ (सत्यतपा ऋषि की अंगुलि छिन्न होने पर रक्त के बदले भस्म निकलने का आश्चर्य), ब्रह्म १.११३.९६ (तर्जनी व अंगुष्ठ के बीच पितृतीर्थ, अंगुलि अग्र में दैव तथा कनिष्ठिका मूल में प्राजापत्य तीर्थों का उल्लेख), २.२०.२२ (गरुड़ का विष्णु की करांगुलि के भार को वहन करने में असमर्थ होना, गर्व भंग), २.९३.३० (नृसिंह से अंगुलि की रक्षा की प्रार्थना), स्कन्द १.२.५५.१०४ (योगी द्वारा वायु तत्व की सिद्धि होने पर अंगुलि अग्र निपात से भूमि के कम्पन का उल्लेख), ३.२.५.११० (अंगुलियों के अग्र, मध्य व मूल में दैव, प्राजापत्य व आर्ष तीर्थों की स्थिति आदि का उल्लेख), ४.१.३५.७१ (शौच/शुद्धि प्राप्ति हेतु विभिन्न करांगुलियों के संयोग से शरीर के विभिन्न अंगों को स्पर्श करने का वर्णन), ४.१.३५.१७८ (तर्पण प्रसंग में अंगुलियों में स्थित तीर्थों के नाम), ४.१.३७.८२ (अंगुलियों की शुभ व अशुभ आकृतियों का उल्लेख), ४.१.४०.११३ (केवल अंगुलि द्वारा दन्त शोधन का निषेध), स्क ४.२.७२.६० (कमला देवी द्वारा हस्तांगुलियों की रक्षा), ४.२.७२.६२ (उग्रा देवी द्वारा पादांगुलियों की रक्षा), ५.१.३.२१ (शिव द्वारा कपाल में संगृहीत विष्णु के रुधिर का अंगुलि द्वारा मन्थन करने पर अन्त में नर/अर्जुन की उत्पत्ति), ५.१.४९ (शिव द्वारा छिन्न विष्णु की अंगुलि के रक्त से शिप्रा नदी का प्राकट्य), ७.१.१७.१९ (अंगुलि द्वारा दन्त शोधन का निषेध), विष्णु धर्मोत्तर ३.२६.१३ (अभिनय कर्म में अंगुलियों की विभिन्न मुद्राओं का वर्णन), ३.३२.१+ (विभिन्न हस्त मुद्राओं में अंगुलियों के विन्यास का वर्णन), ३.२३३.१ (अंगुलियों में दैव, पितृ व मानुष तीर्थों की स्थिति), ३.२३८.२१ (अंगुलियों द्वारा श्रोत्रों को बन्द करने पर शब्द श्रवण न होने पर सद्य: मरण का उल्लेख), नारद १.५०.८० (सामगांन में अंगुलियों व अंगुष्ठ द्वारा स्वरों के निर्देश का वर्णन), १.५०.१०३ (सामगान में अंगुलियों में षड्ज् आदि स्वरों की स्थिति), भविष्य १.५.१४, १.५.४९ (पाद व हस्त की अंगुलियों के शुभाशुभ लक्षण), शिव ७.२.१४.३९ (माला जप में अंगुलि-विशेष का महत्व : मोक्षप्रद, शत्रुनाशक, धनदायक, शान्ति दायक, क्षरणी आदि), लिंग १.९.४१ (वायु तत्व पर विजय होने पर अंगुलि अग्र निपात द्वारा भूमि के कम्पन का उल्लेख), १.२६.१३ (अंगुलि के अग्र से देवों, कनिष्ठांगुलि से ऋषियों और दक्षिणांगुष्ठ द्वारा पितरों के तर्पण का उल्लेख), १.८५.११४ (मोक्ष, शत्रुनाश आदि लक्ष्यों के अनुसार माला जप में अंगुलियों का विनियोजन),

योगवासिष्ठ १.२३.३५ (काल की क्रिया रूपी अंगुलि), ३.७०.३८ (हस्तांगुलियों में कर्कटी राक्षसी / विषूचिका के छिपने का स्थान), लक्ष्मीनारायण १.२९.२ (लक्ष्मी के पादांगुष्ठों व अंगुलियों में शंख, विमान, यव, कमल आदि चिन्हों का वर्णन), १.६८.१०, १.६८.३० (पादों की अंगुलियों के श्लिष्ट होने व हाथों की अंगुलियों के सूक्ष्म आदि होने से श्रेष्ठता का उल्लेख), १.६९.७ (लक्ष्मी के पदों में अंगुष्ठ व अंगुलियों में स्थित चिन्हों का कथन), १.६९.३३ (पाद की कनिष्ठिका या अनामिका द्वारा भूमि स्पर्श न होने पर स्त्री के कुलटा लक्षण का उल्लेख), १.४६१.३४ (कुलटा या पतिहन्ता आदि नारी की पादांगुलियों के लक्षण), ३.१३०.८२ (अंगुलीयक दान विधि व माहात्म्य), ३.१८६.६५ (साधुओं की अंगुलियों में ग्रहों का वास), देवीभाग. ११.१५.८२ (ऊर्ध्वपुण्ड्र के सन्दर्भ में अंगुष्ठ व अंगुलियों की क्रमशः विशेषता : पुष्टिकर, मुक्तिदायक, आयुष्य, अन्नदायक), ११.१६.७९ (सन्ध्या में गायत्री मन्त्र न्यास के संदर्भ में अंगुष्ठ व अंगुलियों में गायत्री अक्षरों का न्यास), ११.२२.२७ (प्राण, उदान आदि की आहुतियां देने में अंगुलियों का नियोजन), कथासरित् २.२.५० (श्रीदत्त द्वारा दैत्य-कन्या से विष नाशक अंगुलीयक प्राप्ति), १२.५.६१ (विनीत मति द्वारा कालजिह्व यक्ष से ईति नाशक अंगुलीयक प्राप्ति), गरुड १.९.८ (दीक्षा में गुरु के हस्त की पद्म के रूप में कल्पना करने पर अंगुलियों का पद्म-पत्र तथा नखों का केशरों के रूप में कथन), कूर्म २.१३.१५ (अंगुष्ठमूल में ब्राह्म तीर्थ, तर्जनी मूल में पितृ तीर्थ, कनिष्ठिका मूल में प्राजापत्य तीर्थ, अंगुलि -अग्र देवकामार्थ, मध्य अग्नि कर्मार्थ व मूल सोम कर्मार्थ होने का कथन; आचमन कर्म में अंगुष्ठ व अंगुलियों के संयोग से शरीर के अंगों का स्पर्श वर्णन), वामन ३८.१५ (शिव द्वारा अंगुष्ठ का अंगुलि से ताड्न करके भस्म उत्पन्न करना और इस प्रकार हाथ से शाकरस स्रवण करने वाले मंकणक ऋषि को शान्त करना), ६२.५० (वही), महाभारत आदि १३१.५९ (एकलव्य द्वारा द्रोणाचार्य को अंगुष्ठ दान पर अंगुलियों से तीर चलाना), वन ८३.१२५ (शिव द्वारा स्व अंगुष्ठ का अंगुलि से ताड्न करके शीतल भस्म उत्पन्न करना व हाथ से शाकरस स्रवित करने वाले मंकणक ऋषि को शान्त करना), शल्य ३८.४८ (वही), स्त्री १५.३० (गान्धारी द्वारा युधिष्ठिर की पादांगुलियों पर दृष्टि डालने से नखों का काला पड्ना), शान्ति २३६.२३ (योगी द्वारा वायु तत्व की सिद्धि पर अंगुलि अंगुष्ठ मात्र से पृथिवी को कम्पित करने का उल्लेख)

टिप्पणी : अंगुलि शब्द के लिए अंकुर (ज्योति पुंज का अंकुरण) शब्द पर विचार करना चाहिए। स्वयं वेदों में

अंगुलि शब्द कम स्थानों पर आया है। लेकिन यास्क के निघंटु में अग्रुवः आदि २२ नाम दिए हैं जो वेद में अंगुलि के वाचक हैं। शतपथ ब्राह्मण १.१.२.१६ में पांच अंगुलियों को पंक्ति छन्द का प्रतीक कहा गया है और पंक्ति छन्द पांच दिशाओं में साधना से संबंधित है। इसके अतिरिक्त दस हाथों की व १० पैरों की अंगुलियों को मिलाकर पुरुष में प्राणों की गणना १९, २१, २३, २५, २७, २९, ३१, ३३ रूपों में की गई है (शतपथ ८.४.३.१०)।

पुराणों में अंगुलियों से सम्बन्धित वर्णन का आधार यह है कि वायु तत्व पर जय के पश्चात अंगुलियों में प्राण, अपान, उदान, व्यान व समान वायुओं का विकास हो जाता है (द्र. शतपथ ब्राह्मण ८.१.३.८)। पुराणों में मंकणक ऋषि के हस्त से शाक रस स्रवित होने तथा तत्पश्चात शिव द्वारा अंगुष्ठ व अंगुलि के ताडन से भस्म उत्पन्न करने की सार्वत्रिक कथा से यह संकेत मिलता है कि अंगुलियों में शक्ति का विकास होने से पूर्व हस्त से शाक रस/शक्ति का स्रवण होता है जो मदकारी है। इस मादक अवस्था को नियंत्रित करने के लिए शक्ति का अंगुलियों में स्रवण कराना होता है (शतपथ ७.५.२.४४), उसे देवों को अर्पित करना होता है। अथर्ववेद ४.१४.७ तथा पैप्पलाद संहिता १६.९८.१० के अनुसार ५ अंगुलियों में अज पंचौदन का विकास करना होता है। लक्ष्मीनारायण संहिता १.५२.९६ के अनुसार अज अवस्था वह होती है जहां अंकुरण न हो। ओदन उदान प्राण का रूप है। शतपथ ब्राह्मण ११.५.२.१ में चातुर्मास यज्ञ के संदर्भ में दक्षिण बाहु की कल्पना चातुर्मास यज्ञ के चार खण्डों वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध, व शुनासीर में से प्रथम वैश्वदेव के रूप में की गई है। इस यज्ञ से जो प्राप्ति होती है, उसे दक्षिण बाहु की पांच अंगुलियों में प्राप्त शक्ति/हवि के रूप में दिखाया गया है। अंगुष्ठ आग्नेय, तर्जनी सौम्य, मध्यमा सावित्र, अनामिका सारस्वत व कनिष्ठिका पूषा देवता सम्बन्धी हवि बनती है (हवि अर्थात ऐसा अन्न, ऐसी ज्योति या शक्ति जिसे देवताओं को अर्पित किया जा सकता है)। इसके पश्चात यज्ञ के दूसरे भाग वरुण प्रघास (शत्रु विनाश से सम्बन्धित) को दक्षिण ऊरु कहा गया है जिससे हवि की प्राप्ति दक्षिण पाद की पांच अंगुलियों के रूप में होती है। यज्ञ के तीसरे भाग साकमेध (मरुतों व इन्द्र द्वारा मिल कर वृत्र का वध) की कल्पना उत्तर ऊरु के रूप में की गई है जिससे उत्तर पाद की पांच अंगुलियो का विकास हवि के रूप में होता है। यज्ञ के चतुर्थ भाग शुनासीर (श्री और सीर/रस का परस्पर योग) की कल्पना उत्तर बाहु के रूप में की गई है जिससे हवि की प्राप्ति उत्तर बाहु की पांच अंगुलियों के रूप में होती है। यह उल्लेखनीय है कि पुराणों में अंगुलियों का विशद वर्णन होने पर भी अंगुलियों में इतना स्पष्ट विभाजन दिखाई नहीं देता

जितना चातुर्मास के संदर्भ में शतपथ में किया गया है। (केवल स्कन्द पुराण के काशी खण्ड में कमला देवी द्वारा हस्तांगुलियों व उग्रा देवी द्वारा पादांगुलियों की रक्षा के उल्लेख से चातुर्मास सम्बन्धी उपरोक्त वर्णन की पुष्टि होती है।

स्कन्द पुराण अवन्तिका खण्ड में विष्णु की बाहु से उत्पन्न रुधिर का अंगुलियों द्वारा मन्थन के संदर्भ में अथर्वशिरोपनिषद ६.१४, वटुकोपनिषद ३१७.२० तथा गायत्री रहस्योपनिषद ४०५.५ में कहा गया है कि उच्छवास से तम होता है, तम से आपः, आपः का अंगुलियों द्वारा मन्थन करने पर शिशिर, शिशिर का मन्थन करने पर फेन, फेन से अण्ड, अण्ड से ब्रह्मा, ब्रह्मा से वायु, वायु से ओंकार, ओंकार से सावित्री, सावित्री से गायत्री और गायत्री से लोक। ऐसा प्रतीत होता है कि पुराण की कथा में जिस नर की उत्पत्ति कही गई है वह नृ, नृत्य का, आनंद का रूप है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.५.४ के अनुसार अंगुलियां मोद-प्रमोद हैं। यह मोद-प्रमोद प्रत्येक अंगुलि में अलग-अलग प्रकार का होता है (तैत्तिरीय संहिता ६.१.९.५)। दर्श-पौर्णमास यज्ञ के संदर्भ में कात्यायन श्रौत्र सूत्र ३.४.६ तथा आपस्तम्ब श्रौत्र सूत्र ३.२.३ में उल्लेख आता है कि होता ऋत्विज की अंगुलियों पर इडा पात्र रखते हैं। फिर अंगुलियों पर आज्य लगाकर उसे ओष्ठ से छूते हैं। इडा भी आनंद का ही रूप है। यह संभव है कि पुराण कथा में जिस नर की उत्पत्ति कही गई है, वह अंगुष्ठ पुरुष का, ओंकार का, ओष्ठ का प्रतीक हो।

अग्नि पुराण में तार्क्ष्य मुष्टि द्वारा विष के निराकरण के संदर्भ में अथर्ववेद २.३३.६ व २०.९६.२२ में अंगुलियों से यक्ष्मा को निकालने का, तथा अथर्ववेद ४.६.४, पैप्पलाद संहिता ५.८.३, १६.१४७.८ व १६.१४९.१ में हाथ व पैर की अंगुलियों से विष और दुर्भाग्य निकालने के उल्लेख हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह विष या यक्ष्मा अंगुलियों में शक्ति का सर्पण है। शांखायन ब्राह्मण १६.५ में सर्पि/घृत में आत्मा का दर्शन करके अंगुलियों से सर्पि का स्पर्श करने का उल्लेख भी इसी संदर्भ में हो सकता है। शतपथ ब्राह्मण ३.२.१.६ तथा ३.१.३.२५ आदि के अनुसार दीक्षा ग्रहण करते समय यजमान अंगुलियों का संकुचन करके जो मुष्टि बनाता है, वह गर्भ की अवस्था है, क्योंकि गर्भ में भी जन्तु की अंगुलियां मुष्टि रूप में होती हैं। इस प्रकार वह छन्दों में प्रवेश करता है। शतपथ ब्राह्मण ४.३.३.४ में अंगुलियों से वज्र का निर्माण किया है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण आदि में अभिनय कर्म और मुद्राओं के वर्णन में मुष्टि निर्माण के संदर्भ में इसी दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता है। कथा सरित्सागर में अंगुलीयक द्वारा विष के निरसन का वर्णन है जिसकी व्याख्या अपेक्षित है।

अंगुष्ठ पद्म १.३०.१७५ (विराट रूप धारी वामन के पादांगुष्ठ से बलि के ब्रह्मरन्ध्र/ब्रह्माण्ड के स्फोट व परिणामस्वरूप गंगा के उद्भव का वृत्तांत), ५.८०.१४ (कृष्ण के चरणों में अंगुष्ठ मूल में चक्र, मध्यमांगुलि मूल में कमल, कनिष्ठामूल में वज्र, अंगुष्ठ पर्व में यव आदि चिन्हों का कथन), ५.८१.४६ (कृष्ण स्वरूप के ध्यान के संदर्भ में राधिका द्वारा अंगुष्ठ व तर्जनी से कृष्ण के मुखकमल में पूगफल आदि समर्पित करने का उल्लेख), ६.२४०.१६ (विप्र को अंगुष्ठ मात्र भूमि के दान मात्र से पृथिवीपति होने का उल्लेख), देवीभाग. ११.१५.८२ (ऊर्ध्वपुण्ड्र/तिलक बनाने के संदर्भ में अंगुष्ठ व तीन अंगुलियों की क्रमशः विशेषता : पुष्टिकर, मुक्तिदायक, आयुष्य, अन्नदायक), ११.१६.७९ (अंगुष्ठ व अंगुलियों में गायत्री मन्त्राक्षरों का न्यास कथन), ११.२२.२७ (प्राणाग्निहोत्र के संदर्भ में अंगुष्ठ व अंगुलियों के संयोग से प्राण, उदान आदि की आहुतियों का कथन), विष्णु १.१५.८० (ब्रह्मा के दक्षिण हस्त के अंगुष्ठ से दक्ष प्रजापति की उत्पत्ति का उल्लेख), विष्णु धर्मोत्तर १.२२.२३ (विराट रूप धारी वामन के अंगुष्ठ द्वारा ब्रह्माण्ड का भेदन होने पर ब्रह्माण्ड के बाहर स्थित जल का अन्दर प्रवेश करना), १.६५.२३ (चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल व आत्मा में ध्यानयोग द्वारा अंगुष्ठ पुरुषों के दर्शन का निर्देश), १.९२.३३ (हस्त प्रमाण स्रुवा के होमस्थान को अंगुष्ठमध्य समान बनाने का उल्लेख), १.१६५.५ (रवि मध्य में स्थित सोम, उसके मध्य में स्थित अग्नि/तेज, उसके मध्य में स्थित सत्व, उसके मध्य में स्थित अच्युत के अंगुष्ठ पुरुष होने का उल्लेख), २.३७.४२ (सावित्री-सत्यवान आख्यान में यम द्वारा सुप्त सत्यवान के अंगुष्ठमात्र पुरुष को पाशबद्ध करके ले जाने का उल्लेख), २.१६५.१३ (शरीर में अंगों का पुरुष, स्त्री व नपुंसक लिंगों में विभाजन के संदर्भ में अंगुष्ठ के पुरुष होने का उल्लेख), ३.२६.१३ (अभिनय कर्म में अंगुष्ठ व अंगुलियों की विभिन्न मुद्राओं का वर्णन), ३.३२.१+ (अंगुष्ठ मूल में ब्राह्म तीर्थ, अंगुलि-अग्र में दैव, तर्जनि मूल में पितृ व कनिष्ठा में मानुष तीर्थों का उल्लेख), मत्स्य ६१.४६ (अगस्त्य को अर्घ प्रदान के संदर्भ में कुम्भ में सुवर्ण निर्मित, चतुर्मुख, अंगुष्ठ पुरुष को रखने का उल्लेख), ७२.३४ (अंगारक / मंगल की अर्चना के संदर्भ में पात्र में सुवर्ण निर्मित, चतुर्भुज अंगुष्ठ मात्र पुरुष रखने का निर्देश), २५८.४७ (शरीर के अंगों के अंगुल मान के संदर्भ में हाथ व पैरों के अंगुष्ठ व अंगुलियों का अंगुल मान वर्णन), वायु ८.९८ (अंगुष्ठ से अंगुलियों तक के आयामों के प्रादेश, ताल, गोकर्ण आदि नामों का कथन?), १०८.१४ (गयासुर पर स्थित शिला का प्रभास अद्रि द्वारा आच्छादन, शिलांगुष्ठ का प्रभास का भेदन करके प्रकट होना, अंगुष्ठ प्रदेश में पिण्ड्दानादि का महत्व), ब्रह्माण्ड १.२.७.९७ (शरीर के अंगों के अंगुल मान के संदर्भ में हाथ व पैरों के अंगुष्ठ व अंगुलियों का अंगुल मान), ब्रह्म १.१.१०९ (ब्रह्मा के अंगुष्ठ से दक्ष व

वाम अंगुष्ठ से दक्ष-पत्नी की उत्पत्ति का उल्लेख), १.३८.९० (सब देहधारियों में अंगुष्ठमात्र पुरुष की स्थिति का उल्लेख), १.११३.९५ (दक्षिण पाणि में अंगुष्ठोत्तर रेखा के ब्राह्मतीर्थ होने का उल्लेख; तर्जनी व अंगुष्ठ के बीच पितृ तीर्थ होने का उल्लेख आदि), अग्नि २५.२५ (अंगुष्ठ व अंगुलियों में श्रोत्र, त्वक्, चक्षु आदि के न्यास का उल्लेख), २५.२७ (अंगुष्ठ व अंगुलियों में भुवः, स्वः आदि लोकों का न्यास), २५.३२ (दोनों करांगुष्ठों में जीव का तथा बुद्धि, अहंकार, मन आदि ८ तत्वों का ८ अंगुलियों में न्यास), २५.३६ (अंगुष्ठ द्वय में श्रोत्र तथा ८ अुगुलियों में त्वक्, चक्षु जिह्वा आदि का न्यास), २५.४० (अंगुष्ठ तथा अंगुलियों में मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन आदि का न्यास), २५.४३ (अंगुष्ठ व अंगुलियों में बुद्धि, अहंकार, मन, चित्त आदि का न्यास), २९५.१५ (सर्प दंश की चिकित्सा के संदर्भ में अंगुष्ठ व अंगुलियों में क्रमशः पृथिवी आदि तत्वों का न्यास, ताक्ष्य रूपी मुष्टि के निर्माण से अंगुष्ठ के विष का नाश होने का उल्लेख, ताक्ष्य हस्त की अंगुलियों के चालन से विष का स्तम्भन आदि), ३१०.३२ (विभिन्न मुद्राओं में अंगुष्ठ व अंगुलियों के विन्यास का वर्णन), नारद १.२७.२० (शौच के पश्चात आचमन के संदर्भ में अंगुष्ठ व अंगुलियों के युग्मों से शरीर के विभिन्न अंगों का स्पर्श कथन), १.५०.८१ (गात्रवीणा के संदर्भ में अंगुष्ठ व अंगुलियों के परस्पर स्पर्श से स्वरों, मात्राओं, छन्दों आदि का कल्पन), १.९१.५२ (अंगुष्ठ व अंगुलियों में ईशान, तत्पुरुष, अघोर आदि का न्यास), २.४५.२ (गया में प्रेतशिला के अंगुष्ठ में स्थित ईश का प्रभासेश नाम, तत्स्थान पर पिंड दान का महत्व कथन), भविष्य १.२४.२२ (सामुद्रिक लक्षणों के संदर्भ में अंगुष्ठ व अंगुलियों की विकृत आकृतियों का वर्णन), २.२.२१.१०३ (वरुण की अंगुष्ठ मात्र प्रतिमा की स्थापना का उल्लेख), ३.४.१७.१२ (मरुतों की उत्पत्ति के संदर्भ में अंगुष्ठ मात्र इन्द्र द्वारा वज्र से दिति के गर्भ का छेदन), ४.८९.६ (मृत्यु पर यमदूतों द्वारा अंगुष्ठ मात्र पुरुष का बन्धन करके ले जाने का उल्लेख), शिव २.३.१५.२४ (तारकासुर द्वारा अंगुष्ठ से भुव/भूमि का स्पर्श करके तप करने का उल्लेख), ७.२.१४.३९ (माला जप संदर्भ में अंगुष्ठ व अंगुलियों की क्रमशः मोक्ष प्रद, शत्रुनाशिनी, धनप्रदा आदि संज्ञाएं), ७.२.३८.७१ (भूमध्य में शिव व शिवा के अंगुष्ठ मात्र रूप के ध्यान का उल्लेख), ब्रह्मवैवर्त २.३६.१५४ (मृत्यु पर यमकिंकरों द्वारा अंगुष्ठ मात्र पुरुष को ग्रहण करना), मार्कण्डेय ३४.१०७ (आचमन के संदर्भ में दक्षिण पाणि में अंगुष्ठोत्तर रेखा के ब्राह्म तीर्थ, अंगुष्ठ व तर्जनी मध्य में पितृ तीर्थ आदि होने का कथन), भागवत १.१२.८ (उत्तरा के गर्भ में स्थित परीक्षित के अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से जलने पर अंगुष्ठ मात्र पुरुष द्वारा गर्भ की रक्षा का वर्णन), ३.१३.१८ (ब्रह्मा के नासाछिद्र से अंगुष्ठ परिमाण वराह का उत्पन्न होना व विराट रूप होकर यज्ञ वराह बनना), महाभारत आदि ३१.८ (कश्यप के यज्ञ के संदर्भ में इन्द्र द्वारा अंगुष्ठोदर पर्व मात्र शरीर वाले वालखिल्य ऋषियों का दर्शन), ११४.२० (गान्धारी से उत्पन्न मांसपिंड का सिंचन होने पर उसका एक सौ अंगुष्ठ पर्वामात्र गर्भों में विभाजित होने का उल्लेख), वन २९७.१७ (यम द्वारा सत्यवान के अंगुष्ठ मात्र पुरुष का कर्षण), उद्योग ४६.२७ (अंगुष्ठ मात्र पुरुष के सबके हृदय में स्थित होने पर भी न दिखाई देने का उल्लेख), १३१.५ (दुर्योधन द्वारा कृष्ण के बन्धन की चेष्टा पर कृष्ण के शरीर में स्थित अंगुष्ठ मात्र देवों द्वारा आग की लपटें छोड़ना), द्रोण १.७५.६३ (कर्ण से युद्ध में घटोत्कच का अंगुष्ठ मात्र रूप धारण करना), १८१.१९ (एकलव्य के सांगुष्ठ होने पर देवों, दानवों आदि से अविजित होने का उल्लेख), अनुशासन १०४.१०० (भोजन के पश्चात दक्षिण चरण के अंगुष्ठ के अवसेचन का उल्लेख), १०४.१०३ (अंगुष्ठ मूल में ब्राह्मतीर्थ, अंगुष्ठ व तर्जनी के बीच पितृ तीर्थ होने का उल्लेख), १४१.१०१ (वालखिल्य ऋषियों के अंगुष्ठ पर्व मात्र होकर तपोरत होने का उल्लेख)

टिप्पणी : पद्म पुराण आदि में वर्णित बलि व वामन की कथा में पादांगुष्ठ से ब्रह्मरन्ध्र के भेदन की यौगिक व्याख्या के संदर्भ में, जैसे जैसे प्राण या श्वास पादांगुष्ठ में पंहुचता है ,शरीर की शक्ति ब्रह्मरन्ध्र की ओर गति करती है। ऐसा संभव है कि इस स्थिति के पूर्ण रूप में विकसित होने पर ब्रह्मरन्ध्र का भेदन हो जाता हो और सारे बाहरी ब्रह्माण्ड में स्थित शक्ति व्यक्ति के अंदर गंगा के रूप में प्रवेश कर जाती हो।

पुराणों में अंगुष्ठ और अंगुलियों के संयोगों द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों का स्पर्श करने तथा गात्रवीणा के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण १०.१.१.८ में उल्लेख है कि अंगुष्ठ पुमान रूप है, अंगुलियां स्त्री रूप हैं। अंगुलियां नाना वीर्य वाली होती हैं (तैत्तिरीय संहिता ६.१.९.५)। अंगुष्ठ व अंगुलियों के स्पर्श द्वारा यह अंगुष्ठ रूपी पुरुष अंगुलियों रूपी स्त्रियों से मिथुन करता है। शतपथ ब्राह्मण ११.५.२.१ के अनुसार अंगुष्ठ आग्नेय है, अंगुलियां सौम्य हैं।

शिव पुराण में तारकासुर द्वारा पादांगुष्ठ मात्र से भूमि का स्पर्श करके तप करने के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण १.३.५.७ का यह उल्लेख उपयोगी हो सकता है कि जिससे द्वेष करता हो, उसका अंगुष्ठों से दमन करने की कल्पना करके पादांगुष्ठों से भूमि का पीडन करे।

पुराणों में सार्वत्रिक रूप से अंगुष्ठ पुरुष के उल्लेखों

के संदर्भ में तैत्तिरीय आरण्यक १०.३८.१ के मन्त्र के अनुसार अंगुष्ठमात्र पुरुष अंगुष्ठ के समाश्रित है, वह सारे जगत का ईश है, इत्यादि। इसी तथ्य की पुनरावृत्ति महानारायणोपनिषद १६.५, कठोपनिषद ४.१३, श्वेताश्वरोपनिषद ३.१३ आदि में भी की गई है। लेकिन विष्णु धर्मोत्तर पुराण का अंगुष्ठ पुरुष का वर्णन सबका अतिक्रमण करता है।

यज्ञ कार्य में हाथ का प्रतीक सुवा नामक यज्ञ पात्र तथा अंगुष्ठ का प्रतीक सुवा का अग्र भाग होता है (अथर्ववेद परिशिष्ट २७.२.४, कात्यायन श्रौत सूत्र १.३.३९)।

वैदिक संहिताओं में अंगुष्ठ का उल्लेख अथर्ववेद २०.१३६.१६ मन्त्र में आया है जहां तैलकुण्ड को आंगुष्ठ कहा गया है। जो कुमारी पिंगलिका को वसन्त में ग्रहण करने में सफल हो सकता हो, वही इस रोते हुए शुद्ध आंगुष्ठ का उद्धार कर सकता है। श्री जगन्नाथ वेदालंकार द्वारा कुन्ताप सूक्त सौरभम् नामक पुस्तक में इसकी व्याख्या पठनीय है।

अंगुष्ठ के अन्य उपयोगी संदर्भों में बौधायन श्रौत सूत्र २६.२४.१ के अनुसार यज्ञ में यूपों की स्थापना के संदर्भ में यूपों की ऊंचाई क्रमशः अंगुष्ठ पर्व मात्र द्वारा कम होती जाती है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.६.१.३ के अनुसार अंगुष्ठों द्वारा आहुति देने से निर्ऋति को दूर करने में समर्थ होते हैं। शतपथ ब्राह्मण ३.१.२.४ में अंगुष्ठ और अंगुलियों के नखों में से पहले किसको काटा जाए, इस पर दैव और मानुष रूप से विचार किया गया है।

अचल ब्रह्माण्ड १.२.७.११ (पर्वत/अचल उत्पत्ति व शब्दार्थ), ब्रड ३.४.२०.८२ (दण्डनाथा देवी के रथ के रक्षक १० भैरवों में एक नाम), वायु ६१.८४ (प्रत्यूष ऋषि -पुत्र), स्कन्द ६.१३ (० लिंग माहात्म्य, चमत्कार नृप द्वारा स्थापित), स्क ७.३.४ (० लिंग माहात्म्य, वसिष्ठ द्वारा अर्बुदाचल पर स्थापित), स्क ७.३.७ (० लिंग माहात्म्य, शुक द्वारा प्रदक्षिणा से वेणु नृप बनना), नारद १.११६.६० (अचला व्रत : माघ शुक्ल सप्तमी), लक्ष्मीनारायण ३.७.१९ (चलवर्मा राजा द्वारा चल संसार में अचला भक्ति प्राप्त करना)

अच्छावाक स्कन्द ६.५.८ (त्रिशंकु के यज्ञ में भृगु के अच्छावाक् ऋत्विज होने का उल्लेख), ६.१८०.३३ (ब्रह्मा के अग्निष्टोम यज्ञ में मरीचि ऋषि के अच्छावाक् होने का उल्लेख), ७.१.२३.९८ (प्रभास क्षेत्र में सोम/चन्द्रमा के यज्ञ में शाकल्य के अच्छावाक् होने का उल्लेख), हरिवंश ३.१०.८ (श्रीहरि के मन और ऊरु से अच्छावाक् व नेष्टा की उत्पत्ति का उल्लेख), वायु २९.२८ (भुव स्थान की अग्नि) द्र. ऋत्विज

टिप्पणी : अच्छ शब्द उसी धातु से बना है जिससे स्वच्छ, निर्मल। वेदों में कई मन्त्रों में अच्छावाक शब्द आया है। काठक संहिता २६.९ के अनुसार अच्छावाक नामक ऋत्विज का अनुष्टुप छन्द होता है। पुराणों में भक्त भगवान के दर्शन करने पर प्रायः अनुष्टुप छन्द में स्तुति करता है।

अच्छोदा पद्म १.९ (अग्निष्वात्त पितरों की कन्या, तप, अमावसु पितर पर आसक्ति, अमावास्या बनना, द्वापर में वसु -कन्या सत्यवती बनना), ३.२२ (० सरोवर तट पर अप्सराओं द्वारा ब्रह्मचारी को लुभाने व शाप -प्रतिशाप की कथा), प ६.१२८ (० सरोवर तट पर अग्निप नामक मुनि -पुत्र का अप्सराओं को पिशाची होने का शाप -प्रतिशाप), ६.१३३.२९ (० में विष्णुकाम नामक तीर्थ), मत्स्य १४ (अमावसु पर आसक्ति से भ्रष्ट होना, सत्यवती व अष्टका रूप में जन्म), देवीभाग. ७.३० (अच्छोद तीर्थ में शिव धारिणी देवी का वास), ब्रह्माण्ड २.३.१०.५६ (अमावसु पर आसक्ति कथा), वायु ४७.५ (० सरोवर की चन्द्रप्रभ गिरि के पाद में स्थिति, अच्छोदा नदी तट पर चैत्ररथ वन की स्थिति), वा ७३.२ (अग्निष्वात्त पितर -कन्या, अमावसु पितर पर आसक्ति से पतन कथा), नारद १.१.२५ (० तट पर रोमहर्षण मुनि का वास, रोमहर्षण द्वारा मुनियों को नारद पुराण वाचन), ब्रह्माण्ड २.३.१३.७८ (सर), हरिवंश १.१८ (मनुष्य योनि में सत्यवती बनने का प्रसंग), ह १.१८.२९ (अग्निष्वात्त पितरों की कन्या, अमावसु को पिता मानना), स्कन्द ४.१.१२.६४ (० तट पर शुचिष्मान मुनि के पुत्र का शिशुमार द्वारा हरण कथन), १.५९.६ (गया क्षेत्र में ० नदी की स्थिति);

टिप्पणी : ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुशीलन से ऐसा आभास होता है कि यज्ञ के अच्छावाक नामक ऋत्विज की वाक् को पुराणों में अच्छोदा कन्या का रूप दे दिया गया है। काठक संहिता २६.९ इत्यादि के अनुसार अच्छावाक की वाक् का जन्म अन्त में होता है, जैसे तपस्वी को अन्त में भगवान के दर्शन होने पर अनुष्टुप् वाक् का जन्म होता है। मैत्रायणी संहिता ४.४.८ के अनुसार यह वाक् यव जैसी है, अर्थात, यह स्थिति विज्ञानमय कोश की है जो सर्वोच्च आनन्दमय कोश से इस प्रकार जुडा है जैसे यव के दो भाग परस्पर जुडे होते हैं। इसी तथ्य की पुष्टि गोपथ ब्राह्मण २.३.२३ में अच्छावाक को भरद्वाज ऋषि से सम्बद्ध करके (मनो वै भरद्वाजः अर्थात भरद्वाज का सम्बन्ध मनोमय कोश से है) तथा जैमिनीय ब्राह्मण ३.३७४ में अच्छावाक को विश्वेदेवों से सम्बद्ध करके की गई है (विश्वेदेवों की स्थिति विज्ञानमय कोश में होती है)। अच्छावाक की हीनता यह है कि यह यज्ञ की अथवा सोम की असुरों से रक्षा नहीं कर पाता, जब तक कि इसके साथ इन्द्राग्नि देवता द्वय का संयोग न हो जाए (शतपथ ब्राह्मण ३.६.२.१३, गोपथ ब्राह्मण २.३.१५)। इन्द्राग्नि देवता अमावास्या का देवता है। इस प्रकार पुराणों में अच्छोदा की अमावसु पितर पर आसक्ति कह कर उसका अमावास्या व अष्टका आदि बन जाने का वर्णन किया गया है। अमावास्या का अर्थ है कि मा अर्थात माया से

बद्ध स्थिति को पार करके अपरिमित आकाश अमा में चेतना को स्थापित करना।

इन्द्राग्नि द्वारा अच्छावाक को प्रबलित करने की स्थिति प्रातः सवन में होती है। तृतीय सवन में इन्द्राविष्णु इसे पुष्ट करते हैं (ऐतरेय ब्राह्मण ३.५०)। पुराणों में यह किस रूप में प्रस्फुटित हुआ है, यह अन्वेषणीय है।

अच्युत अग्नि ३.५ (माहेन्द्र तीर्थ में विष्णु का नाम), ४८.१० (० मूर्ति के आयुधों का कथन), विष्णु १.१९.६३ (समुद्र में पतन पर प्रह्लाद द्वारा स्तुति), ब्रह्माण्ड १.२.३६.७५ (लेखा नामक देवगणों में एक देवता नाम), मत्स्य २४५.४९ (बलि द्वारा अच्युत पर आक्षेप लगाने के कारण प्रह्लाद द्वारा राज्य से च्युत होने का शाप), स्कन्द ४.१.१९.१०९ (मरीचि ऋषि द्वारा ध्रुव को अच्युत की आराधना का निर्देश), स्क ४.१.२०.१० (० शब्द निरुक्ति), ४.२.६१.२२९ (० मूर्ति के लक्षण), भागवत १०.६.२२ (० से कटि की रक्षा की प्रार्थना), ब्रह्मवैवर्त १.१९.३४ (० कृष्ण से ईशान दिशा की रक्षा की प्रार्थना), लक्ष्मीनारायण १.२५४.७ (श्रावण कृष्ण एकादशी को ० की पूजा), ३.१०६.१६ (साधुओं के अच्युत गोत्र होने का उल्लेख)

टिप्पणी : अथर्ववेद ६.८८.३ में ध्रुव और अच्युत बनने की कामना की गई है जो पुराणों की ध्रुव की कथा से तुलनीय है। ऋग्वेद १.१६७.८ में मरुद्गण अच्युत ध्रुवों का च्यवन करके ईं अग्नि की वृद्धि करते हैं। वह अच्युतों का ओज से च्यवन करते हैं (ऋग्वेद १.८५.४)। ऋग्वेद ६.१५.१ में अतिथि अग्नि अच्युत गर्भ का भक्षण कर जाती है। अग्नि स्वयं अच्युत है (ऋग्वेद ६.२.९)। वह स्वयं अच्युत होते हुए घृत और मधु से लिप्त भूमि का च्यवन करा देती है। इन्द्र अच्युत होकर अपने बल से पर्वतों और भूमि को च्यवित कर देता है (ऋग्वेद ६.३१.२ इत्यादि)। इन्द्र अच्युत स्वात (स्वाती?) अद्रि से गायों को ले आता है। इन्द्र मेनि (मन की शक्ति?) को अच्युत कर देता है। इन्द्र व दुन्दुभि के लिए अच्युतच्युत विशेषण आया है (ऋग्वेद २.१२.९, ६.१८.५, अथर्ववेद ५.२०.१२) जो विभिन्न कोशों में अच्युत होने का प्रतीक हो सकता है। अथर्ववेद ९.२.१५ में बृहती के लिए कहा गया है कि यह च्युत और अच्युत दोनों अवस्थाओं में विद्युत और स्तनयित्नु का भरण करती है। शतपथ ब्राह्मण १.६.१.६ के अनुसार देवों ने ऋतुओं का आह्वान करते हुए भी अग्नि को आयतन से च्युत नहीं किया, अतः अग्नि अच्युत है। स्कन्द पुराण की निरुक्ति के अनुसार जिस भक्त का आनंद प्रलय काल में भी च्युत न हो वह अच्युत है।

अज भागवत ५.१५.५ (प्रतिहर्ता व स्तुति -पुत्र), ६.६.१७ (एकादश रुद्रों में एक), ९.१०.१ (रघु -पुत्र, दशरथ -पिता), ९.१३.२२ (ऊर्ध्वकेतु -पुत्र, पुरुजित् -पिता), १०.६.२२ (अज विष्णु से पादों की रक्षा की प्रार्थना), वायु २०.२८ (अज रूपी पुरुष की अजारूपी विश्वरूपा प्रकृति में आसक्ति -विरक्ति का मन्त्र : अजामेकां इति), वा ६२.९ (तुषित देवगण में से एक), ६२.३४ (उत्तम मनु -पुत्रों में से एक), ६६.४३ (रात्रि के १५ मुहूर्तों में से एक), ६८.११ (दनु के १०० पुत्रों में से एक), ९२.१० (समुद्र मन्थन से प्रकट धन्वन्तरि का नाम), ब्रह्माण्ड २.३.७.८५ (पिशाच, स्वकन्या जन्तुधना का राक्षस से विवाह), २.३.१०.४८ (ब्रह्मा द्वारा स्कन्द को अज भेंट करना), ३.४.१.६० (सुधर्मा देवगण में एक), मत्स्य १२६.५२ (चन्द्रमा के रथ के १० अश्वों में एक), स्कन्द ७.१.५९ (रुद्र के छठे शीर्ष का नाम, ब्रह्मा को अज शीर्ष दान, अन्धकासुर से युद्ध में अज शीर्ष से अजा देवी का प्राकट्य), देवीभाग. ८.१५.७ (नक्षत्रों की एक वीथि का नाम), विष्णु धर्मोत्तर १.१९८ (कपिशा -पुत्र, पिशाच, स्वकन्या ब्रह्मधना का राक्षस से विवाह), मत्स्य १२.४८ (अजक : दिलीप -पुत्र, दीर्घबाहु -पिता), वायु ९१.६० (सुहोत्र-पुत्र, बलाकाश्व -पिता), लक्ष्मीनारायण १.५२.९६ (अंकुर से रहित धान्य की अज संज्ञा का उल्लेख), २.१५७.१० (अंगन्यास में अज व अवि का हस्त में न्यास), ३.१०२.६६ (अज की अग्नि से पूर्व उत्पत्ति ?), ४.८०.१३ (अजायन : नागविक्रम राजा के सर्वमेध यज्ञ में आहर्त्ता ऋत्विज)

टिप्पणी : वेदों में दिए गए विवरण के आधार पर अज और अजा शब्दों में अंतर करना कठिन हो जाता है। ऋग्वेद १०.१६.४ तथा अथर्ववेद के अजोदन सूक्त ९.५ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अज भाग को निरंतर पकाकर शुद्ध करना पडता है। अथर्ववेद ४.१४.६ में अज को घृत द्वारा सुशोभित कर एक सुपर्ण या गरुड बना दिया गया है जिस पर आरूढ होकर नाक लोक को जाते हैं। वह अज बैठा तो नाक लोक में है, जबकि उसके पैर चार दिशाओं में प्रतिष्ठित हैं। चार दिशाओं को ज्ञान, दक्षता, विवेक व आनंद प्राप्ति की दिशाएं कह सकते हैं। काठक संहिता २३.१० में गायत्री अजा के कान पकड कर स्वर्ग जाकर वहां से सोम लाने में सफल होती है। ऋग्वेद १.१६२ के मन्त्रों में अश्वमेध के कर्मकाण्ड से सम्बन्धित जो मन्त्र दिए गए हैं, वह मनुष्य व्यक्तित्व को भावना रूपी अश्व बनाने से पूर्व अज भाग से प्राप्य बल को प्राप्त करने के लिए प्रतीत होते हैं। अथर्ववेद १८.२.२२ में प्रेत के लिए अज द्वारा शीत करने का उल्लेख है।

अजक मत्स्य १२.४८ (दिलीप - पुत्र, दीर्घबाहु -पिता), भागवत ९.१५.३ (बलाक -पुत्र, कुश-पिता, पुरुरवा-वंश), विष्णु ४.७.८ (सुमन्तु -पुत्र, बलाक -पिता, आयु/पुरुरवा वंश), ब्रह्माण्ड २.३.६६.३० (सुनह -पुत्र, बलाकाश्व -पिता, अमावसु/पुरुरवा वंश), २.३.७४.१२६ (विशाखयूप -पुत्र, नन्दिवर्धन -पिता, प्रद्योत वंश), वायु ९१.६० (सुहोत्र -पुत्र, बलाकाश्व -पिता, अमावसु वंश), ९९.३१३ (विशाखयूप -पुत्र, वर्तिवर्धन -पिता, प्रद्योत वंश),

अजगन्ध ब्रह्माण्ड २.३.७.८ (अजगन्धा : २४ मौनेया अप्सराओं में एक), पद्म १.३३ (पुष्कर स्थित शिव का नाम, राम द्वारा स्तुति), स्कन्द ५.१.२८.४५ (अजागन्ध कुण्ड का संक्षिप्त माहात्म्य : पाप का नाश); दृ. अजोगन्ध

अजगर भागवत १०.३४ (नन्द का ० द्वारा बन्धन, कृष्ण द्वारा मुक्ति, जन्मान्तर में सुदर्शन विद्याधर), ११.७.३३ (दत्तात्रेय द्वारा ० से प्राप्त शिक्षा कथन), ब्रह्मवैवर्त ४.६०.४३ (नहुष का दुर्वासा शाप से इन्द्र पद से पतन व अजगर बनना), भविष्य ३.२.१८.२० (संसार की ० से उपमा), ३.४.११ (ब्राह्मण, संकर्षण रुद्र/शेष से सायुज्य प्राप्ति, पुन: चन्द्रमा से सायुज्य), गर्ग ४.२३ (नन्द के पाद का ग्रहण, कृष्ण के पदाघात से दिव्य रूप प्राप्ति, पूर्व जन्म में सुदर्शन विद्याधर), हरिवंश ४.४.२९ (अविधिपूर्वक कथा श्रवण पर ० योनि की प्राप्ति), कथासरित् ८.३.६३ (विद्याधरों की अजगर पकड़ने में असफलता, सूर्यप्रभ मनुष्य द्वारा बन्धन पर अजगर का तूणीर -रत्न/तरकस बनना), कस १०.५.३१० (यज्ञसोम का निगरण, यज्ञसोम की पत्नी को दिव्य भिक्षा पात्र देना, यज्ञसोम का जीवित होना, अजगर का शापरहित हो कांचन वेग विद्याधर राज बनना), १८.४.३२ (विक्रमादित्य के कार्पटिक देवसेन का ककड़ी भक्षण से अजगर बनना, पुन: मनुष्य स्वरूप प्राप्ति का उद्योग), कस २.१.५७, ९.५.१५९

टिप्पणी : जैमिनीय ब्राह्मण २.२६७ के अनुसार गुदाओं से अहि और अजगरों की उत्पत्ति हुई। काठकसंहिता ४३.४ व ३५.५ में उल्लेख है कि अजगर से सर्प उत्पन्न हुए। मैत्रायणी संहिता ३.१४.१९ इत्यादि के अनुसार बल के लिए अजगर की प्राप्ति करे। गोपथ ब्राह्मण १.२.२ के अनुसार स्वप्न अजगर बन जाता है और ब्रह्मचारी स्वप्न रूपी अजगर पर विजय पाने के लिए सुषुप्ति में निद्रा लेते हैं। अजगर का अर्थ है जो अज रूपी शक्ति को ग्रस ले। गुदा की सर्वोच्च स्थिति गुदगुदी या आनंद है। स्वप्न का सुदर्शन चक्र बनना अपेक्षित है।

अजतुंग ब्रह्माण्ड २.३.१३.४८ (अमरकण्टक का अन्तर्वर्ती तीर्थ, पितरों के तर्पण हेतु प्रशस्तता), वायु ७७.४८ (० पर पर्व कालों में देवों की छाया का दर्शन, पाण्डवों द्वारा नीरोगता प्राप्ति)

अजनाभ भागवत ५.४ (ऋषभ द्वारा शासित देश), लक्ष्मीनारायण २.१११.५९ (० देश में गंगा की स्थिति), २.२९७.८९ (अजनाभीय नारियों के साथ बालकृष्ण का व्यवहार)

टिप्पणी : ऋग्वेद १०.८२.६ में अज की नाभि में आप: द्वारा स्थापित एक गर्भ का उल्लेख है जिसमें विश्व के सारे भुवन स्थित हैं।

अजपार्श्व हरिवंश ३.१ (श्वेतकर्ण व मानिनी -पुत्र, जन्म कथा), ब्रह्म १.११.१३२ (श्वेतकर्ण व मालिनी -पुत्र, नाम प्राप्ति कारण, रोमक -पुत्र बनना)

अजपाल स्कन्द ६.९५ (चण्डी देवी से प्राप्त अस्त्र मन्त्रों से व्याधियों को अजा रूप में रूपांतरण करना, व्याघ्र रूपी शिव द्वारा अजा भक्षण, राजा की मुक्ति), स्क ६.१३३ (व्याधियों को अजा रूप में रूपान्तरित कर रक्षा करना, विप्र का रात्रि में कुष्ठ ग्रस्त होना, व्याधि से मुक्ति हेतु अजापाल का तप), स्क ७.३.९ (पूर्व जन्म में शूद्र, कमलों से केदार लिंग पूजा से राजा), लक्ष्मीनारायण १.४९६ (व्याधियों को अजा रूप में नियंत्रित करने की कथा), २.२६५ (दुष्ट प्रकृति के पार्ष्णिरद नामक अजापाल की कृष्ण नाम जप से मुक्ति), ४.६८ (परमीर अजापालक का मृत्यु के पश्चात श्येन बनना), मत्स्य १२.४९ (दीर्घबाहु -पुत्र, दशरथ -पिता) भविष्य ४.७१ (रावण की आधीनता अस्वीकार करना, ज्वर प्रेषण, नीराजन द्वादशी व्रत); दृ. अजापाल

अजमीढ ब्रह्म १.११.१०५ (धूमिनी - पति, ऋक्ष -पिता), हरिवंश १.३२.४२ (० वंश वर्णन), मत्स्य ४९.४५ (केशिनी, नीलिनी व धूमिनी पत्नियों से पुत्रों की उत्पत्ति), म ५०.१६ (सुदास -पुत्र सोमक के रूप में पुन: जन्म लेना, धूमिनी -पति, जन्तु व अन्य १०० पुत्र), १४५.१०३ (अंगिरा गोत्रीय ३३ ऋषियों में एक), भागवत ९.२१.२१ (हस्ती -पुत्र, बृहदिषु -पिता, वंश वर्णन), ९.२२.३ (ऋक्ष -पिता, वंश वर्णन), वायु ९१.११६ (तप से ऋषिता प्राप्त करने वाले राजर्षियों में एक), ९९.१९४ (नीलिनी -पति, नील -पिता, वंश वर्णन)

टिप्पणी : ऋग्वेद ४.४३ व ४.४४ तथा अथर्ववेद २०.१४३ सूक्तों के ऋषि सुहोत्र के पुत्र पुरुमीढ व अजमीढ हैं जहां वे अश्विनौ की स्तुति करते हैं। पौराणिक वर्णन और वैदिक स्तुति में तारतम्य अन्वेषणीय है।

अजमेध भविष्य ३.२.२२ (क्षत्र सिंह के ० यज्ञ में अज/छाग की हिंसा के प्रश्न पर विवाद)

अजमेर ३.१.७.३ (राजपुत्र देश के चपहानि नृप का अजमेर में सुखपूर्वक निवास), भविष्य ३.४.२.१ (० पुर निरुक्ति, शासकों के नाम)

अजर कथासरित् ७.६.४२ (राजा, वैद्य को अपने पूर्व जन्म के नर कंकाल का दर्शन कराना)

अजहारित लक्ष्मीनारायण ३.३१ (ऋषि, राजा को शाप देकर अश्व बनाना)

अजा कूर्म १.७.५५ (ब्रह्मा के मुख से प्राकट्य),

पद्म १.३.१०५ (ब्रह्मा के मुख से सृष्टि), प ६.५६ (अजा एकादशी व्रत माहात्म्य : हरिश्चन्द्र की कष्टों से मुक्ति), प ६.१७६ (गीता के द्वितीय अध्याय के पाठ से शुद्ध स्थान में व्याघ्र की अजा भक्षण में अरुचि, अजा का निर्भय होना, अजा के पूर्व जन्म का वृत्तांत), प ६.१८३ (माधव ब्राह्मण द्वारा यज्ञ में ० बलि की चेष्टा, छाग द्वारा अपना पूर्व योनियों में जन्म वृत्तांत कथन, गीता के नवम अध्याय का माहात्म्य कथन), भागवत ९.१९ (विषयों से अतृप्त बस्त व कूप -पतित अजा का प्रसंग), स्कन्द ४.२.७२.६१ (० देवी द्वारा पृष्ठ देश की रक्षा), ७.१.५९ (रुद्र के षष्ठम शीर्ष से अजा देवी की उत्पत्ति), वायु २०.२८ (अज रूपी पुरुष की अजा रूपी विश्वरूपा प्रकृति में आसक्ति -विरक्ति का मन्त्र : अजामेकां इति), २३.९२ (ब्रह्मा द्वारा पार्वती का अजा रूप में दर्शन, अजा का विश्वरूप होना, अजा के मुख में अग्नि का स्थित होना), भागवत १०.१३.५२ (विभूति का नाम), लक्ष्मीनारायण १.४९६ (अजापाल राजा द्वारा व्याधियों का अजा रूपों में रूपांतरण करके नियंत्रण), २.४५.७ (मां अजा : तलाजा राक्षसी की किंकरी, झांझीवर दैत्य से उत्पन्न दुष्ट पुत्र द्वारा समुद्र में क्षेपण पर कृष्ण द्वारा रक्षा), २.७७.६६ (अजा मांस भक्षण पर अजा दान से पाप का क्षालन), मत्स्य ६.३३ (धर्म व सुग्रीवी -पुत्र), भविष्य ३.४.८.८९ (व्यक्त स्थिति में अहंकार उत्पन्न होने पर बुद्धि का नाम, अन्य नाम अविद्या)

टिप्पणी : सत्, रज और तम से युक्त प्रकृति अजा है। जीवात्मा रूपी एक अज इस अजा का भोग करता है। परमात्मा रूपी एक दूसरा अज निष्काम भाव से अजा को देखता रहता है -फतहसिंह ।

अजा के विषय में ब्राह्मण साहित्य को मुख्यतः दो धाराओं में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम धारा ऋग्वेद १०.९०.१० पुरुष सूक्त में प्रजापति से अश्व, गौ, अज व अवि पशुओं की उत्पत्ति से आरंभ होती है। ऐतरेय ब्राह्मण २.८ इसकी व्याख्यां का एक रूप है जहां पुरुष पशु का आलभन करने से उसका मेध क्रमशः चारों पशुओं में प्रवेश करता है। अन्य कई स्थानों जैसे शतपथ ब्राह्मण ६.२.२.१५ तथा काठक संहिता १३.१ में स्वयं अजा के विभिन्न अंगों को चारों पशुओं के रूप में चित्रित किया गया है। दूसरी धारा तैत्तिरीय आरण्यक १०.१०.१ तथा श्वेताश्वर उपनिषद आदि में प्रकट होने वाले मन्त्र अजामेकं कृष्णां इति मन्त्र की व्याख्या के रूप में है। जो इन्द्रियों या बुद्धि रूपी कपाल का रस है (शतपथ ६.१.१.११), वह अजा का रूप धारण कर सकता है। अजा सभी उपलब्ध रसों का आस्वादन कर सकती है (शतपथ ६.५.४.१६)। तप से इस रस को अन्तर्मुखी बना सकते हैं (जैमिनीय ब्राह्मण १.२९४, शतपथ ३.३.३.८)। अथर्ववेद ९.५ अज ओदन देवता का सूक्त है जो अजा शक्ति को उर्ध्वमुखी उदान प्राण बनाने से सम्बन्धित है।

अश्व, गौ, अज व अवि पशुओं में अंतर विचारणीय है। अज का श्रेष्ठ रूप एक पाद रूप में है जबकि अवि का द्विपाद रूप में। अश्विनौ देवगण के लिए अजा देने का विधान है (शतपथ १२.७.२.७) जबकि सरस्वती के लिए अवि दी जाती है। शुक्ल यजुर्वेद ३०.११ के अनुसार अज तेज से और अवि वीर्य से सम्बन्धित है। ऋग्वेद ६.५६.६ तथा १०.२६.८ में अजासः को पूषा देवता के रथ का वाहक कहा गया है। छान्दोग्य उपनिषद २.१८.१ में अजा, अवि आदि को भक्ति योग के हिंकार, प्रस्ताव आदि कहा गया है। हिंकार सूर्य की अनुदित अवस्था तथा प्रस्ताव सूर्य की उदित अवस्था का नाम है। इसके पश्चात चन्द्रमा का उदय होता है।

अजापाल स्कन्द ७.१.५८ (रघु - पुत्र, व्याधि मुक्ति हेतु क्रिया शक्ति रूपा भैरवी देवी की पूजा, अजापालेश्वरी देवी नामकरण, रावण द्वारा कर मांगने पर ज्वर का प्रेषण), स्क ७.१.२८७ (अजापालेश्वरी देवी, अजापाल द्वारा आराधना से व्याधियों पर नियन्त्रण), लक्ष्मीनारायण २.२६५.३ (पार्ष्णिरद नामक अजापालक द्वारा नर अजा शावकों की हत्या व मादा शावकों का पालन, कष्ट प्राप्ति, कृष्ण भक्त बनना); दृ. अजपाल

अजामिल भागवत ६.१+ (ब्राह्मण, नारायण-पिता, वेश्या में आसक्ति, परधाम गमन)

अजामुखी वा.रामायण ५.२४.४३ (राक्षसी, अशोकवाटिका में सीता को भय दिखाना), दृ. बर्करी

अजित भागवत ८.५.९ (वैराज व सम्भूति - पुत्र, अवतार), ८.५.२४ (ब्रह्मा द्वारा स्तुति), भा ८.७.१६ (समुद्र मंथन करना), ब्रह्माण्ड १.२.१३.९३ (देवगण, १२ नाम), ब्रड २.३.३.११४ (अवतार, मन्वन्तरों में प्राकट्य), अग्नि ३.५ (विशाखयूप तीर्थ में विष्णु का नाम), वायु ६७.३३ (जय संज्ञक ब्रह्मा के १२ पुत्रों का शापित होकर स्वायंभुव मन्वन्तर में रुचि व अजिता -पुत्र अजित गण बनना, १२ नाम)

अजिन ब्रह्माण्ड १.२.३७.२४ (हविर्धान व आग्नेयी -पुत्र), दृ. वंश पृथु

टिप्पणी : यज्ञ में कृष्णाजिन के उपयोग का उल्लेख आता है। गोपथ ब्राह्मण १.२.२ के अनुसार ब्रह्मचारी मृगाजिन से ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति करता है। जैमिनीय ब्राह्मण २.६६ के अनुसार कृष्णाजिन में जो शुक्ल भाग है वह सामों का और कृष्ण भाग ऋचाओं का रूप है। जो बभ्रु या हरित वर्ण है वह यजुओं का रूप है। द्यौ और पृथ्वी दोनों को कृष्णाजिन कहा गया है (काठक संहिता १९.४, तैत्तिरीय संहिता ५.१.४.३)। तैत्तिरीय संहिता ५.१.१०.५ इत्यादि के अनुसार कृष्णाजिन ब्रह्म

का रूप है। शतपथ ब्राह्मण ६.४.२.६ के अनुसार कृष्णाजिन अग्नि का स्व लोक है।

अजिनावती कथासरित् १४.२.३८ (देवसिंह व धनवती -पुत्री, विद्याधरी, राजा नरवाहन दत्त की भार्या बनना), १४.३.३२

अजीगर्त ब्रह्म २.८० (सुयव - पुत्र, शुनः शेप पुत्र के विक्रय पाप से पिशाच बनना, पुत्र द्वारा गंगा पर दान से मुक्ति), स्कन्द ७.१.१९१ (० लिंग माहात्म्य); दृ. ऋचीक

टिप्पणी : ब्रह्म पुराण में आया वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण ७.१५ का विस्तार मात्र है। ऋग्वेद १.२४-१.३० व ९.३ के सूक्तों के ऋषि शुनःशेप को आजीगर्तिः कहा गया है।

अजैकपाद मत्स्य ५१.२२ (अग्नि का नाम, अन्य नाम शालामुख), भागवत ६.६.१८ (भूत व सरुपा - पुत्र, एकादश रुद्रों में एक), वायु २९.२४ (उपस्थेय - शालामुखीय अग्नि), अग्नि १८.४२ (सुरभि व कश्यप - पुत्र, ११ रुद्रों में एक), भविष्य ३.४.११ (वसुशर्मा ब्राह्मण -पुत्र, मृत्यु पर विजय, रुद्र से सायुज्य, पुरीशर्मा रूप में अवतरण), हरिवंश १.३.५० (सुरभि -पुत्र), ३.५३.१९ (राहु से युद्ध), ३.५८.५३ (राहु से युद्ध), स्क ४.१.१४.४, ब्रड २.३.३.७१

अजोगन्ध स्कन्द ७.१.२९४ (० लिंग माहात्म्य, ऋतध्वज राजा द्वारा स्थापित);दृ. अजगन्ध

अज्ञान वायु १०२.६२ (निरूपण), योगवासिष्ठ ३.११७ (अज्ञान की जाग्रत, स्वप्न आदि ७ भूमिकाओं का निरूपण), योव ६.१.७ (अज्ञान द्वारा निर्मित संसार की स्थिति का वर्णन), लक्ष्मीनारायण १.१४ (ब्रह्मा से ० की सृष्टि का कथन), २.२४६.८८ (० मूलक वृक्ष का स्वरूप)

अंज लक्ष्मीनारायण ३.२०७ (नांज नामक कृष्ण भक्त द्वारा कृषकों की लुटेरों से रक्षा, कृष्ण द्वारा नांज की रक्षा)

अंजन वायु ४७.१३ (त्रैककुद ० गिरि, वृत्र काया से उत्पत्ति), ६९.२०९ (भद्रहस्ती का पुत्र, दिग्गज), अग्नि ३०० (ग्रहापहा ०), पद्म १.६ (सिंहिका -पुत्र), भविष्य ४.१८० (दिग्गज नाम), लक्ष्मीनारायण १.४४१.८५ (रक्तांजन : वह्नि का रूप), ब्रह्माण्ड २.३.७.२९२ (अंडकपाल की शक्ति से इरावती के गर्भ से जन्मा हस्ती), ब्रड २.३.७.३३० (हस्ती, यम का वाहन), विष्णु धर्मोत्तर २.१३२.२९ (नैर्ऋती शान्ति के लिए अंजनमणि के उपयोग का उल्लेख), ब्रह्मवैवर्त ४.३.१०१ (असित -पुत्र देवल का रम्भा अप्सरा के शाप से अंजनवर्ण व वक्र देह होना), कथासरित् ८.२.३५१ (अंजनिका : काल -कन्या, महल्लिका -सखी, सूर्यप्रभ -पत्नी बनना), ८.५.५३ (अंजनगिरि का राजा धूर्तवहन), १८.२.२७६ (जयवर्धन द्वारा अंजनगिरि हस्ती की प्राप्ति का उल्लेख) दृ. वृषभाजन, व्यंजन, स्वर्णांजन

टिप्पणी : अंजु धातु कान्ति अर्थ में आती है। उपनिषदों में आत्मा के स्वरूप को अंजसा जानने के उल्लेख आते हैं। अथर्ववेद ४.९ में त्रैककुद पर्वत पर उत्पन्न अंजन की महिमा का तथा १९.४४ व १९.४५ में अंजन की महिमा का गुणगान किया गया है। इन स्थानों पर अंजन केवल आंख में ही नहीं लगाया जाता, अपितु वह मणि बनाने, स्नान करने व पान करने के लिए भी प्रयुक्त होता है। चूंकि पुराणों व ब्राह्मणों में अंजन का सम्बन्ध साम या गज से भी है, अतः हो सकता है कि अंजन का सम्बन्ध भक्ति से हो।

अंजना भविष्य ३.४.१३.३२ (गौतम-पुत्री, केसरी वानर-भार्या, हनुमान जन्म कथा), वा.रामायण ४.६०.८ (पुंजिकस्थला अप्सरा का अवतार, कुंजर वानर -पुत्री, केसरी -पत्नी, हनुमान जन्म कथा) स्कन्द २.१.३९ (मतंग से वार्तालाप, पुत्रार्थ आकाशगंगा तीर्थ में तप, वायु द्वारा वरदान), ब्रह्म २.१४ (वानरी, केसरी -पत्नी, हनुमान -माता, अद्रि पिशाच द्वारा गौतमी में स्नान कराना), लक्ष्मीनारायण १.१८४ (हनुमान -माता), १.४०६ (केसरी-पत्नी अंजना द्वारा पुत्र प्राप्ति हेतु तप, वायु/शंकर के अंश से हनुमान पुत्र प्राप्ति), २.१४.२६ (कृष्ण -पत्नी अंजनी द्वारा शुक्रजीवनी राक्षसी द्वारा मोचित धूम्र का पान), शिव ३.२० (शिव वीर्य से अंजना को हनुमान पुत्र प्राप्ति कथा), ब्रड २.३.७.२२४ (केसरी -पत्नी अंजना द्वारा वायु से हनुमान को उत्पन्न करने का उल्लेख, केसरी के अन्य पुत्रों के नाम)

टिप्पणी : यद्यपि काशकृत्स्न के धातु कोश में अज धातु की व्याख्या में अंजन शब्द का उल्लेख नहीं है, लेकिन साधना का मार्ग तभी प्रशस्त होता है जब अंजना की व्युत्पत्ति अज धातु से हो। तब अंजना की साधना को अथर्ववेद ९.५ की अज पंचौदन को पकाने की साधना मान सकते हैं। अंजना व अद्रिका के सम्बन्ध के लिए अद्रिका की टिप्पणी दृष्टव्य है।

त्रैककुद अंजन को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि आनंदमय कोश, विज्ञानमय कोश व मनोमय कोश तीन ककुद हैं। आनंदमय कोश में स्थित शिव की शक्ति जब कपि रूपी मनोमय कोश में अवतरित होती है तो उससे कुरूप हनुमान का जन्म होता है जिसे अंजना पर्वत से नीचे फेंक देती है। हनुमान की साधना शिव के वीर्य को मनोमय, प्राणमय व अन्नमय कोश में अवतारित करने की साधना है। इसे दूसरा त्रैककुद कह सकते हैं।

अंजलि लक्ष्मीनारायण ३.१७८ (अयाचितांजलि : भिक्षायन मुनि -भार्या, कामना त्याग से मुक्ति), ४.३६.३० (हितांजलि मुनि द्वारा कारेलिका मार्जायित्री को कृष्ण नाम की दीक्षा)

अटस्कन्द ६.१२८ (० लिंग माहात्म्य, बृहद्बल राजा की भार्याओं को अट पुत्र प्राप्ति, निरुक्ति)

अटवी पद्म ३.२१.३१ (नर्मदा तटवर्ती तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य) द्र. भवाटवी

अट्टहास देवीभाग. ७.३८ (० क्षेत्र में महानन्दा देवी का वास), लिंग १.२४.९५ (२०वें द्वापर में मुनि), वायु २३.१९० (२०वें द्वापर में शिव अवतार), शिव ३.५.२५ (२०वें द्वापर में अट्टहास गिरि पर अट्टहास नामक शिव अवतार), स्कन्द ४.१.४५.४१ (अट्टाट्टहास : ६४ योगिनियों में से एक), स्क ४.२.७४.५० (० गण द्वारा काशी में पूर्व द्वार की रक्षा), ४.२.९७.३० (० लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य), ब्रह्मवैवर्त ३.३७.१८ (अट्टहासिनी काली से ईशान दिशा की रक्षा की प्रार्थना), कथासरित् ८.४.५६ (विद्याधर -राजा, सूर्यप्रभ -सेना से युद्ध, हर्ष द्वारा वध), कस १२.६.३३ (यक्षकुमार, नलकूबर के शाप से पृथ्वी पर पवित्रधर ब्राह्मण के रूप में जन्म, शाप से मुक्ति), १२.६.४२१ (यक्ष, प्रदीप्ताक्ष -पुत्र, दीप्तशिख -अग्रज, मनुष्य योनि में जन्मे स्व अनुज को जाति -बोध कराना)

अट्टाल स्कन्द १.२.६५.१११ (राक्षसी व उसका वध स्थान, देवी का नाम वत्सेश्वरी)

अट्टालक स्कन्द ७.१.२६९ (विदुर ०, विदुर के तप का स्थान)

अणिमा स्कन्द १.२.५५.११७ (अणिमा, लघिमा आदि ८ सिद्धियों के नाम व प्रकृति का उल्लेख; अणिमा का सूक्ष्मात्सूक्ष्म होना), २.९.२७.५० (वासुदेव पूजा विधान वर्णन के अन्तर्गत कमल के आठ दलों के मध्य अन्तरालों में सुवर्ण वर्ण वाली, मंगलवाद्यों के वादन में निपुण, आभरणों आदि से शोभित अणिमादि आठ सिद्धियों का न्यास), ३.१.३६.१९४ (महालय श्राद्ध करने से अत्रि आदि ऋषियों का अणिमादि सिद्धियां प्राप्त करने का उल्लेख), ५.१.१८.२ (एकानंशा देवी के तुष्ट होने पर अणिमादि सिद्धियों के प्राप्त होने का उल्लेख), ७.१.५२.२ (सिद्धेश्वर लिंग के दर्शन से अणिमादि सिद्धियां प्राप्त होने का उल्लेख), ब्रह्माण्ड १.२.२७.१२४ (दक्षिण मार्ग से साधना करने पर अणिमादि सिद्धियां प्राप्त होने का उल्लेख), ३.४.१९.३ (ललिता देवी के चक्रराज रथ के नवम् पर्व में स्थित अणिमादि १० सिद्धि देवियों के नाम तथा स्वरूप का कथन), ३.४.४४.१०८ (श्रीचक्र न्यास के अन्तर्गत अणिमादि १० सिद्धियों के अंस, दो:, पृष्ठ आदि में न्यास का उल्लेख), पद्म ६.१६६.५ (साभ्रमती नदी में स्नान करके पाण्डुरार्या देवी को नमस्कार करने पर अणिमादि अष्ट सिद्धियों के प्राप्त होने का उल्लेख), देवीभाग १२.६.११ (अणिमादि गुणाधारा: गायत्री सहस्रनामों में से एक), विष्णु धर्मोत्तर २.१२९.१२ (पुरुष सूक्त के जप से अणिमादि सिद्धियां प्राप्त होने का उल्लेख), वायु १३.२ (अणिमा आदि आठ ऐश्वर्यों की प्रकृति का वर्णन : योग में अणिमा के लम्बन व प्लवन रूप का उल्लेख), १०२.९७ (अणिमादि आठ ऐश्वर्यों का ब्रह्मा से लेकर पिशाचान्त आठ स्थानिक देवों से तादात्म्य का उल्लेख), ब्रह्म १.१३३.१५ (ईश्वर के विराट रूप/पुरुष सूक्त के संदर्भ में अणिमा आदि का उल्लेख), शिव ७.२.३८.१८ (योग में पार्थिव/पैशाच, आप्य, आनल, मारुत, ऐन्द्र/आम्बर, चान्द्रमस, प्राजापत्य, ब्राह्म व वैष्णव ऐश्वर्यों के लक्षणों का वर्णन), ब्रह्मवैवर्त १.६.१८ (१८ सिद्धियों के अन्तर्गत अणिमादि ८ सिद्धियों का उल्लेख), ४.४.६३ (विष्णु का अणिमादि सिद्धियों के कारण के रूप में उल्लेख), ४.७८.३३ (अणिमादि सिद्धियां प्रदान करने वाले ऊं सर्वेश्वरेश्वर ---मधुसूदनाय स्वाहा मन्त्र का उल्लेख), भागवत ११.१५.४ (धारणा योग से प्राप्त होने वाली १८ सिद्धियों के अन्तर्गत अणिमादि ८ सिद्धियों तथा उनकी प्राप्ति के साधनों का वर्णन), लिंग १.९.२३ (पैशाच/पार्थिव, आप्य/राक्षस, याक्ष/तैजस, गांधर्व/वायु, ऐन्द्र/व्योम, सौम्य/मानस, प्राजापत्य / अहंकार, ब्राह्म/बोध नामक आठ सिद्धियों के लक्षणों का वर्णन), १.८८.९ (अणिमा आदि ८ ऐश्वर्यों के सावद्य, निरवद्य व सूक्ष्म नामक तीन भेदों का वर्णन, ८ ऐश्वर्यों का शिव की आठ मूर्तियों से तादात्म्य?, आठ ऐश्वर्यों की प्रकृति का वर्णन), २.२७.१०१ (अणिमा, लघिमा आदि व्यूह वर्णन, शिव अभिषेक प्रसंग), योगवासिष्ठ ६.१.८२ (अणिमा आदि सिद्धि में कुण्डलिनी जागरण का महत्व), वा.रामायण ५.१.१ (हनुमान द्वारा लंका गमन हेतु समुद्र पार करते समय अणिमा, लघिमा आदि सिद्धियों का उपयोग करना)

टिप्पणी : छान्दोग्य उपनिषद में ६.५.१ से ६.१२.१ तक अणिमा आदि सिद्धियों की विभिन्न उदाहरणों द्वारा व्याख्या की गई है।

अणु ब्रह्माण्ड ३.४.२.११७ (परमाणु से आरंभ करके स्थूलता के परिमाणों का वर्णन), योगवासिष्ठ ३.७.९.२ (चिदणु के सम्बन्ध में कर्कटी का राजा से प्रश्न), ६.२.१४+ (अहंकार समाप्त होने पर जगत का परमाणुवत् भासित होना), भागवत ३.११.५ (परमाणु अणु त्रसरेणु के आपेक्षिक परिमाणों का

कथन), स्कन्द १.१.६.४ (पुराणों के सार्वत्रिक श्लोक अणोरणीयान् महतोमहीयान् इत्यादि का उल्लेख)

टिप्पणी : वैशेषिक दर्शन ७.१.२३ के अनुसार विभुत्व के अभाव से मन अणु है। मैत्रायणी उपनिषद ७.११ में हृदय में खजाग्नि? के संयोग से एक अणु, कण्ठदेश में दो अणु तथा जिह्वाग्र देश में तीन अणु होने का उल्लेख है।

अणुह मत्स्य ४९.५७ (विभ्राज-पुत्र, कृत्वी -पति, ब्रह्मदत्त -पिता), भागवत ९.२१.२४ (नीप नाम, कृत्वी -पति), मत्स्य २१.११(पुत्र प्राप्ति हेतु तप, ब्रह्मदत्त पुत्र प्राप्ति), देवीभाग. १.१९.४२ (शुक -पुत्री कीर्ति से विवाह), हरिवंश १.१८.५३ (वही)

अण्ड ब्रह्माण्ड २.३.७.२९० (इरावती द्वारा अण्डकपाल धारण से ४ दिग्गजों की उत्पत्ति), ३.४.२.२२४ (परम अण्ड की व्योम में स्थिति), ब्रह्म १.२.२२.४६ (अण्डकपाल : मेघों का रूप), लिंग १.२०.८० (अण्डकपाल : द्यौ व पृथ्वी की उत्पत्ति), कूर्म १.४.३९ (हिरण्यगर्भ रूपी), वायु ४.८० (हिरण्यगर्भ -रूपी ०), विष्णु १.२.५४ (भूतों के संघात से ० उत्पत्ति, विष्णु का ० में विराजमान होना), ब्रह्मवैवर्त २.२.५०+ (कृष्ण वीर्य से ब्रह्माण्ड उत्पत्ति), भागवत ३.२० (उत्पत्ति, भगवान का प्रवेश, सृष्टि का आरंभ), स्कन्द ५.१.२.६ (महाकाल द्वारा हस्त मन्थन से उत्पत्ति), मत्स्य २.२९ (बीज रूप अण्ड से ब्रह्माण्ड का प्राकट्य), २४८.१८ (वही)भविष्य १.२.२१ (ध्यान में अण्ड के द्वैधा विभाजन से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति), १.४७.२ (सूर्य/मार्तण्ड का संज्ञा से विवाह, यम -यमी आदि सन्तान उत्पत्ति से लेकर तक्षा द्वारा तेज कर्तन तक सारे कार्य अण्डस्थ स्थिति में), ४.२.१६ (अण्ड के छिन्न होने पर अण्ड -अवयवों से ब्रह्माण्ड के विभिन्न अवयवों की उत्पत्ति), शिव २.१.१५ (चतुर्विंशात्मक अण्ड की चैतन्यता हेतु ब्रह्मा का तप, विराट विष्णु का अण्ड में प्रवेश), अग १७, ब्रह्मांड १.२.२१.२०, लक्ष्मीनारायण २.१२.२४ (दमन असुर के प्रचण्ड, कूष्माण्ड आदि अण्ड प्रत्यय वाले सेनानी), २.१४० (अण्डों की संख्याओं के अनुसार प्रासादों के नाम), लन २.२२० (आण्डजरा राजा : अन्तः प्राक् नगरी में कृष्ण का स्वागत), ३.३१.१ (अण्डज वत्सर में अजहारित ऋषि द्वारा राजा को शाप से अश्व बनाना, अश्वमेध से राजा की अश्व योनि से मुक्ति का वृत्तांत), कथासरित् १.२.१५ (शिव द्वारा ऊरु में रक्त बिन्दु निपात से अण्ड की उत्पत्ति, अण्ड से पुरुष व सृष्टि की उत्पत्ति), द्र. ब्रह्माण्ड, मुद्राण्ड, विभाण्डक, वैभाण्डकि

टिप्पणी : तैत्तिरीय आरण्यक ३.११.४ के अनुसार अण्डकोश में भुवन छिपा हुआ है। सूत्रात्म शरीर को प्राण वायु गर्भ के जरायु की भांति घेरे हुए है। यह सुवर्णकोश रजस से आवृत है। शतपथ ब्राह्मण ६.१.२.१ में अण्ड के क्रमिक विकास का वर्णन किया गया है। प्रजापति सर्वप्रथम अग्नि द्वारा पृथिवी के साथ मिथुन करके अण्ड उत्पन्न करते हैं, फिर वायु द्वारा अन्तरिक्ष के साथ, फिर आदित्यों द्वारा दिव के साथ। शतपथ ब्राह्मण ११.१.६.१ के अनुसार जब तक अण्ड का भेदन नहीं होता, तब तक संवत्सर का दर्शन नहीं हो सकता। त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद २.५९ के अनुसार मनुष्य के कन्दस्थान की आकृति अण्डाकार है जिसमें नाभि और चक्र आदि स्थित हैं। योगकुण्डल्योपनिषद ३.२३ के अनुसार अण्ड को ज्ञानाग्नि से तप्त करके कारण देह में प्रवेश किया जा सकता है।

अतिकाय वा.रामायण ६.५९.१६(रावण सेनानी, स्वरूप), ६.७१ (रावण व धान्यमालिनी -पुत्र, राहु चिन्ह युक्त ध्वज, लक्ष्मण द्वारा वध)

अतिथि भागवत ६.७.३० (अतिथि धर्म की व अभ्यागत अग्नि की मूर्ति), भा ९.१२.१ (कुश -पुत्र, निषध -पिता), भा ९.२१ (रन्तिदेव की आतिथ्य पराकाष्ठा), स्कन्द २.४.३२.५४ (अयोध्या में अतिथि नामक नृप द्वारा भीष्मपंचक व्रत का पालन), ४.१.३८.३२ (० आगमन काल व ० महिमा), ६.१८४ (बौद्ध -पुत्र, ब्रह्मा के यज्ञ में आगमन, पिंगला आदि गुरुओं से शिक्षा कथन, तुलना : भागवत में दत्तात्रेय -निमि संवाद), स्क ६.१८५ (० तीर्थ, उत्पत्ति, माहात्म्य, ब्रह्मा के यज्ञ में आए अतिथि द्वारा स्थापित), ६.१८६ (० माहात्म्य), ब्रह्माण्ड २.३.१५.८ (श्राद्ध में अतिथि सेवा महिमा), विष्णु धर्मोत्तर ३.२८९ (० पूजा महिमा, हंस प्रोक्त), लिंग १.२९ (अतिथि सेवा महत्व, सुदर्शन विप्र द्वारा भार्या समर्पण), वायु ७९.१३ (महिमा), विष्णु ३.११.५८ (० महिमा), लक्ष्मीनारायण १.५१०.४२ (कृष्ण नारायण रूपी अतिथि द्वारा कुररी आदि से शिक्षा ग्रहण कथा, तु. दत्तात्रेय-निमि संवाद), ब्रह्माण्ड १.२.३६.६९ (षष्ठम चाक्षुष मन्वन्तर में आद्य नामक देवगण के अन्तर्गत एक देव), पद्म ७.२५ (अतिथि सेवा माहात्म्य : लोमश द्वारा अनपत्य पति व पवित्र नामक ब्राह्मणों को ज्ञानभद्र योगी की अतिथि सेवा का दृष्टांत कथन, पवित्र द्वारा मूषक की हत्या), भविष्य १.१८८ (०माहात्म्य), लक्ष्मीनारायण १.४४२.२९ (सुयज्ञ राजा द्वारा अतिथि सुतपा ऋषि का अनादर, शाप प्राप्ति ; अतिथि महिमा कथन), २.२४६.२९ (अतिथि : इन्द्रलोक का स्वामी), ३.४१.९० (अतिथि : आग्नेय पितरों का रूप), महाभारत शान्ति २२१.१४ (अतिथि को भोजन देने का महात्म्य),

२९२.६ (अतिथि सेवा का माहात्म्य), ३५३+ (अतिथि द्वारा ब्राह्मण को स्वर्ग के विभिन्न मार्गों का कथन, अतिथि द्वारा नागराज पद्मनाभ के सदाचार व सद्गुणों का वर्णन और ब्राह्मण को उसके पास जाने की प्रेरणा देना), अनुशासन २.४२ (अग्नि -पुत्र सुदर्शन द्वारा अतिथि सत्कार रुपी धर्म के पालन से मृत्यु पर विजय पाने का वृत्तांत), आश्वमेधिक ९२ दाक्षिणात्य पृष्ठ ६३२९ (अतिथि सेवा का माहात्म्य);

टिप्पणी : साधना काल में शक्तियों का अवतरण अतिथि रूप में ही होता है -फतहसिंह

ऋग्वेद में जिन ऋचाओं में अतिथि शब्द आया है, वह अधिकांश रूप में अग्नि अतिथि के लिए है। दुरोण? में स्थित अतिथि को श्रेष्ठ माना जाता है। अथर्ववेद ९.६ से ९.११ सूक्तों में अतिथि की महिमा का वर्णन किया गया है और यही सूक्त पुराणों में अतिथि महिमा वर्णन के आधार प्रतीत होते हैं। ऋग्वेद में कुछ राजाओं को अतिथिग्व , अतिथियों का सत्कार करने वाला, संज्ञा दी गई है। ब्राह्मण ग्रन्थों जैसे मैत्रायणी संहिता ३.७.९ में आतिथ्य को यज्ञ का शीर्ष कहा गया है। यज्ञ के शीर्ष को कर्मकाण्ड में उपसद रूपी ग्रीवा पर स्थापित करते हैं। उपसद अहोरात्र, पक्ष, मासों आदि का प्रतीक है। शब्दकल्पद्रुम में उद्धृत व्याकरण के अनुसार अतिथि वह है जिसे चन्द्रमा की कला प्रभावित न करे।

अतिनामा मत्स्य ९.२३ (षष्ठम चाक्षुष मन्वन्तर में सप्तर्षियों में एक)

अतिबल वायु ६२.१८८ (विश्वावसु गन्धर्व - पिता?), कथासरित् ८.७.२५ (सूर्यप्रभ -श्रुतशर्मा विद्याधर युद्ध प्रसंग में सर्वदमन द्वारा अतिबल का वध)

अतिबला मत्स्य १७९.१२ (अन्धकासुर का रक्त पान करने के लिये शिव द्वारा सृष्ट मातृकाओं में से एक), वा.रामायण १.२२.१३ (भूख-प्यास का शमन करने वाली विद्या, विश्वामित्र द्वारा राम को प्रदान),

अतिरात्र ब्रह्माण्ड २.३.५.४ (कश्यप के अश्वमेध में अतिरात्र में सौत्य अह में हिरण्यकशिपु का जन्म), वायु ६७.५० (वही), स्कन्द ७.१.२० (वही), मार्कण्डेय ७०.४ (बलाक राक्षस द्वारा अपहृत ब्राह्मणी के पिता का नाम), मत्स्य ४.४२ (चाक्षुष मनु व नड्वला -पुत्र, ध्रुव वंश), म ४४.६५ (दर दुन्दुभि के पुत्रेष्टि/अश्वमेध यज्ञ में अतिरात्र में पुनर्वसु पुत्र का प्राकट्य), वायु ९.५१ (ब्रह्मा के पश्चिम दिशा के मुख से सृष्ट यज्ञ), भागवत ४.१३.१५ (चाक्षुष मनु व नड्वला -पुत्र), लक्ष्मीनारायण २.१५७.३२ (अंगन्यास में अतिरात्र का अण्डों/वृषणों में न्यास), विष्णु धर्मोत्तर १.१५९.६ (फाल्गुन मास में गोविन्द की पूजा से अतिरात्र फल की प्राप्ति का उल्लेख), ३.३४१.२८७ (श्री हरि को धूप निवेदन से अतिरात्र फल की प्राप्ति का उल्लेख), पद्म ३.२४.९ (प्रभास तीर्थ में स्नान से अतिरात्र फल की प्राप्ति), ३.२६.१० (पारिप्लव तीर्थ में गमन से अतिरात्र फल की प्राप्ति), ३.२७.४२ (सरस्वती-अरुणा संगम में स्नान से अतिरात्र फल की प्राप्ति), ३.३२.१५ (कार्तिक-माघ तीर्थ में आगमन से अतिरात्र फल की प्राप्ति), महाभारत उद्योग १४१.४३ (समर रुपी यज्ञ में घटोत्कच द्वारा रात्रि में युद्ध की अतिरात्र में शामित्र कर्म से तुलना), अनुशासन १०६.४० (एक वर्ष तक एकाहार व्रत करने से अतिरात्र फल की प्राप्ति का उल्लेख), १०७.१७ (एक वर्ष तक तीसरे दिन एक समय भोजन व नित्य अग्नि कार्य करने पर अतिरात्र यज्ञ के फल की प्राप्ति का उल्लेख)

टिप्पणी : रात्रिकाल में सतत् जागरण कितना कठिन कार्य है,- यह साधकों को ज्ञात है। जैमिनीय ब्राह्मण २.३६३ में ६ पापों और उनके नाश के लिए ६ अतिरात्रों की कल्पना की गई है। ६ पापों के अन्तर्गत स्वप्न, तन्द्रा, मन्यु, अशना, अक्षकामना और स्त्रीकामना की गणना की गई है। अतिरात्र की गणना सोम संस्था वाले ७ क्रतुओं के अन्तर्गत की जाती है। इनमें आरंभ में अग्निष्टोम यज्ञ होता है। आश्वलायन श्रौत सूत्र ६.७.७ के भाष्य के अनुसार यदि अग्निष्टोम के तृतीय सवन में सोम का अतिरेक हो तो उक्थ्य क्रतु करे, यदि उक्थ्य क्रतु में सोम का अतिरेक हो तो षोडशी यज्ञ करे, यदि षोडशी में सोम का अतिरेक हो तो अतिरात्र करे, यदि अतिरात्र में सोम का अतिरेक हो तो अप्तोर्याम करे। अतिरात्र के सम्बन्ध में ब्राह्मण ग्रन्थों में अग्निष्टोम, उक्थ्य, व षोडशी का उल्लेख प्रायः आता है, अतः इनको अच्छी प्रकार समझने की आवश्यकता है। जैमिनीय ब्राह्मण २.१२१ के अनुसार अग्निष्टोम यज्ञ आदित्यों की त्वरित गति वाली साधना है जबकि उक्थ्य यज्ञ अंगिरसों की क्रमिक, मंदगति वाली साधना है। आपस्तम्ब श्रौत सूत्र १४.१.१ के अनुसार पशुओं की कामना के लिए उक्थ्य, वीर्य की कामना के लिए षोडशी, प्रजा या पशु की कामना के लिए अतिरात्र का तथा सब कामों की प्राप्ति के लिए अप्तोर्याम अतिरात्र का अनुष्ठान करे। मैत्रायण्युपनिषद ६.३६ के अनुसार अग्निहोत्र से स्वर्ग पर जय प्राप्त होती है, अग्निष्टोम से यमराज्य पर, उक्थ्य से सोमराज्य पर, षोडशी से सूर्य राज्य पर, अतिरात्र से स्वाराज्य पर तथा सहस्र संवत्सरान्त क्रतु से प्राजापत्य राज्य पर। तैत्तिरीय संहिता १.६.९.१ के अनुसार अतिरात्र अमावास्या, चेतना के असीमित विस्तार की भांति है। गोपथ ब्राह्मण २.१.१२ में अमावास्या को सरस्वती व पूर्णिमा को सरस्वान कहा गया है। ऋग्वेद ७.१०३.७ में अतिरात्र में सोम से पूर्ण सरोवर के निकट बोलने वाले ब्राह्मणों की तुलना मण्डूकों से की गई है। ब्राह्मण ग्रन्थों में सार्वत्रिक रूप से अतिरात्र की देवता सरस्वती या वाक् को कहा गया है (उदाहरण के लिए आपस्तम्ब श्रौत सूत्र

१२.१८.१३, शतपथ ४.२.५.१४; तुलनीय : पद्म पुराण में सरस्वती-अरुणा संगम में स्नान से अतिरात्र फल की प्राप्ति)। साथ ही अग्निष्टोम के देवता अग्नि, उक्थ्य के देवता इन्द्राग्नि तथा षोडशी के देवता इन्द्र का उल्लेख आता है। कात्यायन श्रौत सूत्र ९.३.१६ के अनुसार षोडशी ललाट जैसे है जबकि अतिरात्र छत की भांति। जैमिनीय ब्राह्मण २.२०४ में अतिरात्र को शिर पर केश की भांति कहा गया है। जैमिनीय ब्राह्मण २.१९० के अनुसार अग्निष्टोम ऐसे हैं जैसे महावृक्ष पर चढ कर अवरोहण करने का उपाय पता न हो। अतिरात्र इस महावृक्ष से अवरोहण का उपाय है।

अतिरात्र का अन्य मुख्य वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों में संवत्सर रूप वाले यज्ञों में मिलता है। षडविंश ब्राह्मण ५.२.१ के अनुसार सहस्र संवत्सर सत्र का लघु रूप २४ दिनों वाले गवामयन सत्र (संवत्सर के २४ पक्षों का प्रतीक) में होता है, गवामयन का लघुरूप १२ दिनों वाला द्वादशाह यज्ञ (१२ मासों का प्रतीक) होता है, द्वादशाह का लघु रूप अतिरात्र, अतिरात्र का षोडशी, षोडशी का उक्थ्य, उक्थ्य का अग्निष्टोम, अग्निष्टोम का इष्टि पशुबन्ध तथा इष्टि पशुबन्ध का अग्निहोत्र होता है। इन यज्ञों में से मुख्य रूप से गवामयन (?) तथा द्वादशाह के दिवसों में प्रथम और अंतिम दिन अतिरात्र का होता है, इन २ दिनों के बीच अग्निष्टोम के २ दिन होते हैं तथा उनके बीच उक्थ्य आदि होते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में पुनः-पुनः यह कहा गया है (उदाहरण के लिए जैमिनीय ब्राह्मण २.४५) कि द्वादशाह आदि क्रतुओं में प्रथम दिन का अतिरात्र प्रायणीय तथा अंतिम दिन का उदयनीय होता है। प्रायणीय अतिरात्र मनुष्य के पादों जैसा है (शतपथ १२.१.४.१)। जैमिनीय ब्राह्मण ३.१७५ के अनुसार प्रायणीय अतिरात्र रथवत् है। इस प्रायणीय अतिरात्र में अग्नि ऊर्ध्व दिशा में प्रयाण या गमन करता है और ज्योति का रूप धारण करता है। यह संवत्सर के १३वें मास जैसा है (जैमिनीय ब्राह्मण ३.३८६)। दूसरी ओर, उदयनीय अतिरात्र मनुष्य के हस्त जैसा है। यह १३वें अतिरिक्त मास के पश्चात (२४ पक्षों वाले ?) संवत्सर के प्रकट होने जैसा है। प्रायणीय अवरोधन है जबकि उदयनीय उद्रोधन है (ऐतरेय ब्राह्मण ४.१४)। प्रायणीय अतिरात्र प्राण है, जबकि उदयनीय अपान अथवा उदान (ऐतरेय ब्राह्मण ४.१४, जैमिनीय ब्राह्मण ३.३१९, तैत्तिरीय संहिता ७.५.१.३ आदि)। एक सूर्य है तो दूसरा चन्द्रमा। तैत्तिरीय संहिता ७.५.१.३ के अनुसार जो पूर्व अतिरात्र है, वह मन जैसे है, जो उत्तर अतिरात्र है वह वाक् जैसे है। यह वाक् किस प्रकार की है, यह मत्स्य पुराण में अश्वमेध के अन्तर्गत अतिरात्र में दर दुन्दुभि राजा के उल्लेख से समझी जा सकती है। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३१९ के अनुसार श्रोत्र से ऊपर का भाग उत्तर अतिरात्र है। ब्रह्माण्ड आदि पुराणों में अश्वमेध के अन्तर्गत अतिरात्र में हिरण्यकशिपु के जन्म की व्याख्या निम्नलिखित प्रकार से की जा सकती है। तैत्तिरीय संहिता ६.१.७.५ आदि का कथन है कि अदिति प्रायणीय है, अदिति उदयनीय है। यह दो शीर्षों वाली है। जब अदिति का रूप प्रायणीय होगा तो पृथिवी पर स्थित होकर जो कुछ उपलब्धि की जा सकती है, जैसे ५ दिशाओं पर विजय, ओषधि, वनस्पतियों पर विजय, चेतना को असीमित बनाना आदि, वह सब करने से अदिति/अखण्डित शक्ति का रूप प्राप्त होगा। जब अदिति का रूप उदयनीय होगा तो अदिति का कार्य आदित्य रूपी पुत्र को जन्म देना होगा। ब्रह्माण्ड पुराण आदि में अदिति के स्थान पर कश्यप व दिति/खण्डित शक्ति के यज्ञ का उल्लेख है। ऐसी स्थिति में हिरण्यकशिपु के जन्म की अपेक्षा की जा सकती है। पुराणों का यह सार्वत्रिक उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थों में अश्वमेध के वर्णन के अन्य किस पक्ष की व्याख्या प्रस्तुत करता है, यह अन्वेषणीय है। शतपथ ब्राह्मण १३.५.४.४ में अश्वमेध के अंतर्गत अभिजित् अतिरात्र, विश्वजित अतिरात्र, महाव्रत अतिरात्र व अप्तोर्याम अतिरात्रों के नाम आए हैं जिनका अलग-अलग नाम वाले राजा सम्पादन करते हैं। अश्वमेध के संदर्भ में अतिरात्र को प्रायः सर्वस्तोम अतिरात्र कहा जाता है, अर्थात अग्निष्टोम आदि से तो विशेष-विशेष फल की प्राप्तियां होती हैं, जबकि सर्व स्तोम अतिरात्र से इन सभी फलों की प्राप्ति हो जाती है। जैमिनीय ब्राह्मण २.२७५ में पंचदश अतिरात्र को क्षत्रिय से सम्बन्धित अतिरात्र कहा गया है। जैमिनीय ब्राह्मण २.२८० में सप्तदश अतिरात्र को प्रजापति का अश्वमेध तथा एकविंश अतिरात्र को आदित्य का अश्वमेध कहा गया है। प्रजापति पिता हैं, आदित्य पुत्र है।

ऐतरेय ब्राह्मण ४.२३ व जैमिनीय ब्राह्मण ३.९ में द्वादशाह की कल्पना एक ज्योतिष्पक्षा गायत्री पक्षिणी के रूप में की गई है जो उड़कर स्वर्ग से सोम लाती है। द्वादशाह के दो अतिरात्र इसके २ पक्ष हैं, इन दो दिनों के अंदर अग्निष्टोमों के २ दिन इसके २ चक्षु हैं; जो आठ मध्य दिन हैं वह उक्थ्य या आत्मा है, वह गायत्री है। तैत्तिरीय संहिता ७.२.९.३ में अतिरात्र-द्वय को यज्ञ के चक्षु द्वय तथा अग्निष्टोम-द्वय को चक्षुओं के अंदर कनीनिका द्वय कहा गया है।

पद्म पुराण में पारिप्लव आदि तीर्थों में गमन मात्र से अतिरात्र यज्ञ के फल की प्राप्ति के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण १२.२.१.१ तथा जैमिनीय ब्राह्मण २.३१५ आदि में अतिरात्र की कल्पना एक तीर्थ के रूप में की गई है जिसके द्वारा समुद्र को पार करते हैं/समुद्र में स्नान करते हैं।

अत्रि भागवत ४.१ (ऋक्ष पर्वत पर तप, त्रिदेवों से तीन पुत्र प्राप्ति), भा ४.१९ (पृथु के अश्वमेध यज्ञ के आचार्य, अश्व प्राप्ति उद्योग), स्कन्द १.२.५२.१७ (कोटि तीर्थ में अत्रि द्वारा अत्रीश्वर लिंग स्थापना), स्क ३.१.४९ (रामेश्वर -स्तुति), ३.२.२३ (ब्रह्मा के सत्र में होता), स्क ४.१.१८.१६ (० द्वारा स्थापित अत्रीश्वर लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य), स्क ४.१.१९.११० (० द्वारा ध्रुव को परम पद प्राप्ति हेतु गोविन्द की आराधना का निर्देश), स्क ४.२.९७.१२ (अत्रीश्वर लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य), स्क ५.१.२४ (दुष्ट चरित्र अग्निशर्मा को बोध से उसका वाल्मीकि बनना), स्क

५.३.१०३ (एरण्डी संगम माहात्म्य : अत्रि व अनसूया द्वारा त्रिदेवों की पुत्र रूप में प्राप्ति), स्क ६.५ (त्रिशंकु के यज्ञ में नेष्टा), ६.३२ (हेम पूर्ण उदुम्बर प्राप्ति पर प्रतिक्रिया), ६.१८० (ब्रह्मा के यज्ञ में प्रस्थाता), स्क ७.१.२० (दस भार्याओं व पुत्रों के नाम, भद्रा पत्नी से सोम का जन्म, स्व तप से उत्पन्न तेज से सोम का जन्म), स्क ७.१.२५५ (हेमपूर्ण उदुम्बर प्राप्ति व बिस चोरी पर प्रतिक्रिया), पद्म १.१९.२४३ (हेमपूर्ण उदुम्बर प्राप्ति पर प्रतिक्रिया), १.३४ (ब्रह्मा के यज्ञ में सुब्रह्मण्य), ५.१० (राम के अश्वमेध में दक्षिण द्वार पर स्थिति), मत्स्य २३ (तप, तेज से चन्द्रमा की उत्पत्ति), २३.२० (चन्द्रमा के राजसूय में होता), म ११८+ (० आश्रम वर्णन, पुरुरवा का आगमन व तप), १९७ (वंश, गोत्र वर्णन), देवीभाग. १.३.३१ (१९वें द्वापर में व्यास), ब्रह्माण्ड १.१.५.७५ (ब्रह्मा के श्रोत्र से प्राकट्य), २.३.८.७३ (० वंश वर्णन), लिंग १.२४.५६ (१२वें द्वापर में मुनि), लि १.६३.६८ (१० पत्नियों के नाम, प्रभाकर उपनाम प्राप्ति कारण), कूर्म १.२०.४१ (वसुमना राजा को मुक्ति उपाय कथन), वायु ३४.६२ (० द्वारा कमल की मेरु कर्णिका को शताश्रि रूप मानना), ७०.६७ (भद्रा आदि १० पत्नियों के नाम, वंश वर्णन), ९० (० के तपोद्भूत तेज से सोम की उत्पत्ति कथा), विष्णु १.११.४४ (ध्रुव को परमपद प्राप्ति उपाय कथन), ब्रह्मवैवर्त १.८.२४ (० की ब्रह्मा के दक्षिण नेत्र से उत्पत्ति), १.२२.१५ (निरुक्ति), ब्रह्माण्ड २.३.६५.१ (सोमरूप), ३.४.४४.५३ (लिपि न्यास प्रसंग में एक व्यंजन के देवता), मार्कण्डेय १७ (सोम आदि तीन पुत्र जनन), विष्णु धर्मोत्तर १.२५ (दुर्वासा आदि पुत्र), विध १.११३ (गोत्रकार), १.१५१ (पुरुरवा द्वारा ० आश्रम दर्शन), १.१५४ (पुरुरवा को दर्शन), हरिवंश १.२५ (० तप, तेज से सोम उत्पत्ति प्रसंग), शिव ३.५.६ (१२वें द्वापर में शिव का अत्रि रूप में जन्म), ३.१९ (दुर्वासा आदि तीन पुत्र प्राप्ति), ४.३ (अनावृष्टि में तप), ७.२.४.५२ (त्रिनेत्र शिव का रूप), लक्ष्मीनारायण १.७९ (० तप से उत्पन्न तेज से सोम की उत्पत्ति), १.४८३ (त्रिदेवों की पुत्र रूप में प्राप्ति कथा), भविष्य ३.४.१७.६७ (वही), ३.४.२१.१४ (कलियुग में ० का कण्व -पौत्रों के रूप में जन्म), ब्रह्म २.७४ (अत्रि -पुत्री आत्रेयी की कथा), द्र. आत्रेय, आत्रेयी, स्वस्त्यात्रेय

टिप्पणी : जब तक हम मनोमय कोश तक सीमित रहते हैं, तब तक हमारी चेतना के तीन रूप होते हैं - भावनामय, क्रियामय और ज्ञानमय। मनोमय से ऊपर उठने पर, विज्ञानमय कोश में पंहुचने पर चेतना सिमट का एकाकार हो जाती है। वही अ + त्रि = अत्रि है। अत्रि को सबका अत्ता (खाने वाला) भी कहा जाता है और उसकी निष्पत्ति अद् धातु से की जाती है। - फतहसिंह

ऋग्वेद के पांचवें मण्डल के ऋषि अत्रि व उनके पुत्र हैं। अत्रि ऋषि की प्रकृति को समझाने के लिए वैदिक व पौराणिक साहित्य में विभिन्न प्रयास किए गए हैं। महाभारत अनुशासन पर्व ९३.८२ में अत्रि अपने नाम की निरुक्ति करते हुए कहते हैं कि जो अरात्रि है, वही अत्रि है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से परे तुरीया अवस्था को अरात्रि कह सकते हैं। तब यह तीन से परे की अवस्था अत्रि कहलाएगी। पुराणों में अरात्रि की इस अवस्था की व्याख्या अत्रि -पत्नी अनसूया के रूप में की गई है। अनसूया अर्थात अन् - असूया। अत्रि को तुरीयावस्था से सम्बन्धित करने की कल्पना की पुष्टि ऋग्वेद ५.४१.६ की ऋचा से होती है जहां अत्रि तुरीय ब्रह्म द्वारा राहु/स्वर्भानु से विद्ध सूर्य को प्राप्त करते हैं।

अत्रि ऋषि की एक निरुक्ति शतपथ ब्राह्मण १.४.५.१३ में की गई है जिसका निहितार्थ विचारणीय है। यहां प्रजापति द्वारा मन और वाक् के बीच मन को श्रेष्ठ घोषित करने पर वाक् के गर्भ का पतन हो जाता है जो अत्रि बनता है। चूंकि वाक् मुख से निकलती है, अतः अत्रि को मुख से सम्बन्धित माना गया है जो सर्व प्रकार के अन्न का भक्षण करता है।

जैमिनीय ब्राह्मण २.२१९ में अत्रि व अन्य ऋषियों की प्रकृति की व्याख्या के प्रयास में कहा गया है कि अत्रि की कामना है कि उनकी प्रजा भूयिष्ठ हो। गोपथ ब्राह्मण १.२.१७ इत्यादि में उल्लेख है कि राहु द्वारा ग्रस्त सूर्य की रक्षा केवल अत्रि ही कर पाए, जिसके बदले में उन्होंने अपनी प्रजा को दक्षिणा प्राप्ति का अधिकार दिलाया। अतः यज्ञ में सर्वप्रथम आत्रेय को हिरण्य दिया जाता है।

जैमिनीय ब्राह्मण २.२८१ के अनुसार पहले चार (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय व विज्ञानमय कोश?) मिथुन हैं। यह बृहद् और रथन्तर (बहिर्मुखी व अंतर्मुखी चेतना?) के दिव्य मिथुन हैं। पांचवें हिरण्यय कोश का मिथुन नहीं होता। अत्रि की कामना है कि यह चार कोश वीर बन जाएं। वही वीर है जो आत्मा के वीर्य के अनुदिश वीर है।

ऋग्वेद ५.४० में अत्रि द्वारा राहु/स्वर्भानु से विद्ध सूर्य की रक्षा करने का उल्लेख है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इस आख्यान का सार्वत्रिक उल्लेख है (जैमिनीय ब्राह्मण १.८०, शतपथ ४.३.४.२१, ताण्ड्य ब्राह्मण ६.६.८ व १४.११.१५ इत्यादि)। इस आख्यान में अत्रि द्वारा सूर्य से तम का अपाहन करने पर प्रथम बार कृष्णा अवि, दूसरा बार धूम्रा अवि और तीसरी बार फल्गु अवि की उत्पत्ति हुई। ताण्ड्य ब्राह्मण १४.११.१५ के अनुसार यज्ञ में जिन दिनों को छन्दोम कहा जाता है वही तम का रूप हैं। यहां जिस अवि का उल्लेख है, उसकी व्याख्यां उपनिषदों में अविमुक्त/वाराणसी के रूप में की गई है। जाबालोपनिषद २ व ५ तथा रामोत्तरतापिन्युपनिषद ३.१ में उल्लेख है कि अत्रि ने याज्ञवल्क्य से अनन्त, अव्यक्त, परिपूर्णानन्द आत्मा को जानने का उपाय पूछा। याज्ञवल्क्य ने उन्हें उत्तर के

रूप में अविमुक्त क्षेत्र की महिमा के रूप में असि और वरणा नदियों के बीच भूमध्य में स्थित वाराणसी की महिमा बताई।

ऋग्वेद १.११६.८ इत्यादि में असुरों द्वारा ऋबीस? में बद्ध अत्रि की अश्विनौ द्वारा रक्षा करने का उल्लेख है। ऋग्वेद १.११२.७, १.११८.७ तथा १.१८०.४ इत्यादि के उल्लेख के अनुसार अत्रि जिस घर्म से परितप्त हो रहे थे, अश्विनौ ने उस घर्म को ओमान, मधुमान बना दिया, अथवा उसे शीतल बना दिया (घर्म का एक रूप मनुष्य के अन्दर सर्वदा सुनाई देने वाली घृं प्रकार की ध्वनि है। वह ओम का रूप बन जाए, यह अभीष्ट है)।

ऋग्वेद की ५.७.८ इत्यादि कई ऋचाओं में अग्नि से अत्रिवत् होकर आने की कामना की गई है। जैसे अत्रि सब कुछ भक्षण कर जाते हैं, वैसे ही अग्नि भी सब कुछ भक्षण कर जाती है।

अथर्वा भागवत ३.२४.२४ (ऋषि, कर्दम - पुत्री शान्ति से विवाह), ४.१.४१ (चित्ति -पति, दध्यंग/अश्वशिरा पुत्र प्राप्ति), ब्रह्माण्ड १.२.१२.९ (लौकिक अग्नि, दध्यंग अथर्वण नाम प्राप्ति कारण कथन), वायु २९.८ (वही)

टिप्पणी : आत्मा के दो रूप हैं - पिता और पुत्र या गुरु और शिष्य। अहंकार को धारण करने वाला मन पुत्र है और उससे सूक्ष्म अथर्वा पिता। अथवा मनोमय कोश का आत्मा शिष्य है और विज्ञानमय कोश का आत्मा गुरु। विज्ञानमय कोश में आत्मा का रूप अथर्वा कहलाता है। अथर्वा अर्थात अथ अर्वाक -अब विज्ञानमय से नीचे के कोशों में अवतरण आरंभ हो गया । मनोमय से लेकर अन्नमय कोश तक आत्मा का रूप आथर्वण कहलाता है। वह आथर्वण अपने सच्चे स्वरूप अथर्वा को भूला हुआ है।
-फतहसिंह

अथर्ववेद के बहुत से सूक्तों के ऋषि अथर्वा हैं। अथर्वशिरोपनिषद व अथर्वशिखोपनिषद भी अथर्वा शब्द की ओंकार के माध्यम से व्याख्या करते हैं।

अदिति वामन २८+ (कश्यप - पत्नी, पुत्र निमित्त तप, विष्णु स्तुति, वामन पुत्र प्राप्ति), वम ७६ (सूर्य पुत्र हेतु तप), हरिवंश २.६४.५६ (नरकासुर द्वारा हरण किए गए कुण्डलों की पुनः प्राप्ति), २.७५ (कृष्ण -इन्द्र युद्ध समाप्ति का आदेश), स्कन्द ४.२.८९.४५ (दक्ष यज्ञ में ओष्ठ पुट छेदन), ब्रह्म १.३० (मार्तण्ड पुत्र उत्पत्ति, सूर्य -संज्ञा -छाया आख्यान), ब्र १.९३+ (पृथ्वी/नरक से कुण्डलों की प्राप्ति, कृष्ण-स्तुति), देवीभाग. ४.२.४२ (कश्यप -पत्नी, दिति के शाप से वसुदेव -पत्नी देवकी बनना, वरुण शाप से मृतवत्सा बनना), नारद १.१०+ (पुत्रों के कल्याण हेतु तप, विष्णु की स्तुति, वामन पुत्र प्राप्ति), विष्णु ५.३०.६ (कुण्डल प्राप्ति पर कृष्ण की स्तुति), वि ४.१.६ (दक्ष -पुत्री, विवस्वान -माता), ब्रह्माण्ड २.३.७.४६५ (धर्मशीला) ब्रह्मवैवर्त ४.९ (कद्रू को शाप, देवकी रूप में अवतार), ब्रव ४.४५ (शिव विवाह में हास्योक्ति), भागवत २.३ (अन्न प्राप्ति कामना हेतु उपासना), ८.१६ (कश्यप द्वारा पयोव्रत का उपदेश), गर्ग १.५.२३ (देवकी रूप में अवतरण), लक्ष्मीनारायण २.३२.३२ (रेवती ग्रह का नाम ?), ३.९५ (प्रणदब्रह्म साधु द्वारा अदिति की सेवा से संतुष्ट होकर देवमाता बनने का वर), मार्कण्डेय १०४+ (सूर्य को पुत्र रूप में प्राप्त करने के लिए सूर्य की स्तुति, सूर्य का मार्तण्ड रूप में जन्म), पद्म २.५.७० (पुत्र प्राप्ति हेतु तप, सुव्रत विप्र का वसुदत्त इन्द्र रूप में जन्म), विष्णु धर्मोत्तर ३.७३ (मूर्ति निर्माण हेतु रूप कथन), कस ८.२.४११; द्र. वास्तु (मण्डल)

टिप्पणी : मनुष्य व्यक्तित्व की अखण्ड इकाई का नाम अदिति और खंडित, आसुरी इकाई का नाम दिति है। -
फतहसिंह

ऋग्वेद में ४.१८ व १०.७२ सूक्तों की ऋषिका अदिति है तथा सूक्तों ४.१८ व १०.१८५ की देवता है। अथर्ववेद में अदिति देवता के बहुत से सूक्त हैं। अथर्ववेद का एक प्रसिद्ध मन्त्र है -दितिः शूर्पम्, अदिति शूर्पग्राही, अर्थात दिति छाज है जिसे अदिति पकड कर अन्न को साफ करती है।

अदृश्यंती वायु २.९२ (० द्वारा नैमिष क्षेत्र में पराशर को जन्म देना, नैमिष क्षेत्र महिमा प्रसंग), ७०.८३ (शक्ति मुनि -पत्नी, पराशर -माता), लिंग १.६४.१० (रुधिर/कल्माषपाद राक्षस द्वारा शक्ति के भक्षण पर ० का विलाप व पराशर को जन्म देना), लक्ष्मीनारायण १.३८७ (कल्माषपाद द्वारा सुश्रुता - पति वेदश्रवा के भक्षण का वृत्तांत), १.४१० (कल्माषपाद राक्षस द्वारा शक्ति के भक्षण पर ० द्वारा काल, रुद्र, यम व विश्वामित्र को शाप देकर राक्षस व शिला बनाना, शक्ति आदि के सूक्ष्म रूप में जीवित होने पर ० द्वारा विश्वामित्र आदि को भी सूक्ष्म रूप में जीवित करना)

अद्भुत मत्स्य ५१.३६ (दहन अग्नि - पुत्र, देवलोक में हव्य का भक्षण, वीर -पिता), २२८ (० या उत्पात शान्ति), ब्रह्माण्ड ३.४.१.६१ (इन्द्र नाम), वायु २९.३८ (अग्नि : सवन -पुत्र, विविचि -पिता), भागवत ८.१३.१९ (नवें मन्वन्तर के इन्द्र), लक्ष्मीनारायण ३.१६४.५६ (वही), महाभारत वन २२४.२८+ (सह अग्नि व मुदिता-पुत्र अद्भुत नामक अग्नि की गृहपति नाम से प्रतिष्ठा, अद्भुत द्वारा आहवनीय अग्नि में हुत आहुति को देवताओं तक पंहुचाना, अद्भुत अग्नि की सप्तर्षि-पत्नियों पर आसक्ति, समागम से स्कन्द कार्तिकेय के जन्म का विस्तृत वर्णन); द्र. उत्पात, अपशकुन आदि

टिप्पणी : षडविंश ब्राह्मण के छठे अध्याय में विभिन्न

अद्भुतों/उत्पातों और उनके प्रायश्चित्तों का विस्तृत वर्णन है। अद्भुत और उत्पात को समान अर्थों में लेना आश्चर्यजनक लगता है। अद्भुत में अद्भुत क्या है ? शतपथ ब्राह्मण ६.६.२.१४ में सह-पुत्र अद्भुत से प्रार्थना की गई है कि वह हमारे लिए सर्पि का, घृत का द्रवण करे। ऐसा अनुमान है कि मुदिता स्थिति में यह घृत द्रवण ही अद्भुत उत्पात उत्पन्न करता होगा।

अद्रि मार्कण्डेय ६९ (बलाक राक्षस का पिता), ब्रह्म २.१४ (पिशाच, अद्रिका व केसरी -पुत्र, गौतमी स्नान से पिशाचत्व से मुक्ति), लक्ष्मीनारायण २.५७.७४ (अद्रिमालय नामक यमदूत द्वारा इलाक दैत्य का वध)

टिप्पणी : कर्मकाण्ड में यज्ञ में सोमलता को पीसने वाले उपकरणों जैसे उलूखल व मुसल, दृषद् व उपल आदि को अद्रि कहते हैं। अद्रि शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से ऋग्वेद में एकवचन और बहुवचन में बहुलता से हुआ है। सायण ने वेद भाष्य में अद्रि की एक निरुक्ति अद् धातु से की है जिसके अनुसार अद्रि का अर्थ शत्रुओं का भक्षण करने वाला इन्द्र का वज्र है। दूसरी निरुक्ति दृ धातु से की गई है जिसका अर्थ है कि जो जल का वर्षण न करता हो, उसे रोके रखने में समर्थ हो अर्थात मेघ। अद्रि का तीसरा अर्थ गिरि लिया जाता है क्योंकि यज्ञ में सोम को पीसने के लिए पत्थरों का ही उपयोग होता है। यज्ञ में पत्थर को वृषभ की त्वचा पर रखकर उस पर सोम पीसते हैं। अतः ऋग्वेद ९.६६.२९ तथा ९.७९.४ में उल्लेख है कि सोम गौ की त्वचा के ऊपर अद्रियों से क्रीडा करता है। अध्यात्म में इसका रूप यह है कि भक्त को अद्रि बनना चाहिए अर्थात ऊपर से क्षरित होने वाले इन्दु/बिन्दु रूपी सोम को धारण करने में समर्थ होना चाहिए, उसको व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिए, उसका यज्ञ कार्य में समुचित उपयोग करना चाहिए (ऋग्वेद ९.१०१.२)। इस प्रकार भक्त सोम को एकत्रित करने वाले एक पात्र के समान हो जाता है जिसके पेंदे में सोम भरा रहता है (शुक्ल यजुर्वेद १३.४२)। यह सोम को धारण करना व्यर्थ नहीं है। इस अवस्था में इसको शुद्ध करना होता है; शुद्ध करने के पश्चात भगवान को अर्पित करना होता है (ऋग्वेद १.१३५.२)। ऋग्वेद की १.११८.३ व ३.५३.१० इत्यादि कुछ ऋचाओं में उल्लेख है कि अद्रियों के द्वारा श्लोक उत्पन्न करना होता है, अर्थात हमारी सभी इन्द्रियां भगवान की स्तुति करने लगें। ऋग्वेद ९.४.५ के अनुसार तो यह सारा शरीर ही जब बृहद् अद्रि बन जाए, तभी इन्द्र सोम का भक्षण स्वीकार करते हैं।

एक बार अद्रि अवस्था प्राप्त हो जाए तो उस अद्रि को तोडने की, उसके अंदर छिपी हुई गायों को, जिन्हें पणि नामक असुरों ने अथवा बल नामक असुर ने वहां छिपा दिया है, प्राप्त करने की आवश्यकता होती है (तुलनीय : पुराणों में बलाक असुर का पिता अद्रि)। इस संदर्भ में ऋग्वेद १.६२.३ इत्यादि के अनुसार बृहस्पति अद्रि को तोडकर उसमें से गाय प्राप्त कर लेते हैं। दूसरी ओर इन्द्र के लिए कहा गया है कि वह अद्रिवः होकर गायों को व्रज से बाहर निकाले और राधा आनंद की सृष्टि करे (ऋग्वेद १.१०.७ इत्यादि)। सायण ने अद्रिवः का अर्थ अद्रि अर्थात वज्र से युक्त इन्द्र किया है।

जब अद्रि में निहित सोम को प्राप्त करना होता है तो ऋग्वेद ८.६०.१६ के अनुसार अग्नि तप व शोचि / किरणों के द्वारा अद्रि का भेदन करता है। ऋग्वेद १.९३.६ के अनुसार श्येन अद्रि से सोम का आहरण करने में समर्थ होता है। ऋग्वेद की सार्वत्रिक ऋचा १.७.३ के अनुसार अद्रि को तोडने के लिए इन्द्र ने स्वर्ग में सूर्य तक आरोहण किया और वहां से गौ/किरणों के द्वारा अद्रि को तोडा। ऋग्वेद ५.५२.९ के अनुसार ओज द्वारा अद्रि को तोडते हैं। ऋग्वेद में जब बहुवचन में अद्रि शब्द का प्रयोग होता है तो वह गौ त्वचा पर सोम को शुद्ध करने तथा श्लोक उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त होता है। जब अद्रि शब्द एक वचन में प्रयुक्त होता है तो उसके द्वारा शुद्ध किया गया सोम इन्द्र को प्रस्तुत करने लायक होता है (ऋग्वेद ७.२२.१)। यहां अद्रि को हर्यश्व संज्ञा दी गई है। गायों और सोम को भी एकवचन वाले अद्रि से ही प्राप्त किया जाता है। अथर्ववेद ९.४.५ में शरीर को बृहत् अद्रि कहा गया है। ऋग्वेद ३.३१.७ के अनुसार अद्रि अपने अंदर से एक गर्भ को उत्पन्न करता है। शुक्ल यजुर्वेद १३.४२ में आपः को नदियों का शिशु कहा गया है जो अद्रिक बुध्न/पेंदे में रहता है।

अद्रिका देवीभाग. २.१ (अप्सरा, ब्राह्मण शाप से मीन बनना, उपरिचर वसु के वीर्य से सत्यवती जन्म कथा), वायु ७३.२२ (वही) हरिवंश १.१८.३० (अद्रिका अप्सरा के संग बैठे अमावसु पर अच्छोदा की आसक्ति, अमावसु के शाप से अद्रिका मत्स्य से सत्यवती रूप में जन्म), ब्रह्म २.१४ (मार्जारी, केसरी भार्या, अद्रि -माता, हनुमान द्वारा गौतमी में स्नान कराना)

टिप्पणी : केसरी वानर की भार्याओं अंजना वानरी और अद्रिका मार्जारी के सन्दर्भ में, संन्यासोपनिषद २.१०२ में उल्लेख है कि प्रवृत्ति दो प्रकार की होती है -वानरी और मार्जारी । मार्जार शब्द को मृज धातु से मर्जन करने वाला, शुद्ध करने वाला कह सकते हैं। प्रवृत्ति अर्थात भक्ति, संसार को भागवत सत्ता से पूर्ण देखने की प्रवृत्ति। ऐसी कल्पना की जा सकती है कि अंजना वानरी प्रवृत्ति में जो कुछ भी भला -बुरा है, वह सब भगवान को अर्पण कर देना होता है। लेकिन अद्रिका मार्जारी प्रवृत्ति का मार्ग इसमें विश्वास नहीं करता। वह मूषक रूपी किसी भी बुराई के मार्जन में विश्वास रखता है। दोनों प्रवृत्ति मार्ग अपूर्ण हैं। अतः अंजना -पुत्र हनुमान अद्रिका मार्जारी को ढोकर गौतमी में स्नान कराते हैं, जबकि अद्रिका -पुत्र अद्रि अंजना को ढोकर गौतमी में स्नान कराता है। अद्रि पिशाच का अर्थ है बुराईयों को खाने वाला,

अद्रोहक पद्म १.५० (गृहस्थ, राजकुमार की सुन्दर स्त्री की रक्षा)

अद्वैत योगवासिष्ठ ६.२.५४ (एक्य),

भागवत ७.१५.६२ (तीन प्रकार), ११.२८ (द्वैत से अद्वैत प्राप्ति), लिंग १.७५ (शिव अद्वैत वर्णन), विष्णु २.१५ (ऋभु द्वारा निदाघ को अद्वैत की शिक्षा), लक्ष्मीनारायण २.९२ (विशिष्ट ० निरूपण), ४.२५.७५ (वही)

अधर्म भागवत ४.८ (ब्रह्मा से उत्पत्ति, मृषा-पति, दम्भ व माया-पिता), भा ७.१५.१२ (अधर्म की पांच शाखाएं), मार्कण्डेय ५०.२९ (हिंसा -पति, अनृत व निर्ऋति -पिता, वंश वर्णन), ब्रह्मवैवर्त २.१.११६ (मिथ्या -पति), लक्ष्मीनारायण १.१४ (ब्रह्मा से अधर्म की सृष्टि कथन), १.४१२ (ब्रह्मा -पुत्र, दुःसह -पिता, ० परिवार वर्णन), ३.१५२.२२ (० परिवार वर्णन) वायु १०.३९ (हिंसा -पति, निकृति व अनृत -पिता), अग्नि २०.१८ (वही)

अधर्मजीव लक्ष्मीनारायण २.८७ (खर राक्षस -पुत्र, दुष्ट प्रकृति, विभीषण द्वारा प्रबोधन की चेष्टा, भैरव द्वारा वध आदि)

अधिकसंगमा कथासरित् ७.८.५५ (परित्याग सेन -भार्या, इन्दीवर सेन व अनिच्छा सेन पुत्रों का वृत्तांत)

अधिपति वायु ६५.८७ (भृगु के १२ पुत्रों में एक), हरिवंश १.४ (ब्रह्मा द्वारा प्रतिष्ठा), ३.३७ (विभिन्न वर्गों के ०), भागवत ११.१६ (प्राणियों में ०), ब्रह्म १.६६, लिंग १.५८, पद्म १.७, २.२७, अग्नि १९.२३, २०९.४०(विभिन्न द्रव्यों के अधिपति / देवता), ब्रह्मवैवर्त ४.७३ वायु ७०.१, विष्णु १.२२.१, ब्रह्माण्ड ३.८.१ मत्स्य ८ (सर्ग), विष्णु धर्मोत्तर१.५६(जगत विभूतियां), १.२४९

टिप्पणी : अथर्ववेद के ३.२७, ५.२४ व १२.३.५५ सूक्त अधिपतियों से सम्बन्धित हैं।

अधिभूत लक्ष्मीनारायण ३.१७७ (आकाश, वायु आदि भूतों के अधिभूत, अधिदैवत व अध्यात्म कथन)

अधिरथ ब्रह्मवैवर्त २.६१.१०१ (चैत्र - पुत्र), मत्स्य ४८.१०८ (सत्यकर्मा -पुत्र, बृहद्रथ -पौत्र, कर्ण -पिता), भागवत ९.२३.१२ (सत्कर्मा -पुत्र, कर्ण पिता, अंग वंश)

अधिवासन अग्नि५७ (कुम्भ अधिवासन/प्रतिष्ठा विधि), ५९ (श्री हरि के अधिवासन/सान्निध्यकरण की विधि : हरिन्यास), अग ९६ (प्रतिमा ० विधि), विष्णु धर्मोत्तर ३.१.१ (प्रतिमा अधिवासन विधि), भविष्य १.१३६ (सूर्य प्रतिमा ०), २.२.१७ (देव प्रतिष्ठा से पूर्व ० कर्म), लक्ष्मीनारायण २.१५८.६१ (० कर्म में प्रासाद के अवयवों/अंगों की शरीर के रूप में कल्पना)

टिप्पणी : लक्ष्मी नारायण संहिता के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि देव प्रतिमा के लिए हमारा शरीर ही अधिवास अर्थात ऊपर ढंकने के वस्त्र का काम करता है। शब्दकल्पद्रुम में विभिन्न कार्यों के आरंभ में यजुर्वेद व सामवेद के मन्त्रों द्वारा गन्ध -पुष्पादि २३ द्रव्यों द्वारा अधिवासन कर्म का वर्णन किया गया है। ऋग्वेद १.१६२.१६ की सार्वत्रिक ऋचा में यज्ञ में आलभन किये जाने वाले अश्व के हिरण्य अधिवास का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण ५.३.५.२२ में अभिषेक कर्म के संदर्भ में गर्भ रूप यजमान के लिए वास को उल्ब और अधिवास को क्षत्र की योनि कहा गया है।

अधिष्ठान योगवासिष्ठ ४.३२.११ (कश्मीर मण्डल में नगर का नाम)

अधोक्षज स्कन्द २.२.१२.६५ (० विष्णु का शिव के समक्ष प्राकट्य, सुदर्शन चक्र द्वारा काशिराज वध प्रसंग), ४.२.६१.२२५ (० मूर्ति के लक्षण व महिमा), अग्नि ४८.९ (० मूर्ति के आयुध कथन), भागवत ९.११.५४ (राम का एक नाम), लक्ष्मीनारायण १.२५०.७ (ज्येष्ठ कृष्ण अपरा एकादशी के अधिपति ० की पूजा), लन २.२६९.३३ (अभयाक्ष राजा का उपनाम व ० तीर्थ; अधोक्षज तीर्थ में स्नान महिमा), लन ४.२६.५२ (० द्वारा मृत्यु से रक्षा)

टिप्पणी: महाभारत उद्योग पर्व ७०.१० में अधोक्षज की निरुक्ति इस प्रकार की गई है -अधो न क्षीयते जातु, अर्थात जिसके हिरण्यय कोश अथवा आनंदमय कोश का स्वर्ण/जातु नीचे के कोशों में गिर कर क्षीण नहीं होता। त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद २.१५३ में अधोक्षज विष्णु का स्थान तुर्यातीत अवस्था में कहा गया है। ऋग्वेद ३.३३.९ में विश्वामित्र नदियों को रथ से पार करने के प्रयास में नदियों से अनुरोध करते हैं कि नदियों का नमन हो जाए, वह रथ के अधो -अक्ष होकर बहें। शांखायन ब्राह्मण २७.६ के अनुसार सत्रकाल में उत्तर हविर्धान के अधोअक्ष सर्पण करते हैं जिससे पापों का नाश होता है।

अध्ययन गरुड १.९६.५१ (अनध्याय हेतु स्थितियां), नारद १.२५.४६ (वेद का अनाध्याय काल कथन), १.६० (वायु प्रवाह होने पर वेद के अनध्याय का कारण), कूर्म २.१४.६४ (अनध्याय काल/स्थिति), अग्नि १६२ (वही), भविष्य २.१.८ (पुराणादि के अनध्याय काल की स्थितियां), विष्णु धर्मोत्तर१.६४(०काल), ३.२५७ (स्वाध्याय प्रशंसा)

अध्यात्म नारद १.४४.२१ (० विषय चिन्तन भरद्वाज द्वारा भृगु से पृच्छा), न १.४६ (केशिध्वज द्वारा खाण्डिक्य को अध्यात्म ज्ञान कथन), लक्ष्मीनारायण ३.१७७ (आकाश, वायु आदि भूतों के अधिभूत, अधिदैवत व अध्यात्म कथन), द्र मोक्ष

टिप्पणी : अथर्ववेद ९.१४, ९.१५, १३.१, १३.२ व १३.३ सूक्तों के देवता अध्यात्म हैं। शतपथ ब्राह्मण में विशेष रूप से घटनाओं के आधिभौतिक, आध्यात्मिक व

आधिदैविक रूपों का एक साथ वर्णन किया गया है। ऐसा अनुमान है कि एक घटना जो भौतिक स्तर पर घटित हो रही है, वही किसी रूप में आध्यात्मिक व आधिदैविक स्तर पर भी घटित होगी। पं. मोतीलाल शास्त्री ने शतपथ ब्राह्मण के अपने भाष्य में आधिभौतिक घटनाओं की विशेष व्याख्या की है। उदाहरण के लिए इस भौतिक जगत में जो गौ हमें दिखाई देती है, वह तमस से आच्छादित दैवी गौ का ही रूप है। वेद मंत्रों का ग्रहों की गति की व्याख्या करने में सफल होना भी इसी प्रक्रिया के अंतर्गत हो सकता है। श्री प्रह्लाद ब्रह्मचारी द्वारा देवबन्द से प्रकाशित श्रीधीश गीता में इन्द्रियों के अधिभूत, अध्यात्म व आधिदैवत का वर्णन उल्लेखनीय है।

अध्वर लक्ष्मी नारायण ३.३३.३० (० नामक कल्प में सत्ययुग धर्म की स्थापना के लिए सत्य नारायण का प्राकट्य), शिव ३.२९.३५ (नभग द्वारा यज्ञभाग प्राप्त करने के संदर्भ में अध्वर से शिष्ट वस्तु के रुद्रभाग होने की कथा); दृ. यज्ञ

टिप्पणी : जिस यज्ञ में असुरों की हिंसा की आवश्यकता न रह गई हो, उसे अध्वर कहते हैं -फतहसिंह

अध्वर्यु मत्स्य १४३.११ (त्रेतायुग में विश्वभुक् इन्द्र के अश्वमेध यज्ञ में अध्वर्यु द्वारा प्रैषकाल में पशु की हिंसा का प्रश्न : ऋषियों द्वारा अहिंसा का और उपरिचर वसु द्वारा हिंसा का समर्थन), भागवत ४.४.३३ (दक्ष यज्ञ विध्वंस के संदर्भ में यज्ञ के अध्वर्यु भृगु द्वारा दक्षिणाग्नि में आहुति द्वारा ऋभुगणों को उत्पन्न करना), ४.५.१९ (वीरभद्र द्वारा भृगु की श्मश्रु नोचे जाने का उल्लेख), ४.७.५ (अध्वर्यु भृगु का बस्त/बकरे की श्मश्रु से युक्त होना), ९.११.२ (राम द्वारा अध्वर्यु को दक्षिणा में प्रतीची दिशा दान का उल्लेख), ९.१६.२१ (परशुराम द्वारा अध्वर्यु को प्रतीची दिशा दक्षिणा में देने का उल्लेख), स्कन्द ३.२.२३.१० (ब्रह्मा के सत्र के ऋत्विजों में जमदग्नि व गौतम के अध्वर्यु-द्वय बनने का उल्लेख), ५.१.२८.७७ (सोम के राजसूय यज्ञ के ऋत्विजों में भृगु के अध्वर्यु होने का उल्लेख), ५.१.६३.२४१ (बलि के अश्वमेध यज्ञ में अत्रि के अध्वर्यु होने का उल्लेख), ६.५.५ (त्रिशंकु के यज्ञ में विश्वामित्र का अध्वर्यु बनना), ६.१८०.३३ (ब्रह्मा के अग्निष्टोम यज्ञ में पुलस्त्य के अध्वर्यु तथा अत्रि के प्रतिप्रस्थाता बनने का उल्लेख), ६.१८७.११ (यज्ञ के चतुर्थ दिन पुलस्त्य-पुत्र विश्वावसु राक्षस द्वारा पशु की गुदा का भक्षण करने का वृत्तांत), ७.१.२३.९३ (प्रभास क्षेत्र में सोम/चन्द्रमा के यज्ञ में वसिष्ठ के अध्वर्यु होने का उल्लेख), हरिवंश १.२५.२४ (चन्द्रमा के राजसूय यज्ञ के ऋत्विजों में भृगु का अध्वर्यु होना), ३.१०.५ (श्री हरि की बाहुओं से होता व अध्वर्यु की उत्पत्ति का उल्लेख), ब्रह्माण्ड २.३.४७.४८ (परशुराम के अश्वमेध यज्ञ में काश्यप के अध्वर्यु होने का उल्लेख; परशुराम द्वारा सम्पूर्ण पृथिवी काश्यप को दक्षिणा में देना), पद्म ५.१०.३५ (राम के अश्वमेध यज्ञ में वाल्मीकि के अध्वर्यु होने का उल्लेख), महाभारत आदि ५३.६ (जनमेजय के सर्प सत्र में शार्ङ्गरव व पिंगल के अध्वर्यु होने का उल्लेख), आश्वमेधिक २८.६ (यज्ञ में छाग पशु की हिंसा के संदर्भ में अध्वर्यु व यति के संवाद का वर्णन),

टिप्पणी : उणादि कोश के अनुसार अध्वर्यु का अर्थ होता है अध्वर से जोडने वाला। यज्ञ कर्म में अध्वर्यु ऋत्विज के महत्व को समझने के संदर्भ में प्राणाग्नि होत्र उपनिषद ४ में उल्लेख है कि आध्यात्मिक यज्ञ में आत्मा यजमान है और अहंकार अध्वर्यु है लेकिन इस कथन की वैदिक साहित्य में अन्यत्र पुनरुक्ति नहीं हुई है। संभवतः शतपथ ब्राह्मण ३.७.१.३० में अध्वर्यु द्वारा यूप शकल की आहुति के द्वारा अहंकार की व्याख्या की जा सकती है शतपथ ब्राह्मण १.५.१.२१, ४.६.७.२० तथा १२.१.१.४ में अध्वर्यु को मन कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण ११.२.७.३२ के अनुसार यजमान संवत्सर है जिसका ऋतुरूपी ऋत्विज यजन करते हैं। इन ऋतुओं में ग्रीष्म ऋतु अध्वर्यु है। वह यजमान का तापन करती है। बृहदारण्यक उपनिषद ३.१.४ के अनुसार चक्षु अध्वर्यु है जिसकी सहायता से यजमान अहोरात्र की आप्ति से मुक्त होता है। चक्षु रूपी अध्वर्यु ही आकाश का आदित्य है। तैत्तिरीय आरण्यक १०.६४.१ तथा गोपथ २.५.४ के अनुसार आत्मा यजमान है, श्रद्धा पत्नी, ----चक्षु अध्वर्यु, मन ब्रह्मा इत्यादि। षड्विंश ब्राह्मण २.५.२ में तीन सवनों में अध्वर्यु के तीन रूप कहे गए हैं। प्रातः, माध्यन्दिन और सायं सवनों में यजमान क्रमशः प्राण, अपान और उदान रूप है जबकि अध्वर्यु क्रमशः आदित्य, चक्षु व अपान का रूप है। तैत्तिरीय आरण्यक ३.२.१ में चार, पांच, छह और सात होताओं के अन्तर्गत क्रमशः द्यौ, अश्विनौ, वात और सत्यहवि को अध्वर्यु कहा गया है। गोपथ १.१.१३ तथा १.२.२४ में प्रजापति के यज्ञ में वायु को अध्वर्यु कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.३.९.१२ के अनुसार यज्ञ का अध्वर्यु होने का अधिकारी वह है जो यज्ञ को जोड सकता हो। वात द्वारा अध्वर्यु यज्ञ को जोड सकता है (प्रयुंक्ते)।

अध्वर्यु को चक्षु कहने का तात्पर्य कर्मकाण्ड में अध्वर्यु द्वारा दो बैलों (अनड्वान) की अनः/शकट पर सोमलता को लादकर वेदीस्थल तक लाने के प्रकरण से समझा जा सकता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.३.७.५ के अनुसार जैसे अनः या रथ को जोडते हैं, ऐसे ही अध्वर्यु यज्ञ को जोडता है। अथर्ववेद ७.५५.५ तथा ११.६.१३ के अनुसार अनड्वान प्राण को कहते हैं जिसके दो रूप होते हैं - प्राण और अपान। यही गाडी के दो बैल हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१२.९.३ तथा

गोपथ ब्राह्मण १.२.११ के अनुसार प्राणापानौ अध्वर्यु-द्वय हैं। शतपथ ब्राह्मण ४.२.५.३, ५.५.१.११ तथा १२.७.३.२२ के अनुसार प्राणोदानौ (प्राण-उदान) अध्वर्यु-द्वय हैं। पुराणों में शिव के गण नन्दी को भी अनड्वान कहा जाता है। नन्दी की प्रकृति भी यही है कि वह एक भी है, दो भी। यह श्वास-प्रश्वास का रूप है जो साधना के एक स्तर पर पंहुचने पर आनन्द उत्पन्न करने लगता है - अन्दर जाता हुआ श्वास भी आनन्द देता है, बाहर निकलता हुआ श्वास भी। ऋग्वेद ८.२४.१६ में इसे मधु कहा गया है जिसकी प्राप्ति अध्वर्यु अन्धस् सोम से करता है। जैसा कि अन्तरिक्ष शब्द की टिप्पणी में कहा गया है, प्राण का आयतन अन्तरिक्ष होता है क्योंकि वायु अन्तरिक्ष में ही होती है। शरीर में अन्तरिक्ष का सर्वोच्च स्थान भूमध्य होता है। यह ऊं रूपी वायु है, तीसरा चक्षु है। इसके विकसित होने पर अन्तरिक्ष अन्धकारमय नहीं रहता, अपितु ज्योति से पूर्ण हो जाता है। जैमिनीय ब्राह्मण २.२०२ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण १.८.२.३ के अनुसार अग्निष्टोम यज्ञ में अध्वर्यु को दक्षिणा स्वरूप प्रकाश-द्वय मिलते हैं। यह प्रकाश-द्वय चक्षु-द्वय के सूर्य और चन्द्रमा रूप हो सकते हैं। अथर्ववेद ७.७.७.५, तैत्तिरीय आरण्यक ५.५.३ तथा शतपथ ब्राह्मण १४.१.३.३३ में प्रवर्ग्य कर्म के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि चक्षु के विकास से पूर्व घर्म/गरमी उत्पन्न होती है जिसमें रुचि/दीप्ति उत्पन्न करना अध्वर्यु का कर्तव्य है। चक्षु रूपी प्रकाश के उत्पन्न होने के पश्चात इस ज्योति को आकाश में प्रतिष्ठित करना होता है। अध्वर्यु यजमान रूपी सूर्य के तेज का क्रमशः विकास करता है। उस सूर्य को आकाश में विचरण करने योग्य, पतन रहित, १२ मास के १२ सूर्यों और १३वें मास के सूर्य को धारण करने वाला, चन्द्रमा, नक्षत्रों और ऋतुओं को धारण करने वाला बनाता है (अपश्यं गोपामनिपद्यमानं इत्याति -तैत्तिरीय आरण्यक ४.७.१ तथा ५.६.११)।

प्राणापानौ के अध्वर्यु द्वय होने के उपरोक्त वर्णन के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि ऋग्वेद २.१४ आदि सूक्तों में अध्वर्यु शब्द का प्रयोग बहुवचन में हुआ है। सायण भाष्य में अध्वर्यवः शब्द की व्याख्या यज्ञ के १० चमसाध्वर्युओं के द्वारा की गई है जो यज्ञ में ऋत्विजों के पात्रों का मार्जन आदि कर्म करते हैं। दूसरी संभावना यह है कि अध्वर्यु ऋत्विज के सहायकों के रूप में प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा और उन्नेता ऋत्विजों का नाम आता है। वह अध्वर्यवः हो सकते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में जब भी अध्वर्यु-द्वय (अध्वर्यू) शब्द की व्याख्या करनी होती है तो वह अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता द्वारा की जाती है। प्रतिप्रस्थाता में कुछ आसुरी पक्ष होता है (काठकसंहिता २७.५)। वह यजमान-पत्नी के साथ गार्हपत्य अग्नि पर रहता है, जबकि अध्वर्यु यजमान के साथ आहवनीय अग्नि पर बैठता है। अध्वर्यु का कार्य जहां यजमान रूपी सूर्य को आकाश में प्रतिष्ठित करना होता है, प्रतिप्रस्थाता का कार्य यजमान-पत्नी को १० दिशाओं में व्याप्त होने वाली बनाना होता है। तैत्तिरीय आरण्यक में प्रवर्ग्य कर्म के अन्तर्गत वर्णन आता है कि यज्ञ की वेदी रूपी यजमान-पत्नी विस्तीर्ण चेतना को प्राप्त करके उत्तरवेदी बन जाती है। यह उल्लेखनीय है कि ऋग्वेद ६.४१.२ तथा ८.४.११ ऋचाओं की व्याख्या सायण भाष्य में अध्वर्यु के हविर्धान स्थान से उत्तरवेदी को जाने के द्वारा की गई है। पुराणों में यजमान रूपी सूर्य और यजमान-पत्नी रूपी वडवा के उत्तरवेदी में पंहुचने पर अश्विनौ के जन्म का सार्वत्रिक वर्णन आता है। ब्राह्मण ग्रन्थों जैसे शतपथ ब्राह्मण ४.१.५.१५ व १२.८.२.२२, जैमिनीय ब्राह्मण ३.३७४ तथा ऋग्वेद १०.४१.३ व १०.५२.२ में अश्विनौ को देवताओं के अध्वर्यु-द्वय कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण आदि में च्यवन-सुकन्या आख्यान द्वारा यह भी वर्णन किया गया है कि अश्विनौ देवताओं के अध्वर्यु कैसे बने। ऋग्वेद १०.४१.३ की ऋचा में अश्विनौ को मधु पाणि वाला कहा गया है जो देवताओं को सोम प्रस्तुत करते हैं। तैत्तिरीय संहिता ६.४.३.१ के अनुसार ऐसे अध्वर्यु का चुनाव करना चाहिए जो सब देवताओं को सोम प्रस्तुत कर सके। इस प्रकार अध्वर्यु हृदे त्वा इत्यादि मन्त्र से मनुष्यों को, मनसे त्वा इत्यादि से पितरों को तथा दिवे त्वा सूर्याय त्वा इत्यादि मन्त्र से देवों को सोम प्रस्तुत करता है। इस प्रकार अध्वर्यु के तीन रूप हैं जिनमें दैव रूप अश्विनौ के माध्यम से स्पष्ट हो जाता है। मन से पितरों को प्रस्तुति के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण १.५.१.२१ आदि में अध्वर्यु को मन कहा गया है। इसके अतिरिक्त यज्ञ कर्म में अध्वर्यु बहुत से कार्य मन से करता है (उदाहरण के लिए आश्वलायन श्रौत सूत्र ८.१३.२०)। शतपथ ब्राह्मण ४.६.७.२० के अनुसार मन अध्वर्यु पुर की भांति विचरण करता है। हो सकता है कि यह पुराणों में अग्निष्टोम यज्ञ में पुलस्त्य (पुरस्त्यान, पुर का विस्तार) ऋषि को अध्वर्यु बनाने की व्याख्या हो। पुराणों में पुलस्त्य ऋषि की उत्पत्ति उदान प्राण से होने के तथ्य को भी व्याख्या करते समय ध्यान में रखना आवश्यक है।

मनुष्य कोटि के अध्वर्यु के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण १.८.१.२७ में कहा गया है कि जो गौ का वत्स बनना जानता है, वह दैविक अध्वर्यु है, अन्य अध्वर्यु मानुषी हैं। कर्मकाण्ड में अध्वर्यु सोम विक्रयी से गौ के बदले सोमलता का क्रय करता है (शतपथ ब्राह्मण ३.३.३.३ तथा तैत्तिरीय संहिता ६.१.१०.१)। सोमविक्रयी अपने सोम की महिमा का वर्णन करने में असमर्थ होता है, जबकि अध्वर्यु को गौ के अंग-अंग की महिमा का ज्ञान होता है जिसका वह सोमविक्रयी को लालच देता है। अन्त में अध्वर्यु सोम भी प्राप्त कर लेता है और गौ भी अपने और यजमान के लिए रख लेता है। शतपथ ब्राह्मण १४.३.१.३३ में प्रवर्ग्य कर्म की दक्षिणा के रूप में अध्वर्यु द्वारा घर्मदुघा (गौ) प्राप्त करने का उल्लेख है। यह ध्यान देने योग्य है कि पुराणों में अध्वर्युओं के रूप में जिन ऋषियों का नाम आया है, उनमें जमदग्नि, वसिष्ठ और गौतम गौ रखने वाले हैं, जबकि विश्वामित्र गौ प्राप्ति का यत्न करते हैं। गौ के वत्स का कार्य गौ को पयः दान के लिए केवल प्रेरित करना होता है। पयः का उपयोग यजमान आदि यज्ञ कार्य में करते हैं। कर्मकाण्ड में ओ श्रावय बोलकर विराज गौ का आह्वान

करते हैं, अस्तु श्रौषट् से वत्स के बन्धन खोलते हैं, यज से स्तनों को वत्स के मुख में देते हैं आदि आदि। इस वाक्य समूह में ओ (ओम) श्रावय तथा यज यह आदेश अध्वर्यु के लिए होता है जिससे वह पुरोवात (ओ श्रावय) और विद्युत (यज) का मन से ध्यान करता है। अन्य आदेश अन्य ऋत्विजों के लिए होते हैं (शतपथ ब्राह्मण १.५.२.१९, ३.३.७.३ तथा काण्व शतपथ २.४.४.९)। जब विद्युत उत्पन्न होती है तो वह अभ्रों/बादलों और पुरोवात का एकीकरण कर देती है। अन्त में वषट्कार बोलने पर वर्षा होती है। ऋग्वेद ७.१०३.८ में अध्वर्युओं की तुलना मण्डूकों से की गई है जो घर्म से पीड़ित होकर वर्षा की कामना करते रहते हैं।

अध्वर्यु के उल्लेखनीय कार्यों में से एक है दिव्य जल या सोम को ग्रहों/पात्रों में ग्रहण करना, उसका मार्जन करना और उसे यजमान के लिए प्रस्तुत करना (ऋग्वेद सूक्त २.१४ व १०.३०, १.१३५.६, ३.४६.५, ८.२४.१६, शतपथ ब्राह्मण १.३.३.१, २.६.१.१४, ३.५.२.४ तथा १३.२.७.१)। सोम को छानने वाली छलनी पवित्र के संदर्भ में आपस्तम्ब श्रौत सूत्र १९.६.८ में उल्लेख है कि अध्वर्यु का पवित्र अज और अवि के लोमों से बना होता है, जबकि प्रतिप्रस्थाता का गौ और अश्व के लोमों से। अध्वर्यु पय: को छानता है, जबकि प्रतिप्रस्थाता सुरा को। ऐसा अनुमान है कि अध्वर्यु सोम को छानने का कार्य प्राणों अथवा वायुओं द्वारा करता है। ऋग्वेद २.१४ सूक्त की १२ ऋचाओं में इन्द्र द्वारा विभिन्न शत्रुओं के निग्रह के उल्लेखों के साथ-साथ अध्वर्युओं से भी इन्द्र के लिए सोम का सिंचन करने का अनुरोध किया गया है जिसका अर्थ होगा कि ब्राह्मण अध्वर्यु और क्षत्र इन्द्र दोनों को सोम प्रदान करने और ग्रहण करने के लिए तैयारी करनी पड़ती है।

शतपथ ब्राह्मण ५.३.४.४ में राजसूय यज्ञ में यजमान के अभिषेक हेतु अध्वर्यु द्वारा आप:/जल की १६ प्रकार की ऊर्मियों के संग्रह का वर्णन है। उनके द्वारा वह यजमान का अभिषेक करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन ऊर्मि वाले जलों का सम्बन्ध ऋग्वेद १०.३० के सूक्त से है।

अध्वर्यु की प्रकृति के बारे में कुछ प्रकाश होता और अध्वर्यु के सम्बन्धों के वर्णन से मिलता है। शतपथ ब्राह्मण १३.५.२.१२ में होता अध्वर्यु से पूछता है कि एकाकी विचरण कौन करता है? अध्वर्यु उत्तर देता है कि सूर्य एकाकी विचरण करता है। फिर अध्वर्यु होता से प्रश्न करता है कि सूर्य समान ज्योति कौन सी है? होता उत्तर देता है कि ब्रह्म ही सूर्य समान ज्योति है, इत्यादि। तैत्तिरीय संहिता ६.३.१.५ में होता को यज्ञ की नाभि कहा गया है।

स्कन्द पुराण में त्रिशंकु के यज्ञ में विश्वामित्र के अध्वर्यु होने के संदर्भ में ऐसा कहा जा सकता है कि अध्वर्यु द्वय का स्वरूप प्राय: प्राणापानौ का होता है जहां अपान का कार्य दुर्गुणो को, मल को निकाल फेंकने का है। शतपथ ब्राह्मण ५.५.१.११ मे प्राणोदानौ को मित्रावरुण और अध्वर्यु-द्वय कहा गया है। ऋग्वेद ३.५.४ में उल्लेख है कि इषिर और दमूना (?) बनने पर अध्वर्यु सिन्धुओं और पर्वतों का मित्र हो जाता है। ऐसा कहा जा सकता है कि उदान प्राण का विकास होने पर अध्वर्यु मित्र/विश्वामित्र बन जाता है। पुराणों में अध्वर्यु के रूप में प्राय: भृगु का उल्लेख आया है। जमदग्नि भी भार्गव गोत्रीय हैं' भृगु अर्थात भून देने वाला, हमारे कर्मों को जला डालने वाला। भृगु की उत्पत्ति के संदर्भ में ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लेख आता है कि प्रजापति से उत्पन्न पहली ज्वाला तो आदित्य बन गई, दूसरी भृगु बनी और तीसरी अंगार/अग्नि। जैमिनीय ब्राह्मण ३.१८८ में गौर आंगिरस के अध्वर्यु होने का उल्लेख है। गोपथ ब्राह्मण १.२.९ का कथन है कि अग्नि, आदित्य और यम यह अंगिरस हैं। यह इदं सर्वं का समाप्नुवन करते हैं। दूसरी ओर वायु आप: व चन्द्रमा भार्गव हैं। यह इदं सर्वं का समाप्यायन करते हैं। पुराणों में भृगु ऋषि द्वारा सोते हुए विष्णु के वक्ष पर पदाघात करने और विष्णु द्वारा भृगु के पद को अपना हृदय में धारण करने का वर्णन आता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णन आता है कि जितने स्थान में विष्णु लेटकर सो गए, वह स्थान देवताओं के यज्ञ की वेदी हो गया। शेष स्थान असुरों को मिला। बाद में विष्णु ने अपने शरीर का विस्तार कर लिया और उन्होंने सारी पृथिवी को व्याप्त कर लिया। शतपथ ब्राह्मण ३.५.३.२१ में दक्षिण हविर्धान को टेक लगाते समय अध्वर्यु जिस मन्त्र का पाठ करता है, उसमें भी विष्णु के तीन उरुक्रमों का उल्लेख है। अत: यह विचारणीय है कि भृगु ऋषि विष्णु को यज्ञ रूपी वेदी का विस्तार करने के लिए किस प्रकार प्रेरित करते हैं?

ब्राह्मण ग्रन्थों में अध्वर्युओं के जिन नामों का उल्लेख आया है, वह इस प्रकार हैं : ऐतरेय ब्राह्मण ७.१६ में हरिश्चन्द्र के राजसूय यज्ञ में जमदग्नि अध्वर्यु हैं तथा विश्वामित्र होता। अथर्ववेद १८.४.१५ में प्रेत कर्म के संदर्भ में अग्नि होता और बृहस्पति अध्वर्यु का उल्लेख है। जैमिनीय ब्राह्मण १.३६३ में सोमप्रख्य गृहपतियों के सत्र में शितिबाहु ऐषकृत अध्वर्यु थे। जैमिनीय ब्राह्मण ३.२३४ में मेधातिथि गृहपतियों के सत्र में सनक-नवक द्वय अध्वर्यु थे। शतपथ ब्राह्मण ११.४.२.१७ में अय: स्थूण गृहपतियों के सत्र में शौल्बायन अध्वर्यु थे।

अध्वा अग्नि २७.६१(दीक्षा क्रम में शिष्य की देह में सृष्टि व संहार क्रम से दैविक, भौतिक व आध्यात्मिक अध्वों की कल्पना व उनका शोधन), ब्रह्म १.१०५.१०० (यमलोक में कष्टदायक नरक के मार्ग की अध्वा संज्ञा), विष्णु धर्मोत्तर २.७३.२०० (अध्वा में ऊसर प्रदेश में पक्वान्न लिए हुए मूत्र त्याग करने पर प्रायश्चित विधान कथन), २.१२४.४८ (अध्वा में प्रशस्त या अप्रशस्त शकुन देखने पर, नदी पार करने पर, रथ द्वारा यात्रा आदि करने पर जपनीय मन्त्रों का उल्लेख), ३.२७३.२ (तीर्थयात्रा प्रसंग में अध्वा के क्लेश-दुख उठाने पर ही तीर्थयात्रा का फल प्राप्त होने का वर्णन), भागवत ५.१३.१९ (रहूगण-जडभरत

संवाद प्रसंग में जीव का अध्वा में भटकना और ज्ञान की असि लेकर अध्वा को पार करने का निर्देश), ५.१४.२७ (शुकदेव द्वारा परीक्षित को अध्वा में फंसे जीव द्वारा प्राप्त उपसर्गों/कष्टों का वर्णन करना), शिव ७.१.२९ (पराशक्ति के षड् अध्वा रूप में ६ विभाग), ७.२.१७ (षट् ०, शिष्य की योग्यता परीक्षा), स्कन्द ४.२.९७.९९ (अध्वकेश लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य : मोह विनाशक), महाभारत उद्योग ३४.४७ (यान द्वारा अध्वा पर विजय पा लेने का उल्लेख), ३९.७७ (देहधारियों के लिए अध्वा का जरा होने का उल्लेख), शान्ति ३२५.१६ (शुकदेव द्वारा खेचर की भांति अध्वा को पार करने का उल्लेख), आश्वमेधिक ३९.१३ (सूर्य के उदित होने पर अध्वगों को उष्णता से कष्ट प्राप्ति का कारण : रजोगुण की प्रधानता होना), ४६.२७ (सूर्य द्वारा निर्दिष्ट अध्वा पर कीटवत् चलने का निर्देश)

टिप्पणी : अध्वा मार्ग को कहते हैं। ऋग्वेद ३.३०.१२ में सूर्य के गमन मार्ग को अध्वा कहा गया है। वेदों के विभिन्न मन्त्रों में विभिन्न देवों, विशेषकर, अग्नि से अध्वा को सुगमता से पार कर लेने की प्रार्थना की गई है। अग्नि इस अध्वा पथ को अच्छी तरह जानता है (ऋग्वेद ६.१६.३)। ऋग्वेद ८.३१.११ में पूषा देवता से इस उरु अध्वा में स्वस्ति के लिए धन आदि लाने की प्रार्थना की गई है। इस अध्वा को या तो रथ पर बैठकर पार किया जा सकता है (ऋग्वेद १०.५१.६) अथवा अश्व द्वारा। यह पथ कौन सा है, यह पुराण में ६ अध्वों के रूप में स्पष्ट किया गया है। यज्ञ में अध्वर्यु नामक ऋत्विज का लक्ष्य यजमान को अध्वा के पार कराना है, ऐसा प्रतीत होता है। अध्वर्यु को षड्विंश ब्राह्मण २.७ आदि में अपान कहा गया है। अत: यह कल्पना कर सकते हैं कि प्राण रूप में जो शक्ति प्राप्त हुई है, उसका जीवन रूपी यज्ञ में, अध्वा में सम्यक् उपयोग करने का, उसे अपान बनाने का, यज्ञ से असुरों को निकाल बाहर करने का कार्य अध्वर्यु का है।

अनंशा गर्ग १.११.५८ (योगमाया का अवतार, कंस द्वारा वध)

अनघ नारद १.११७.८२ (0अष्टमी व्रत विधि), भविष्य ४.५८ (० अष्टमी व्रत : दत्तात्रेय का ० उपनाम, अनघ -पत्नी हरण पर दत्तात्रेय द्वारा असुर वध, कार्तवीर्य -महिमा कथन), विष्णु धर्मोत्तर १.१०.१३ (वसिष्ठ व ऊर्जा -पुत्र), ३.२.३१ (११वें मन्वन्तर में एक ऋषि), वायु ६९.१ (एक मौनेय गंधर्व), वा ९९.१३३ (त्रसु -पुत्र, रन्तिनार -पौत्र), स्कन्द ४.१.२९.२० (अनघा : गंगा सहस्रनामों में से एक)

अनंग गरुड १.११७(०त्रयोदशी व्रत: मासानुसार अनंग नाम व पूजा द्रव्य), नारद १.१२२.२ (० त्रयोदशी व्रत विधि), अग्नि १९१ (वही), भविष्य ४.९० (० त्रयोदशी व्रत), स्कन्द ७.१.१५८ (० लिंग माहात्म्य), लक्ष्मी नारायण २.७७.२ (अनंगपुर के राजा बृहद्वर्चा द्वारा तापी तट पर दान, प्रतिग्रह पाप से विप्रों का कृष्ण वर्ण होना), २.१९१.८२ (अंग के पिता कर्दम का उपनाम), ३.२१.५९ (० नामक २६वें वत्सर में प्लक्ष नारायण के प्राकट्य का वृत्तांत), कथासरित् १२.१७.४ (अनंगपुर वासी मदनसेना नामक कन्या पर धर्मदत्त वणिक् की आसक्ति व मदनसेना द्वारा समुद्रदत्त से विवाह के पश्चात धर्मदत्त के पास जाने का वृत्तांत), १८.१.७० (विक्रमादित्य के अनंगदेव नामक दूत द्वारा सिंहल देश के राजा की कन्या को स्वामी विक्रमादित्य के लिए स्वीकार करना), १८.१.१०४, १८.२.२१७ (दुन्दुभि यक्ष की कन्या मदनमंजरी द्वारा अनंगदेव को अपना वृत्तांत सुनाना व राजा विक्रमादित्य द्वारा किए गए उपकार के प्रत्युत्तर में दो स्वर्गीय कन्याएं व मृगशावक भेंट करना); दृ. काम

टिप्पणी : बहिर्मुखी चित्तवृत्तियों का निरोध कर देने पर, या काम को भस्म कर देने पर काम अनंग हो जाता है। तब यह वही काम है जिसके लिए गीता में कृष्ण ने कहा है -धर्माविरुद्धो कामोहं अर्थात मैं धर्म के अविरुद्ध काम हूँ। - फतहसिंह

अनंगकुसुमा देवीभाग १२.११.७९ (६४ कलाओं में एक नाम)

अनंगप्रभा कथासरित् ९.२.१७० (समर विद्याधर व अनंगवती -पुत्री, शाप के कारण खड्गधर पति प्राप्ति, मनुष्य जीवन में अनेक पति प्राप्ति के पश्चात मदनप्रभ पति की प्राप्ति

अनंगमंजरी भविष्य ३.२.२० (अर्थदत्त वैश्य -पुत्री, सुवर्ण -भार्या, विप्र को रति दान, मरण), कथासरित् १२.६.३३० (अनंगोदय राजा -पुत्री, श्री दर्शन से विवाह कथा, पूर्व जन्मों का वृत्तांत), १२.२८.६ (अर्थदत्त वैश्य -कन्या, मणिवर्मा-पत्नी, कमलाकर पर आसक्ति, प्रेम, वियोग, मरण व पुनर्जीवन)

अनंगमेखला देवीभाग १२.११.१२ (६४ कलाओं में से एक का नाम)

अनंगमोहिनी स्कन्द ४.१.३९.३७ (वासुकि -कन्या, दिवोदास - पत्नी)

अनंगरति कथासरित् ९.२.९४ (महावराह राजा व पद्मरति की कन्या, चार वीरों द्वारा प्राप्ति की चेष्टा, अनंगरति का शरीर त्याग कर विद्याधरी बनना), १२.१६.१३ (वीरदेव व पद्मरति की राजकन्या, चार वीरों द्वारा प्राप्ति की चेष्टा कथा)

अनंगलीला कथासरित् १२.२.४८ (राजा धर्मगोप -कन्या, भद्रबाहु राजा द्वारा युक्ति से ० को प्राप्त करने की कथा)

अनंगलेखा ब्रह्माण्ड ४.१९.२५ (ललिता के चक्रराज रथ पर स्थित एक देवी), स्कन्द ४.१.२४.६१ (पाण्ड्य नरेश -पुत्री, वृद्धकाल -पत्नी, पूर्व जन्म में तुर्वसु -पुत्री, नैध्रुव -पत्नी), ४.२.६७.४१ (गन्धर्व कन्या रत्नावली की सखी), ४.२.६७.८९ (० द्वारा पृथ्वी वासियों के चित्रों का लेखन)

अनंगवंती स्कन्द ७.१.३९ (वेश्या, शूद्र दम्पत्ति से केदार लिंग के समक्ष जागरण माहात्म्य कथन), मत्स्य १०० (विभूति द्वादशी व्रत प्रभाव से ० का काम-पत्नी प्रीति बनना), भविष्य ४.८५ (वही), कथासरित् ९.२.१७० (समर विद्याधर राज-पत्नी, अनंगप्रभा कन्या को शाप)

अनंगवल्ली लक्ष्मी नारायण ४.५६.३ (गर्भभ्रूण घातिनी ० की कथा श्रवण से मुक्ति)

अनंगोदय कथासरित् १२.६.३३० (हंस द्वीप का राजा, स्वकन्या अनंग मंजरी का श्रीदर्शन राजकुमार से विवाह)

अनन्त अग्नि ४६.१० (शिलाओं में अनन्त मूर्ति के परिज्ञान हेतु चिन्ह कथन), ५६.३१ (दस दिशाओं के अधिपतियों के संदर्भ में अनन्त से अधोदिशा की रक्षा की प्रार्थना), १२०.१५ (अन्त हीन संख्याओं वाली अनन्त प्रकृति के परा नाम का उल्लेख), १९२.७ (कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी को अनन्त पूजा विधि), १९६.१८ (० व्रत महिमा), ३०४.२३ (दीक्षा के संदर्भ में अनन्त योग पीठ पर शिव का आवाहन), ३०५.१० (सैन्धवारण्य में विष्णु का नाम), नारद १.१७.९७ (नारायण के अनन्त शायी होने का उल्लेख), १.४२.२५ (पृथिवी, जल, अग्नि आदि की अन्तता व आकाश की अनन्तता का वर्णन), १.१२३.२३ (० चतुर्दशी व्रत व उद्यापन विधि), वराह २४.५ (सर्प नाम, कश्यप - कद्रू पुत्र), ११३.५७ (विष्णु की श्रेष्ठता वर्णन प्रसंग में विष्णु के नागों में अनन्त व सर्पों में तक्षक होने का उल्लेख), १७६.७४ (अनन्त देव के लक्षणों का कथन : श्रोत्रों में अनन्त आकाश, नेत्रों में अनन्त तेज आदि), विष्णु २.५.१३ (अनन्त/शेष महिमा कथन), विष्णुधर्मोत्तर १.१७३ (० व्रत), ३.६५ (० का मूर्ति रूप), ३.१०६.२५ (० आवाहन मंत्र), ३.१५० (० व्रत), ३.२१९ (० द्वादशी व्रत), हरिवंश २.२६ (यमुना में अक्रूर द्वारा ० के दर्शन प्रसंग), भविष्य ४.२६ (० तृतीया व्रत : ललिताराधन), भ ४.९४ (० चतुर्दशी व्रत, कौण्डिन्य -शीला कथा), भ ४.१०६ (० व्रत, शीलधना -मैत्रेयी संवाद, ० व्रत से कार्तवीर्य पुत्र प्राप्ति), वामन ५७.७३ (यक्षों द्वारा कुमार को प्रदत्त गण का नाम), भागवत १०.६७.१ (अनन्त बलराम की लीलाओं का वर्णन : द्विविद वानर का वध), १०.६८.४१ (अनन्त बलराम द्वारा हस्तिनापुर का हल की नोक से कर्षण करके गंगा में डुबाने का उद्योग), १०.८९ (कृष्ण द्वारा अर्जुन के साथ पश्चिम दिशा में अनंत से मिलन, ब्राह्मण बालक की प्राण रक्षा), स्कन्द ३.१.१४.३१ (आदि व अन्त से रहित शिवलिंग के आदि व अन्त का अन्वेषण करने के लिए हंस रूप धारी ब्रह्मा का ऊर्ध्व दिशा में तथा वराह रूप धारी विष्णु का अधोदिशा में गमन, आदि-अन्त को पाने में असफलता), ३.१.३६.१२२ (अमावास्या को महालय श्राद्ध करने से पितरों की अनन्त तृप्ति होने का कथन), ३.३.७.३९ (अनन्ता : शिव के परितः ९ शक्तियों में से एक), ४.२.६०.१२५ (अनन्त माधव : माधव का त्रेता युग में नाम), ४.२.६१.१९८ (अनन्तवामन का संक्षिप्त माहात्म्य), ६.२३२.३ (चातुर्मास के संदर्भ में विष्णु के सोने पर व्रत, दान आदि करने पर अनन्त फल होने का कथन), ७.१.१६१ (० लिंग माहात्म्य), ७.१.३३६.११ (प्रभास क्षेत्र में गोष्पद तीर्थ के निकट अनन्त नाग की स्थिति का कथन), मत्स्य ६२ (० तृतीया व्रत विधि, ललिता न्यास, मास अनुसार पुष्प पूजा), देवीभाग ८.२०+ (पाताल लोक के नीचे वास, महिमा), ब्रह्मवैवर्त २.१.१०६ (तुष्टि -पति), ४.९.४२ (अनन्त बलराम के जन्म का वर्णन : देवकी गर्भ का रोहिणी में स्थांतरण), ब्रह्म १.२१.२६ (ब्रह्माण्ड की सीमा के वर्णन के अन्तर्गत पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश की सीमाओं तथा प्रधान के अनन्त होने का कथन, अनन्त का परा प्रकृति नाम), १.३१.४२ (सूर्य के १०८ नामों में से एक), ब्रह्म १.६७ (अनन्त वासुदेव माहात्म्य, वासुदेव प्रतिमा का इन्द्र, रावण, राम, कृष्ण आदि में हस्तांतरण), २.४.४४ (बलि -वामन कथा में वामन का अनन्त बनना), लक्ष्मी नारायण २.१४०.७७ (अनन्तमाया नामक प्रासाद के लक्षण), कथासरित् ९.५.५७ (अनन्तशक्ति : राजा देवशक्ति -पत्नी, मदनसुन्दरी -माता), कस ९.६.४२ (अनन्त स्वामी : राजा ताराधर्म -मन्त्री, चन्द्रस्वामी ब्राह्मण के पुत्र महीपाल का पालन करना), कस ९.६.१२१ (अनन्त ह्रद में चन्द्रस्वामी ब्राह्मण का स्नान), १०.२.१० (अनन्त गुण : राजा विक्रमसिंह -मन्त्री, वेश्या पर आसक्त राजा को वेश्या के प्रेम की परीक्षा का परामर्श), दृ. बलराम, शेष

टिप्पणी : आध्यात्मिक दृष्टिकोण से अन्त और अनन्त में क्या अन्तर है, इसका स्पष्टीकरण मैत्रायणी संहिता २.२.९ से प्राप्त होता है। चित्तवृत्तियों का निरोध कर लेना, वृत्र का वध कर देना अन्त कहलाता है। यह एकान्तिक साधना है, तप है। इसके पश्चात अनन्त बन कर अनन्त आनन्द प्राप्त करने की साधना आरंभ होती है। अनन्त चतुर्दशी व्रत कथा के संदर्भ में भविष्य पुराण में वर्णित कथा में कौण्डिन्य मुनि के नाम से

स्पष्ट होता है कि वह अपने पापों का नाश करने के लिए तत्पर है (कुण्ड धातु को उणादिकोश २.४९ में दाह के अर्थों में लिया गया है)। मुनि का अर्थ मौन होता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.४.१३.१ के अनुसार अनन्त की खोज मूक बनकर आरंभ होती है। अनन्त की खोज में वह पहले अपनी साधना में आम्र वृक्ष का दर्शन करता है और आम्र बने हुए स्वयं के व्यक्तित्व से पूछता है कि क्या यह अनन्त है ? उसको नकारात्मक उत्तर मिलता है। यह आम्र वृक्ष कैसे उत्पन्न हुआ? ऐसी संभावना है कि साधना की एकान्तिक स्थिति अमः, अमावास्या कहलाती है। यह असीम चेतना की स्थिति है। असीम चेतना से व्युत्थान की, हिरण्यय कोश से नीचे के कोशों में अवतरण की स्थिति आम्र वृक्ष का रूप हो सकती है (तुलनीय : स्कन्द पुराण में अमावास्या को श्राद्ध से अनन्त तृप्ति का उल्लेख)। आम्र वृक्ष की अनन्तता के अन्वेषण की दूसरी संभावना पुराणों के इस श्लोक से खुलती है कि अग्निहोत्र फला वेदा शील वृत्त फलं श्रुतम्। अर्थात् अग्निहोत्र का फल वेद विद्या की प्राप्ति है और शील का फल श्रुत का ज्ञान है। गोपथ ब्राह्मण १.५.८ में वर्णन है कि प्रजापति ने पूर्णाहुति, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास, इष्टि पशुबन्ध, अग्निष्टोम, राजसूय, वाजपेय, अश्वमेध, सर्वमेध, अहीन यज्ञों द्वारा यजन किया लेकिन उसने अन्त ही देखा। फिर उसने प्रायणीय अतिरात्र व उदयनीय अतिरात्र अन्तों वाले सत्र से यजन किया। उसने अपनी वाक् का होता ऋत्विज में, प्राण का अध्वर्यु में, चक्षु का उद्गाता में, मन का ब्रह्मा में, अंगों का अन्य होताओं में एकीकरण कर दिया। तब उसने अनन्त का दर्शन किया (तुलनीय : पुराणों में अनन्त व्रतों के वर्णन में शरीर के अंगों में नक्षत्रों का न्यास)। भविष्य पुराण में आम्र वृक्ष के पूर्व जन्म में वेदपाठी ब्राह्मण होने और विद्या दान के अभाव में आम्र वृक्ष बनने के उल्लेख से यह संकेत मिलता है कि यद्यपि अग्नि होत्र से वेद विद्या रूपी फल की प्राप्ति होती है, तथापि वह प्राप्ति ऐसी नहीं है कि उसका सभी स्तरों पर विस्तार किया जा सके। अनन्तता क्या है, इस संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण १४.५.५.१९ तथा १३.७.१.१ का यह कथन महत्वपूर्ण है कि कण-कण में उस परमात्मा के रूप के दर्शन करना ही मधु विद्या है। यही अनन्तता को प्राप्त होना है। शतपथ ब्राह्मण १४.६.२.११ में रूप के स्थान पर नाम द्वारा अनंत की प्राप्ति का उल्लेख है। भविष्य पुराण में बलराम के अवतार के रूप में आह्लाद (आल्हा) का चरित्र चित्रण उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि करता है। अनन्त की साधना के दूसरे चरण में कौण्डिन्य मुनि द्वारा हरी घास में दौड़ती हुई गौ व वत्स के दर्शन का उल्लेख आता है। यह गौ पूर्व जन्म में ब्राह्मणी थी जो निष्फला भूमि के दान से गौ बनी है। वैदिक साहित्य में पृथिवी या गौ का सर्वोत्कृष्ट रूप देवमाता अदिति, अखण्डित शक्ति लिया जाता है। इसके विपरीत असुरों की माता दिति है। अग्निहोत्र आदि कार्य में प्रयोजनीय दुग्ध की प्राप्ति के लिए यजमान स्वयं वत्स का रूप धारण करके अदिति गौ से दुग्ध प्राप्त करता है। शतपथ ब्राह्मण ९.३.३.१५ में वसुधारा होम के संदर्भ में कल्पना की गई है कि द्युलोक एक गौ है जिसके विद्युत स्तन हैं, वहां से गिरने वाली धारा ही धारा है। यह धारा पृथिवी रूपी गौ को प्राप्त होती है। पृथिवी रूपी गौ से यजमान को। फिर यजमान स्वयं गौ बन कर यज्ञ कर्म में आज्य धारा के रूप में उसका अग्नि में होम करता है जिससे वह धारा देवों को प्राप्त होती है। देवों से पुनः गौ को। इस प्रकार यह चक्र चलता रहता है। यह अनन्त का एक रूप है। यह वसुधारा संवत्सर अग्नि से एकीकृत होती है। संवत्सर का रूप अनन्त कहा गया है। गोपथ ब्राह्मण १.५.८ में प्रायणीय और उदयनीय अन्तों वाले जिस सत्र का उल्लेख है, उसमें प्रायणीय अदिति से ही सम्बन्धित है।

अनन्त की साधना के तृतीय चरण में स्वयं को वृष में रूपांतरित करना होता है। कथा में वृष का दोष यह कहा गया है कि पूर्व जन्म में वह स्वयं तो स्वादिष्ट भोजन करता था तथा दूसरों को पर्युषित भोजन देता था, अतः वृष बना। वैदिक साहित्य में सूर्य को वृष कहा गया है। वह पहले अपनी किरणों से जल का कर्षण करता है तथा फिर उसकी वर्षा करता है। ऋग्वेद ५.४७.२ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.११.७.४ में आदित्य के दो रूपों की कल्पना की गई है। एक रूप जो आदित्य से अवर है, नीचे है, वह अन्तवान है, क्षय होने वाला है। दूसरा रूप जो आदित्य से ऊपर है, वह अनन्तवान है। गोपथ ब्राह्मण में जिस प्रायणीय -उदयनीय अतिरात्र से अनन्त प्राप्ति का उल्लेख है, उसमें उदयनीय से तात्पर्य आदित्य के उदय से, उदान प्राण के उदय से है। उदान प्राण के अन्तर्गत चन्द्रमा, नक्षत्र आदि का उदय आता है जिनका स्थान योग में आदित्य से ऊपर माना जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि कौण्डिन्य मुनि ने जिस वृष के दर्शन किए हैं, वह अवर आदित्य है।

अनन्त साधना के चतुर्थ चरण में दो पुष्करिणियों के दर्शन तथा पंचम व षष्ठ चरण में गर्दभ व कुंजर के दर्शनों का उल्लेख है जिनका निहितार्थ अन्वेषणीय है।

अनन्त को शेषनाग का रूप देने के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण ४.३.१.७ में संवत्सर को अनन्त कहा गया है क्योंकि एक संवत्सर व्यतीत होने के पश्चात फिर उसकी पुनरावृत्ति होने लगती है। ऐतरेय ब्राह्मण ३.४३ में ऐसी स्थिति, जिसमें आदि और अन्त का पता न लगे, की कल्पना एक अहि/सर्प के रूप में की गई है जिसके मुख में उसकी पुच्छ है। अनन्त के आयुध सीर/हल के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण २.६.३.२ तथा जैमिनीय ब्राह्मण २.२३४ आदि में चातुर्मास यज्ञ के चतुर्थ मास में शुनासीर यज्ञ का वर्णन आता है। कहा गया है कि इसमें जो शुनम् भाग है, उसके द्वारा देवगण श्री का सम्पादन करते हैं। यह वृत्र के वध से प्राप्त होती है। तथा जो सीर भाग है, वह संवत्सर पर विजय प्राप्त करने पर उसके रस के रूप में प्राप्त होता है। यह रस वही मधु है जिसका दर्शन अनन्तता की प्राप्ति पर कण-कण में होता है (तु. स्कन्द पुराण में अनन्त माधव का उल्लेख)। ऐसा प्रतीत होता है कि सीर को ही पुराणों में कौण्डिन्य मुनि की पत्नी शीला के रूप में चित्रित किया

गया है।

वराह पुराण में अनंत के लक्षणों के रूप में श्रोत्रों में अनन्त आकाश तथा चक्षुओं में अनन्त तेज आदि होने के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण १४.६.१०.१२ में भी श्रोत्रों को अनंत बनाने के लिए उनमें दिशाओं की प्रतिष्ठा का उल्लेख है और दिशाओं को अनन्त कहा गया है। लेकिन जैमिनीय ब्राह्मण २.२१४ में प्राची और ऊर्ध्वा दिशाओं द्वारा सर्वप्रथम अनन्त स्वर्ग लोक की जय का उल्लेख आता है। स्कन्द पुराण में ब्रह्मा द्वारा हंस बनकर ऊर्ध्व दिशा में तथा विष्णु द्वारा यज्ञवराह बनकर अधोदिशा में शिवलिंग का अन्वेषण करने और अनन्तता को प्राप्त होने का वणंन आता है जो अपने आप में एक विशिष्ट वर्णन है। हंस सूर्य का प्रतीक हो सकता है (हंसः शुचिषद् वसु अन्तरिक्षसद् इत्यादि)। वराह पुराण में चक्षुओं की अनन्तता के संदर्भ में जैमिनीय ब्राह्मण १.१६८ में सोम से प्रार्थना की गई है कि वह मेरे अंदर ऐसे नृचक्ष चक्षु स्थापित करे जिसके द्वारा गायत्री श्येन बनकर स्वर्ग से अमृत लाई, जिन्हें अदिति के अनन्त चक्षु कहा जाता है। शतपथ ब्राह्मण १०.२.६.६ में अनन्तता के लिए नृचक्ष सविता को आह्वान किया गया है। शतपथ ब्राह्मण १४.६.१.११ में यज्ञ में दक्षिण दिशा में ब्रह्मा द्वारा मन के द्वारा अनन्तता प्राप्त करने का उल्लेख है। अधो दिशा, जिसे वैदिक साहित्य में ध्रुवा दिशा कहा जाता है, में अनन्तता प्राप्ति का क्या उपाय है, इसका वर्णन पौराणिक साहित्य में अधिक स्पष्ट प्रतीत होता है।

प्रायः भक्त तपस्या के अन्त में अपने इष्टदेव के दर्शन करने पर उनकी स्तुति करता है, जो अनुष्टुप छन्द में होती है। जैमिनीय ब्राह्मण में 'अन्त' वाली स्थिति के अन्त में स्तुति को स्तोम तथा अनन्त वाली स्थिति में स्तुति को स्तोत्र नाम दिया गया है।

अनन्त के संदर्भ में अन्य महत्वपूर्ण उल्लेखों में जैमिनीय ब्राह्मण १.२.५७ का कथन है कि परिमण्डल द्वारा अनन्तता प्राप्त होती है, जैसे सूर्य, चन्द्रमा, द्यौ, अन्तरिक्ष व पृथिवी के परितः। इसी प्रकार पुरुष के परितः भी परिमण्डल अपेक्षित है। जैमिनीय ब्राह्मण १.३१४ के उल्लेख के अनुसार प्रजापति काम होकर अनन्त हुआ और अनन्त होकर मृत्यु हुआ ? छान्दोग्य उपनिषद ४.६.३ में चार कला रूपी पादों वाले अनन्त ब्रह्म का वर्णन किया गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.११.१.१ में नचिकेता अग्नि चयन के संदर्भ में प्रथम इष्टका को अनन्त कहा गया है।

अनन्ती मत्स्य ४.३३ (स्वायम्भुव मनु - पत्नी, प्रियव्रत व उत्तानपाद -माता).

अनपत्य पद्म ७.२५ (अनपत्यपति द्विज द्वारा पवित्र ब्राह्मण सहित लोमश ऋषि से अतिथि महिमा श्रवण

टिप्पणी : अथर्ववेद के तीन मंत्रों और ऋग्वेद ३.५४.१८ में अनपत्य शब्द आया है। अथर्ववेद १८.२.४७ में द्वेषों को अनपत्यवान कहा गया है। साधना के मार्ग में सिद्धि प्राप्त न होने की दशा को अनपत्यता कहा जा सकता है। जिसने अनपत्यता के कारणों पर विजय पा ली है, उसे अनपत्य पति कहा जा सकता है।

अनमित्र मार्कण्डेय ७३.३ (भद्रा - पति, जाति - स्मर पुत्र का जातहारिणी द्वारा अपहरण आदि कथा), स्कन्द ५.२.३३ (वही), विष्णु धर्मोत्तर ४.१४.१ (शिनि -पिता, यादव वंश वर्णन), वि ४.१३.९ (युधाजित -पुत्र), भागवत ९.२४.१२ (युधाजित -पुत्र, शिनि-भ्राता, निम्न व शिनि -पिता, वंश वर्णन), ब्रह्माण्ड २.३.७१.१९ (धृष्ट व माद्री -पुत्र?, निघ्न -पिता, स्यमन्तक मणि कथा), मत्स्य १२.४७ (निघ्न -पुत्र, कृतयुग में राजा बनने हेतु तप), ४५.२ (वृष्णि व माद्री -पुत्र, निघ्न -पिता), ४५.२२ (शिनि -पिता), ४५.२५ (पृथ्वी -पति, युधाजित -पिता, वंश वर्णन)

टिप्पणी : अथर्ववेद ६.४०.३ में पांचों दिशाओं के अनमित्र (अन् -अमित्र, जिसका कोई शत्रु नहीं) होने की कामना की गई है। अथर्ववेद १२.१.१० में कहा गया है कि जिस अनमित्रा पृथ्वी को विष्णु ने पद से मापा, जिसे इन्द्र ने शत्रुहीन किया, वह पृथ्वी हमें पयः प्रदान करे।

अनरक वामन ४१ (तीर्थ, वर्णन), स्कन्द ५.३.१५९ (पापों के कारण प्राप्त होने वाली नरक यातनाओं से मुक्ति हेतु अनरक तीर्थ वर्णन) दृ. नरक

अनरण्य ब्रह्मवैवर्त ४.४१.१२२ (अनारण्य - पुत्री पद्मा का पिप्पलाद से परिणय), शिव २.३.३४ (० -पुत्री पद्मा का पिप्पलाद से परिणय), शि ३.२५ (वही), वराह ६२ (पद्म प्राप्ति का उद्योग, कुष्ठ प्राप्ति, मुक्ति), विष्णु धर्मोत्तर १.२२१.४ (रावण को शाप), वा.रामायण ७.१९(रावण से पराजय व मृत्यु , रावण को शाप), लक्ष्मी नारायण १.३७२ (स्वकन्या पद्मा का पिप्पलाद से विवाह), भागवत ९.७.४ (त्रसद्दस्यु -पुत्र, हर्यश्व -पिता), विष्णु धर्मोत्तर ४.३.१७ (त्रसद्दस्यु -पुत्र, पृषदश्व -पिता, वंश वर्णन), ब्रह्माण्ड २.३.६३.७४ (सम्भूत -पुत्र, हर्यश्व -पिता, वंश वर्णन), वायु ८८.७५ (वही), मत्स्य १२.४७ (सर्वकर्मा -पुत्र, निघ्न -पिता)

अनल भविष्य ३.४.१६ (नल ब्राह्मण की नल - पत्नी दमयन्ती पर आसक्ति, अनल नाम प्राप्ति, तप), भ ३.४.१६ (वैश्वानर का पूर्वजन्म में नाम), वा.रामायण ६.३७.७ (विभीषण -मन्त्री, लंका की रक्षा व्यवस्था का दर्शन), रा ७.५.४५ (माली व वसुदा - पुत्र, विभीषण -मन्त्री), रा ७.२५.२४ (अनला : माल्यवान -पुत्री, कुम्भीनसी -माता), लक्ष्मी नारायण २.१८३.५७ (० संज्ञक पक्षियों द्वारा राक्षसों द्वारा उत्पन्न श्येनों का भक्षण), ३.२३.१ (अनल वत्सर में सूर्यवर्चा नृप द्वारा शिंशपा नारायण के प्राकट्य का उद्योग), ३.३२ (अनलाद : अग्नि भक्षक असुर, कृष्ण द्वारा वध कथा), ब्रह्माण्ड २.३.३.२१ (अष्ट वसु गणों

में एक, स्वाहा -पति, कुमार, शाख, विशाख, नैगमेय पुत्र), ब्रह्माण्ड २.३.७.२३५ (वानर सेनानी), मत्स्य ५.२१ (वही), विष्णु धर्मोत्तर १.१५.११० (वही), वि ४.४.१०६ (निषध -पुत्र, नभ -पिता), स्कन्द ४.२.६९.१६५ (अनलेश्वर लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य); द्र. अग्नि, दावानल, बडवानल, व्याघ्रानल आदि

अनसूया स्कन्द ५.३.१०३ (त्रिदेवों से तीन पुत्र प्राप्ति कथा), वामन ६.६२ (शिव रूप से अप्रभाविता), भागवत ३.२४.२२ (कर्दम -कन्या, अत्रि -पत्नी), भा ४.१.१५ (त्रिदेवों को पुत्र रूप में प्राप्त करने की कथा), वा.रामायण २.११८ (राम वनवास प्रसंग में सीता से वार्तालाप), मार्कण्डेय १६ (कौशिक ब्राह्मण की पतिव्रता पत्नी को वर), लक्ष्मी नारायण१.४८३ (त्रिदेवों को तीन पुत्रों के रूप में प्राप्त करना), वराह २७.३७ (अष्ट मातृकाओं में अष्टम मातृका, अन्धकासुर रक्त पान हेतु वराह/विष्णु द्वारा सृष्टि), भविष्य ३.४.१७.६७ (त्रिदेवों को शाप देकर स्व पुत्र रूप में परिणत करना), ब्रह्माण्ड १.२.११.२२ (पांच आत्रेयों व श्रुति नामक कन्या की माता), वायु २८.१८ (वही), शिव ४.४ (० तप से संतुष्ट गंगा का अत्रि आश्रम में वास); द्र. असूया

टिप्पणी : यदि अनसूया शब्द की निरुक्ति परम्परागत रूप में अन् -असूया के रूप में की जाए तो अनसूया के चरित्र पर अधिक प्रकाश नहीं पडता। यदि निरुक्ति अन् -असुर्या रूप में की जाती है तो असुर्या रात्रि को कहते हैं (मैत्रायणी संहिता १.८.६ तथा ३.६.६)। सरस्वती को भी असुर्या कहते हैं (ऋग्वेद ७.९६.१)। रात्रि अव्यक्त पक्ष है। अन -असुर्या व्यक्त पक्ष है। यह पुराणों में अनसूया द्वारा सूर्य को उदित करने के रूप में प्रतिपादित किया जा सकता है। अन -असुर्या का दूसरा अर्थ सूर्या भी होता है। ऋग्वेद १०.८५ में सावित्री सूर्या का सोम से विवाह होता है जिसमें सूर्या मनोमय अन/रथ में बैठती है। उसके रथ में तीन चक्र हैं। अन प्राणों को भी कहते हैं। अतः अनसूया का अर्थ प्राणों को प्रेरित करने वाली भी हो सकता है। शाण्डिल्य उपनिषद ३.१ में दिए गए वर्णन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अनसूया निष्कल, सकल अथवा सकल -निष्कल ब्रह्म तक सीमित नहीं रहती। वह तो भक्ति की तुरीयावस्था है। वही अत्रि, तीनों से परे की अवस्था है। इसी कारण ऋग्वेद १०.८५ में सूर्या का विवाह सोम से होता है।

अनागतविधाता कथासरित् १०.४.१७९ (भाग्य पर ही निर्भर न रहने वाले मत्स्य का नाम)

अनादिकल्प स्कन्द५.२.५ (अनादिकल्पेश्वर लिंग माहात्म्य : ब्रह्मा द्वारा लिंगान्त दर्शन में असफलता)

अनाधृष्टि हरिवंश २.८४.२६ (ब्रह्मदत्त के यज्ञ में निकुम्भ असुर द्वारा यादववीर अनाधृष्टि का बन्धन), २.१२१.४० (द्वारका से अनिरुद्ध का अपहरण होने पर ० द्वारा कृष्ण के समक्ष स्व विचार प्रकट करना), वायु ९६.१४८ (अनादृष्टिः शूर व भोजा -पुत्र, आनकदुन्दुभि -भ्राता) ९६.१८६ (अस्मकी -पुत्र), ९९.१२७ (रिवेयु -पिता), ब्रह्माण्ड २.३.७१.१८९ (अश्मकी -पुत्र)

टिप्पणी : वेदों में अनाधृष्ट, अनाधृष्य आदि शब्द आए हैं। तप से अनाधृष्य होते हैं (ऋग्वेद १०.१५४.२)। मरुत ओज द्वारा अनाधृष्ट होते हैं (ऋग्वेद १.१९.४)। अथर्ववेद २०.९४.५ में पात्रों के अनाधृष्य होने की कामना की गई है। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३१० के अनुसार शरीर में पृथ्वी भाग, अन्तरिक्ष भाग व आकाश भाग से गायत्री का संयोग होने पर अग्नि, द्यौ व आदित्य की उत्पत्ति होती है। शांखायन ब्राह्मण २७.५ में अग्नि, द्यौ व आदित्य को अनाधृष्य कहा गया है क्योंकि इनकी गति ऊपर की ओर है। शतपथ ब्राह्मण ८.२.४.४ में अन्न को विराट व अनाधृष्ट कहा गया है। पुराणों में अनाधृष्टि को भोजा -पुत्र कहा गया है। भोजा जो भोजन देगी वह अनाधृष्ट होगा।

अनामय स्कन्द ७.१.७ (चतुर्थ कल्प में शिव नाम), लक्ष्मी नारायण २.११०.८७ (० का पन्ना नामक देश के निवासियों का गुरु बनना)

अनायुषा मत्स्य १७१.५९ (दक्ष-कन्या, कश्यप-भार्या, व्याधियों की माता), ब्रह्माण्ड २.३.६.३० (अररु, बल, वृत्र आदि पांच पुत्र), २.३.७.४६८ (० की भक्षणशीला प्रकृति)

अनिच्छासेनकथासरित्७.८.७३(परित्याग सेन व अधिकसंगमा -पुत्र, इन्दीवर सेन -अनुज, विमाता के कारण राज्य से पलायन, पूर्व जन्म वृत्तांत)

अनिरुद्ध विष्णुधर्मोत्तर १.२३७.५ (० से मुख की रक्षा की प्रार्थना), ३.१०६.२१ (० आवाहन मंत्र), ३.१०६.१४३ (० प्रतीहारों आमोद व प्रमोद के आवाहन मंत्र), गर्ग ७.२०.२८ (प्रद्युम्न -सेनानी, भीष्म से युद्ध) ७.२१.१० (भीष्म से युद्ध), ७.२५.५ (गणेश को युद्ध से विमुख करने के लिए मार्जार रूप धारण), गर्ग ७.३४ (हिरण्याक्ष -पुत्र वृक द्वारा ० का भक्षण, पुनः अनिरुद्ध द्वारा वृक का वध), गर्ग १०.१०.११ (० शरीर में ब्रह्मा व चन्द्रमा का लय), १०.२९.३९ (० द्वारा बल्वल - सेनानी ऊर्ध्वकेश से युद्ध), १०.३७.४२ (भैरव को जृम्भणास्त्र से पीडित करना), भागवत ३.१.३४ (० के शब्द-योनि, मनोमय, सत्वतुरीय तत्व विशेषण), भा १०.६१.२५ (रुक्मी -पौत्री रोचना से विवाह), १०.६२ (उषा से मिलन कथा), ११.३० (सात्यकि से युद्ध) ब्रह्म १.९२ (रुक्मी -पौत्री से विवाह), १.९६ (उषा से विवाह प्रसंग), पद्म ६.१५९ (बाणासुर के पाशों से मुक्ति हेतु

कोटराक्षी देवी की स्तुति), ६.२५० (उषा से विवाह कथा), ब्रह्मवैवर्त ४.११४ (उषा उपाख्यान), हरिवंश २.६१ (रुक्मी -पौत्री रुक्मवती से विवाह), ह २.१०३.२८ (० वंश कथन), ह २.११९ (उषा के साथ गान्धर्व विवाह, बाणासुर के सैनिकों से युद्ध व बन्धन ग्रस्त होना), २.१२० (बाणासुर के बन्धन से मुक्ति हेतु कोटवती/आर्या देवी की स्तुति), ह २.१२१+ (अनिरुद्ध की मुक्ति हेतु कृष्ण आदि का द्वारका से शोणितपुर आगमन, बाणासुर से युद्ध), ह २.१२७ (अनिरुद्ध की नागपाश से मुक्ति), शिव २.५.५१+ (उषा -बाणासुर आख्यान), भविष्य ३.४.२०.४८ (निरुक्ति : जयदेव -यज्ञांश संवाद), स्कन्द ४.२.६१.२२४ (० मूर्ति के लक्षण), लक्ष्मी नारायण ४.१०१.९१ (कृष्ण व मूर्ति -पुत्र) ; द्र. चतुर्व्यूह

टिप्पणी : योग में चित्तवृत्तियों का निरोध करना होता है। ऋग्वेद १०.२८.१० में तृषा युक्त महिष (अहंकार?) का निरोध करके गायत्री सोम का आहरण करती है। यह दुष्ट प्रवृत्तियां दिव्य आनंद का निरोध करके बैठी रहती हैं। जिस अवस्था में केवल आनंद ही आनंद है, निरोध की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है, वह तुरीया अवस्था का प्रतीक अनिरुद्ध है।

अनिल भागवत १०.६१.१६ (कृष्ण व मित्रविन्दा -पुत्र), ब्रह्माण्ड २.३.३.२१ (अष्ट वसुगण में से एक, शिवा -पति, अविज्ञात गति व मनोजव -पिता), स्कन्द ७.१.१०९ (० लिंग माहात्म्य, अनिल वसु द्वारा स्थापित), भविष्य ३.४.१७.३२ (इल द्विज द्वारा प्राप्त नाम, मरुत बनना), वा.रामायण ७.५.४५ (माली व वसुदा -पुत्र, विभीषण -मन्त्री)

टिप्पणी : जैमिनीय ब्राह्मण ३.३१० के अनुसार शरीर के पृथ्वी, अन्तरिक्ष व आकाश भागों के साथ गायत्री का संयोग होने पर क्रमशः अग्नि, वायु व आदित्य का जन्म होता है। इन तीनों की गति ऊर्ध्वमुखी है, अतः यह निलय -रहित है, अतः अनिल हैं। ऐतरेय ब्राह्मण ५.२५ के अनुसार चूंकि वायु निलय रहित है और चूंकि यह मृत्यु भय से कंपन नहीं करती (इलयति), अतः इसका नाम अनिल है। उपनिषद के अनुसार अग्नि का स्थान हृदय, अनिल/वायु का भ्रूमध्य और आदित्य का मूर्धा है (शरीर में हृदय से लेकर भ्रूमध्य तक का स्थान अन्तरिक्ष है)। चूंकि प्राणायाम में अनिल का इडा व पिंगला नाड़ियों से रेचन -पूरण करना होता है, अतः इल का अनिल बनना इस प्रक्रिया से संबंधित हो सकता है। इडा आनन्द को कहते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद ५.३.१ के अनुसार वायु का अनिल अमृत बनना अभीष्ट है। ऋग्वेद १०.१६८ का ऋषि अनिल वातायन है।

अनीक द्र. देवानीक, शतानीक, सहस्रानीक

अनु विष्णु धर्मोत्तर ४.१४.१३ (विलोमा - पुत्र, आनकदुन्दुभि -पिता, तुम्बुरु-मित्र), भागवत ९.२३.१ (वंश वर्णन), भा ९.२४.५ (कुरुवश -पुत्र, पुरुहोत्र -पिता), ९.२४.२० (कपोतरोमा -पुत्र, अन्धक -पिता), हरिवंश १.३२.८९ (ययाति -पुत्र, धर्म -पिता), मत्स्य ३३.२१ (ययाति व शर्मिष्ठा -पुत्र, पिता से जरा ग्रहण की अस्वीकृति, शाप प्राप्ति, पश्चिम -उत्तर का राजा बनना), २.३.७४.१२ (वंश वर्णन), वायु ९३.५२ (ययाति से शाप प्राप्ति), ९९.१२ (० वंश वर्णन), विष्णु धर्मोत्तर ४.१८ (० वंश वर्णन)

टिप्पणी :प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान यह सब अन्/अन्न के रूप हैं (शतपथ ब्राह्मण १४.४.३.१०)। इन अनों की शरीर अग्नि में आहुति होने से एक दूसरे का जन्म होता है। पुराणों के अनुसार अनु को जरावस्था में सम्यक् अग्निहोत्र की चिन्ता है। ययाति द्वारा अनु को जरावस्था में अग्निहोत्र कर्म के नष्ट होने के शाप का अभिप्राय यह हो सकता है कि किसी अवस्था में प्राण अपान का यह आहुति क्रम समाप्त हो जाता हो और केवल शुद्ध अन् प्राण शेष बचता हो। ऋग्वेद में कई स्थानों पर ययाति -पुत्रों के नामों का उल्लेख है। ऋग्वेद में अनु एकवचन में तथा बहुवचन (आनवः) में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद ८.७४.४ में ज्येष्ठ आनव अग्नि का उल्लेख है। ऋग्वेद ५.३१.४ में अनवः इन्द्र के लिए रथ का तक्षण करते हैं (अनः रथ या गाडी को भी कहते हैं और वैदिक साहित्य में अनड्वान शब्द प्रयुक्त हुआ है)। ऋग्वेद ७.१८.१३ में इन्द्र आनवों के गय धन को तृत्सु को दे देता है। वैदिक निघण्टु में आनवः मनुष्य नामों के अंतर्गत परिगणित है।

अनुतप्ता वायु ४९.९० (शाक द्वीप की नदी, सुकुमारी का अन्य नाम), ब्रह्माण्ड २.१९.१९ (प्लक्ष द्वीप की एक नदी)

अनुमति भागवत ४.१.३४ (श्रद्धा व अंगिरा की ४ कन्याओं में से एक), ६.१८.३ (धाता -पत्नी, पूर्णमास -माता), देवीभाग ८.१२.२४ (शाल्मलि द्वीप की नदी), ब्रह्माण्ड १.२.११.१८ (स्मृति व अंगिरस -कन्या), मत्स्य १३३.३६ (प्रतिपदा युक्त पूर्णिमा, शिव के रथ में योक्त्र / रस्सी बनना)

टिप्पणी : अथर्ववेद ६.११.३, ७.२१ व ७.२५ सूक्तों की देवता अनुमति है। ब्रह्मसूत्र ३.४.१४ में कहा गया है कि स्तुति के लिए अनुमति की आवश्यकता होती है। इससे संकेत मिलता है कि किसी कार्य को करने के लिए जब मन की सारी शक्तियां एकत्र हो जाती हैं वह अनुमति है। राका व अनुमति पूर्णिमाओं में अंतर ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर समझा जा सकता है। मैत्रायणी संहिता ४.३.५ के अनुसार अनुमति गायत्री छन्द है जबकि राका त्रिष्टुप् छन्द है। गायत्री ब्रह्म रूप है, जबकि त्रिष्टुप क्षत्र रूप या इन्द्रियों का वीर्य रूप। पुष्य (कलियुग ?) अनुमति है जबकि त्रेता राका है

(षड्विंश ब्राह्मण ५.६.५)। द्यौ अनुमति है, जबकि उषा राका है (ऐतरेय ब्राह्मण ३.४८)

अनुम्लोचा ब्रह्माण्ड १.२.२३.१० (अप्सरा, सूर्य रथ में स्थिति) द्र. रथ सूर्य

टिप्पणी : अग्नि चयन कार्य के अन्तर्गत पंचम चिति के चयन के लिए पंचचूडा इष्टकाओं का पांच दिशाओं में उपधान किया जाता है (शतपथ ब्राह्मण ८.६.१.११)। यह पांच दिशाएं यज्ञ के पांच होताओं की प्रतीक हैं। पश्चिम दिशा के अन्तर्गत प्रम्लोचन्ती व अनुम्लोचन्ती अप्सराओं का उल्लेख है जिन्हें अहोरात्र का प्रतीक कहा गया है।

अनुराग कथासरित् ७.३.२३ (अनुरागपरा विद्याधरी : विन्ध्यपर-पुत्री, निश्चय दत्त मानव पर आसक्ति, विद्याधर कुमार की प्राप्ति पर निश्चय दत्त का त्याग), कस १८.४.३१७ (अनुरागवती : रूपवती -सखी, सखी के साथ केसट को पति रूप में प्राप्त करना)

अनुविन्द वायु ९६.१५६ (श्रुतकीर्ति - पुत्र, विन्द भ्राता), विष्णु धर्मोत्तर ४.१४.४३ (राजाधिदेवी -पुत्र), भागवत १०.५८.३० (अवन्ती-राजा, दुर्योधन -मित्र, मित्रविन्दा -भ्राता), गर्ग १०.२२ (स्व भ्राता विन्द को उग्रसेन के अश्वमेधीय हय के मोचन का सुझाव), भविष्य ३.३.३२.१७ (कलियुग में लहर राजा का पुत्र बनना)

टिप्पणी : छान्दोग्य उपनिषद ८.५ में स्वयं (आत्मानम्) का ब्रह्मचर्य द्वारा अनुविन्दन करने का उल्लेख है। ऋग्वेद के कई मन्त्रों में गुहा में छिपी निधि के अनुविन्दन का उल्लेख है। महाभारत में अनुविन्द का युद्ध चेकितान से होता है और अर्जुन के साथ युद्ध में मृत्यु होती है, जबकि अनुविन्द -भ्राता विन्द का युद्ध केतुमान से होता है और अर्जुन से युद्ध में मृत्यु होती है। रामायण ३.६८.१३ में उल्लेख है कि रावण ने सीता का हरण विन्द नामक मुहूर्त में किया था, अतः राम को सीता की पुनः प्राप्ति सुनिश्चित थी। ऐसा प्रतीत होता है कि वह जीवात्मा जिसका केतु विकसित नहीं हुआ है, आनंद को खोजता फिरता है। उसे कहीं कहीं छिपा हुआ आनंद मिल जाता है। यही अनुविन्द है।

अनुशाल्व गर्ग १०.२४ (शाल्व - भ्राता, अनिरुद्ध -सेना से घोर युद्ध), गर्ग १०.३५.६ (अनिरुद्ध -सेनानी, दुर्मुख आदि का वध)

अनुह्राद ब्रह्म २.५५ (कपोत, मृत्यु - पौत्र, हेति -पति, यम उपासक, उलूक से युद्ध में अग्नि की शरण लेने पर शान्ति), देवीभाग ४.२२.४४ (धृष्टकेतु रूप में अवतरण), विष्णु १.४३.१ (महाग्राह उपमा), हरिवंश ३.५१.१ (हिरण्यकशिपु -पुत्र, बलि सेनानी, रथ वर्णन), ह ३.५३.२३ (कुबेर से युद्ध), ह ३.६० (कुबेर से युद्ध), भागवत ६.१८.१३ (हिरण्यकशिपु व कयाधू -पुत्र, सूर्म्या -पति, बाष्कल व महिषासुर -पिता), ब्रह्माण्ड १.२.२०.२६ (तीसरे पाताल में निवास), ब्रड २.३.७.११९(भद्रा मणिवरा पुत्री का रजतनाभ यक्ष से विवाह)

अनूचान नारद १.५०.८ (छह वेदांगों सहित वेदों के ज्ञाता की उपाधि

अनृत विष्णु ३.२५१ (हंस गीता के अन्तर्गत अनृत दोष वर्णन), ब्रह्माण्ड १.२.९.६३ (अधर्म व हिंसा -पुत्र, निकृति -पति, भय व नरक -पिता)

अनेना हरिवंश १.२९ (०वंश वर्णन), देवीभाग ७.८.३१ (ककुत्स्थ -पुत्र, पृथु -पिता), ब्रह्म १.९ (आयु व प्रभा -पुत्र, वंश वर्णन)

टिप्पणी : ऋग्वेद में चार ऋचाओं में अनेना शब्द आया है। तैत्तिरीय संहिता १.८.५.३ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७.१२.१ में गार्हपत्य अग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह मुझे सब प्रकार के पापों से मुक्त करके अनेनस करे। पुराणों में अनेना के पिता के रूप में आयु का चुनाव अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आयु का अर्थ है सर्वोच्च स्तर से जुडना। जहां -जहां भी पाप उपस्थित होगा, वहीं -वहीं सर्वोच्च कोश से अमृत प्राप्ति में बाधा होगी और आयु का क्षय होगा। गार्हपत्य अग्नि भी आयु का एक रूप है। आयु रूपी अमृत का स्वर्भानु असुर की कन्या प्रभा से संयोग होने पर अनेना का जन्म होता है।

अनौपम्या मत्स्य १८७ (बाण - पत्नी, नारद से दान विषयक पृच्छा), पद्म ३.१४ (बाण -भार्या, नारद से दान, व्रत, नियम विषयक पृच्छा)

अन्तःप्राक् लक्ष्मी नारायण २.२२० (आण्डजरा नृप की नगरी, श्री हरि का आगमन व उपदेश)

अन्तक स्कन्द ४.२.६८.६९ (अन्तकेश्वर लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य), ४.२.९७.१३२ (वही)

अन्तरिक्ष ब्रह्माण्ड १.२.३६.६९ (आद्य नामक देवगण के अन्तर्गत एक देव नाम, आद्या -पुत्र), भागवत ९.१२.१२ (इक्ष्वाकु वंश में पुष्कर -पुत्र, सुतपा -पिता), १०.५९.१२ (मुर असुर -पुत्र, कृष्ण द्वारा मुर के वध पर कृष्ण से युद्ध व नष्ट होना), ११.३.३ (ऋषभ -पुत्र, निमि को माया से पार होने का उपदेश), मत्स्य २७१.९ (इक्ष्वाकु वंश में किन्नराश्व -पुत्र, सुषेण -पिता), म ३५.४ (ययाति का स्वर्ग से पतित होकर अन्तरिक्ष में स्थित होना व अष्टक आदि से वार्तालाप), म २६८.१२ (वास्तु मण्डल में एक देवता जिसके लिए शष्कुली/पूडी की बलि का विधान है), देवीभाग १.३.२९ (१३वें द्वापर में व्यास), ब्रह्माण्ड १.२.३५.१२० (१३वें द्वापर में व्यास), शिव २.५.८.९ (शिव रथ में पुष्कर का अन्तरिक्ष बनना), द्र. आकाश, व्योम

टिप्पणी : अन्तरिक्ष वेदों में बहुधा प्रयुक्त होने वाले

शब्दों में से एक है। सामान्य जीवन में अन्तरिक्ष का महत्व इसलिए है कि श्वास के द्वारा शरीर में जहां जहां भी वायु की गति होती है, वह सब अन्तरिक्ष है। इस प्रकार मोटे रूप में हृदय से लेकर भ्रूमध्य तक अन्तरिक्ष का भाग है। लेकिन इस अन्तरिक्ष भाग को इतना विस्तृत किया जा सकता है कि सारा शरीर श्वास के साथ एकाकार हो जाए, फिर सारा ब्रह्माण्ड एकाकार हो जाए। वेदों में पुन: पुन: अन्तरिक्ष के साथ उरु विशेषण का प्रयोग हुआ है। पुराणों में अन्तरिक्ष को मुर असुर का पुत्र भी कहा गया है जिसको उपरोक्त वर्णन से समझा जा सकता है। अथर्ववेद ५.१०.८ में प्राणापान प्रक्रिया में अन्तरिक्ष से श्रोत्र उत्पन्न होने का उल्लेख है। यह श्रोत्र केवल कान ही नहीं, अपितु श्रुति है। जैमिनीय ब्राह्मण २.५६ इत्यादि के अनुसार अन्तरिक्ष की निरुक्ति अन्त: इक्षते अर्थात जिसमें अन्दर झांक कर देखना पड़ता है, जिसको देखने के लिए अन्तर्मुखी होना पड़ता है, वह अन्तरिक्ष है। पुराणों में अन्तरिक्ष की इक्ष्वाकु वंश में उत्पत्ति को इसी रूप में समझा जा सकता है। भागवत पुराण में अन्तरिक्ष और निमि के संवाद में भी इस अन्त:ईक्षण की प्रक्रिया का विस्तार दिया है। अन्त:ईक्षण की प्रक्रिया के व्यापक परिणाम होते हैं जिनका वर्णन वेद के मन्त्रों में किया गया है। अन्तरिक्ष और गायत्री के संयोग से वायु का जन्म होता है। वायु से आकाश का और आकाश से सूर्य व चन्द्रमा का। वायु का अर्थ है वा + यु, जो हमारे उच्च स्तरों से जुड भी सकता है, नहीं भी। अथर्ववेद ६.१२४.२ में अन्तरिक्ष रूपी वृक्ष के फल को ॐ वायु कहा गया है। वेद मन्त्रों में वायु को अन्तरिक्ष का अधिपति कहा गया है। वह भ्रूमध्य में जाकर प्रतिष्ठित होती है। इसके विपरीत, ऋग्वेद १०.९०.१४ में प्रजापति की नाभि से अन्तरिक्ष की उत्पत्ति कही गई है। पुराणों में अन्तरिक्ष को पुष्कर -पुत्र कहा गया है। पुराणों में नाभि आदि के रूप ब्रह्मा के ज्येष्ठ, मध्यम व कनिष्ठ तीन पुष्करों का उल्लेख है। नाभि का अर्थ मूर्धा या सहस्रार चक्र भी हो सकता है। वैदिक निघंटु में पुष्कर आदि १६ अन्तरिक्ष नामों का उल्लेख है जिन पर डा० फतहसिंह के निर्देशन में शोध कार्य चल रहा है।

अन्तरिक्ष तम से युक्त है। बृहस्पति उसमें प्रकाश करके गौ प्राप्त कर लेते हैं (ऋग्वेद १०.६८.५ व १०.१२४.६)। यह महत्वपूर्ण है कि सामान्य रूप में अन्धकार युक्त अन्तरिक्ष की पराकाष्ठा उसका ज्योतिर्मय होना है, उसमें सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, ऋतु, संवत्सर आदि का प्रकट होना है (अथर्ववेद १५.१७.२)। यह ज्योतियां अन्तरिक्ष में प्रकट होकर शरीर के मूर्धा रूपी आकाश में प्रतिष्ठित होती हैं।

अथर्ववेद ६.१२०.२ में अदिति भूमि को माता, अन्तरिक्ष को भ्राता और द्यौ को पिता कहा गया है। उरु अन्तरिक्ष अदिति की गोद में बैठा है (अथर्ववेद ७.७.२)। अथर्ववेद ५.९.७ में पृथिवी रूपी शरीर में अन्तरिक्ष को आत्मा कहा गया है। अदिति अखण्डित शक्ति का नाम है। श्वास के माध्यम से सारा शरीर एक हो जाता है। कई मन्त्रों में अन्तरिक्ष को मध्य भाग कहा गया है। अथर्ववेद १०.५.२६ में विष्णु के अन्तरिक्ष में क्रमण का वर्णन है। अथर्ववेद ८.११.१ में विराज गौ के अन्तरिक्ष में स्थित होने पर देवों, मनुष्यों व पितरों आदि द्वारा ऊर्जा, स्वधा आदि दुहने का वर्णन है।

अन्तर्धान भागवत ३.२०.४४ (ब्रह्मा - शरीर का नाम), ४.२४.३ (पृथु -पुत्र, द्रविण उपनाम, शिखण्डिनी व नभस्वती - पति, चरित्र महिमा), मत्स्य ४.४४ (पृथु -पुत्र, शिखण्डिनी -पति, मारीच -पिता), दृ. वंश पृथु

टिप्पणी : अथर्ववेद ८.१४ में कुबेर विराज वाक् रूपी गौ का वत्स बनते हैं और यक्षगण गौ से तिरोधान विद्या का दोहन करते हैं। महाभारत द्रोणपर्व अध्याय ६९ में भी यही कथा पृथु की गौ के रूप में दी गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह तिरोधान विद्या चेतना को अंतर्मुखी करना है। चेतना को अंतर्मुखी करने के फलस्वरूप कुबेर को ९ निधियां प्राप्त हो जाती हैं तथा मन के अनुरूप चलने वाला पुष्पक विमान प्राप्त होता है। ~~फतहसिंह~~

अन्तर्वेदी कथासरित् ६.६.४२ (० देश में वसुदत्त ब्राह्मण का वास, विष्णु दत्त ब्राह्मण की कथा), विध ३.२२१.२ (अन्तर्वेदी और बहिर्वेदी में करणीय पूजा आदि कृत्य)

टिप्पणी : यज्ञ करते समय रेखा खींच कर सीमा निर्धारित कर दी जाती है। यज्ञ का सारा कार्य अन्तर्वेदी नामक सीमा में होता है। इस सीमा से बाहर बहिर्वेदी होती है। बहिर्वेदी में उत्कर होता है जिसमें यज्ञ का शेष फेंकते हैं। अंतर्वेदी मनुष्य का स्व लोक है। इससे देवलोक पर जय होती है जबकि बहिर्वेदी मनुष्य लोक है। (तैत्तिरीय संहिता ६.६.४.१)। अन्तर्वेदी आर्य है, बहिर्वेदी शूद्र है (काठक संहिता ३४.५)। देव और मनुष्य दोनों लोकों पर विजय पाने के लिए कुछ कार्य दोनों वेदियों के बीच में किए जाते हैं। आग्नीध्र ऋत्विज का स्थान बीच में होता है (मैत्रायणी संहिता ३.८.९)। प्राची आसन्दी/आसन के दो पैर अन्तर्वेदी में और दो पैर बहिर्वेदी में रखे जाते हैं (ऐतरेय ब्राह्मण ८.५)। इससे भूत और भविष्य दोनों पर विजय प्राप्त होती है। जैमिनीय ब्राह्मण २.७८ के अनुसार अन्तर्वेदी में ब्रह्म की प्राप्ति करते हैं, जबकि बहिर्वेदी में उत्कर से सुब्रह्मण्या वाक् की प्राप्ति करते हैं।

अन्त्र वायु ६.१९ (वराह अन्त्र का उद्गाता से साम्य), दृ. आन्त्र

अन्ध दृ मदान्ध

अन्धक १ वामन (०के रथ की विशिष्टता, राज्याभिषेक के पश्चात देवों से युद्ध व विजय प्राप्ति), वम ४८.३ (राजा वेन का जन्मान्तर में हिरण्याक्ष -पुत्र अन्धक व शिवगण भृंगिरिटि बनना), वम ५९ (पार्वती को प्राप्त करने की चेष्टा), वम ६३ (हिरण्याक्ष -पुत्र, प्रह्लाद द्वारा ० को पार्वती सम्बन्धी उपदेश), वम ६६ (प्रह्लाद का शिव महत्व विषयक उपदेश),

६९.७८ (शिव रूप धारण करना), वम ७० (शिव शूल से भेदन, शिव स्तुति, गणत्व प्राप्ति), विष्णु धर्मोत्तर १.२२६ (पार्वती हरण चेष्टा, मातृकाओं की सृष्टि), वराह २७ (देवों को त्रास, मातृकाओं द्वारा प्रतिकार), ९० (अन्धक से देवों को त्रास प्राप्त होने पर त्रिदेवों से त्रिकला नामक कुमार की उत्पत्ति), स्कन्द ४.१.१६ (शुक्राचार्य को देवों से युद्ध में मरे दैत्यों को जीवित करने की प्रेरणा), स्क ५.१.३६.२४ (शिव से युद्ध, अदृश्य होने पर नरादित्य द्वारा उत्पन्न प्रकाश में दृष्टिगोचर होना), ५.१.३८ (चामुण्डा द्वारा रक्त पान करके कृश करना, शिव -स्तुति, गणत्व प्राप्ति), स्क ५.२.५१ (वही), स्क ५.३.४५+ (देवों को त्रास, विष्णु से बाहु युद्ध, शिव से युद्ध, शूल से भेदन, शिव-स्तुति, भृंगीश गण बनना), स्क ६.१४९+ (हिरण्यकशिपु -पुत्र, देवों से युद्ध में केलीश्वरी देवी से पराजय, स्तुति, शिव से युद्ध, पराजय, भृंगिरिटि गण बनना), ६.२२८+ (शिव से युद्ध करके भृंगिरिटि गण बनना), पद्म १.४६ (शिव पर प्रहार, शिव द्वारा गण बनाना), प १.८१ (विष्णु के वर व अमृत भक्षण के कारण अन्धक की अमरता, असुरत्व हरण के लिए ब्रह्मा द्वारा विचिकित्सा माया का प्रेषण, अन्धकासुर द्वारा मोहित होकर पार्वती को प्राप्त करने का यत्न), देवीभाग ७.१८.३३ (महिषासुर -सेनानी, चण्डिका देवी के सिंह पर प्रहार, सिंह द्वारा अन्धक का वध), भविष्य ३.४.२२.४७ (कलियुग में मूर्तिभंजक नवरंग राजा के रूप में जन्म), हरिवंश २.८६+ (कश्यप व दिति -पुत्र, स्वरूप, नारद द्वारा मन्दराचल पर सन्तान पुष्प प्राप्ति का प्रलोभन, मन्दराचल पर शिव से युद्ध में भस्म होना), मत्स्य १५६.११ (आडि व बक दैत्यों का पिता, अन्धक वध के पश्चात आडि द्वारा पार्वती रूप धारण करके शिव से छल करने की चेष्टा), म १७९ (शिव से युद्ध, मातृकाओं की सृष्टि, मृत्यु, गणेशत्व प्राप्ति), लिंग पुराण १.९.३ (शिव का गण बनना), कूर्म १.१६ (कालाग्नि रुद्र द्वारा निषूदन कथा, ० द्वारा शिव स्तुति), शिव २.५.४२+ (पार्वती स्वेद से जन्म, हिरण्याक्ष द्वारा पालन, शिव द्वारा शूल से वेधन), शि ४.१३ (देवों और शिव से युद्ध, अन्धकेश लिंग स्थापना), कस १७.१.८०

टिप्पणी : सामान्य आध्यात्मिक भाषा में अहंकार से ग्रस्त जीव को अन्धा कहा जाता है। इसके विपरीत, जिस साधक ने अपनी दृष्टि को अंतर्मुखी कर लिया है, वह भी अन्धा कहा जा सकता है। ऋग्वेद १.११६.१६ में अंतर्निहित कथा है कि ऋज्राश्व राजा ने दो वृक पाल रखे थे जिनके खाने के लिए वह मेषों को देता था। इस कुकृत्य पर उसके पिता ने उसे अन्धा कर दिया। आश्विनौ ने उसे पुनः नेत्र प्रदान किए। यह मेष नेत्रों के उन्मेष -निमेष हो सकते हैं जिनके समाप्त होने पर नेत्र स्थिर हो जाते हैं। ऋग्वेद १.१००.८ तथा १.९४.७ में अन्धा होने पर अति ज्योति के दर्शन का उल्लेख है। ऋग्वेद ९.६८.६, ५.४५.९ तथा १०.१४४.५ में उल्लेख है कि श्येन स्वर्ग से अन्ध को लाया। चूंकि पुराणों में श्येन या गरुड स्वर्ग से अमृत या सोम लाता है, अतः अन्ध को सोम का पर्यायवाची कहा जा सकता है। ऋग्वेद के बहुत से सूक्तों में अन्ध के मधु को पीकर पदमस्त होने का, उसे पृथ्वी पर बिखेरने का उल्लेख है। अन्ध को देवों का पूर्वपेय कहा गया है (१.१३५.४)। अन्ध को ओंकार द्वारा धोकर उसे अंशु/किरण युक्त करके उसके अमृत का पान करना होता है (१०.९४.८, ९.६८.६, ४.१.१९)। ऋग्वेद ४.२०.४ के अनुसार ओंकार द्वारा शुद्ध किया गया सोम सुमना बन जाता है। उसके मधु का पान अन्ध द्वारा किया जाता है। ऋ० ७.५९.५ में मरुतों से प्रार्थना की गई है कि वे अन्धों को पीने के लिए ओषु होकर आएं और मोषु होकर अन्यत्र जाएं। यह ओषु और मोषु भी ओंकार की ही अंतर्मुखी व बहिर्मुखी वृत्तियां हैं। पुराणों में अन्धक का पार्वती पर आकृष्ट होना अन्धक की ओंकार की ओर प्रवृत्ति को इंगित करता है क्योंकि पार्वती को उमा, ओंकार की शक्ति कहा जाता है। अन्धक के त्रिशूल पर लटकने के पश्चात शुद्ध होकर शिवगण भृंगि/भ्रमर बनने का अर्थ अन्वेषणीय है।

अन्य दृष्टिकोण से कहा जा सकता है कि जीवात्मा ने अपने सहस्रार चक्र से स्रवित होने वाले सोम/अमृत के रस का आस्वादन यदि नहीं किया है तो वह सोम अन्धा है। उस सोम को, भक्ति रस को मानसिक स्तर तक उतारने के लिए ओंकार का आश्रय लेना होता है।

अन्धकर मत्स्य४४.४८(सात्वत व कौसल्या-पुत्र, वृष्णि -भ्राता), विष्णु धर्मोत्तर ४.१३.११४ (वृद्ध यादव, द्वारका में अनावृष्टि प्रकोप होने पर कृष्ण से अक्रूर व अक्रूर के माता -पिता के दिव्य प्रभाव का वर्णन, अक्रूर को पुनः द्वारका में लाने का परामर्श), ४.१४.१२ (कुकुर आदि चार ० -पुत्रों के वंश वर्णन), ब्रह्माण्ड २.३.७१.११८ (विलोमा -पुत्र, वृष्णि -प्रपौत्र, अभिजित् -पिता, चन्दनोदक दुन्दुभि उपनाम), स्कन्द ७.१.१०५.५१ (२८वें कल्प का नाम), ७.१.२३७ (ऋषियों के शाप से वृष्णि -अन्धक कुलों के मुसल युद्ध में नष्ट होने की कथा), हरिवंश २.२३ (कंस द्वारा वसुदेव की निन्दा किए जाने पर अन्धक द्वारा कंस की निन्दा, मथुरा नगरी व कंस के भावी विनाश के सूचक अपशकुनों का कथन)

अन्धकारक मत्स्य १२२.८१ (क्रौंच द्वीप के एक पर्वत का नाम)

अन्न विध ३.३१५ (० दान प्रशंसा), स्कन्द २.७.७ (० दान माहात्म्य, मैत्र पिशाच दृष्टांत), ४.१.३५.२३१ (भोजन विधि कथन), ४.१.४०.३३ (अविधि भोजन के दोष कथन), स्क ६.१४१ (मिष्टान्न दायक लिंग माहात्म्य, वसुसेन का अन्न दानाभाव में स्वर्ग में भूख से पीड़ित होना, पुत्र सत्यसेन द्वारा किए

गए दान से मुक्ति), ब्रह्म १.१०९ (० दान माहात्म्य), पद्म १.३.१४५ (ग्राम्य व आरण्यक आदि औषधियों की ब्रह्मा से सृष्टि), १.१६.८७ (ब्रह्मा के यज्ञ में दक्ष द्वारा अन्न देना व वरुण द्वारा पकाना), १.३६.९३ (अन्न दान माहात्म्य : राजा श्वेत द्वारा स्व शव भक्षण की कथा, कंकण दान से मुक्ति), प ६.२६ (० दान माहात्म्य), ७.२० (० दान माहात्म्य, हरिशर्मा ब्राह्मण का वैकुण्ठ में क्षुधा ग्रस्त होना, अन्न दान से मुक्ति), विष्णु धर्मोत्तर ३.११.९५ (भुक्त अन्न का अगस्ति व बड्वानल अग्नियों द्वारा पाक), नारद १.११४.१६ (श्रावण कृष्ण पंचमी को अन्न समृद्धि व्रत विधि), शिव १.१५.३६ (विभिन्न पात्रों को अन्न दान के समय बुद्धि का अपेक्षित स्वरूप कथन), २.१.१४.३७ (तण्डुल आदि धान्यों से शिव पूजा का फल), वराह १३० (राजा का अन्न भक्षण करने पर प्रायश्चित्त विधान), भविष्य ४.१६९ (० दान माहात्म्य, राजा श्वेत की क्षुधा शान्ति, धनेश्वर वैश्य की सर्प भय से मुक्ति), ४.१९९ (तिलाचल दान विधि), ब्रह्माण्ड ३.४.८.४१ (निषिद्ध अन्न), मार्कण्डेय १५.२० (अन्न हरण पर मार्जार योनि की प्राप्ति), लक्ष्मी नारायण २.११ (कृष्ण का अन्न प्राशन संस्कार वर्णन), २.१६०.६९ (विभिन्न देवों के लिए देय अन्न प्रकार), २.२१३.९५ (अन्न के स्थूल व सूक्ष्म प्रकार), २.२३८ (कृष्ण कृत अन्नकूट उत्सव वर्णन), ३.७५.८८ (अन्न दान से पितर लोक की प्राप्ति का उल्लेख), ३.११०.७६ (० दान महिमा); महाभारत शान्ति ३६.२१ (अभक्ष्य अन्न का विचार), २२१.१ (भक्ष्य अन्न विचार), अनुशासन ६३.५ (अन्न दान का विशेष माहात्म्य कथन), ६६.५५+ (अन्न दान का माहात्म्य), ११२.१० (अन्न दान का माहात्म्य), १३५.१ (भोज्य -अभोज्य अन्न विचार), आश्वमेधिक ९२ दाक्षिणात्य पृष्ठ ६३२८ (अन्न दान का माहात्म्य), दाक्षिणात्य पृष्ठ ६३५२ (अन्न दान हेतु अयोग्य दाताओं का विचार); द्र. धान्य, भोजन

टिप्पणी : पुराणों में अन्नदान की महिमा का बहुत अधिक वर्णन किया गया है। किसी वस्तु के दान से पूर्व उसके बारे में दक्षता उत्पन्न करना आवश्यक है, तभी हम दूसरों को देने में समर्थ हो सकते हैं। दक्षता उत्पन्न करने का दूसरा नाम विपश्यना है। ऋग्वेद १०.१२५.४ में कहा गया है कि जो विपश्यना करता है, जो प्राण लेता है ? जो ईं अग्नि को सुनता है, वह परमात्मा से अन्न प्राप्त करता है। अन्न की विपश्यना के सम्बन्ध में पुराणों में कहा गया है कि वह हमारे अंदर २५ तत्वों का पोषण करे। ऐसा अनुमान है कि अन्तरिक्ष की सभी ज्योतियां जैसे २७ नक्षत्र अन्न उत्पन्न करने में भागी बनते हैं। औषधियां उन ज्योतियों को ग्रहण करके बीज रूपी अन्न उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार औषधियों की साधना से उत्पन्न अन्न को हम ग्रहण करके तृप्त होते हैं। क्या ऐसा हो सकता है कि हम पार्थिव औषधियों पर निर्भर न करके स्वयं अपनी साधना से वह उषाएं ग्रहण कर अन्न निर्माण में समर्थ हो सकें ? ब्राह्मण ग्रन्थ इस विषय में इतना ही कहते हैं कि सात ग्राम्य औषधियां हैं, सात आरण्य औषधि (तैत्तिरीय संहिता १.३.८.१)। अथर्ववेद १९.७.४ के अनुसार आप: देवता वाला पूर्वाषाढा नक्षत्र अन्न में रस प्रदान करता है। योग के ग्रन्थों में उल्लेख है कि जो तालु मूल में स्रवित होने वाले द्रव को जिह्वा का तालुमूल में प्रवेश कराकर पीने में समर्थ होता है, वह पूर्णतः तृप्त हो जाता है। इसी तथ्य का उल्लेख ऋग्वेद ६.४१.३ में है।

ऋग्वेद १.१८७ सूक्त अन्न देवता का है। इस सूक्त में अन्न को पिता की संज्ञा दी गई है। वह पालने वाला है, मारने वाला नहीं, जबकि पार्थिव अन्न पालने व मारने दोनों का कार्य करता है। इसी सूक्त में अन्न को वातापी संज्ञा दी गई है और कामना की गई है कि वातापी मोटा-ताजा हो। यह सूक्त अगस्त्य ऋषि का है और अगस्त्य ऋषि की कथा में इल्वल अपने भ्राता वातापी को मेष बनाकर उसे पकाकर ब्राह्मणों को खिलाता है जिससे ब्राह्मणों की मृत्यु हो जाती है। अगस्त्य इस वातापी को खाकर पचा जाते हैं जिससे वह पुनः जीवित नहीं हो पाता। इस संदर्भ में प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान यह वात के रूप हैं और अन्न का कार्य इनका आप्यायन करना, इन्हें मोटा ताजा बनाना है। इस प्रकार आप्यायित प्राणों का यदि सम्यक उपयोग न हो सकेगा तो यह भोक्ता को मार डालेंगे।

वैदिक साहित्य का अन्न केवल पार्थिव अन्न तक सीमित नहीं है। वहां निम्नतम स्तर पर पार्थिव अन्न है तो उच्चतम स्तर पर सोम या साम या भक्ति है या अमृत है जिसका देवता गण पान करते हैं। इसे अन्नाद्य कहते हैं। इनके बीच में अन्न के ८० या ४० अन्य स्तर हैं जिनकी विभिन्न प्रकार के छन्दों से निर्मित इष्टकाओं के रूप में कल्पना की गई है (शतपथ ब्राह्मण ८.५.३.२)। छान्दोग्य उपनिषद इसी साम रूपी अन्न की व्याख्या करता है।

ऋग्वेद १.१४०.२ में उल्लेख है कि द्विजन्मा त्रिवृत अन्न प्राप्त करता है। सायण भाष्य में आज्य, पुरोडाश व सोम को त्रिवृत अन्न कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण ९.२.१.१२ में दधि, मधु और घृत को परम अन्न कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण ८.६.२.२ में कृषि, वृष्टि व बीज की त्रिवृत् अन्न के रूप में व्याख्या की गई है। संभवतः त्रिवृत् अन्न की व्याख्या के लिए ही छान्दोग्य उपनिषद ६.५ में भुक्त अन्न के पार्थिव, सूक्ष्म और सूक्ष्मतम भागों की कल्पना की गई है और विभिन्न स्तरों पर इसकी व्याख्या की गई है।

अग्नि के लिए घृत सर्वश्रेष्ठ अन्न कहा जाता है (ऋग्वेद १०.६९.२)। अथर्ववेद ८.७.१२ में कहा गया है कि गौ घृत रूपी अन्न उत्पन्न करने में समर्थ हो सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि वह ऐसे घास/वीरुध का भक्षण करे जो सर्वांग में मधु से निर्मित हो। ब्राह्मण ग्रन्थों में योग मार्ग के घृत की व्याख्या का प्रयास यह कह कर किया गया है कि जिस में से सुगंध आए वह घृत है, जिसमें घृं की ध्वनि उत्पन्न हो वह घृत है।

अथर्ववेद ६.७१.१ में हिरण्य, अश्व, गौ, अज,

अवि आदि भक्ति के स्तरों के प्रतीक चार पशुओं की भी अन्न के रूप में कल्पना की गई है। अथर्ववेद ७.१०६.१ में स्वप्न में भुक्त किसी अन्न का उल्लेख है। अन्न का विभिन्न स्तरों पर वास्तविक भोक्ता कौन है, इसका वर्णन अथर्ववेद १५.१५.१ में किया गया है। इस भोक्ता को वैदिक साहित्य में अन्नाद कहते हैं।

वैदिक निघण्टु में अन्न के २८ अन्य रूपों की परिगणना की गई है।

अन्नकूट वराह १६४ (गोवर्धन का उपनाम, परिक्रमा विधान), लक्ष्मी नारायण १.३४८.५ (० या गोवर्धन परिक्रमा माहात्म्य), लन २.२३८ (कृष्ण कृत अन्नकूटोत्सव वर्णन), ४.९३.६९ (कृष्ण के स्वागत -सत्कार हेतु ब्रह्मा द्वारा अन्नकूट के आयोजन का वर्णन)

अन्नपूर्णा नारद १.८६.६५ (लक्ष्मी - अवतार, ० मन्त्र विधान कथन), लक्ष्मी नारायण १.५०९.११७ (ब्रह्मा के यज्ञ में रुद्र द्वारा क्षिप्त भिक्षा कपाल का अन्नपूर्णा देवी रूप में परिवर्तित होना), ब्रह्माण्ड ३.४.३६.२३ (चिन्तामणि गृह की एक देवी)

टिप्पणी : अन्नपूर्णा/पार्वती देवी व निदाघ के बीच संवाद रूपी अन्नपूर्णा उपनिषद् दृष्टव्य है।

अन्वाहार्यपचन भागवत ४.४.३२ (दक्ष के यज्ञ में शिव गणों के नाश के लिए भृगु द्वारा दक्षिणाग्नि से ऋभुओं को उत्पन्न करना), ४.५.२६ (वीरभद्र द्वारा दक्ष के सिर की दक्षिणाग्नि में आहुति देने का उल्लेख), ६.९.१२ (० अग्नि से त्वष्टा द्वारा वृत्र की सृष्टि), १०.६६.३० (काशिराज - पुत्र सुदक्षिण द्वारा कृष्ण वध हेतु दक्षिणाग्नि से कृत्या उत्पन्न करने का वृत्तांत), नारद २.४५.८४ (दक्षिणाग्नि से फल्गु तीर्थ की उत्पत्ति?), २.४६.२२ (दक्षिणाग्नि पद में श्राद्ध करने से वाजपेय फल प्राप्त होने का उल्लेख, अन्य अग्नियों में श्राद्ध से अन्य फलों की प्राप्ति), स्कन्द ६.१८८.१० (ब्रह्मा के अग्निष्टोम यज्ञ में औदुम्बरी कन्या द्वारा शंकु प्रचार कर्म में रत उद्गाता ऋत्विज को दक्षिणाग्नि में होम करने का निर्देश), ७.१.१०५.६४ (दक्षिणाग्नि शिव, गार्हपत्य हरि व आहवनीय ब्रह्मा होने का उल्लेख), गरुड १.२०५.६६ (ब्रह्मा गार्हपत्य, त्रिलोचन दक्षिणाग्नि व विष्णु के आहवनीय अग्नि होने का उल्लेख), १.२०५.१४८ (उदर में गार्हपत्य, पृष्ठ देश में दक्षिणाग्नि आदि होने का उल्लेख), पद्म १.९.९९ (पितर श्राद्ध कर्म को दक्षिणाग्नि पर करने का निर्देश), विष्णु धर्मोत्तर १.१३६.३२ (पुरुरवा द्वारा अग्नि को त्रेधा विभाजित करके यजन करने का उल्लेख; आहवनीय वासुदेव, दक्षिणाग्नि संकर्षण व गार्हपत्य प्रद्युम्न होने का उल्लेख), देवीभाग ३.१२.४९ (गार्हपत्य अग्नि प्राण, आहवनीय अपान तथा दक्षिणाग्नि व्यान आदि होने का उल्लेख), महाभारत वन २२१.२५ (दक्षिणाग्नि का अन्य दो अग्नियों से संयोग हो जाने पर वीति अग्नि के लिए अष्टाकपाल इष्टि करने का निर्देश), अनुशासन ८७.६ (पितरों के श्राद्ध का अन्वाहार्य नाम), दृ. आहवनीय

टिप्पणी अन्वाहार्यपचन अग्नि पर प्रस्तुत यह टिप्पणी आहवनीय अग्नि पर टिप्पणी की पूरक है। अतः अन्वाहार्यपचन पर टिप्पणी पठन से पूर्व आहवनीय पर टिप्पणी का पठन उपयोगी होगा। शतपथ ब्राह्मण १२.४.१.३ आदि में अन्वाहार्यपचन / दक्षिणाग्नि का स्थान अन्तरिक्ष लोक कहा गया है। अन्तरिक्ष लोक वायु का, प्राण का स्थान है। अथर्ववेद १८.४.८ तथा शतपथ ब्राह्मण ११.१.३.७ आदि में दर्शपूर्णमास इष्टि आदि के संदर्भ में सार्वत्रिक रूप से उल्लेख आता है कि यज्ञ में देवों को आहुतियों द्वारा तृप्त करने के पश्चात यज्ञ के ऋत्विज ब्राह्मणों को दक्षिणा के रूप में ओदन दिया जाता है जिसका पाक यजमान अन्वहार्यपचन अग्नि पर ही करता है। ऋत्विज गण मनुष्य रूप में देवदूत होते हैं। देवों को आहुति देने के लिए दधि, घृत, मधु आदि का जिन्हें अन्नाद्य कहते हैं, उपयोग किया जाता है। लेकिन ब्राह्मण ऋत्विजों को दक्षिणा देने के लिए व्रीहि का पाक किया जाता है। व्रीहि/तण्डुल यजमान पशु का रूप है। यजमान ने अपने को पाशों से मुक्त करके अपने को व्रीहि में रूपांतरित किया है (यह कार्य संभवतः गार्हपत्य अग्नि का है)। इस व्रीहि को ओदन बनाने का अर्थ है इसमें उदान प्राण का विकास करना। अथवा इसका पाक/श्रृत करके इसे श्रद्धा का रूप देना। इस व्रीहि का पाक अन्वाहार्यपचन अग्नि पर किया जाएगा। ब्राह्मण ग्रन्थ केवल इतना कह कर चुप हो जाते हैं कि अन्वाहार्यपचन अग्नि का स्थान अन्तरिक्ष है जिसमें यह अग्नि पक्षियों की भांति अनाधार विचरण करती है (शतपथ ब्राह्मण १२.४.१.३)। गोपथ ब्राह्मण २.२.५ के अनुसार आहवनीय और दक्षिणाग्नि दो हंस हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१.८.४ के अनुसार अन्वाहार्य वात और प्राण हैं। इन कथनों को समझने के लिए पुराणों ने आधार प्रस्तुत किया है कि अन्वाहार्यपचन अग्नि तीसरे नेत्र का, त्रिलोचन का, संकर्षण रुद्र का रूप है (तुलनीय : शतपथ ५.२.४.१५ में अन्वाहार्यपचन में उल्मुक/अंगार का आहरण)। हमारे शरीर में अन्तरिक्ष का, श्वसन क्रिया द्वारा प्राणों को भरने का जो स्थान है, उसमें तीसरे नेत्र की स्थिति सब से ऊपर होती है अर्थात तीसरा नेत्र अन्तरिक्ष की चरम परिणति है (इसके आगे आहवनीय रूपी चक्षु का विकास होगा : तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१.८.१)। यह तीसरा नेत्र उदान प्राण का विकास कैसे करेगा, इस संदर्भ में ब्रह्म पुराण २.८३ में राजा प्राचीनबर्हि की कथा को समझना उपयोगी होगा। राजा ने पुत्र प्राप्ति की इच्छा से तप किया। तब भव नामक शिव ने प्रकट होकर उससे तीसरे नेत्र के दर्शन करने को कहा। तीसरे नेत्र के दर्शन करने पर उसे महिमा नामक पुत्र प्राप्त हुआ। ऐतरेय ब्राह्मण ८.२४ में अन्वाहार्यपचन अग्नि को पुत्र, आहवनीय को पुरोहित और गार्हपत्य को जाया कहा गया है। पुत्र के

लिए जो कुछ करना अभीष्ट होता है, जैसे उसे स्वादिष्ट भोजन प्रदान करना (तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१.८.५), वह सब अन्वाहार्यपचन अग्नि पर किया जाता है। (पुराणों में असुरों द्वारा दक्षिणाग्नि में आहुति देकर वृत्र आदि पुत्र प्राप्त करने जैसा उल्लेख वैदिक साहित्य में नहीं आता)। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१.८.५ में पुत्र हेतु पकाए जाने वाले अन्न को पिता कहा गया है। जैसे पौराणिक साहित्य में दक्षिणाग्नि को पितरों के तर्पण का स्थान कहा गया है, वैसे ही शतपथ ब्राह्मण २.४.२.१०, तैत्तिरीय संहिता १.६.७.१ आदि में भी दक्षिणाग्नि को पितरों का स्थान कहा गया है जिनके लिए पिण्ड प्रदान करना होता है, श्राद्ध करना होता है। शतपथ २.४.२.१३ में सोम को पितृमान कहा गया है। पितर का अर्थ पालने वाले से ले सकते हैं। एक ओर सोम पिता है तो दूसरी ओर उसका भक्षण करने वाली अन्वाहार्यपचन अग्नि है जिसे अन्नादतम, अन्न का भक्षण करने वालों में श्रेष्ठतम कहा जाता है (शतपथ १२.५.२.११, ऐतरेय ब्राह्मण ७.१२)। इन दोनों के मिलन से उदान प्राण का विकास होगा।

वैदिक और पौराणिक, दोनों साहित्यों में अन्वाहार्यपचन अग्नि का सम्बन्ध व्यान वायु से कहा गया है (उदाहरणार्थ शतपथ ब्राह्मण २.२.१.१८)। व्यान वायु को शतपथ ब्राह्मण आदि में सोम को शुद्ध करने वाला पत्थर कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण २.३.२.६, २.४.२.१४, ५.२.४.१५, तैत्तिरीय संहिता १.७.३.१ आदि में अन्वाहार्यपचन के स्थान को असुरों का, भ्रातृव्यों का स्थान कहा गया है जहां से उन्हें अन्वाहार्यपचन अग्नि की सहायता से निकाल फेंकना है। यह भ्रातव्य कौन से हैं, यह स्पष्ट नहीं किया गया है। पुराणों में भ्रातृव्य के रूप में वृत्र का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त ऐसा समझा जा सकता है कि पुराणों में त्रिलोचन शिव जिस-जिस असुर का तीसरे नेत्र से संहार करते हैं, वह सब अन्वाहार्यपचन से सम्बन्धित हैं। तैत्तिरीय संहिता १.७.३.३ में अन्वाहार्यपचन पर पाक से इष्टापूर्त प्राप्त करने अर्थात अपने व्यक्तित्व को दिव्य वर्षा के जल के धारण करने योग्य बनाने का उल्लेख आता है। अथर्ववेद १८.४.९ में जहां आहवनीय और गार्हपत्य से शम् प्राप्त करने का उल्लेख है, दक्षिणाग्नि से शर्म और वर्म प्राप्त करने का उल्लेख है। छान्दोग्य उपनिषद ४.१२.१ में अन्वाहार्यपचन अग्नि का तादात्म्य दिशा, नक्षत्र, चन्द्रमा आदि से स्थापित किया गया है।

वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों में सार्वत्रिक रूप से अन्वाहार्यपचन या दक्षिणाग्नि का तादात्म्य दक्षिणा से स्थापित किया गया है। दक्षिणा के एक पक्ष का चित्रण ओदन पाक के रूप में किया गया है। दक्षिणा के दूसरे पक्ष का चित्रण शतपथ ब्राह्मण २.३.२.२ के इस उल्लेख से होता है कि अन्वाहार्यपचन अग्नि का देवता नळ नैषध है (गार्हपत्य का यम और आहवनीय का इन्द्र है)। महाभारत आदि में नल-दमयन्ती की कथा में नल द्वारा अश्वविद्या और अक्ष विद्या की प्राप्ति को दक्षता प्राप्ति के रूप में समझा जा सकता है। दक्षता प्राप्ति के दूसरे पक्ष में पुराणों में दक्ष प्रजापति के सिर के दक्षिणाग्नि में होम का तथा सुदक्षिण नामक राजकुमार के नष्ट होने आदि का वर्णन आता है।

स्कन्द पुराण में अग्निष्टोम यज्ञ में औदुम्बरी कन्या द्वारा उद्गाता को दक्षिणाग्नि में होम के निर्देश के संदर्भ में अग्निष्टोम शब्द की टिप्पणी में यह प्रसंग दृष्टव्य है। नृसिंहोत्तर तापनीयोपनिषद ३.४ आदि में दक्षिणाग्नि को प्रणव की उकार मात्रा कहा गया है। औदुम्बरी कन्या स्वयं भी ओंकार का रूप है।

त्रिलोचन शिव के तीसरे नेत्र के संदर्भ में डा० फतहसिंह का विचार है कि तीसरे नेत्र का केवल एक स्तर या पद या बिन्दु नहीं है। हमारे दो हाथों के मिलने से भी एक तीसरे नेत्र का विकास होता है, ऐसे ही दो घ्राण, दो कानों के मिलने से भी तीसरे नेत्र का विकास होता है।

अपमान स्कन्द ५.१.४.३२ (हुंकार अग्नि के भोजन का रुप)

अपरा स्कन्द ७.१.३०७.१ (अपर नारायण द्वारा अपर नाम प्राप्ति का कारण), लक्ष्मीनारायण १.२५० (० एकादशी व्रत विधि व माहात्म्य)

अपराजित भागवत ५.२०.३९ (लोकालोक पर्वत पर ४ दिशाओं में स्थित गजराजों में से एक), भा ८.१०.३० (देवासुर संग्राम में नमुचि से युद्ध), भा १०.६१.१५ (कृष्ण व लक्ष्मणा -पुत्र), ब्रह्माण्ड ३.४.२२.९४ (कुरण्ड दैत्य से युद्ध करने वाली अश्वारूढा देवी के अश्व का नाम), कथासरित् १७.२.१४३ (शिव द्वारा मुक्ताफल केतु को प्रदत्त खड्ग का नाम)

टिप्पणी : पुराणों में अपराजित को ११ रुद्रों में से एक कहा गया है। वैदिक साहित्य के अनुसार यज्ञ भूमि पर अधिकार करने के लिए देवों और असुरों में युद्ध चल रहा है और देवगण यज्ञ की जिस दिशा में स्थित होकर असुरों को जीत लेते हैं, जिस यज्ञ से असुरों को जीत लेते हैं, जिस छन्द के प्रयोग से असुरों को जीत लेते हैं, उसी का नाम अपराजित या अपराजिता है। इस प्रकार जैमिनीय ब्राह्मण १.४ में अग्निहोत्र को यज्ञों में अपराजित कहा गया है। सभी छन्दों द्वारा यज्ञ का निर्माण करने के पश्चात छन्दोमों को अपराजित कहा गया है (जैमिनीय ब्राह्मण ३.१७२, ३.२८५ इत्यादि)। अपराजिता दिशा में स्थान भेद हैं। कहीं प्रतीची दिशा को, कहीं ईशान दिशा को तो कहीं अधो दिशा को अपराजिता कहा गया है (संभवत: कार्य विशेष के अनुसार दिशा बदलती रहती है)। ऊर्ध्वा दिशा में भूः, भुवः, स्वः व्याहृतियों द्वारा आरोहण करने पर स्वः से उत्पन्न आदित्य लोक को अपराजित कहा गया है (जैमिनीय ब्राह्मण ३.३८४)। इस लोक का रूप क्या होगा, इसका वर्णन जैमिनीय ब्राह्मण ३.३४८ में इस प्रकार किया गया है कि इसमें नक्षत्रों की छत होगी, चन्द्रमा रक्षा करने वाला होगा, आदित्य अधिपति होगा, आदित्य के उदय व अस्त होने वाले रूप की मन में प्रतिष्ठा होगी। यह वर्णन अथर्ववेद ५.३०.१७ की व्याख्या

प्रतीत होता है।

वेद मन्त्रों में इन्द्र व अग्नि के लिए अपराजित विशेषणों का प्रयोग हुआ है। ब्राह्मण ग्रन्थों व उपनिषदों में ऋग्वेद १०.४८.११ के मन्त्र का विशेष उल्लेख है जिसमें वैकुण्ठ इन्द्र (विष्णु अथवा रुद्र ?) को अपराजित कहा गया है। ऋग्वेद ५.२५.६ में अग्नि द्वारा अपराजित अश्व प्रदान करने का उल्लेख है जो पुराणों में अश्वारूढा देवी के अश्व से तुलनीय है।

अपराजिता अग्नि १४२.१८ (० ओषधि महिमा व मन्त्र), नारद १.११७.५ (वैशाख शुक्ल अष्टमी को ० देवी की पूजा), १.१२१.११२ (द्वादशी तिथि का नाम व महत्व), देवीभाग ८.१३.२२ (शाक द्वीप की नदी), मत्स्य १७९.१३ (अन्धक का रुधिर पान करने के लिए शिव द्वारा सृष्ट एक मातृका), स्कन्द १.२.६२.५४ (० विद्या मन्त्र व माहात्म्य), कथासरित् १५.१.७० (शिव द्वारा गुफा के उत्तर द्वार की रक्षा के लिए नियुक्त तीन देवियों में से एक)

टिप्पणी : समाधि अवस्था का दूसरा नाम अपराजिता पुरी है। वहां किसी की भी पहुंच नहीं है -न इच्छा की, न द्वेष की। इस कारण वह अपराजिता पुरी है।

फतहसिंह

पैप्पलाद संहिता २०.२०.६ में लक्ष्मी को अपराजिता कहा गया है। अथर्ववेद १०.२.३३ में पुरुषमेध यज्ञ द्वारा पुरुष के प्रत्येक अंग की शुद्धि के पश्चात उसे अयोध्या में स्थापित किया जाता है और उसके पश्चात ब्रह्मा द्वारा अपनी हिरण्ययी अपराजिता पुरी में प्रवेश करने का उल्लेख है।

अपराध वराह ११७ (उपासना में ३२ अपराध), भागवत ६.८ (० से रक्षा करने वाले देवों के नाम), भविष्य ४.१४६ (० शमन व्रत, विभिन्न अपराध प्रकार, जनार्दन पूजा), अग्नि २२७ (० अनुसार दण्ड वर्णन), २५८.२६ (साहस शब्दार्थ व दण्ड, विक्रय में अपराध पर दण्ड आदि), द्र. दण्ड, पाप, प्रायश्चित्त

अपरानाविका लक्ष्मीनारायण २.२०० (० पुरी में कृष्ण का आगमन)

अपरान्त कथासरित् ८.१.४३ (देश, सुभट राजा)

अपर्णा स्कन्द १.१.२१.१४२ (पार्वती द्वारा निराहार तप से ० नाम प्राप्ति वर्णन), वायु ७२.७ (मेना-पुत्री, उमा नाम प्राप्ति), वा ७२.७ (एक पर्णा, एक पाटला व अपर्णा के तप का वर्णन), ब्रह्माण्ड २.३.१०.८ (वही, महिमा), हरिवंश १.१८ (वही)

टिप्पणी : तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.२.१.२ इत्यादि ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लेख है कि गायत्री जब श्येन बन कर स्वर्ग से सोम का आहरण कर रही थी, उस समय सोमलता का जो पर्ण गिरा, वही वनस्पतियों का पर्ण बना। पर्ण सोम का रूप है। यह दिव्य नाद सुनने में समर्थ है। अतः यज्ञ में जब स्तनपायी वत्स को गौ से अलग करते हैं तो पर्णयुक्त शाखा से करते हैं। इसी प्रकार यूप का निर्माण भी पर्णयुक्त शाखा से किया जाता है। इसके विपरीत, यदि शत्रुओं को दूर करना हो तो अपर्णा, शुष्क शाखा का प्रयोग किया जाता है। इस विवरण से प्रतीत होता है कि एक समाधि में आरोहण की अवस्था है तो दूसरी अवरोहण की।

अपशकुन भागवत १.१४ (धृतराष्ट्र की मृत्यु पर युधिष्ठिर को ०), स्कन्द २.२.१४ (नीलमाधव यात्रा में इन्द्रद्युम्न को ०, नारद द्वारा निवारण), पद्म ५.५८ (राम द्वारा परित्याग के समय सीता को ०), ब्रह्माण्ड २.३.३८.३० (कार्तवीर्य अर्जुन द्वारा परशुराम से युद्ध के समय ०), वा.रामायण ३.२३ (खर राक्षस द्वारा सेना सहित प्रस्थान के समय दृष्ट ०), ३.५७ (सीता हरण पर राम द्वारा दृष्ट ०), लक्ष्मीनारायण १.८५ (दिवोदास -शासित काशी में गणेश द्वारा सृष्ट अपशकुन), १.३२९ (वृन्दा द्वारा सच्छिद्र सूर्य दर्शन का ०), लन १.५४० (कृष्ण कुल नाश स्थल पर दृष्ट अपशकुन वर्णन), २.१२.६६ (दमनक दैत्य द्वारा लोमश ऋषि के आश्रम में स्थित कन्याओं के हरण हेतु प्रस्थान पर ०), ४.८१.४४ (नागविक्रम राजा से युद्ध को उद्धत नन्दिभिल्ल राजा के समक्ष ०), कथासरित् ८.६.१२८ (गुणशर्मा द्वारा राज सभा में गमन पर दृष्ट अपशकुन)

अपस्यति मत्स्य ४.३५ (उत्तानपाद व अप्रस्यर्ति/सूनृता -पुत्र), देवीभाग ८.४.८ (अपास्या : प्रियव्रत -भार्या, उत्तम आदि ३ पुत्रों की माता)~~-भार्या, उत्तम आदि ३ पुत्रों की माता)~~

अपान अग्नि २१४.१९ (प्राण आदि १० वायुओं के वर्णन के अन्तर्गत अपान के कार्य : आहार को नीचे ले जाना, मूत्र व शुक्र का वहन करना ; प्राण अह, अपान रात्रि), नारद १.४२.१०६ (अपान और प्राण के मध्य पाचक अग्नि के अधिष्ठान का उल्लेख), १.६०.१५ (व्यान-पुत्र, प्राण-पिता, साध्य देवगण वंश), वायु २१.४७ (२१वें कल्प में प्राण, अपान आदि ५ द्विजों का उल्लेख), ६६.१९ (प्राण, अपान आदि तुषित देवों में से एक), ९७.५३ (प्राणादि वायुओं का गर्भ देह में प्रवेश करना : अपान का पश्चिम काया में प्रवेश), ९९.७९ (बलि-भार्या सुदेष्णा द्वारा दीर्घतमा ऋषि के अपान से जुगुप्सा करने पर अपान रहित पुत्र को जन्म देना), कूर्म १.७.३८ (ब्रह्मा द्वारा अपान से क्रतु ऋषि को प्रकट करना, अन्य वायुओं से अन्य ऋषियों का प्राकट्य), लिंग १.७०.१८८ (वही), देवीभाग ३.१२.४९ (अपान का आहवनीय अग्नि से तादात्म्य, प्राण का गार्हपत्य से इत्यादि), ११.२२.३६(प्राणाग्नि

होत्र के संदर्भ में अपान मन्त्र के ऋषि, देवता व छन्द का उल्लेख : श्रद्धाग्नि ऋषि, सोम देवता, उष्णिक् छन्द), ब्रह्म १.७०.५८ (गर्भ देह के पश्चिम में अपान की स्थिति), ब्रह्माण्ड १.१.५.७५ (ब्रह्मा द्वारा प्राण आदि से ऋषियों की सृष्टि : अपान से क्रतु का जन्म), १.२.९.२४ (वही), २.३.७४.१०३ (दीर्घतमा के शाप से बलि के पौत्र दधिवाहन का अनपान होना), स्कन्द १.२.५०.१८ (प्राण, अपान आदि के कार्यों का कथन), १.२.५५.२९ (प्राणापान निरोध की प्राणायाम संज्ञा का उल्लेख), ४.१.४१.१५१ (अपान का उर्ध्व दिशा में कर्षण करके प्राण से एक्य स्थापित करने पर यौवन प्राप्ति का उल्लेख), पद्म २.१५.२१ (पापियों के प्राण अपान मार्ग से निकलने का उल्लेख), वराह २०६.३१ (गौ के अपान में सर्व तीर्थों की स्थिति का उल्लेख), ब्रह्मवैवर्त २.२.४५ (वायु के पांच पुत्रों के रूप में प्राण, अपान आदि का उल्लेख), भागवत २.१०.२८ (विराट पुरुष द्वारा अपान द्वारा एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने की इच्छा पर नाभि का प्रकट होना तथा नाभि से अपान के प्रकट होने का उल्लेख?), लक्ष्मीनारायण २.१२.२९ (गौ के अपान में सर्व तीर्थों की स्थिति का उल्लेख), योगवासिष्ठ ६.१.२५.३२ (कुम्भक प्रक्रिया वर्णन के अन्तर्गत प्राण के हृदयाकाश से अग्निशिखा की भांति बाहर की ओर फैलने तथा अपान के चन्द्रमा/जल की भांति हृदयाकाश की ओर उन्मुख होने आदि का वर्णन), योव ६.१.८१.१११ (प्राण के अग्नि तथा अपान के शीतल शशि होने का उल्लेख), ६.१.८१.५ (कुण्डलिनी शक्ति का अपानता प्राप्त कर अधो दिशा में प्रवाहित होने का उल्लेख); द्र. प्राण -अपान आदि ,

महाभारत वन २१३.३ (देह में प्राण, अपान आदि के कार्यों का वर्णन), उद्योग ४६.१३ (प्राण द्वारा अपान का, चन्द्रमा द्वारा प्राण का, आदित्य द्वारा चन्द्रमा के भक्षण आदि का उल्लेख), भीष्म २८.२९ (योगियों द्वारा अपान में प्राण की और प्राण में अपान आदि की आहुतियों का उल्लेख), शान्ति २३६.९ (योगरूपी रथ में अपान के अक्ष और प्राण के युग/जूआ होने का उल्लेख), ३२८.३३ (व्यान-पुत्र, प्राण-पिता, साध्य-देवगण वंश), आश्वमेधिक २०.१६ (अपान व प्राण के मध्य उदान की स्थिति होने का उल्लेख), २१.१२ (अपान पति द्वारा मति रूपी पत्नी का कर्षण करने का उल्लेख), २[illegible] (प्राण, अपान आदि ५ होताओं द्वारा स्व-स्व प्रधानता का वर्णन), २४.६ (जन्तु की उत्पत्ति के संदर्भ में प्राण द्वारा शुक्र के विकृत होने पर अपान की प्रवृत्ति होने का उल्लेख), २४.१२ (प्राण व अपान के आज्यभाग होने का उल्लेख), ३९.२० (प्राण, अपान आदि के त्रिगुणात्मक होने का उल्लेख), ५८.४२ (तक्षक द्वारा उत्तंक ऋषि के कुण्डल हरण प्रसंग में नागलोक में उत्तंक द्वारा अश्व रूप धारी अग्नि के अपान का धमन करने से धूम उत्पन्न होने का वर्णन)

टिप्पणी : अथर्ववेद ७.५५.५ तथा ११.६.१४ के अनुसार प्राण और अपान दो अनड्वाह (बैलगाडी के बैल) हैं जिनमें प्राण यव है और अपान व्रीहि (चावल) है। अथर्ववेद ७.५५.५ में कामना की गई है कि दोनों अनड्वाह व्रज में जाकर बैठ जाएं। कर्मकाण्ड में इसका स्वरूप यह है कि अध्वर्यु नामक ऋत्विज सोमलता को गाडी में ढोकर यज्ञवेदी स्थल तक लाता है और फिर बैलों को एक-एक करके जल्दी से गाडी से अलग करता है (प्रतीकात्मक रूप में यह गाडी मन की अथवा ओंकार की गाडी हो सकती है)। पुराणों में शिव के गण नन्दी को अनड्वाह कहा जाता है। नन्दी अर्थात आनन्द प्रदान करने वाला। नन्दी का स्वरूप इस प्रकार का है कि वह एक भी हो सकता है और दो भी। इस प्रकार प्राण और अपान दोनों अनड्वाह आनन्द प्रदान करने वाले हैं। अथर्ववेद १०.६.१४ में प्राण और अपान के यव और व्रीहि नामकरण के संदर्भ में डा० फतहसिंह का विचार है कि चेतना के विज्ञानमय कोश से जुडने पर स्थिति यव जैसी होती है जो एक होकर भी दो होता है, जबकि व्रीहि अवस्था सर्वोच्च आनन्दमय कोश या हिरण्यय कोश से जुडने की स्थिति है (तुलनीय : शान्ति पर्व में अपान के अक्ष व प्राण के युग होने का उल्लेख)।

सामान्य व्यवहार में ऐसा माना जाता है कि अन्दर को जाता हुआ श्वास प्राण है और बाहर को निकलता हुआ श्वास अपान का रूप है। लेकिन योगवासिष्ठ और उपनिषदों में यह स्पष्ट किया गया है कि प्राण की गति बहिर्मुखी है, जबकि अपान की अन्तर्मुखी। प्राण बृहत है, अपान रथन्तर (ताण्ड्य ब्राह्मण ७.६.१२ व ७.६.१७)। शतपथ ब्राह्मण १.४.३.३ में इसी तथ्य को प्राणों को प्रवान और अपान को ऐतवान रूप देकर प्रदर्शित किया गया है। अतः यह उपयुक्त प्रतीत होता है कि अन्दर जाते हुए श्वास को अपान और बहिर्मुखी श्वास को प्राण कहा जाए। पुराणों और उपनिषदों में सार्वत्रिक रूप से अपान की स्थिति गुदा प्रदेश में कही गई है (अमृतनादोपनिषद ३६) जहां रहकर वह मल-मूत्र आदि का निस्सारण करता रहता है। गुदा का अर्थ स्थान विशेष न लेकर मूलाधार चक्र मानना चाहिए जिसकी व्याप्ति सारे श्रोणी और पाद प्रदेश में होती है। योगकुण्डलिनी उपनिषद १.४२ का कहना है कि अपान प्राण की प्रवृत्ति अधोमुखी होती है, अर्थात् उसकी सारी शक्ति शरीर से मल के निष्कासन में लग जाती है। यदि साधक अपने भोजन को सूक्ष्म बना ले तो यह अपान प्राण ऊपर उठने लगता है। वह्नि मण्डल (नाभि चक्र?) में इसके प्रवेश करने पर वहां एक दीर्घ अग्निशिखा प्रकट होती है। यह प्राण का उष्ण स्वरूप हो सकता है। इस वह्नि शिखा के शरीर में फैलने पर सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है।

अन्नपूर्णोपनिषद ५.२६ तथा मुक्तिकोपनिषद

२.५१ में अपान और प्राण द्वारा कुम्भक अवस्था प्राप्त करने का वर्णन है जो योगवासिष्ठ के वर्णन के अनुरूप है। अन्नपूर्णोपनिषद में अपान को चन्द्रमा तथा प्राण को सूर्य का रूप दिया गया है। अपान और प्राण के मिलन की कई अवस्थाएं हो सकती हैं। जिस कुम्भक अवस्था में अपान का अस्त हो जाए और प्राण का उदय न हो उसे कलाकलंक से रहित चित्त / चन्द्रमा (अमावास्या ?) कहा गया है। प्राण के अस्त होने तथा अपान के उदय न होने के क्षण की स्थिति को पूर्णावस्था (पूर्णिमा ?) कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७.५.१३ तथा जैमिनीय ब्राह्मण २.३९४ में प्राण को पूर्णिमा तथा अपान को अमावास्या से सम्बद्ध किया गया है। अमावास्या का अर्थ होता है अपरिमित चेतनावस्था को प्राप्त करना, जबकि पूर्णिमा का अर्थ है परिमित चेतना की पूर्णावस्था को प्राप्त करना।

प्रश्नोपनिषद ४.३ में अपान के स्वरूप की व्याख्या उसे गार्हपत्य कह कर की गई है। शतपथ ब्राह्मण ११.८.३.६ में प्राण का सम्बन्ध प्राची/पूर्व दिशा से तथा अपान का प्रतीची / पश्चिम दिशा से कहा गया है। प्रतीची दिशा वरुण की, सत्य और अनृत के बीच विवेक की, शत्रुओं के नाश की दिशा है। यज्ञ कर्म में पश्चिम दिशा में गार्हपत्य अग्नि और पूर्व दिशा में आहवनीय अग्नि की स्थापना की जाती है। गार्हपत्य अग्नि के समीप यजमान-पत्नी तथा प्रतिप्रस्थाता नामक ऋत्विज बैठते हैं, जबकि आहवनीय अग्नि के समीप स्वयं यजमान तथा अध्वर्यु नामक ऋत्विज बैठते हैं। ताण्ड्य ब्राह्मण २५.१८.४, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१२.९.४ तथा प्राणाग्निहोत्र उपनिषद ४ में अपान को प्रतिप्रस्थाता कहा गया है। इसी तथ्य को तैत्तिरीय संहिता ५.३.४.२, शतपथ ब्राह्मण ८.४.२.६ तथा १२.९.२.१२ में प्राण को मित्र और अपान को वरुण से सम्बद्ध करके स्पष्ट किया गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.५.३.१ में प्राण को मित्र से सम्बन्धित प्रातःसवन और अपान को वरुण से सम्बन्धित सायंसवन कहा गया है। जैमिनीय ब्राह्मण १.२७९ में प्राणों को देवयश और अपानों को मनुष्य यश से सम्बद्ध किया गया है। अतः अपान के स्वरूप को समझने के लिए गार्हपत्य अग्नि के स्वरूप को समझ लेना आवश्यक है। गार्हपत्य का अर्थ है अपने गृह का पति या स्वामी बनना, गृह में शत्रुओं के प्रवेश को रोकना। इसके पश्चात उस गृह को देवों के निवास के योग्य बनाना। मनुष्य स्तर पर जितनी उपलब्धियों की कल्पना की जा सकती है, उस सबकी पूर्ति अपान वायु की सिद्धि से होनी चाहिए। यज्ञ कार्य में गार्हपत्य अग्नि पर उस हवि को पकाया जाता है जिसे बाद में आहवनीय अग्नि पर देवों को अर्पित किया जाना है। इसके अतिरिक्त गार्हपत्य के समीप स्थित प्रतिप्रस्थाता ऋत्विज यजमान-पत्नी (जो यज्ञ में वेदी/शरीर का रूप होती है) को दसों दिशाओं में व्याप्त होने वाली चेतना को धारण करने वाली बनाता है, उसे उत्तरवेदी में स्थापित करता है।

अपान का कार्य केवल गार्हपत्य अग्नि तक ही सीमित नहीं है। अग्निचयन कर्म के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण १०.१.४.२ में आहवनीय अग्नि की ६ चितियों में से प्रथम चिति का सम्बन्ध प्राण से, द्वितीय चिति का अपान से, तृतीय का व्यान आदि से जोडा गया है। प्राण की चिति के साथ अस्थियों के भीतर स्थित मज्जा को सम्बद्ध किया गया है, अपान की चिति के साथ अस्थियों को, व्यान की चिति के साथ मांस को आदि-आदि। द्वितीय चिति का विस्तार शतपथ ब्राह्मण ८.२.१.१ में दिया गया है। इस चिति के लिए अश्विनौ देवगण अध्वर्यु ऋत्विज का कार्य करते हैं। इस संदर्भ में अस्थि शब्द का अर्थ स्थूल अर्थों में अस्थि न लेकर यदि अस्तित्व, चेतना की अस्तित्व मात्र स्थिति, विस्तीर्ण चेतना से लिया जाए तो अपान और अस्थि के सम्बन्ध की व्याख्या संभव हो जाती है (जैमिनीय ब्राह्मण १.६१ तथा देवीभागवत पुराण में प्राण को गार्हपत्य तथा अपान को आहवनीय कहा गया है जिसकी व्याख्या अपेक्षित है)। ऐसा प्रतीत होता है कि चेतना की विस्तीर्ण अवस्था/कुण्डलिनी शक्ति को वैदिक साहित्य में सार्पराज्ञी नाम दिया गया है (ऋग्वेद १०.१८९.२, अथर्ववेद ६.३१.२ व २०.४८.५ इत्यादि)।

अथर्ववेद १५.१६.१ में अपान के ७ स्तरों का उल्लेख है - पौर्णमासी, अष्टका, अमावास्या, श्रद्धा, दीक्षा, यज्ञ और दक्षिणा (इनमें पौर्णमासी और अमावास्या का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यज्ञ में श्रद्धा यजमान-पत्नी का रूप होती है जिसे प्रतिप्रस्थाता ऋत्विज दीक्षित करता है)। गोपथ ब्राह्मण १.१.३९ तथा १.२.१६ में भी यही उल्लेख है। जहां ७ प्राणों की प्रवृत्ति दूर जाने की होती है (प्रवत), ७ अपानों की प्रवृत्ति निकट आने (परावत) की होती है। कहा गया है (ऐतरेय ब्राह्मण २.४०) कि प्राणों को दूर जाने से अपान ही रोकता है। अपान प्राण के लिए अन्न बन जाता है, अपान का भक्षण करने के लालच में प्राण टिका रहता है। शतपथ ब्राह्मण १०.१.४.१२ के अनुसार मनुष्य अपान द्वारा अन्न का भक्षण करते हैं, जबकि देवता गण प्राण अग्नि द्वारा। अथर्ववेद ११.३.२९ के अनुसार कठिनाई यह है कि यदि पूर्व में ओदन का भक्षण किया जाता है तो प्राण मेरा त्याग करते हैं, यदि पश्चिम में ओदन का प्राशन किया जाता है तो अपान मेरा त्याग करते हैं। इसलिए अच्छा यही है कि ओदन ही ओदन का प्राशन करे। ओदन उदान प्राण का रूप होता है। सम्यक् व्याख्या अपेक्षित है।

नारद पुराण में अपान को व्यान-पुत्र व प्राण का पिता कहने के संदर्भ में, नारद पुराण में वंश का आरंभ समान से होता है और प्राण पर समाप्त होता है। शतपथ ब्राह्मण १४.६.९.२७ के अनुसार आत्मा की प्रतिष्ठा प्राण में होती है, प्राण की अपान में, अपान की व्यान में, व्यान की उदान में, उदान की समान में। इस तथ्य के व्यावहारिक रूप की व्याख्या अपेक्षित है। गोपथ ब्राह्मण १.५.५ में इस श्रृंखला का आरंभ १५ मुहूर्तों से होता है और १५ कृत्यों (?) वाले उदानों पर समाप्त होता है। अमृतनादोपनिषद ३६ में प्राण आदि के रंगों/वर्णों के वर्णन के संदर्भ में प्राण के रक्त वर्ण के मध्य में अपान के इन्द्रगोपसमवर्ण मण्डल, उसके अंदर समान का मण्डल, उसके अंदर उदान का, उसके अंदर

अपान के आर्चि सम मण्डल का उल्लेख है। इस मण्डल का भेदन करके मूर्धा पर जाने से मृत्यु पर विजय होती है। तैत्तिरीय आरण्यक ७.७.१ में प्राण, व्यान, अपान आदि के अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैव रूपों का वर्णन किया गया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में एक ओर तो प्राण और अपान के सम्बन्ध का वर्णन आता है तो दूसरी ओर प्राण, अपान और व्यान के सम्बन्ध का वर्णन आता है। ऐतरेय ब्राह्मण २.४ के अनुसार प्राणापानौ तो दैवी होता-द्वय हैं, प्राण-अपान और व्यान तीन देवियां हैं (तिस्रो देव्यः)। जैमिनीय ब्राह्मण २.४२ में प्रश्न उठाया गया है कि यह मर्त्य पुरुष किससे जीता है - प्राण से या अपान से। इसका उत्तर दिया गया है कि न यह प्राण से जीता है, न अपान से, यह व्यान से जीता है। व्यान ही अध्यक्ष है। ब्राह्मण ग्रन्थों में सार्वत्रिक रूप से उपांशु-अन्तर्याम ग्रह का वर्णन किया गया है (जैमिनीय ब्राह्मण २.३७, शांखायन ब्राह्मण १२.४, ऐतरेय ब्राह्मण २.२१, तैत्तिरीय संहिता ६.४.६.४)। इनमें प्राणों को उपांशु कहा गया है तथा अपान को अन्तर्याम। व्यान उपांशु सवन अर्थात सोम को शुद्ध करने के पत्थर हैं। उपांशु सवन की क्रिया प्रातः सवन में की जाती है। जैमिनीय ब्राह्मण २.३७ के आधार पर ऐसा कहा जा सकता है कि समाधि से व्युत्थान की अवस्था, सूर्य के उदित होने की अवस्था उपांशु है जिसे शुद्ध करना होता है, जबकि समाधि की अवस्था अपान अथवा अन्तर्याम। शतपथ ब्राह्मण ४.१.१.१ में अपान के स्थान पर उदान का उल्लेख है। तैत्तिरीय संहिता ७.३.१२.१ में प्राण, अपान, और व्यान को अन्न, कृषि और वृष्टि से सम्बद्ध किया गया है जिसमें क्रम विचारणीय है। साथ ही इन्हें पिता, पुत्र व पौत्र भी कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण २.२९तथा गोपथ ब्राह्मण २.३.७ के अनुसार प्राण, अपान और व्यान को यजमान में ऋतुओं द्वारा स्थापित करना होता है। चार ऋतुओं (ऋतुभिः) द्वारा अपान की स्थापना की जाती है। इसके ऊपर २ ऋतु (ऋतुना, एक वचन) द्वारा व्यान की स्थापना की जाती है। दूसरी ओर ६ ऋतु (ऋतुना) द्वारा प्राण की स्थापना की जाती है। व्याख्या अपेक्षित है।

प्राण, अपान, व्यान आदि के सम्बन्ध में एक तथ्य महत्वपूर्ण है कि यह सब शब्द अन के रूप हैं (शतपथ ब्राह्मण १०.४.३.१०)। डा० फतहसिंह का विचार है कि यह अन कोई अव्यक्त अवस्था है जिसका प्राकट्य प्राण, अपान आदि के रूप में होता है। शतपथ ब्राह्मण १०.४.३.१० के अनुसार जो शब्द है, वही वाक् है जो यज्ञ के अन्त में प्रकट होती है। यह न प्राण है, न अपान, न व्यान, न उदान, न समान, यह तो अन है। हो सकता है कि यह अपान की सातवीं अवस्था दक्षिणा से सम्बन्धित हो। जैमिनीय ब्राह्मण १.२७५ के अनुसार वाक् अनुष्टुप छन्द वाली होती है जिसके द्वारा अपान को धारण किया जाता है तथा उसका नियंत्रण किया जाता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१०.८.३ तथा ३.११.५.३ के अनुसार जो यज्ञ के अन्त/केतु के रूप में मन्द अभिभूति होती है, वही वाक् है। उसमें प्राण की स्थिति ऐसी है जैसे जागता हुआ लेकिन अन्धा। अपान की स्थिति ऐसी है जैसे क्रन्दन करता हुआ लेकिन बधिर। हो सकता है अपान की यह स्थिति उदान प्राण की अनुपस्थिति को दर्शाती हो क्योंकि श्रोत्र का संबंध उदान प्राण से होता है। चक्षु बिना हाथ वाला है। मन बिना पैर वाला है जो संकेत है कि यह मन की चंचलता से हीन स्थिति का वर्णन है। अन्यत्र शतपथ ब्राह्मण ८.१.३.६ में इष्टिका स्थापना के संदर्भ में अपानभृत इष्टिका को चक्षुभृत भी कहा गया है। शांखायन ब्राह्मण १७.७ में प्राण को उद्गाता ऋत्विज, अपान को प्रस्तोता, व्यान को प्रतिहर्ता आदि कहा गया है। ताण्ड्य ब्राह्मण १.१०.६ तथा जैमिनीय ब्राह्मण १.११५ में स्तुति का सम्बन्ध अपान से जोडा गया है। शतपथ ब्राह्मण ११.२.७.२७ में दर्श-पूर्णमास यज्ञ के संदर्भ में कहा गया है कि यज्ञ के अन्त में जो अनुयाज कर्म होते हैं, वह अपान का रूप होते हैं। अनुयाजों को छन्द कहा गया है। यज्ञ के प्रारंभ में प्रयाज कर्म होता है जो प्राणों का रूप हैं। ऐतरेय आरण्यक में प्राण, अपान आदि से दैवी वीणा की रचना की गई है जिसमें प्राण स्पर्श वर्णों/व्यंजनों (क आदि) का रूप, अपान उष्माण व्यंजनों (य, र, ल आदि) तथा व्यान स्वरों (अ, आ आदि का रूप है)। स्पर्श व्यंजन पृथिवी, अग्नि व ऋग्वेद का प्रतिनिधित्व करते हैं, उष्माण व्यंजन अन्तरिक्ष, वायु व यजुर्वेद का, स्वर दिवःलोक, आदित्य तथा सामवेद का।

कूर्म पुराण आदि में प्राण से दक्ष व अपान से क्रतु ऋषि आदि की उत्पत्ति के कथन के संदर्भ में यही कथन तैत्तिरीय संहिता २.५.२.४ में भी उपलब्ध है।

भागवत पुराण में नाभि से अपान के प्राकट्य के उल्लेख के संदर्भ में ऐतरेय आरण्यक २.४.२ में भी इसी प्रकार का वर्णन आया है। नाभि अग्नि चक्र का स्थान है। हो सकता है कि अपान का मूलाधार से कर्षण करने पर वह नाभि में अधिष्ठित हो जाता हो। अमृतनादोपनिषद ३६ में प्राण का स्थान हृदय में, अपान का गुदा में, समान का नाभि में, उदान का कण्ठ में तथा व्यान का सर्वत्र कहा गया है।

अपान्तरतमा गर्ग ६.१४ (० द्वारा गौतम - पुत्र मेधावी को पर्वत बनने का शाप), गर्ग ७.४०.३५ (ऋषि, हरिण उपद्वीप में तप, ० आश्रम में गरुड का पक्ष पतन), गर्ग ७.४२.२३ (शकुनि, शम्बर आदि दैत्यों को मोक्ष उपाय रूप में भक्ति प्रकार कथन), ब्रह्मवैवर्त १.८.२७ (० ऋषि का ब्रह्मा के गले से प्रादुर्भाव), १.१२.४ (ब्रह्मा -पुत्र), ब्रव १.२२.१७ (नाम निरुक्ति), तैत्तिरीय आरण्यक ८.९ टीका (जन्मांतर में कृष्ण द्वैपायन व्यास बनना)

टिप्पणी : सुबालोपनिषद ७, अध्यात्मोपनिषद १० तथा महाभारत शान्तिपर्व ३४९ भी दृष्टव्य हैं।

अपामार्ग नारद १.७६.३४ (विभिन्न औषधियों के होम फल के संदर्भ में अपामार्ग आदि के होम के लक्ष्मीप्रद व अघनाशक होने का उल्लेख), पद्म ६.१२२.९ (नरक चतुर्दशी/कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को

स्नान के मध्य में शिर के परितः अपामार्ग आदि को घुमाने से नरक के क्षय होने का उल्लेख), विष्णुधर्मोत्तर १.१९६.३० (रोगों के शमन हेतु विष्णु अपामार्जन शस्त्र का वर्णन), २.४३.९ (मुख रोग हर तथा ज्वरदाह विनाशक ओषधि के रूप में अपामार्ग योग कथन), २.५२.७२ (सर्वग्रह बाधा विनाश हेतु अपामार्गबीज योग कथन), २.१२५.५ (विभिन्न कामनाओं हेतु होम समिधाओं के संदर्भ में कनक प्राप्ति के लिए अपामार्ग समिधा का उल्लेख), २.१२५.७६ (गो अथवा अश्व की कामना की पूर्ति के लिए अपामार्ग, यव आदि की आहुति का उल्लेख), भविष्य १.२९.२४ (शत्रु नाश हेतु अपामार्ग की समिधाओं से प्रज्वलित अग्नि में आहुतियां देने का उल्लेख), ४.१४०.९ (नरक चतुर्दशी को अपामार्ग का भ्रमण कराने से बाधाओं के नाश का उल्लेख), ४.१४३.१९ (महाशांति हेतु कुम्भ में निक्षेप की जाने वाली औषधियों में से एक), गरुड १.१६९.७ (ज्वर नाश हेतु प्रयुक्त ओषधियों में से एक), स्कन्द ६.२५२ (तृण, बुध द्वारा वरण), ७.१.२४ (पुष्प, आपेक्षिक महिमा), लक्ष्मीनारायण १.४४१.९२ (तृण, गरुड का अंश)

टिप्पणी : पुराणों में यत्र तत्र अपामार्ग का उल्लेख है जिसका संकलन नहीं हो सका है। अथर्ववेद ४.१७ - ४.१९ तथा ७.६७ सूक्तों की देवता अपामार्ग औषधि है। इसके अतिरिक्त पैप्पलाद संहिता १६.१४७ - १६.१४९ व १९.१५.१० सूक्त अपामार्ग ओषधि देवता के हैं। अपामार्ग तण्डुल व समिधा का उपयोग विशेष रूप से होम कर्म में होता है। अथर्ववेद परिशिष्ट २६.५.४ में अन्य समिधाओं के वर्णन सहित अपामार्ग समिधा से सौभाग्य प्राप्ति का उल्लेख है। कात्यायन श्रौत सूत्र १५.२ इत्यादि श्रौत ग्रन्थों में राजसूय यज्ञ में किए जाने वाले अपामार्ग होम का वर्णन है। पलाश आदि के पर्ण से निर्मित सुवा में अपामार्ग तण्डुल अथवा सक्तू रखकर विभिन्न दिशाओं में होम करते हैं। अथर्ववेद परिशिष्ट १८ ख.५.१ में विजयदशमी के पश्चात अपामार्ग त्रयोदशी को अपामार्ग से राजा के अभिषेक का उल्लेख है। यज्ञ में उपयोग की जाने वाली अपामार्ग ओषधि को हिन्दी में चिरचिटा आदि कहते हैं। यह घास सर्वत्र प्राप्य है। योग में पापों के अपमार्जन में अपामार्ग का निहितार्थ अन्वेषणीय है।

अपामार्जन अग्नि ३१ (० विधान व स्तोत्र) पद्म ६.७८.१ (अपामार्जन स्तोत्रः पुलस्त्य द्वारा दाल्भ्य को कथन)

अपाला दृ. अबला

अपीतकुच स्कन्द १.३.१.९.७६ (कार्तिक पूर्णिमा को ० देवी द्वारा अरुणाद्रि लिंग की प्रदक्षिणा), स्क ७.३.२.२१ (स्कन्द को स्तन पान न कराने से पार्वती का नाम)

अपूप कथासरित् १०.६.२०४ (अपूप मुग्ध/मूर्ख की कथा), अग्नि १९२.८ (प्रति मास शुक्ल चतुर्दशी को भोज्य द्रव्य), स्कन्द ७.१.१६६.१०६ (सावित्री पूजा में पांच पूपिकाओं द्वारा पूजा का विधान)

टिप्पणी : विभिन्न कृत्यों में देय अपूप बलि का पुराणों से सम्यक् संकलन नहीं हो सका है। वाचस्पत्यम् में पौष कृष्ण अष्टमी को अष्टका श्राद्ध में अपूप बलि का उल्लेख है। लोक व्यवहार में पितरों के श्राद्ध के अनेकों अवसरों पर अपूप बलि देते देखा जाता है। अथर्ववेद ३.२९.४ में उल्लेख है कि जो पांच अपूप वाली अवि को दान करता है वह पितर लोक में अक्षित जीवित रहता है। डा० फतहसिंह ने यहां पांच अपूपों वाली अवि को पांच ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त होने वाले भोगों से विरक्त योगी माना है। मैत्रायणी संहिता ३.१०.६, ऐतरेय ब्राह्मण २.२४ तथा ऋग्वेद ३.५२.१ इत्यादि कई स्थलों पर इन्द्र की पुष्टि के लिए धान, करम्भ, अपूप आदि की बलि का उल्लेख है जिनमें से प्रत्येक द्रव्य की बलि एक विशिष्ट उद्देश्य के लिए है। अपूप बलि इन्द्रियों का वीर्य प्राप्त करने के लिए हैं। अथर्ववेद १८.३.१६ में मृतक के अस्थि संचय कर्म में अपूपवान क्षीरवान चरु, अपूपवान दधिवान, ० द्रप्सवान, ० घृतवान, ० मांसवान, ० मधुमान, ० रसवान, ० अपवान चरुओं से पूरित कुम्भों का उल्लेख है जो देवगण मृतक की क्षुधा शान्ति के लिए प्रस्तुत करते हैं। छान्दोग्य उपनिषद ३.१.१ में आदित्यलोक में अन्तरिक्ष को अपूप कहा गया है जिससे पांच दिशाओं में मधु की नदियां निकलती हैं जिनमें अमृत बहता है तथा वेद पुराण आदि के पुष्प खिलते हैं। आप्टे कोशकार ने अपूप का अर्थ मधु का छत्ता लिया है।

अप्रतिमौजा विष्णु ३.२.२७ (दशम मन्वन्तर में ऋषि), दृ. मन्वन्तर

अप्रतिरथ वायु ९९.१२९ (रन्तिनार व सरस्वती -पुत्र, कण्ठ -पिता)

अप्रस्तुत स्कन्द ७.३.४८ (दुष्ट राजा, इन्दुमती पति, पितरों के उद्धार हेतु सन्तारण तीर्थ में स्नान)

टिप्पणी : जैमिनीय ब्राह्मण १.३४५ में उल्लेख है कि यदि दीक्षाप्राप्त यजमान की मृत्यु हो जाए तो उसे पितृलोक में स्थापित करने के लिए अप्रस्तुत साम किया जाता है। ब्रह्मसूत्र ३.४.५१ में भी अप्रस्तुत शब्द ऐहिक अप्रस्तुत प्रतिबन्धे तद् दर्शनात् सूत्र के रूप में आया है जिसका अर्थ व्याख्याकारों ने इस प्रकार किया है -यदि कर्म बन्धन के कारण इसी जीवन में विद्या लाभ न हो सके तो ----। इस प्रकार अप्रस्तुत का अर्थ यह प्रतीत होता है कि जो अपनी स्तुति का विकास करने में असफल रहा हो।

अप्सरा ब्रह्माण्ड २.३.७.५ (२४ मौनेया अप्सराओं के नाम), २.३.७.१० (लौकिक अप्सराओं के नाम), ब्रड २.३.७.१४ (पंचचूडा अप्सराओं के नाम),

२.३.७.१५ (मेनका, सहजन्या आदि सूर्य रथ पर स्थित रहने वाली १० अप्सराओं के नाम), २.३.७.१८ (शोभवती, वेगवती, युवती आदि १४ अप्सरा गणों के नाम), ३.४.३३.२१ (गोमेदक महाशाला में स्थित अप्सराओं द्वारा ललिता देवी का ध्यान, अप्सराओं के १४ जन्म -स्थान), ब्रह्म २.७७ (० युग संगम तीर्थ, गम्भीरातिगम्भीर अप्सराओं द्वारा विश्वामित्र के तप में विघ्न, शाप से नदी बनना, गंगा संगम से मुक्ति), वायु ६९.४ (३४ मौनेया अप्सराओं के नाम), वा ६९.५३ (विभिन्न अप्सरा गणों की उत्पत्ति वर्णन), अग्नि २१९.३७ (प्रधान अप्सराओं के नाम), विष्णु ५.३८.७१ (अष्टावक्र द्वारा अप्सराओं को कृष्ण पत्नियां बनने का वरदान, रुष्ट होने पर शाप), १.२१.२५ (कश्यप -पत्नी मुनि से अप्सराओं का जन्म), विष्णु धर्मोत्तर १.१२८ (विभिन्न अप्सरा गणों की उत्पत्ति कथन), स्कन्द १.२.१ (पंच अप्सरस तीर्थ : अर्जुन द्वारा पाँच अप्सराओं का ग्राह योनि से उद्धार), १.२.१३.१७४ (अप्सराओं द्वारा शिव के कुंकुम लिंग की पूजा, शतरुद्रिय प्रसंग), ३.२.३.६८ (तपोरत यम/धर्म के तप में वर्धनी अप्सरा द्वारा विघ्न), ४.१.९ (अप्सरा लोक प्रापक कर्म), ४.२.५९.१९ (वेदशिरा मुनि के तप में शुचि अप्सरा द्वारा विघ्न, धूतपापा कन्या के जन्म की कथा), स्क ४.२.६६.२ (अप्सरा कूप व लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य : सौभाग्य प्राप्ति), स्क ५.१.८ (अप्सरा कुण्ड पर स्नान, दान माहात्म्य : उर्वशी को पुरुरवा की प्राप्ति), ५.२.१७ (० लिंग माहात्म्य : शक्र शाप से निवृत्ति हेतु रंभा -प्रमुख अप्सराओं द्वारा स्थापित), ५.३.१९२ (नर -नारायण के तप में अप्सराओं द्वारा विघ्न, उर्वशी की उत्पत्ति), ६.१५३ (ब्रह्मा द्वारा तिलोत्तमा की सृष्टि, शंकर का तिलोत्तमा दर्शन से चतुर्मुख होना, पार्वती का तिलोत्तमा को शाप आदि), देवीभाग ४.६ (तप में विघ्न पर नारायण द्वारा उर्वशी की सृष्टि), ४.१६ (नारायण के तप में विघ्न करने वाली अप्सराओं को २८वें द्वापर में नारायण -पत्नियां बनने का वर), पद्म ६.४६ (मेधावी मुनि के तप में मंजुघोषा अप्सरा द्वारा विघ्न की कथा), प ६.१२७.६१ (कांचनमालिनी अप्सरा द्वारा राक्षस को प्रयाग स्नान माहात्म्य वर्णन, राक्षस का उद्धार), प ६.१६८ (इन्द्र से ब्रह्महत्या अंश की प्राप्ति), वराह ५४ (काम त्रयोदशी व्रत से अप्सराओं का कृष्ण -पत्नियां बनना, अष्टावक्र मुनि के उपहास के कारण दस्युओं द्वारा हरण), वामन ७२.२७ (क्रतुध्वज ऋषि -पुत्रों के तप में पूतना अप्सरा द्वारा विघ्न, मरुतों की उत्पत्ति), ७२.७१ (मंकि ऋषि के तप में वपु अप्सरा द्वारा विघ्न, शाप प्राप्ति), मार्कण्डेय १+ (वपु अप्सरा द्वारा दुर्वासा के तप में विघ्न का साहस करना, दुर्वासा शाप से पक्षिणी बनकर चार पुत्रों को जन्म देना, शस्त्र पूत होकर स्व रूप प्राप्त करना), हरिवंश १.३५.१४ (गार्ग्य शैशिरायण का गोपाली अप्सरा से कालयवन पुत्र उत्पन्न करना), वा.रामायण ३.११.११ (पंचाप्सर तटाक : माण्डकर्णि मुनि के तप में विघ्न उत्पन्न करती हुई पांच अप्सराओं का वास), मत्स्य ७०.२१ (हुताशन/अग्नि -कन्याओं द्वारा शय्या दान से कृष्ण -पत्नियां बनना), म २४६.५४ (वामन के विराट रूप में अप्सराओं का रेखाएं बनना), गर्ग ५.१८.५ (० रूपी गोपियों द्वारा कृष्ण विरह पर व्यक्त प्रतिक्रिया), लक्ष्मीनारायण १.४५६ (० लोक महिमा, अप्सराओं के नाम, अप्सरा लोक प्राप्ति उपाय), १.४६६ (वेदशिरा मुनि व शुचि -अप्सरा से धूतपापा कन्या का जन्म), १.४८६ (मेनका द्वारा विश्वामित्र को अप्सराओं द्वारा जीव को प्रदत्त सुखों का वर्णन), १.५५७.२८ (ऋक्ष पर्वत पर अप्सरस तीर्थ : शाप ग्रस्त अप्सराओं द्वारा नर्मदा स्नान से पुनः स्वर्गलोक प्राप्ति), ३.३५.१ (० वत्सर में अप्सराओं की तृप्ति हेतु बृहद् ब्रह्म नारायण का प्राकट्य), ३.७५.८७ (कन्या दान से अप्सरा लोक की प्राप्ति का उल्लेख), कथासरित् ६.७.२९ (पंचाप्सरस तीर्थ महिमा : अग्निशर्मा ब्राह्मण द्वारा श्रुतसेन राजा को दो आश्चर्य वर्णन), द्र. पंचाप्सर

टिप्पणी : आध्यात्मिक आनंद को सोम कहते हैं जो व्यक्ति के आनंदमय कोश में विद्यमान रहता है। इस सोम की एक बूंद की प्राप्ति के लिए मनीषी, भक्त तरसा करते हैं। इस सोम की धाराएं अप्सराएं कहलाती हैं। यह धाराएं इस सोम से निकल कर सर्वप्रथम विज्ञानमय कोश के शुद्ध प्राणों में मिलती हैं। यह धाराएं अथवा अप्सराएं पांच सौ हैं। आनन्दमय कोश, जहां से यह उदित हुई, वहां एक सौ, विज्ञानमय में एक सौ, इसी प्रकार मनोमय, प्राणमय व अन्नमय कोशों में भी एक -एक सौ। अन्य दृष्टिकोण से इच्छाओं, भावनाओं की अनुभूति को गंधर्व कह सकते हैं, जैसे प्रेम की अनुभूति। इसके विपरीत, भाव की अभिव्यक्ति को अप्सरा कहते हैं। गन्धर्वों की दृष्टि अन्तर्मुखी है जबकि अप्सराओं की बहिर्मुखी । -फतहसिंह

अथर्ववेद ४.३७ व ४.३८ सूक्तों के देवता क्रमशः अप्सरसः और अप्सरा हैं। सूक्त ४.३७ में अप्सरसः (अप्सराओं का बहुवचन) से दूर जाने और सूक्त ४.३८ में अप्सरा के निकट आने की कामना की गई है। डा० फतहसिंह के अनुसर वेद में जब एक शक्ति के विभाजित रूपों को व्यक्त करना होता है तो बहुवचन का प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त अप्सरसः शब्द में स प्रत्यय मानुषी स्तर का प्रतीक है। शुक्ल यजुर्वेद १८.४० तथा शतपथ ब्राह्मण ९.४.१.७ का वर्णन गन्धर्वों, अप्सराओं और अप्सरा की प्रकृति को समझने में सहायक हो सकता है। उदाहरण के लिए चन्द्रमा गन्धर्व है तो नक्षत्र अप्सराएं हैं और अंकुरय/ भाकुरय अप्सरा है (ब्रह्माण्ड .

पुराण में भाकुरय को कुरव कहा गया है)। वात गन्धर्व है तो आप: अप्सराएं और ऊर्जा अप्सरा है। यज्ञ गन्धर्व है तो दक्षिणा अप्सराएं और स्तुति अप्सरा है। मन गन्धर्व है तो ऋक् व साम अप्सराएं हैं और दृष्टि? अप्सरा। वैदिक साहित्य में कई स्थलों जैसे तैत्तिरीय आरण्यक १०.४१ में अप्सराओं से मेधा और गन्धर्वों से मन की प्राप्ति करने का उल्लेख है। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३८१ में गन्धर्वों की उत्पत्ति मित्र मुख से व अप्सराओं की त्वष्टू मुख से कही गई है। पुराणों में सूर्य रथ व्यूह में स्थित मेनका, सहजन्या आदि अप्सराओं के रहस्य का उद्घाटन शतपथ ब्राह्मण ८.६.१.११ में किया गया है। इन अप्सराओं का नाम चूडा है। शतपथ के विवरण के अनुसार आत्मा की प्रतीक नाकसद इष्टिका के परित: पांच दिशाओं में प्रजा रूपी पंचचूडा अप्सराओं की इष्टिकाएं स्थापित करते हैं। चूंकि यह अतिरिक्त ऊर्जा है, अत: इसे चूडा कहते हैं। इस ऊर्जा के दो रूप कहे गये हैं -एक ऊपर की ओर गति करने वाला, एक आत्मा के समीप स्थित होने वाला ?। शिव पुराण ५.२४ इत्यादि में पंचचूडा अप्सरा नारद के स्त्री स्वभाव का वर्णन करती है। उपरोक्त वर्णन के आधार पर ऋग्वेद १०.१३६ में अप्सराओं से वसिष्ठों और वसिष्ठ की उत्पत्ति के रहस्य को समझने की आवश्यकता है। अथर्ववेद ६.११८.१ में उग्रजिता व उग्रपश्या अप्सराद्वय का उल्लेख है।

अबला वायु ७०.७६ (अत्रि - पुत्री, दत्तात्रेय आदि की भगिनी, वेद की अपाला?), मत्स्य १७९.२७ (अबाला : अन्धकासुर युद्ध में अन्धकों का रक्त पान करने के लिए शिव द्वारा सृष्ट मातृकाओं में से एक), कथासरित् १२.६.४१७ (कमलगर्भ ब्राह्मण -पत्नी, जन्मांतर में यक्ष कन्या धूमलेखा व श्री दर्शन -पत्नी अनंग मंजरी) यक्ष कन्या धूमलेखा व श्री दर्शन -पत्नी अनंग मंजरी)

टिप्पणी : ऋग्वेद ८.९१ सूक्त की ऋषिका अपाला है। जैमिनीय ब्राह्मण १.२२० के अनुसार अत्रि-कन्या अपाला अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि है लेकिन चर्म रोग से पीडित है। उसका विवाह कृशाश्व से हुआ। कृशाश्व द्वारा परित्यक्त होने पर अपाला ने सोम रस द्वारा इन्द्र को प्रसन्न किया और इन्द्र ने अपाला को रथ के छिद्र से तीन बार निकाला। तीन बार त्वचा उतरी। पहली त्वचा शल्यक बनी, दूसरी गोधा और तीसरी कृकल। अपाला -जो दिव्य आप: का लालन करे, या जो दिव्य आप: द्वारा लालित हो। कृशाश्व -जहां घोड़े कृश, दुर्बल पड गए हों। यह अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोशों का प्रतीक है। जब अपाला नीचे की इस त्रिलोकी में आएगी, दिव्य आप: का मानुषी त्रिलोकी में अवतरण होगा तो स्वभावत: वह रोग ग्रस्त हो जाएगी। इन्द्र द्वारा अपाला को रथ के छिद्र से तीन बार निकालने का तात्पर्य है कि इन्द्र की तीन छलनियां हैं -एक अन्नमय कोश से प्राणमय कोश के बीच, एक प्राणमय से मनोमय् के बीच और एक मनोमय से विज्ञानमय के बीच। इन तीन छलनियों से छनने पर जीव के रोग दूर हो जाते हैं। -फतहसिंह, वेद सविता पत्रिका के अगस्त ८४ के अंक में।

अब्द विष्णु धर्मोत्तर १.८२ (शब्दार्थ सवत्सर, खण्ड युगानुसार ६० अब्द नाम व शुभाशुभ फल)

अब्धि लक्ष्मीनारायण ४.७४ (सप्ताब्धिसिंह : पंचनादिनी नगरी का राजा, सर्पदंश से मृत्यु पर सूत द्वारा संजीवन का उद्योग)

अब्रिक्त लक्ष्मीनारायण २.५०+ (० देश के म्लेच्छ राजा जुमासेम्ला की दिव्य कन्याओं पर आसक्ति, राजा की सेनाओं का नष्ट होना), २.१११.५९ (० देश में नारायणी नदी की स्थिति का उल्लेख), २.२९७.१०१ (अब्रिक्त -पुत्रियों के साथ कृष्ण का विवाह, कृष्ण व अब्रिक्त -पुत्रियों के बीच सम्बन्ध)

अभय स्कन्द ५.१.३७.३१ (अभयेश्वर लिंग उत्पत्ति व माहात्म्य : शक्र को अन्धकासुर से अभय), ५.२.४८ (० लिंग माहात्म्य : ब्रह्मा -विष्णु को हारक -कालकेली दानवों से ०), विष्णु धर्मोत्तर ३.३०२ (० दान फल), भागवत ४.१.५० (धर्म व दया -पुत्र), ५.२०.३ (प्लक्ष द्वीप में एक देश), नारद १.११६.५२ (० सप्तमी : पौष शुक्ल सप्तमी), मत्स्य १९८.३ (विश्वामित्र -वंश के एक ऋषि), भविष्य ३.३.१०.१७ (महीपति -पुत्र, कृष्णांश / उदयसिंह से मल्ल युद्ध में पराजय), ३.३.२६.८३ (कृतवर्मा का अंश, नृहरि द्वारा परिघ से वध), लक्ष्मीनारायण २.२६९ (अभयाक्ष : पांचाल राजा, विष्णुभक्त, अधोक्षज नाम ग्रहण), ३.१८.१५ (० दान की सर्व दानों में श्रेष्ठता का उल्लेख)

टिप्पणी : कई वैदिक मन्त्रों में चारों दिशाओं से अभय प्राप्त करने का उल्लेख है। ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं में उरु गव्यूति के साथ अभय शब्द को रखा गया है (अर्थ ?)। ऋग्वेद २.२७.११ में आदित्य देवता से प्रार्थना की गई है कि मैंने तो चार में से, किसी भी दिशा में विशिष्ट ज्ञान प्राप्त नहीं किया है। वसुओं के परिपक्व होने/ज्ञान के परिपक्व होने पर मैं आपके द्वारा अभय ज्योति प्राप्त करूं। महाभारत में शत्रुओं को भय देने वाले दो पात्र हैं -भीष्म और भीम। गीता १.१० में दुर्योधन का वाक्य अपर्याप्त तु इदं अस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितं इस ओर संकेत है। चूंकि भीष्म वसुओं का अंश हैं और मृत्यु के समय उत्तरायण की प्रतीक्षा करते हैं, अत: ऋग्वेद की उपरोक्त ऋचा पर इस संदर्भ में विचार अपेक्षित है।

अथर्ववेद १९.१५.५.६ व १९.१६ सूक्तों के देवता अभय हैं।

अभया देवीभाग ७.३० (देवी, उष्ण तीर्थ में वास), मत्स्य १३.४२ (वही), विष्णु धर्मोत्तर २.१३२.५ (० नामक शान्ति का शशिप्रभ वर्ण व अधिदेवता कथन), भागवत ५.२०.२१ (क्रौंच द्वीप

की एक नदी), स्कन्द ४.१.२९.१७ (गंगा के सहस्रनामों में से एक), लक्ष्मीनारायण १.२३८.४९ (मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशी का नाम)

अभिचार लिंग २.५२ (० कर्म विधि), गरुड १.१७७+ (शत्रु के विरुद्ध ०), अग्नि १२५.४७ (० कर्म हेतु उपयुक्त स्थान), १३८ (शत्रु के विरुद्ध ६ प्रकार के ० कर्म व उनके सम्प्रदाय), ३०२ (० हेतु बीज मन्त्र), ३०६ (० कर्म से मुक्ति हेतु शत्रुनाशक मन्त्र), अग ३१५ (शत्रुनाशक ० कर्म वर्णन), शि ७.२.३२.४१ (०कर्मों में होम द्रव्य वर्णन)

टिप्पणी : अध्यात्म में अपने काम, क्रोध आदि शत्रुओं के विरुद्ध अभिचार कर्म किया जाता है। अथर्ववेद के मन्त्रों का अभिचार आदि कर्मों में बहुत विनियोग होता है।

अभिजित् मार्कण्डेय ३३.१५ (अभिजित् नक्षत्र में श्राद्ध से वेदविद् होने का उल्लेख), नारद १.५६.६५१ (यात्रारंभ के संदर्भ में अभिजित् मुहूर्त का पंचांग शुद्धि रहित दिवस में भी अभीष्ट फल सिद्धि दायक होने का उल्लेख), स्कन्द ७.१.१९.१० (जनार्दन के अभिजित् नक्षत्र, जयंती रात्रि व विजय मुहूर्त में उत्पन्न होने का उल्लेख), विष्णु धर्मोत्तर १.८७.१३ (नक्षत्रों की जाति वर्णन प्रसंग में अभिजित् के शूद्र होने का उल्लेख), १.९५.८८ (नक्षत्र आवाहन प्रसंग में अभिजित् का धिष्ण्य वरिष्ठ, क्षिप्र कर्म प्रसाधक विशेषण), १.९७.१२ (ब्रह्मा देवता वाले अभिजित् नक्षत्र के लिए जाती पुष्प प्रदान करने का उल्लेख), १.९८.९ (अभिजित् नक्षत्र हेतु घृत चन्दन की धूप का उल्लेख), १.९९.२० (भूति की इच्छा वाले के लिए अभिजित् नक्षत्र हेतु गुड सहित पायस देने का उल्लेख), १.१००.८ (नक्षत्रों को पान प्रदान करने के संदर्भ में अभिजित् हेतु सलिल देने का उल्लेख), १.१०१.१० (नक्षत्रों के लिए उपयुक्त होम द्रव्य के संदर्भ में अभिजित् हेतु पायस से होम का निर्देश), १.१०२.१९ (अभिजित् हेतु ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं इत्यादि मन्त्र का उल्लेख), २.२२.२३ (चन्द्रमा की नक्षत्र रूपी २८ पत्नियों में से एक), २.७३.७२ (ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति के उपायों में से एक अभिजित् याग का उल्लेख), ३.३१८.२४ (नक्षत्र सत्र व्रत के संदर्भ में अभिजित् के लिए मधु व घृत से युक्त दुग्ध दान का निर्देश), देवीभाग ८.१७.१८ (शिशुमार चक्र में नक्षत्र न्यास के संदर्भ में अभिजित् व उत्तराषाढा का दक्षिण व वाम नासिका में न्यास), वायु ८२.१२ (अभिजित् नक्षत्र में श्राद्ध से अंगों सहित वेद प्राप्ति का उल्लेख), ९६.११६ (चन्द्रनोदक दुन्दुभि -पुत्र, अश्वमेध द्वारा पुनर्वसु पुत्र प्राप्ति का उल्लेख), ९६.२०१ (वसुदेव -पुत्र कृष्ण के अभिजित् नक्षत्र, जयन्ती शर्वरी व विजय मुहूर्त में प्रकट होने का उल्लेख), भविष्य १.१७९.७ (पश्चिम दिशा में स्थित रह कर सूर्य की अर्चना करने वाले नक्षत्रों में से एक), हरिवंश १.३७.१९ (पुनर्वसु -पुत्र, आहुक व आहुकी -पिता, बभ्रु वंश), ब्रह्मवैवर्त ४.९६.७५ (श्रवण नक्षत्र द्वारा स्व छाया से अभिजित् नक्षत्र को उत्पन्न करने की कथा), भागवत ३.१८.२७ (वराह अवतार द्वारा अभिजित् मुहूर्त के योग में हिरण्याक्ष के वध का उल्लेख), ५.२३.६ (शिशुमार चक्र की दक्षिण व वाम नासिका में अभिजित् व उत्तराषाढा नक्षत्रों की स्थिति का उल्लेख), ७.१०.६७ (शिव द्वारा अभिजित् मुहूर्त में त्रिपुर दहन का उल्लेख ; तु: मत्स्य पुराण १३९.३ में पुष्य नक्षत्र के योग में त्रिपुर दहन), ८.१८.५ (वामन अवतार का जन्म भाद्रपद शुक्ल द्वादशी को श्रवण नक्षत्र व अभिजित् मुहूर्त में होने का उल्लेख), मत्स्य २२.२ (अपराह्न में अभिजित् मुहूर्त व रोहिणी के उदय होने पर श्राद्ध करने से अक्षय फल प्राप्ति का उल्लेख), १९६.६ (अंगिरस गोत्र के एक गोत्रकार ऋषि), विष्णु ४.१४.१४ (आनकदुन्दुभि -पुत्र, पुनर्वसु -पिता, अन्धक वंश), शि २.५.१.४८ (मध्याह्न में अभिजित् काल में तथा चन्द्रमा के पुष्य नक्षत्र पर होने पर त्रिपुर दहन का उल्लेख), लक्ष्मीनारायण ३.१०.७७ (० मुहूर्त के क्षण में सूर्य का स्थिर होना), महाभारत वन २३०.८ (रोहिणी नक्षत्र की अनुजा स्वसा अभिजित् द्वारा ज्येष्ठता प्राप्ति के लिए तप करने को जाने पर धनिष्ठा के युगादि नक्षत्र बनने का कथन)

टिप्पणी : पुराणों व ज्योतिष शास्त्र में अभिजित् नक्षत्र के देवता के रूप में ब्रह्मा का नाम आता है तथा अभिजित् नक्षत्र के मन्त्र के रूप में ब्रह्म जज्ञानं इत्यादि मन्त्र का उल्लेख आया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१.५.६ में भी अभिजित् नक्षत्र द्वारा ब्रह्मलोक की अभिजय करने का कथन है। ब्रह्मलोक की जय किस प्रकार की जा सकती है, इसकी व्याख्या पुराणों में शिव द्वारा अभिजित् काल में त्रिपुर दाह के माध्यम से की गई है। त्रिपुर के तीन पुरों की रचना मय दानव द्वारा की गई है और अयस्मय, रजतमय और सुवर्णमय पुरों में तारकाक्ष, कमलाक्ष, और विद्युन्माली आदि असुरों के रहने का वर्णन आता है। तारक को समझने के संदर्भ में रामोत्तरतापिन्युपनिषद २ में वर्णन आता है कि ओंकार के अ, उ, म, अर्धमात्रा, बिन्दु व नाद ही तारक ब्रह्म हैं, यह मृत्यु से, ब्रह्महत्या से, संसार से पार तारते हैं। विद्युन्माली असुर के संदर्भ में बृहदाण्यक उपनिषद २.१.४ तथा २.५.८ में विभिन्न ब्रह्मों का वर्णन किया गया है जिसमें कहा गया है कि जब विद्युत की स्थिति ऐसी हो जाए कि वह सब भूतों में मधु उत्पन्न करने लगे तो विद्युत में स्थित तेजोमय अमृतमय पुरुष भी ब्रह्म हो जाता है। इसी प्रकार पृथिवी, आपः, अग्नि, वायु, आदित्य, दिशाएं, चन्दमा, स्तनयित्नु,

आकाश, धर्म, सत्य आदि में स्थित पुरुष भी ब्रह्म हो सकते हैं। यह दधीचि द्वारा आश्विनौ को प्रदत्त मधु विद्या है। यदि ब्रह्मलोक प्राप्ति की कामना हो तो पृथिवी, अग्नि, आपः आदि में स्थित पुरुषों को दधीचि ऋषि द्वारा वर्णित मधु विद्या के द्वारा ब्रह्म का रूप देना होगा (तुलनीय : पुराणों में अभिजित् नक्षत्र के लिए मधु आदि दान का उल्लेख)।

ब्राह्मण ग्रन्थों में पृथिवी, अग्नि, दिशाओं, वायु आदि पर अभिजय प्राप्त करने के वर्णन आते हैं जिन्हें उपरोक्त मधु विद्या के संदर्भ में समझना होगा। पुराणों में सार्वत्रिक रूप से अभिजित् काल में त्रिपुर के तीन पुरों के एक होने का उल्लेख आता है। शिव द्वारा सर्व ओंकारमय रथ द्वारा त्रिपुर की अभिजय से पूर्व त्रिपुर के तीन पुरों में असुरों का निवास था। शिव द्वारा जीतने के पश्चात वह देवों का निवास स्थान हो गया है। अथर्ववेद १०.२.३१ में वर्णन आता है कि देवों का पुर अष्टचक्रों व नौ द्वारों वाली अयोध्या है, वही ब्रह्मा की अपराजिता पुरी है। अतः यह कहा जा सकता है कि अभिजित् होने के पश्चात त्रिपुर का रूपांतरण अयोध्या में हो जाता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में सार्वत्रिक रूप से पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्यु लोकों की अभिजय के उल्लेख आते हैं। इस संदर्भ में तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१.४.६ का कथन है कि सम्यक् अभिजय तभी प्राप्त हो सकती है जब पहले पृथिवीलोक में स्थित गार्हपत्य अग्नि की प्रतिष्ठा की जाए, उसके पश्चात अन्तरिक्ष में स्थित अन्वाहार्यपचन अग्नि की और उसके पश्चात द्युलोक में स्थित आहवनीय अग्नि की। यदि इसके विपरीत क्रम से प्रतिष्ठा की गई तो अभिजय नहीं हो सकेगा। गार्हपत्य अग्नि पर अभिजय से अन्नाद्य/मधु पर अभिजय प्राप्त होती है (शतपथ ४.६.४.२)। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.२.३.३ से संकेत मिलता है कि असुरों के शिल्पी मय द्वारा निर्मित पुरों की अभिजय का एक विकल्प देवशिल्पी विश्वकर्मा होना है। शतपथ ब्राह्मण ३.७.१.१४ में यज्ञ में यूप के अग्रिम, मध्यम व अपर भागों द्वारा तीन लोकों के अभिजय की कल्पना की गई है। ऐतरेय ब्राह्मण २.१७ में तीन लोकों की अभिजय के लिए अग्नि, उषा और अश्विनौ देवताओं की प्रतिस्पर्धा का वर्णन किया गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.३.४.३ व ३.१२.५.६ में पशुबन्ध व अग्निष्टोम द्वारा पृथिवीलोक, उक्थ्य द्वारा अन्तरिक्ष व अतिरात्र द्वारा स्वर्ग लोक की अभिजितियों का उल्लेख है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.११.९.१ व ३.११.१०.१ में नचिकेता अग्नि चयन कर्म द्वारा तीन लोकों की अभिजिति का वर्णन है।

पुराणों में अभिजित् काल में वामन के जन्म के उल्लेख के संदर्भ में तैत्तिरीय ब्राह्मण १.३.५.४ का कथन है कि विष्णु होकर इन लोकों पर अभिजय की जाती है। इसके सायण भाष्य में कहा गया है कि कर्मकाण्ड में विष्णु के क्रमण की पुनरावृत्ति रथ के द्वारा की जाती है। यह अन्वेषणीय है कि शिव द्वारा त्रिपुर का और विष्णु के रथ द्वारा त्रिलोकों की अभिजय में क्या अंतर है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.९.४.८ में विष्णु क्रम के स्थान पर वाजी के क्रमों का उल्लेख है।

अभिजित् के संदर्भ में ब्राह्मण ग्रन्थों में कुछ अन्य रोचक उल्लेख आते हैं। शतपथ ब्राह्मण १२.२.३.१२, १३.२.४.१ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण १.७.३.८ के अनुसार मनुष्य लोक की अभिजय ग्राम्य पशुओं द्वारा होती है, जबकि देवलोक की जय आरण्य पशुओं द्वारा। अरण्य में (तप करने पर ?) क्षुधा, पिपासा आदि ही राक्षस हैं। अरण्य पर विजय पाने के लिए स्वयं को यज्ञ की वेदी, बर्हि, इध्म बनाना पड़ता है। हो सकता है कि रामायण में अरण्यकाण्ड की रचना के पीछे यह एक कारण हो और वास्तविक अयोध्या की प्राप्ति इसके पश्चात ही होती हो।

ब्राह्मण ग्रन्थों में दिशाओं की अभिजय के सार्वत्रिक उल्लेख आते हैं। तैत्तिरीय संहिता १.७.५.४ तथा ५.२.१.१ के अनुसार विष्णु क्रम के प्रसंग में पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक की अभिजय क्रमशः गायत्री, त्रिष्टुप् तथा जगती छन्दों द्वारा होती है जबकि दिशाओं की अनुष्टुप् छन्द द्वारा। तैत्तिरीय संहिता ५.४.९.४ के अनुसार रथ वज्र है और दिशाओं की अभिजय रथ द्वारा ही की जाती है। जैमिनीय ब्राह्मण २.३१६ के अनुसार पुरुष में ९ प्राण और दसवीं नाभि १० दिशाओं के प्रतीक हैं अर्थात दिशाओं पर अभिजय से ९ प्राणों पर अभिजय होती है। ९ प्राणों को त्रिवृत् ब्रह्म कहा गया है। पुराणों में मध्याह्न में अभिजित काल में सूर्य द्वारा अपने रथ से अश्वों को अलग कर देने और विश्राम करने के संदर्भ में ऐतरेय ब्राह्मण ४.१८ तथा ४.१९ में देवों द्वारा अभिजित् व विश्वजित् स्तोमों द्वारा सूर्य के दृढीकरण का वर्णन उपयोगी हो सकता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में एक अन्य महत्वपूर्ण उल्लेख अभिजित् और विश्वजित् में अन्तर के सम्बन्ध में आता है। काठक संहिता ३९.५ के अनुसार जय का क्रम यह है : स्वः जित् , पृतनाजित् , भूरिजित् , अभिजित् , विश्वजित् , सर्वजित् , सत्राजित् , और धनजित्। जैमिनीय ब्राह्मण २.८ के अनुसार मनुष्य लोक अभिजित् है जबकि देवलोक विश्वजित्। जैमिनीय ब्राह्मण २.४३० के अनुसार अभिजित् द्वारा अग्नि में स्थान/वास प्राप्त होता है जबकि विश्वजित् द्वारा इन्द्र में। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.२.३.३ के अनुसार इन्द्र द्वारा वृत्र के वध आदि से मनुष्य लोक आदि की जय तो हो जाती है, लेकिन देव लोक अनभिजित् ही रहता है। देवलोक की जय इन्द्र द्वारा विश्वकर्मा बनने पर होती है। शतपथ ब्राह्मण १२.१.४.२ में गवामयन यज्ञ के विभिन्न अंगों में से दक्षिणबाहु को अभिजित् और उत्तरबाहु को विश्वजित् कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण १२.२.३.२ में अभिप्लव, पृष्ठ्य, अभिजित् आदि यज्ञों का क्रम भी दृष्टव्य है। शतपथ १२.२.४.१५ में दक्षिण व उत्तर कर्णों को अभिजित् व विश्वजित् कहा गया है।

पुराणों में आनकदुन्दुभि - पुत्र अभिजित् के संदर्भ में अथर्ववेद ६.१२६.३ में उल्लेख आता है कि जब अभिजिति प्राप्त हो तो केतु के रूप में दुन्दुभि बजे। अथर्ववेद १२.३.१५ में बनस्पति/दुन्दुभि के वादन द्वारा सर्व लोकों के अभिजय की कामना की गई है। यह दुन्दुभि नाद का प्रतीक हो सकती है। वसुदेव -पुत्र कृष्ण के अभिजित् नक्षत्र में जन्म के संदर्भ में हमें

चन्द्रमा और अभिजित् के सम्बन्धों पर विचार करना होगा। जैमिनीय ब्राह्मण २.९८ में सूर्य व चन्द्रमा द्वारा क्रमशः दिन और रात्रि की अभिजय का वर्णन आता है। अह सुवर्ण है, रात्री रजत है। जैमिनीय ब्राह्मण १.११ के अनुसार अग्निहोत्र से उन सब लोकों की अभिजय होती है जो आदित्य से परे हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.४.१.४ के अनुसार दारुमय/काष्ठमय पात्रों द्वारा देवलोक पर अभिजय होती है जबकि मृन्मय पात्रों द्वारा मनुष्यलोक की (कृष्ण का जन्म कंस के कारागार में होता है। कंस यज्ञ में पान पात्र को कहते हैं जैसे सुराकंस)। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.३.३.७ में सोम ग्रह से देवलोक और सुराग्रह से मनुष्य लोक की अभिजय करने का उल्लेख है। यजमान सोम का रूप है, अन्न सुरा का। सोम पुरुष है जबकि सुरा स्त्री। सोम ग्रह पूर्व में है, सुरा ग्रह पश्चिम में। तैत्तिरीय संहिता ३.५.२.४ आदि में अभिजित् को ग्रावा (सोम अभिषवण का पत्थर) से युक्त कहा गया है।

अभिज्ञान कथासरित् १०.५.२७८ (समुद्र आवर्तों से स्थल का अभिज्ञान करने वाले मूर्ख का दृष्टान्त), द्र. दुष्यन्त -शकुंतला कथा में मुद्रिका द्वारा अभिज्ञान

अभिधान कोश विष्णु धर्मोत्तर ३.९, ३.११+ (शब्दों के तात्पर्य)

अभिनय अग्नि ३४२ (निरूपण)

अभिनन्दन भविष्य ३.३.२३.३३ (राजा, चित्ररेखा -पिता, उदयसिंह आदि द्वारा राजा को प्रसन्न करके चित्ररेखा द्वारा अपहृत इन्दुल को प्राप्त करने का उद्योग), ३.३.३२.२१ (कौरवों का ० के पुत्रों के रूप में जन्म), लक्ष्मीनारायण २.१४०.६७ (० नामक प्रासाद के लक्षण)

अभिमन्यु मत्स्य ४.४२ (चाक्षुष मनु व नड्वला -पुत्र), देवीभाग ४.२२.३८ (सोमप्रभ उपनाम?), भागवत ९.२२.३३ (अर्जुन व सुभद्रा -पुत्र, उत्तरा -पति, परीक्षित -पिता), ब्रह्माण्ड २.३.७१.१७८ (वही), विष्णु ४.२०.५१ (वही), कथासरित् ८.५.१०८ (सूर्यप्रभ -सेनानी, हिरण्याक्ष विद्याधर का वध, सुनेत्र द्वारा अभिमन्यु का वध)

टिप्पणी : महाभारत आदिपर्व २२०.६७ में अभिमन्यु शब्द की व्युत्पत्ति अभि और मन्युमान शब्दों के संयोग से की गई है। अतः अभिमन्यु को समझने से पूर्व मन्यु को समझना होगा। अथर्ववेद ९.१२.१३ से संकेत मिलता है कि क्रोध की व्याप्ति रक्त में होती है जिसका शोधन वृक्क-द्वय करते हैं। मन्यु इससे ऊपर की अवस्था है। यह शुक्र में उत्पन्न होता है जिसका शोधन अण्ड-द्वय करते हैं। पुराणों में शिव के क्रोध करने पर तीसरे नेत्र के खुलने का वर्णन आता है जिससे वह शत्रु को भस्म कर देते हैं। यह भी मन्यु का एक रूप है। ऋग्वेद ७.६१.१ के अनुसार वरुण के जिस चक्षु ने सूर्य का रूप धारण किया, उसने मर्त्यों में मन्यु का दर्शन (चिकेत) किया। ऋग्वेद १.१००.६ के अनुसार इन्द्र ने मन्युमान होकर नृ प्राणों द्वारा सूर्य को चमकने वाला बनाया। ऋग्वेद १.१०१.१, ८.६.१३ व १०.१४७.१ आदि में उल्लेख आता है कि यह जो मन्यु हर्ष उत्पन्न करने वाला है, उससे युक्त होकर इन्द्र ने शम्बर, वृत्र आदि का वध किया और उन्होंने जिस दिव्य पयः/आपः का बन्धन कर रखा था, उसे मुक्त किया या पान किया। ऋग्वेद ८.६.४ से संकेत मिलता है कि मन्यु आनन्द के समुद्र जैसा है जिसमें बहुत से सिन्धु आकर मिलते हैं। ऋग्वेद ८.४८.८ के अनुसार इन्दु मन्यु का भरण करता है? ऐसा प्रतीत होता है कि मन्यु के सूर्य रूप से चन्द्र रूपी मन्यु का जन्म होता है जिसे पुराणों में सोम-पुत्र वर्चा अथवा अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु कहा गया है। महाभारत आदिपर्व २२० में अभिमन्यु के जन्म की तुलना शमीगर्भ से उत्पन्न हुताशन/अग्नि से की गई है। मन्यु के संदर्भ में शर्मा/शम की अवस्था क्या है? अथर्ववेद ६.४३ के मन्यु सूक्त में वर्णन आता है कि जब आनंद समुद्र से दर्भ का जन्म होता है, तब मन्युशमन होता है। हो सकता है कि ऋग्वेद १०.८७.१३ में मन्यु युक्त मन से जिस शर के उत्पन्न होने का उल्लेख है, वह यही दर्भ हो। इन्द्र द्वारा हर्ष युक्त मन्यु द्वारा शम्बर को मारने के उल्लेख (ऋग्वेद १.१०१.२, २.२४.२) में शम्बर शम् अवस्था के भरण की आसुरी अवस्था है।

शमी

ऋग्वेद ८.४.५, १०.८३.४ तथा १०.११६.६ आदि में मन्यु को ओज से सम्बद्ध किया गया है। पुराणों में अभिमन्यु को वर्चस् से सम्बद्ध करने का निहितार्थ अन्वेषणीय है। ऋग्वेद ३.२४.१ में अग्नि द्वारा अभिमातियों (शत्रुओं) के सह/अभिभव द्वारा यजमान के लिए वर्चस देने की प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद की कई ऋचाओं में इन्द्र द्वारा अभिमातियों का सह करने (जैसे ऋग्वेद ६.६९.४) अथवा उनका हनन करने (ऋग्वेद ३.५१.३) आदि के उल्लेख आते हैं। ऋग्वेद ५.२३.४ तथा तैत्तिरीय संहिता ४.१.७.२ के अनुसार अग्नि अभिमातियों के सह का कार्य करता है। ऋग्वेद १०.८३.४ में मन्यु को अभिमातिसह कहा गया है। सह स्थिति विज्ञानमय कोश में होती है। ऐसा अनुमान है कि अभिमाति शब्द का सम्बन्ध अभिमान से है। पुराणों में अभिमान में हुंकार अग्नि की स्थिति कही गई है। अतः यह कहा जा सकता है कि अभिमान का सौम्य रूप अभिमन्यु बनता होगा। तैत्तिरीय संहिता १.६.५.२ में विष्णु के क्रमण (विष्णु द्वारा पदों से ब्रह्माण्ड का मापन) के संदर्भ में कहा गया है कि पृथिवी के अनुदिश गायत्री छन्द द्वारा विष्णु का जो क्रम है, वह अभिमातिहा, अभिमाति का नाश करने वाला है। जो क्रमण अन्तरिक्ष में है, वह अभिशस्तिहा है। पृथिवी पर विष्णु क्रमण करते समय आहवनीय अग्नि पर जाने का निषेध है। अतः अभिमातिहा क्रमण गार्हपत्य अग्नि से सम्बन्धित हो सकता है (तैत्तिरीय संहिता ४.२.७.४)। महाभारत द्रोणपर्व में दुःशासन-पुत्र द्वारा अभिमन्यु के वध की व्याख्या अभिमातिहा और अभिशस्तिहा द्वारा की जा सकती है। महाभारत आदिपर्व २२०.७६ में अभिमन्यु को मेघ व दुन्दुभि घोष वाला कहने के संदर्भ में अथर्ववेद ५.२०.२ में दुन्दुभि को वर्षा करने वाली तथा

अभिमातिसाह कहा गया है।

अभिमन्यु वध के पश्चात अर्जुन द्वारा सिन्धुराज जयद्रथ और जयद्रथ-पिता बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग के नामों का उल्लेख है। जयद्रथ के रथ की ध्वजा पर रजत वराह का चिन्ह है जो यह संकेत करता है कि जयद्रथ का सम्बन्ध अन्तरिक्ष से है। गर्ग सह की स्थिति हो सकती है। ऋग्वेद ८.६.४ से प्राप्त संकेत के अनुसार मन्यु आनन्द के समुद्र जैसा है जिसमें बहुत से सिन्धु आकर मिलते हैं। यह अर्जुन द्वारा सिन्धुराज के वध की व्याख्या हो सकता है।

वैदिक साहित्य में अभिमन्यु का प्रत्यक्ष रूप से उल्लेख एक-दो स्थानों पर ही आया है। पैप्पलाद संहिता ५.४.१३ में इन्द्र से प्रार्थना की गई है कि जो अमित्र अभिमन्यु द्वारा हमें हानि पंहुचाता है, उसका तुम वध करो और हमें शवस् प्रदान करो। यास्क निरुक्त १०.३० में मन्यु शब्द के दीप्ति, क्रोध और वध के अर्थों में प्रयुक्त होने का उल्लेख है जो उपरोक्त वर्णन से भी स्पष्ट है। यास्क निघण्टु में मन्यु शब्द की परिगणना क्रोध और पद नामों के अन्तर्गत की गई है। मन्यु शब्द के साथ जिन अन्य ३१ पदों का उल्लेख है, उनमें से अधिकांश का प्रयोग ऋग्वेद की ऋचाओं में मन्यु शब्द के साथ हुआ है। विचारणीय है कि क्या अभिमन्यु की आयु के १६ वर्षों और मन्यु के ३२ पदों में कोई तादात्म्य स्थापित हो सकता है।

अभिमान अग्नि ३३९.३ (सहजानंद में अहंकार उत्पन्न होने के पश्चात अभिमान और तब रति उत्पन्न होने का उल्लेख), ब्रह्माण्ड १२.९.२३ (ब्रह्मा के अभिमान से नीललोहित रुद्र की उत्पत्ति का उल्लेख), विष्णुधर्मोत्तर १.१८१.३ (चाक्षुष मनु के अग्निष्टुद् आदि पुत्रों में से एक), १.१८९.२ (अभिमानी : १४वें भौत्य मनु के पुत्रों में से एक), ब्रह्म १२९.६३ (अभिमान की राजस गुणों के अन्तर्गत परिगणना), शिव २.२.२.३४ (कामदेव द्वारा उत्पन्न होने के पश्चात ब्रह्मा से अभिमान आदि की मांग करना), भागवत ७.१.२३ (कृष्ण द्वारा शिशुपाल वध के संदर्भ में अहंकार व अभिमान से बद्ध प्राणी के वध पर हिंसा की आशंका; कैवल्य पद प्राप्ति पर अभिमान का विलीन होना?), स्कन्द ५.१.४.३२ (० में हुंकार अग्नि की स्थिति का उल्लेख), महाभारत शान्ति २४७.२४ (अभिमान का राजसिक गुणों में से एक होने का उल्लेख), ३१३..१२ (अहंकार अध्यात्म, अभिमान अधिभूत और रुद्र अधिदैवत होने का उल्लेख)

अभिरुचि कथासरित् ९.२.६४ (विद्याधर राजा, अशोक माला से विवाह)

अभिलाषा शिव ३.१३.५८ (विश्वानर द्विज द्वारा शिव हेतु अभिलाषा अष्टक स्तोत्र का पाठ), स्कन्द ४.१.१०.१२६ (वही)

अभिषेक अग्नि २८ (आचार्य अभिषेक विधान), ६४ (वरुण अभिषेक विधि), अग ६९ (० स्नपन उत्सव), ९० (शिष्य अभिषेक विधि), १२१.३६ (राज्य अभिषेक हेतु नक्षत्र विचार), अग १६७ (होम में यजमान ०), २१८+ (राज्याभिषेक विधि), नारद २.६०+ (जगन्नाथ क्षेत्र में कृष्ण, बलराम व सुभद्रा का अभिषेक उत्सव वर्णन), शिव १.१६.१६ (पूजा में ० से आत्मशुद्धि कथन), २.४५ (कार्तिकेय ० वर्णन), ७.२.२० (शिष्य द्वारा आचार्य का ०), ब्रह्म २.२६ (ब्रह्महत्या के पश्चात इन्द्र के अभिषेक पर गौतम व माण्डव्य की आपत्ति, अभिषेक जल से मालव देश की उत्पत्ति), पद्म २.५.१०० (देवों द्वारा वसुदत्त नामक अदिति -कश्यप पुत्र का इन्द्र पद पर अभिषेक), प ५.४.४७ (राम के राज्य ० का संक्षिप्त कथन), ६.४ (जालन्धर का ० वर्णन), ६.२४४ (राम का राज्याभिषेक), वामन ५७.५४ (कार्तिकेय का ० वर्णन), वम ६२ (शिव ०), विष्णुधर्मोत्तर १.१०९ (पृथु ०), १.२५० (शक्र ०), २.१८+ (०काल, विधि), विध २२१+ (राज्य ० विधि), विध २.१६२ (राजा का संवत्सर ०), भविष्य १.१७५+ (अरुण द्वारा गरुड का अभिषेक), ३.११९.५ (राज्याभिषेक में मृत्यु व वैन्य पृथु की पूजा), भागवत ४.१५+ (पृथु ०, देवों द्वारा भेंट, सूतों द्वारा स्तुति, पृथ्वी दोहन कथा), भा ८.१५ (बलि ०), १०.२७ (सुरभि व देवों द्वारा कृष्ण ०), स्कन्द १.२.३० (कुमार ०, देवों द्वारा भेंट), ३.१.१२ (पराशर द्वारा मनोजव राजा का ०), स्क ४.१.२३ (विष्णु ०, शिव द्वारा), ६.१२९ (याज्ञवल्क्य द्वारा मंदिर स्तंभ ० कथा), भविष्य ४.१४१ (यजमान ० विधि), मत्स्य ६८ (मृत वत्सा स्त्री हेतु ०), लिंग १.४३ (शिव द्वारा नन्दी का अभिषेक), लि २.२७ (शिव अभिषेक विधि), गरुड १.१०० (० विधि), वा.रामायण ४.२६ (सुग्रीव का राज्याभिषेक वर्णन), गर्ग ३.४ (कृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण के पश्चात सुरभि व ऐरावत द्वारा कृष्ण का अभिषेक), विष्णु ५.२१ (राज्य ०), वराह १८६ (प्रतिमा ०), ब्रह्माण्ड ४.४३ (शिष्य ०), योगवासिष्ठ ५.४१ (प्रह्लाद ०), ब्रह्मवैवर्त ३.१७ (स्कन्द ०), ४.१०४ (उग्रसेन ०), लक्ष्मी नारायण १.९८ (कार्तिकेय का सेनापति पद पर ०), ४.१११ (मुकुन्द विक्रम के राज्याभिषेक का वर्णन), द्र. राज्याभिषेक, सोमाभिषेक

अभिष्टुत ब्रह्म २.९८ (राजा, हयमेध में असुरों का विघ्न, त्वष्टा व विश्वरूप द्वारा रक्षा)

अभ्र ब्रह्माण्ड १.२.२२.२७ (निरुक्ति), ३.४.४४.५४ (लिपि न्यास संदर्भ में एक व्यंजन के देवता का नाम), लिंग १.५४.३९ (निरुक्ति व प्रकार), विष्णु २.९.१० (जल की निरुक्ति)

टिप्पणी : वैदिक मन्त्रों में अभ्र के साथ प्रायः

स्तनयन/गर्जन विशेषण जोडा गया है। भौतिक जगत में भी मेघों से वृष्टि होते समय विद्युत व गर्जन दिखाई पड्ती है। वैदिक साहित्य में स्तनयन और अभ्र को लेकर एक धेनु की कल्पना की गई है। (शतपथ ब्राह्मण १.५.२.१८, ९.३.३.१५, पैप्पलाद संहिता १६.१३३.१०)। अभ्र उसका ऊधस है। स्तनयित्नु उसके ४ स्तन हैं। शतपथ ब्राह्मण ९.३.३.१५ के अनुसार विद्युत स्तन है। पैप्लाद संहिता १६.१३३.१० के अनुसार बृहत्, रथंतर, यज्ञायज्ञीय व वामदेव साम उसके स्तन हैं। जैमिनीय ब्राह्मण २.१५८ के अनुसार महत् अभ्र ऊर्जा का रूप है जिसके दर्शन के लिए देवों को तप करना पड़ता है। पौराणिक साहित्य में प्रत्येक प्रकार की अग्नि जैसे दावाग्नि, मृतक की अग्नि, अभिचार हेतु अग्नि के धूमों से अभ्रों की उत्पत्ति होती हैं। लेकिन छान्दोग्य उपनिषद ५.५.१, ५.१०.६, ८.१२.२ तथा बृह्दारण्यक उपनिषद ६.२.१० में पर्जन्य अग्नि के धूम से उत्पन्न अभ्र का उल्लेख है। इस पर्जन्य अग्नि में देवगण सोम की आहुति डालते हैं। भक्तिमार्ग में इस अभ्र को हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ आदि में से आरंभिक अवस्था हिंकार कहा गया है (छान्दोग्य उपनिषद २.१५.१, पैप्पलाद संहिता १६.११५.३)। यह सूर्य के उदय होने की अवस्था है।

वेद मन्त्रों में अभ्र एक वचन और बहुवचन में प्रकट हुआ है। यह अन्वेषणीय है कि क्या छान्दोग्य उपनिषद का अभ्र वेद के एकवचन वाले अभ्र का प्रतिनिधित्व करता है तथा क्या इस अभ्र के साथ भी स्तनयन और विद्युत के गुण जुडे रहेंगे।

चूंकि मेघ, पर्वत व हाथियों के लिए एक ही शब्द प्रयुक्त होता है, अतः पुराणों में अभ्र की कल्पना हस्ती के रूप में भी की गई है।

अभ्रम ब्रह्माण्ड २.३.७.३२९, २.३.७.३५५ (गजों का राजा), शिव २.५.८.१३ (अभ्रमु : ऐरावत -पत्नी, त्रिपुर वधार्थ शिव के रथ पर युगान्त कोटि पर स्थिति)

अमर स्कन्द ४.२.६९.११८ (अमरेश लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य : अमरत्व प्राप्ति), ६.१४५ (० लिंग माहात्म्य, अदिति द्वारा स्थापित, देवों का अमर होना), स्क ७.१.१९४ (० लिंग माहात्म्य, देवों द्वारा स्थापित), पद्म १.४० (मरुत नाम), योगवासिष्ठ ६.२.९६ (अमरत्व प्रतिपादन), भविष्य ४.१९५ (० पर्वत महिमा, मेरु पर्वत का नाम), मत्स्य ८३.२७ (० पर्वत पूजा विधि), म १७१.५२ (मरुत्वती व कश्यप -पुत्र, मरुतों में एक का नाम), ब्रह्माण्ड ३.४.४४.४९ (अमरेश्वर : लिपि न्यास प्रसंग में एक व्यंजन के देवता), लक्ष्मी नारायण २.२७०.६५ (अमरा : देवमूल भक्त -कन्या, तप, श्री हरि से विवाह), ४.१०१.१३० (अमर्या : कृष्ण -पत्नी, अमृत व ध्रुव शेमुषी की माता), कथासरित् ६.१.१४० (अमरगुप्त : राजा विक्रमसिंह का मन्त्री, राजा को वन में युद्ध विद्या के अभ्यास का परामर्श), कस ८.३.१०१ ((अमृतबल नामक धनुषों की महिमा), १२.३.८ (अमर दत्त : मृगांक दत्त का पिता), १२.२.१५ (अमर दत्त : अयोध्या -राजा, सुरतप्रभा -पति, मृगांकदत्त -पिता), कस १२.३६.१२५ (स्वपुत्र मृगांक दत्त के विवाह में सम्मिलित होने के लिए यात्रा), १०.९.२२६ (अमरनाथ मंदिर स्थल पर हिरण्याक्ष राजकुमार द्वारा योगिनी की प्रतीक्षा)

अमरकण्टक मत्स्य १८६.१२ (० पर्वत महिमा), १८८.७९ (० पर्वत पर बाण के त्रिपुर के ज्वाला प्रदीप्त अंश का पतन, महिमा), स्कन्द ४.२.७४ (अमरकण्टक पर्वत पर ओंकार क्षेत्र महिमा : दमन -गर्ग संवाद), स्क ५.३.२१ (० पर्वत माहात्म्य), ५.३.२८ (त्रिपुर का ज्वलित भाग ० पर गिरने से जालेश्वर उत्पत्ति), देवीभाग ७.३८ (चण्डिका देवी का वास स्थान), ब्रह्माण्ड २.३.१३.४ (पिण्ड्दान में ० का महत्व), कूर्म २.४०.९ (पर्वत, नर्मदा नदी का स्थान), वायु७७.४ (० पर्वत महिमा), पद्म २.२०.१४ (सोमशर्मा द्विज द्वारा अमरकंटक पर्वत पर दान -पुण्य करने से सुव्रत नामक दिव्य पुत्र प्राप्ति की कथा), प ३.१३+ (अमरकंटक पर्वत पर नर्मदा नामक गंगा का माहात्म्य, अन्य तीर्थ व नदियां, जलते हुए त्रिपुर के अंश के पतन का स्थान)

टिप्पणी : वेदों में अग्नि, इन्द्र, सोम व अश्विनौ को बहुत से स्थानों पर अमर्त्य संज्ञा दी गई है। अग्नि मर्त्य और अमर्त्य दोनों रूप धारण कर सकता है (ऋग्वेद १०.११८.६, ८.१९.२५ इत्यादि)। अग्नि का मर्त्य रूप तृषा व क्षुधा आदि के रूप में सबको दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद की कई ऋचाओं में उल्लेख है कि अमर्त्य होने पर अग्नि रयि नामक धन देती है (ऋग्वेद १.५८.३)। अमर्त्य होने पर ही यह देवों के लिए हवि वहन करने में समर्थ होती है। इन्हीं सूत्रों को बाणासुर के त्रिपुर के जलने व अमरकण्टक पर्वत पर ज्वालेश्वर आदि तीर्थों की उत्पत्ति के रूप में दिखाया गया है। अमरकण्टक पर्वत ओंकार का क्षेत्र है। ओंकार अर्थात सर्वोच्च संगीत। बाणासुर मर्त्य स्तर पर वीणा वादन का स्वरूप है (दृष्टव्य : ऋग्वेद १.८५.१० में धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवः)। इस स्तर पर यदि नारद के आगमन रूपी भक्ति का उदय हो जाए तो त्रिपुर का नाश निश्चित है। अमर कण्टक तुरीय नामक चतुर्थ अवस्था का प्रतीक है। यही अवस्था अमर्त्य कहलाती है (ऋग्वेद २.३७.४)। अमरकण्टक में कण्टक शब्द को रोमांच के रूप में समझा जा सकता है। चतुर्थ तुरीयावस्था में पहुंचने पर अग्नि की ज्वालाएं इन्दु का क्षरण करने में समर्थ होती हैं। यही त्रिपुर के ज्वलित भाग का जालेश्वर या जलेश्वर तीर्थ बनना है। ऋग्वेद ५.१८.२ तथा ८.४८.१२ में इस इन्दु को अमर्त्य कहा गया है जो मर्त्य स्तर में प्रवेश करने पर आनंद प्रदान करता है तथा जिसकी महिमा का उपनिषदों में अमरी के नाम से उल्लेख है जिसका योगीजन पान करते हैं। ऋग्वेद की

कई ऋचाओं में अमर्त्य अग्नि द्वारा नीचे के सात स्तरों पर अवतरण करके तृप्त करने का उल्लेख है। अग्नि का यह अवतरण स्वधा की पूर्ति करता है (ऋग्वेद ९.१०३.५), अतः अमरकण्टक क्षेत्र को श्राद्ध के लिए प्रशस्त माना गया है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद १.१६४.३० तथा १.१६४.३८ के अनुसार स्वधा की पूर्ति होने पर मृतक का जीव अमर्त्य स्तर तक जाने व आने में समर्थ हो जाता है ? अमरकण्टक पर्वत पर नर्मदा नदी को नृ प्राणों का मानुषी स्तर पर अवतरण होने पर मद उत्पन्न होने के रूप में समझा जा सकता है (फतहसिंह)। अमरकण्टक पर्वत पर कावेरी नदी की उपस्थिति को ऋग्वेद १०.८७.२१ में अमर्त्य अग्नि द्वारा प्रत्येक दिशा में कवित्व शक्ति को पुष्ट करने के उल्लेख से समझा जा सकता है। सोमशर्मा व उसकी पत्नी सुमना द्वारा अमरकण्टक पर तप से सुव्रत नामक पुत्र की प्राप्ति को ऋग्वेद ९.६८.८ के संदर्भ में समझा जा सकता है जहां मनीषा अमर्त्य सोम की ओर आकृष्ट होकर उसकी स्तुति करती है और सोम वाक् को प्रेरित करता है। सोम और मनीषा के संयोग से ही हमारे व्रतों की, संकल्पों की पूर्ति हो सकती है।

शिव द्वारा त्रिपुर नाश हेतु रथ निर्माण के संदर्भ में ऋग्वेद में अमर्त्य इन्द्र के कं रथ (ऋग्वेद १.१२९.१०) तथा अश्विनौ के समान योजन रथ (ऋग्वेद १.३०.१८, ५.७५.९) का उल्लेख है लेकिन इनसे शिव के रथ के सम्बन्ध में कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

ऋग्वेद १.१६८.४ में मरुतों के स्व से युक्त होने पर उन्हें अमर्त्य कहा गया है। यह पुराणों में अमर मरुत की व्याख्या है।

अमरावती भागवत ८.१५.११ (०पुरी शोभा वर्णन, बलि का आक्रमण व अधिकार), मत्स्य १२४.२७ (० पुरी में, सूर्य का उदय -अस्त वर्णन), ब्रह्माण्ड १.२.२१.३७ (वही), स्कन्द ४.१.१०.१७ (० पुरी प्राप्ति उपाय वर्णन), ५.१.३६ (उज्जयिनी का नाम), ५.१.४६ (० पुरी नाम हेतु : कश्यप -अदिति के पुत्रों/देवों का अमरत्व), ब्रह्मवैवर्त ४.४७.७१ (इन्द्रनगरी, विश्वकर्मा -द्वारा निर्माण)

टिप्पणी : ऋग्वेद १.१७५.२ इत्यादि में शत्रुओं का नाश करने वाले अमर्त्य इन्द्र का उल्लेख है। पैप्पलाद संहिता ३.१०.४, ५.२१.७, १६.१०४.३ तथा १८.१९.४ में अमर्त्य सहस्राक्ष का स्थान परम व्योम में कहा गया है।

अमर्क ब्रह्माण्ड २.३.७३.६४ (शुक्राचार्य - पुत्र, शण्ड -भ्राता, असुर -पुरोहित, देवों द्वारा यज्ञ में भाग दिए जाने पर असुरों का त्याग), द्र. शण्ड -अमर्क

अमा स्कन्द ७.१.५७ (सोम की कला, उमा से तादात्म्य), लक्ष्मी नारायण १.५०८.७ (मद्रराज - सुता, जयसेन -पत्नी, गौरी पूजा से वैभव प्राप्ति, पूर्व जन्म वृत्तांत)

टिप्पणी : गोपथ ब्राह्मण १.३.२२ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वैदिक ऋचाओं में जहां मा शब्द आता है, उसका तात्पर्य नकारात्मक न होकर माया से आवृत होना होता है। इसका विलोम अर्थात माया के बंधन से मुक्त होने को अमा कहा जा सकता है। निघंटु में अमः शब्द का परिगणन गृह नामों के अंतर्गत किया गया है।

अमावसु मत्स्य १४ (पितर, अच्छोदा कन्या की आसक्ति का तिरस्कार), ब्रह्माण्ड२.३.१०.५६ (ऐल - पुत्र, अच्छोदा की आसक्ति कथा), ब्रह्म २.३.१०.६८ (उपरिचर वसु से साम्य?), २.३.६६.२२ (पुरुरवा व उर्वशी -पुत्र, भीम -पिता), वायु ७३.५ (पितर, अच्छोदा की आसक्ति कथा, उपरिचर वसु से साम्य), हरिवंश १.१८.३० (वही), १.२७.१ (पुरुरवा -पुत्र, वंश वर्णन), पद्म १.९ (अच्छोदा की कथा)

अमावास्या स्कन्द ७.१.१०५.५२ (३०वां पितर कल्प : ब्रह्मा की कुहू का रूप), ७.१.१३१ (श्रावण ०, ध्रुव लिंग पूजा), ७.१.२७६ (पौष ०, उमापति पूजा), स्क ७.१.२९६ (आषाढ ०, ऋषितोया नदी में स्नान), ७.३.४५ (आश्विन ०, देवखात तीर्थ में श्राद्ध), पद्म १.९.१८ (पितर -कन्या अच्छोदा का अवतार), प ३.२०.२१ (भाद्रपद ०, दशाश्वमेध तीर्थ में स्नान), मत्स्य १४ (अमावसु पितर की अच्छोदा कन्या से समागम की अनिच्छा से उत्पत्ति), १४१ (कुहू व सिनिवाली का काल), ब्रह्माण्ड १.२.१०.६५ (महिमा), १.२.२८.३८ (कुहू का काल), गरुड १.११६ (भास्कर आदि वारों, नक्षत्रों, योगों की पूजा), कूर्म २.४१.१०४ (भाद्रपद ०, दशाश्वमेधिक तीर्थ में स्नान), वायु ५६.४२ (० काल निरूपण), ५६.५४ (सिनीवाली ० काल निरूपण), नारद १.२९.२७ (सिनीवाली व कुहू ० में करणीय कृत्य), न १.१२४.८२ (० तिथि व्रतों का वर्णन), विष्णु ३.१४ (नक्षत्रों से योग अनुसार ० तिथि की प्रशस्तता), वराह ३४ (तन्मात्रात्मक रूप पितरों की तृप्ति के लिए ब्रह्मा द्वारा निर्दिष्ट तिथि), भविष्य ४.९९ (० को श्राद्ध, तर्पण महिमा), लक्ष्मी नारायण १.२८० (विभिन्न मासों में ० का संक्षिप्त निरूपण), ३.१०३.१० (० को स्वर्ण गौ दान से सर्वकामों की प्राप्ति का उल्लेख)

टिप्पणी : अथर्ववेद ७.८४ सूक्त का देवता अमावास्या है। ब्राह्मण ग्रन्थों में पूर्णिमा व अमावास्या के दिनों में करणीय कृत्यों का विस्तार से वर्णन है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७.१५.१३ में पूर्णिमा की रेतः सिंचन करने वाले ऋषभ और अमावास्या की धेनु रूप में कल्पना की गई है। जैमिनीय ब्राह्मण २.३८ के अनुसार पूर्णिमा को पुरोडाश व अमावास्या को दधि की हवि का विधान है। शांखायन ब्राह्मण ३.६ के अनुसार पूर्णिमा को अग्नीषोम का व अमावास्या को इन्द्राग्नि का यजन

किया जाता है। ताण्ड्य ब्राह्मण २५.१० के अनुसार पूर्णिमा को गो स्तोम व बृहत् साम होता है जबकि अमावास्या को आयु स्तोम व रथन्तर साम। गोपथ ब्राह्मण २.१.१२ में अमावास्या को सरस्वती और पूर्णिमा को सरस्वान कहा गया है। षड्विंश ब्राह्मण ५.६.२ में अमावास्या को चन्द्रमा की १६वीं कला का पितरों आदि द्वारा पान का उल्लेख है। षड्विंश ब्राह्मण ५.६.५ में कृतयुग को कुहू व द्वापर को सिनीवाली कहा गया है।

अमित भागवत ९.१५.२ (जय - पुत्र, पुरूरवा वंश), ब्रह्माण्ड३.४.१.६० (सुधर्मा गण देवों में से एक), कथासरित् १४.३.५६ (अमितगति : चण्डसिंह -बन्धु, कैलास के उत्तर भाग पर आधिपत्य प्राप्ति के लिए तप)

अमितध्वज नारद १.४६.३७ (धर्मध्वज - पुत्र, खाण्डिक्य -पिता, केशिध्वज -खाण्डिक्य संवाद प्रसंग)

अमिताभ ब्रह्माण्ड १.२.३६.५४ (स्वारोचिष मन्वन्तर में १४ देव -गण, नाम), ब्रड ३.४.१.१८ (देव -गण, २० नाम), वायु १००.१६ (देव -गण, २० नाम), विष्णु ३.१.२० (पांचवें रैवत मन्वन्तर में देवों का एक गण), नारद १.८५.११७

अमित्रजित स्कन्द ४.२.८२ (कृष्ण भक्त, नारद से मिलन, मलयगंधिनी कन्या की रक्षा व परिणय), लक्ष्मी नारायण १.४७४ (वही), भागवत ९.१२.१२ (सुतपा -पुत्र, बृहद्राज -पिता, इक्ष्वाकु वंश), वायु ९९.२८६ (सुपर्ण-पुत्र, भरद्वाज -पिता, इक्ष्वाकुवंश)

अमील कथासरित् ८.२.१९२ (हिरण्याक्ष - पुत्र, द्वितीय पाताल में वास, स्वकन्या कलावती का चक्रवर्ती सूर्यप्रभ से विवाह करना)

अमृत ब्रह्म २.३६ (राहु द्वारा अमृत भक्षण पर विष्णु द्वारा शिरछेदन, ईश्वरी नामक शक्ति द्वारा राहु की देह से अमृत का पृथक्करण, अमृत से प्रवरा/अमृता नदी का प्राकट्य), भागवत ८.८+ (समुद्र मंथन से उत्पत्ति, मोहिनी द्वारा वितरण कथा), मत्स्य २५१ (समुद्र मन्थन से प्राकट्य, देवों द्वारा पान), पद्म १.४७.१४० (गरुड द्वारा माता हेतु स्वर्ग से अमृत हरण कथा), प २.४ (अमृत कुंभ की रक्षा के रूप में सोमशर्मा की परीक्षा कथा), स्कन्द ३.१.१३.६ (अमृतवापी माहात्म्य : अगस्त्य -अनुज द्वारा अमृतत्व प्राप्ति के कारण नामकरण), स्क ३.१.२८ (साध्यामृत तीर्थ माहात्म्य : पुरूरवा द्वारा तीर्थ में स्नान से उर्वशी की पुनः प्राप्ति कथा), ४.१.४१.१०६ (योग में अमृत पान विधि), ४.१.५० (गरुड द्वारा ० हरण कथा), ४.२.७०.५४ (अमृतेश्वरी देवी का संक्षिप्त माहात्म्य : अमृतत्व प्राप्ति), ४.२.९४ (अमृतेश्वर लिंग माहात्म्य : सनारु -पुत्र उपजंघनि का पुनर्जीवन), ५.१.५१ (सर्पों से भिक्षा प्राप्त न होने पर रुद्र द्वारा अमृतकुंभों से अमृत का पान, सर्पों द्वारा शिप्रा नदी जल से कुंभों का पूरण करने पर कुंभों का पुनः अमृत से पूर्ण होना), ब्रह्माण्ड ३.४.१०.१ (अमृत वितरण हेतु विष्णु द्वारा मोहिनी रूप धारण कथा), लक्ष्मी नारायण २.२८.२४ (आमृतिक जाति के नागों का गीतकार होना), २.१४०.२५ (अमृतोद्भव प्रासाद के लक्षण); दृ. समुद्र मंथन

अमृततेज कथासरित् १०.९.२४२ (वज्रकूट नगर -राजा, मुनि शाप से हिरण्याक्ष बनना, शाप से मुक्ति पर मृगांकलेखा से विवाह)

अमृतप्रभ भागवत ८.१३.१२ (आठवें सावर्णि मन्वन्तर में देवों का एक गण), कथासरित् ८.२.३४७ (अमृतप्रभा : पर्वतमुनि -कन्या, महल्लिका सखी, सूर्यप्रभ द्वारा प्राप्ति); कस १४.३.१२१ (विद्याधरराज, वह्नि पर्वत पर क्षिप्यमाण नरवाहन दत्त की रक्षा)

अमृतलता कथासरित् ७.२.३१ (रत्नाधिपति राजा -पत्नी, पातिव्रत्य परीक्षा में असफलता)

अमृता मत्स्य १३.४२ (विन्ध्य में देवी - नाम), म १३.४९ (वेणा तीर्थ में सती देवी का नाम), १२२.३३ (शाकद्वीप में गंगा के सात प्रकारों में से एक, वेणु का उपनाम), विध २.१३२.५ (० नामक शान्ति के चित्र वर्ण व अधिदेवता का कथन), ब्रह्माण्ड १.२.१९.१९ (प्लक्ष द्वीप की एक नदी), वायु ४९.१७ (वही), विष्णु २.४.११ (वही), ब्रह्माण्ड १.२.२४.२७ (वर्षा करने वाली सूर्य की नाड़ियों / रश्मियों का समूह), २.३.७.१९ (मेन व मेनका -पुत्री, १४ अप्सराओं में से एक), वायु ६९.५६ (जल/अमृत से उत्पन्न कन्या), ब्रह्माण्ड ३.४.३५.२९ (अमृतेश्वरी : बुद्धिशाला में आनन्दवापी में नौका में विहार करती हुई वारुणी देवी का नाम), ३.४.१९.२० (अमृताकर्षिणी : भंडासुर वध हेतु १६ चन्द्र कला रूपी देवियों में एक), ३.४.३६.७१ (वही), ३.४.४४.१२० (वही)

अमोघा पद्म १.५५ (शन्तनु - पत्नी, पति द्वारा ब्रह्मा से समागम की अनुमति, लौहित्य तीर्थ उत्पत्ति), मत्स्य १३.३५ (अमोघाक्षी : विपाशा तीर्थ में सती का नाम)

अमोहक पद्म ३.१८.१०१ (तापस तीर्थ में पितरों का नाम), मत्स्य १९१.१०५ (ब्रह्मतीर्थ का दूसरा नाम, ० तीर्थ में गज शिला पर पिण्ड दान माहात्म्य), लक्ष्मी नारायण २.२६८ (अमोहाक्ष : राजा, प्रबोध -शिष्य, गुरु द्वारा चतुर्भुज रूप में दर्शन, गुरु -सेवा, बंधन से मुक्ति हेतु गुरु का अरण्य गमन)

अम्बर मत्स्य १३.२७ (० तीर्थ में सती का विश्वकाया नाम से वास), भागवत६.१०.१९

(वृत्रासुर -सेनानी, इन्द्र से युद्ध), वायु ४२.४५ (मेरु कूट से निस्सृत एक नदी, तटवर्ती स्थान व माहात्म्य), लक्ष्मी नारायण २.७७.५८ (कृष्णाम्बर दान से वस्त्र निर्माण के पाप का क्षालन), २.२९३.१०५ (बालकृष्ण व लक्ष्मी के विवाह में काल द्वारा युगल को अम्बर भेंट), २.२९३.१०९ (भूतप्रेत गण द्वारा बालकृष्ण व लक्ष्मी के विवाह में अम्बर भूषा भेंट करना); दृ. अन्तरिक्ष, आकाश, चिदम्बर, चिदाकाश

अम्बरप्रभा कथासरित् १५.२.३५ (पोत्रराज विद्याधर-पुत्री, मन्दरदेवी -सखी, नरवाहन दत्त से विवाह)

अम्बरीष ब्रह्मवैवर्त ४.२५ (एकादशी - दुर्वासा आख्यान), ४.५० (० द्वारा दुर्वासा को केशयुक्त भोजन प्रस्तुत करने पर दुर्वासा का कोप), शिव ३.१९ (दुर्वासा द्वारा ० की परीक्षा), शि ३.२९.३ (नभग -पौत्र), भागवत ९.४ (दुर्वासा द्वारा कृत्या उत्पत्ति प्रसंग), स्कन्द २.२.४.८५+ (दुराचारी अम्बरीष की पुरुषोत्तम क्षेत्र में मुक्ति, भगवद् स्तुति), स्क २.७.१+ (नारद से वैशाख माहात्म्य विषयक संवाद), स्क ३.२.९.८९ (आंगिरस गोत्र का एक प्रवर, गुण कथन), ३.२.९.४० (गार्ग्य गोत्र के ऋषियों का एक प्रवर), ४.२.५८.४९ (० तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य : कालिमा से मुक्ति), ४.२.७७.६९ (अम्बरीषेश्वर लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य : गर्भवास से मुक्ति), ४.२.८४.१६ (० तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य : गर्भवास से मुक्ति), स्क ६.९३.१९ (तप द्वारा सुवर्चा पुत्र प्राप्ति, पुत्र के कुष्ठग्रस्त होने पर पाताल गंगा जल में स्नान से व्याधि से मुक्ति), ७.३.१३ (हृषीकेश की आराधना, क्रिया योग उपदेश की प्राप्ति), पद्म ५.८४ (नारद से हरि भक्ति विषयक प्रश्न, वैष्णव धर्म कथन), ५.९५ (नारद द्वारा पूर्व जन्म वृत्तांत कथन, देवदास हेमकार द्वारा स्वर्ण मूर्ति निर्माण), ब्रह्माण्ड १.२.३२.१०८ (३३ मन्त्रकर्ता आंगिरसों में एक), २.३.३४.३९ (० की उत्तमा प्रकार की भक्ति), २.३.६३.६ (नाभाग -पुत्र, विरूप -पिता, आंगिरस उपनाम), ब्रड २.३.६३.७२ (मान्धाता व बिन्दुमती -पुत्र, नर्मदा -पति, युवनाश्व -पिता), २.३.७.३६ (कद्रू के पुत्रों में एक प्रधान नाग), २.३.६३.१७२ (नाभाग -पुत्र, सिन्धुद्वीप -पिता), वायु २८.२६ (पुलह व क्षमा -पुत्र), ५९.९९ (३३ मन्त्रकर्ता अंगिरसों में एक), वा ६९.७३ (एक प्रधान काद्रवेय नाग), लिंग २.५ (त्रिशंकु व पद्मावती -पुत्र, ० की कन्या श्रीमती के स्वयंवर में नारद को वानर मुख प्राप्ति कथा), गर्ग १.५.२६ (युयुधान रूप में अवतरण), वा.रामायण १.६१ (यज्ञ पशु की चोरी पर ऋचीक -पुत्र शुनः शेप को यज्ञ पशु बनाना, विश्वामित्र द्वारा शुनः शेप की रक्षा), लक्ष्मी नारायण १.४११ (० -कन्या श्रीमती के स्वयंवर में नारद व पर्वत को वानर मुख प्राप्ति कथा), १.४७६ (एकादशी व्रत के पारण पर दुर्वासा का कोप, दुर्वासा द्वारा उत्पन्न कृत्या से कृष्ण के चक्र द्वारा रक्षा), १.५५३.६३ (अम्बरीष तीर्थ माहात्म्य : अम्बरीष द्वारा विष्णु दर्शन हेतु तप, विष्णु द्वारा मुक्ति उपाय कथन), १.५५९ (अम्बरीष के यज्ञ में प्रतिग्रह प्राप्त करने से ब्राह्मण का मृत्यु पश्चात ब्रह्मराक्षस बनना), २.२८.२१ (० जाति के नागों का सूतकार व वाहन रक्षक बनना)

टिप्पणी : अम्बरीष अन्न पाक - पात्र को कहते हैं। ऋग्वेद के १.१०० व ९.९८ सूक्तों के ऋषि अम्बरीष हैं।

अम्बष्ठ गर्ग ७.१०.१८ (केरल देश का राजा, प्रद्युम्न को भेंट), भागवत १०.४३.२ (कुवलयपीड हाथी का महावत, कृष्ण द्वारा वध), १०.८३.२३ (० देश राजा द्वारा कृष्ण -पत्नी लक्ष्मणा के स्वयंवर में मत्स्य वेध में असफलता), मत्स्य ४८.२१ (० देश का राजा सुव्रत), ब्रह्मवैवर्त १.१०.१८ (विप्र द्वारा वैश्य स्त्री से उत्पन्न वर्णसंकर संतान का नाम), गरुड १.९६.२ (वही)

अम्बा स्कन्द १.२.६.१०५ (० शब्दार्थ निरूपण : अंगों का वर्धन करने वाली), ६.५७ (अम्बा द्वारा आत्मघात पर भीष्म द्वारा पाप निवारण के लिए तीर्थ यात्रा), स्क ६.८८ (चमत्कार नृप -कन्या, काशिराज -पत्नी, पति की मृत्यु पर शत्रु वधार्थ देवी की आराधना, देवी द्वारा मातृकाओं की सृष्टि, मातृकाओं के नियंत्रण के लिए अम्बा देवी द्वारा स्व पादुकाओं की स्थापना), स्क ६.११६ (देवी, रेवती द्वारा वंश नाश से मुक्ति हेतु आराधना), देवीभाग १.२०.४१ (काशिराज -कन्या, शाल्व पर आसक्ति, भीष्म द्वारा हरण व त्याग), ७.३८.१० (नील पर्वत पर नीलाम्बा देवी का वास), देभा १२.१० (अम्बा, दुला, नितत्नि आदि वर्षा ऋतु की १२शक्तियां), अग्नि ५०.३२ (अम्बाष्टक देवियों की प्रतिमाओं के लक्षण), ब्रह्माण्ड ३.४.८.३३ (मैथुन कर्म में २५ तत्वों को सुख देने के लिए अम्बा -सदाशिव का ध्यान), ब्रड ३.४.३३.१७ (गोमेदक शाला में कालसंकर्षिणी अम्बा की भक्ति), भविष्य ३.१.६.४९ (अवन्तिका के प्रमर नृप का अम्बावती पुरी में निवास करके सुखी होना), लक्ष्मी नारायण ४.१०१.१२३ (कृष्ण -पत्नी, आम्बलि व बालकेशी युगल की माता) ३.१००.१३७ (मनोजित् शिल्पी की भार्या, दिशांश ककुब् की माता); दृ. जगदम्बा, त्र्यम्बक, बालाम्बा,

टिप्पणी : ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वोच्च स्तर पर अम्भः नामक जो आभा रूपी प्राण परमेश्वर से मिलता

है, वह प्रकृति में व्याप्त होकर अम्बा नामक शक्ति बन जाता है (मैत्रायणी संहिता १.३.४)। लेकिन जीव के अहंकार ग्रस्त होने के कारण जीव उस शक्ति का लाभ नहीं उठा पाता। तैत्तिरीय संहिता ७.४.१९.१ इत्यादि के अनुसार अश्वमेध यज्ञ में यजमान रूपी अश्व की मृत्यु के पश्चात उसके प्राणों का पुन: आवर्तन करने के लिए यजमान पत्नियों के रूप में अम्बा, अम्बालिका व अम्बिका का आह्वान किया जाता है। अम्बा मृत अश्व से गर्भ धारण करने का अभिनय करती है। यह मृत्यु चेतना का अंतर्मुखी होना है। पत्नियों के आह्वान हेतु पठित मन्त्रों का तत्पर्य चिन्तनीय है। अम्बिकादि पत्नियां यजमान की चेतना को नये शिखरों पर स्थापित करती हैं। प्रथम स्तर पर कम्पन, दूसरे स्तर पर शीतलता, तीसरे शूद्र स्तर पर पुष्टि, चौथे स्तर पर पक्षी रूप कहा गया है। अम्बा का दूसरा स्वरूप चातुर्मास्य में साकमेध पर्व में आता है (तैत्तिरीय संहिता १.८.६.१ इत्यादि)। यहां त्र्यम्बक रुद्र व उनकी स्वसा अम्बिका आखु (मूषक) को पशु बनाते हैं जबकि अम्बा त्र्यम्बक देव को शान्त करती हैं जिससे त्र्यम्बक हमारे लिए श्रेय करने वाले हों। शतपथ ६.६.२.५ के आधार पर प्रतीत होता है कि उखा रूपी उषा का भक्षण करने वाला आखु है। अंत में त्र्यम्बक शान्त होकर सुगन्धि व पुष्टि देने वाले हो जाते हैं (महामृत्युंजय मंत्र)।

शतपथ ३.९.४.२१ इत्यादि के अनुसार अम्ब प्राणों का मर्त्य स्तर पर अवतरण होने पर जो प्रजाएं (मन के रूप) दूर चले गए थे अब वह निकट आ जाते हैं। अम्ब प्राणों का यह विस्तार चारों दिशाओं से होता है।

अम्बा का एक रूप अम्बा, दुला, नितत्नी, चुपुणिका, अभ्रयन्ती, मेघयन्ती व वर्षयन्ती नामक सात कृत्तिकाओं के रूप में प्रकट होता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१४.१ के अनुसार अग्नि देवों के लिए तो हवि वहन करती है, लेकिन वह मनुष्यों के लिए तब तक हवि का वहन नहीं कर सकती जब तक कि सात कृत्तिकाओं रूपी अग्नि को संतुष्ट न किया जाए। कृत्तिकाओं को मनुष्य की कृतियों का फल कहा जा सकता है। तैत्तिरीय संहिता ४.४.५.१ में कृत्तिका स्थापना हेतु सयुज इष्टका अभिधान का वर्णन है। कृत्तिकाओं के नाम से प्रकट होता है कि अग्नि का क्रमश: रूपांतरण होकर वर्षा करने वाला रूप हो जाता है। कौशीतकी ब्राह्मण उपनिषद १.३ में उल्लेख है कि जिस मृतक के प्राण देवयान मार्ग से प्रयाण करते हैं, वह तो क्रमश: अग्नि आदि के लोकों को पार करता हुआ अंत में ब्रह्मलोक में पहुंचता है जहां नदी रूपी अम्बा, अम्बायावी व अन्य अप्सराएं उसका स्वागत करती हैं। जो प्राण देवयान मार्ग में स्थापित नहीं हो पाते, वह अग्नि के मार्ग से वर्षा बनकर वर्षा आदि करते हैं। ऋग्वेद २.४१.१६ में सरस्वती देवी को अम्बितम कहा गया है।

पुराणों व महाभारत में भीष्म व अम्बा के प्रसंग पर विचार करते हुए, प्रथमत: अम्बा की आसक्ति शाल्व रूपी सर्व रूप, बहिर्मुखी रूप पर है। अंतर्मुखी वृत्ति करने के लिए अम्बा को तप करना पडता है। तब वह वत्स देश में नदी और पुन: शिखण्डी के रूप में जन्म लेती है। शिखण्डी नपुंसक को और जिसकी शिखा में अण्ड हो, उसे कहते हैं। भीष्म को शर से आहत करने की घटना को वैदिक साहित्य में अम्बा द्वारा शरद उत्पन्न करने का प्रतीक मान सकते हैं। यहां भी शिखण्डी के शरों के पीछे पर्जन्य वर्षा रूपी अर्जुन के शर चल रहे हैं। कथा के शेष प्रसंगों का वेद से तादात्म्य अन्वेषणीय है।

अम्बालिका देवीभाग १.२०.७० (काशिराज - कन्या, विचित्रवीर्य -पत्नी, पति की मृत्यु पर व्यास से पाण्डु पुत्र उत्पत्ति), विष्णु ४.२०.३५ (वही), स्कन्द ५.१.३१.८० (समाधि में ० दर्शन माहात्म्य), लक्ष्मी नारायण ४.४६.६४ (स्वर्णकार -स्त्री, उपनाम विनोदिनी, कीर्तन में समाधि की उपलब्धि), कथासरित् ६.४.२५

अम्बावृद्धा स्कन्द ६.८८ (देवी, काशिराज - पत्नियों अम्बा व वृद्धा के तप से उत्पत्ति, शत्रुओं के नाश हेतु मातृकाओं की सृष्टि, मातृकाओं को नियंत्रित करने के लिए स्व पादुकाओं की स्थापना, पादुका पूजन माहात्म्य), लक्ष्मी नारायण १.४.९४ (वही)

अम्बिका देवीभाग १.२०.६७ (काशिराज - कन्या, विचित्रवीर्य -पत्नी, पति की मृत्यु पर व्यास से धृतराष्ट्र पुत्र उत्पत्ति), ३.१९:३४ (कवच में अम्बिका से अग्र भाग की रक्षा की प्रार्थना), ५.२२.४३ (शुंभ - निशुम्भ वध हेतु देवों द्वारा जगदम्बा की स्तुति पर अम्बिका देवी का प्राकट्य), देभा ५.२३+ (पार्वती के शरीर से मनोहर ० रूप के निस्सृत होने पर शेष शरीर का काली देवी में रूपांतरण, अम्बिका पर शुम्भ -निशुम्भ की आसक्ति की कथा), ५.२८ (० द्वारा शुम्भ -सेनानी रक्तबीज से युद्ध व उसका वध), ५.२९.२२ (० द्वारा रक्तबीज के रक्त के पान हेतु चामुण्डा को मुख का विस्तार करने का आदेश), विष्णु ४.२०.३६ (वही), मार्कण्डेय ८५.४०+ (वही), ब्रह्मवैवर्त ३.३९.१७ (अम्बिका द्वारा अधोदिशा की रक्षा), भागवत ३.१२.१३ (रुद्र की ११ पत्नियों में एक), भा ६.१७.१७ (पार्वती का नाम, ० द्वारा राजा चित्रकेतु को शाप), १०.२.१२ (देवकी के गर्भ का कर्षण करने वाली योगमाया का एक नाम), भा १०.३४ (अम्बिका वन में सर्प द्वारा नन्द जी के पाद का ग्रहण, कृष्ण के पाद स्पर्श से सर्प का रुपांतरण होने की कथा), वामन ५७.६९ (० द्वारा स्कन्द को २ गण प्रदान करना), ब्रह्माण्ड १.२.९.५ (० के योनिभूत गायत्री, त्रिष्टुप व जगती छन्द), १.२.१९.८९ (आम्बिकेय : शाक द्वीप का एक पर्वत), मत्स्य १२२.१६ (आम्बिकेय : शाक द्वीप का एक पर्वत, सुमना उपनाम, वराह द्वारा हिरण्याक्ष वध का स्थान), स्कन्द १.२.३६.२४ (मही -सागर संगम पर देवों द्वारा सिद्धाम्बिका की स्तुति), ४.१.२९.३८ (गंगा सहस्रनामों में से एक), लक्ष्मी

नारायण २.२१६.८९ (अम्बिक : कायनी नगरी के पारावार पिब राजा के गुरु), कथासरित् ७.८.५६ (पार्वती का नाम, राजा परित्याग सेन द्वारा ० की आराधना से २ पुत्र प्राप्ति)

टिप्पणी : वैदिक साहित्य में अम्बिका को रुद्र के साथ आखु पशु की बलि ग्रहण करने वाली कहा गया है। हो सकता है कि विचित्रवीर्य द्वारा अम्बिका के सेवन से मृत्यु इस पर आधारित हो। आखु या मूषक दिव्य प्राणों का भक्षण करने वाला या चोरी करने वाला है।

अम्बु भागवत ८.१३.२० (अम्बुधारा : आयुष्मान -पत्नी, ऋषभ अवतार की माता), ब्रह्माण्ड २.३.७.९८(अम्बुक : ९ ब्रह्मराक्षसों में से एक, ब्रह्मधान -पुत्र), मार्कण्डेय १०.५० (भुक्त अन्न से निर्मित अम्बु का उदान वायु द्वारा अधोगति निरोध कथन), विष्णु ३.१२.२७ (अम्बु में थूकने, मल -मूत्र करने का निषेध), गरुड १.९६.३८ (वही), दृ. कुशाम्ब, कौशिकाम्ब

अम्बुवीचि स्कन्द ६.४६ (बलभद्र नृप - पुत्र, सरस्वती तीर्थ में स्नान से मूकत्व समाप्ति)

अम्भ ब्रह्माण्ड १.१.५.१३३ (व्युत्पत्ति/निरुक्ति), ३.४.१.१७८ (निरुक्ति)

टिप्पणी : अथर्ववेद १३.८.५ इत्यादि में अम्भः, अमः, महः, सह इत्यादि शब्द एक ही स्थान पर प्रयुक्त हुए हैं। तैत्तिरीय संहिता १.५.६.१ में अम्भ को गायों का भोजन कहा गया है। गौ स्वयं ही अम्भः है। ऋग्वेद १०.१२९.१ में प्रश्न किया गया है कि प्रलयकाल में अम्भ क्या था। ऐतरेय आरण्यक २.४.१ में कहा गया है कि अम्भ की प्रतिष्ठा द्यु लोक में है, मरीचि की अन्तरिक्ष में, मर की पृथ्वी में, उससे नीचे आपः हैं। सिद्धान्तविट्-ठलोपनिषद ५ के अनुसार अम्भ पुरुषोत्तम से उत्पन्न होता है। बहुवचन में प्रयुक्त होने पर देव, मनुष्य, पितर व असुर इन चार को अम्भ कहा गया है। इनमें अम्भ नभ की भांति रहता है (तैत्तिरीय ब्राह्मण २.३.८.३)। वसुगण अम्भों के लोक के अधिपति हैं, अग्नि ज्योति है।

अम्भ की गणना वैदिक निघंटु में १०१ उदक नामों के अंतर्गत की गई है जिन पर डा०फतहसिंह के निर्देशन में शोध कार्य चल रहा है। धातु कोश के अनुसार अभि धातु जो गति और शब्द के अर्थ में है, से अम्भ शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। इस प्रकार पुराणों में अम्भ शब्द को आभा से सम्बद्ध करना एक नवीन निरुक्ति है। अम्भ शब्द का महत्व इसलिए है कि अम्बा, अम्बर, अम्बरीष आदि शब्दों का मूल अम्भ प्रतीत होता है।

अम्लिका स्कन्द २.१.१० (वृक्ष, श्रीनिवास को प्रिय)

अयन मत्स्य ५३.४८ (अयन काल में कूर्म पुराण दान का माहात्म्य), म २०३.११ (१२ साध्य देवों में एक), विष्णु १.३.१० (दक्षिणायन व उत्तरायण का देवों के रात्रि व दिन होना), २.८.३१ (सूर्य की दक्षिण व उत्तर अयनों में गति वर्णन), २.८.८१ (उत्तरायण व दक्षिणायन के मास कथन), ब्रह्माण्ड १.२.२१.८८ (सूर्य की दो अयनों में गति वर्णन), १.२.२८.१७ (अयन : अब्द/संवत्सर के पुत्र), दृ. उत्तरायण, दक्षिणायन

टिप्पणी : शुभावह गति या स्थिति को अयन कहते हैं। जो जिस वस्तु की स्वाभाविक शुभ स्थिति है, वह वहां स्थित हो जाए, यही अयन है। लोक व्यवहार में हम सूर्य की उत्तरायण व दक्षिणायन गति से परिचित हैं। सूर्य प्रतिदिन आकाश में विषुवत् रेखा के अनुदिश गति करता है। सूर्य की गति को बृहती छन्द द्वारा नियन्त्रित कहा जाता है। विषुवत् रेखा का अर्थ है जो बीच में है, जिसके दो पक्ष हैं। अध्यात्म में यज्ञ के शीर्ष (शाखांयन ब्राह्मण २६.१), तेज, श्री (जैमिनीय ब्राह्मण ३.३२०) तथा आत्मा (गोपथ ब्राह्मण १.४.१८ इत्यादि) को विषुवान कहा जाता है। मास आत्मा के पक्ष हैं। इसी प्रकार बृहती छन्द को भी मन (जैमिनीय ब्राह्मण २.५८) तथा आत्मा (ऐतरेय आरण्यक २.३.५) आदि का रूप कहा गया है। बृहती छन्द के एक पद में ९ अक्षर होते हैं। इस प्रकार इसके २ पक्षों में १८ -१८ अक्षर होते हैं। यह आदित्य रूपी महासुपर्ण के २ पक्ष हैं। अन्य सभी छन्दों के पदों को परस्पर मिलाकर १८ अक्षरों वाला बनाया जा सकता है जिसका वर्णन शतपथ ब्राह्मण में किया गया है। डा० फतहसिंह के अनुसार यह आदित्य इस आत्मा रूपी विषुवत् रेखा के अनुदिश गति करता है। बृहती छन्द अवस्था की प्राप्ति के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों में विस्तार पूर्वक १२ दिन की अवधि वाले द्वादशाह यज्ञ का वर्णन किया गया है। द्वादशाह के अन्तर्गत गवामयन यज्ञ होता है जिसके आरंभ व अन्त में प्रायणीय व उदयनीय इष्टियां होती हैं। यह गौ रूपी अदिति के दो मुख हैं। गौ के दो मुखों की व्याख्या इस प्रकार की जाती है कि गौ वत्स के जन्म के समय जब वत्स का केवल सिर योनि से बाहर निकला हो, वह अवस्था दो मुखी गौ है। यह प्राण और उदान के रूप हैं। गवामयन यज्ञ द्वारा गायों ने आदित्य से सायुज्य प्राप्त किया था तथा श्रृंगों की प्राप्ति की थी।

अथर्ववेद १८.४.८ में अंगिरसों का अयन पूर्व (आहवनीय?) अग्नि तथा आदित्यों का अयन गार्हपत्य अग्नि होने का उल्लेख है। यह विचारणीय है कि क्या द्वादशाह द्वारा आदित्यों की गार्हपत्य अग्नि में स्थापना की जाती है?

मैत्रायणी उपनिषद ६.७ में आदित्य को आपः जलों का अयन कहा गया है। प्रत्यक्ष में भी आदित्य जल का शोषण करता है। नारायण शब्द की निरुक्ति करते समय पुराणकार एक श्लोक 'आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणं स्मृतः।।' का उल्लेख करना कभी नहीं भूलते। इस प्रकार सभी आपः का अयन नारायण हैं।

अयन का विषय आदित्यों तक सीमित नहीं है। ऐतरेय आरण्यक २.३.१ के अनुसार आत्मा के पांच उक्थ

पृथ्वी, वायु, आकाश, आप: व ज्योतियां हैं जिन्हें अयन में स्थापित करना होता है। ज्योतियों के अयन के संदर्भ में अथर्ववेद १९.७.२ में कुछ नक्षत्रों के अयन बनने की कामना की गई है। तिथ्यादितत्व के अनुसार नेत्र ज्योतियों का आयन हैं। तैत्तिरीय संहिता ४.३.१.१ के अनुसार आप: का अयन ज्योतियां हैं। अथर्ववेद १०.१.८ में कृत्या को रथ के परुओं/अंगों में स्थापित कर दिया गया है जो उसका अयन हैं। ऋग्वेद ३.३३.७ के अनुसार सुप्त अहि को मारने के पश्चात आप: की अयन में जाने की इच्छा होती है।

अयशोलेखा कथासरित् ७.५.२४, ७.५.२०६ (राजा वीरभुज -पत्नी, निर्वासभुज -माता, सपत्ना गुणवरा पर मिथ्या दोष आरोपण की कथा)

अयस् मार्कण्डेय १५.२५ (अयस् - हरण पर वायस योनि प्राप्ति), मत्स्य २२७.४६ (अयस् हरण पर प्रायश्चित्त विधान), अग्नि १६९.३२ (वही), १७३.४३ (वही), कूर्म २.३४.६ (वही) द्र. लोह, लौह

टिप्पणी : पुराणों में बाणासुर के सुवर्ण, रजत व अयस्मय त्रिपुर का उल्लेख है जिनमें से रजत व लौहमय/अयस्मय पुरों को तो शिव ने बाण द्वारा नष्ट कर दिया जबकि स्वर्णिम पुर को बाण को रहने के लिए दे दिया। रजत व अयस्मय पुरों के जलते भाग श्री पर्वत व अमरकंटक पर्वत पर गिरे जिससे अमरकंटक पर्वत पर जालेश्वर तीर्थ का उदय हुआ और नर्मदा नदी का प्रादुर्भाव हुआ। अथर्ववेद ५.२८.१ के अनुसार ९ प्राणों को दीर्घायु बनाने के लिए उन्हें हरित, रजत व अयस्मय पुरों? में रखना होता है। विश्वभृत् अग्नि तथा भूमि द्वारा अयस्मय प्राणों की रक्षा हो सकती है।

ऋग्वेद १.१६३.९ में एक ऐसे अश्व की कल्पना है जिसका शीर्ष तो हिरण्य मय है और पाद अयस्मय हैं। तैत्तिरीय संहिता ४.३.३.१ में पांच दिशाओं में कृत युग आदि चार युगों की अयों के रूप में कल्पना की गई है। सम्भव है कि यही हिरण्यशीर्ष- अश्व का रूप हो। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.७.१०.५ के अनुसार राजा बनने के लिए पांच दिशाओं में पांच अक्षों रूपी अयों को अपराजयी बनाना पडता है। अथर्ववेद ४.३८.३ में अप्सरा को आमन्त्रित किया गया है कि वह आकर अक्ष रूपी अय से क्रीडा करे। शतपथ ब्राह्मण १३.२.२.१९ के अनुसार अय विश का रूप है। उपरोक्त वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि हिरण्यय कोश को अश्व का शीर्ष मानकर नीचे के चार कोशों -अन्नमय, प्राणमय, मनोमय व विज्ञानमय को अयस्मय अक्षों के रूप में माना गया है। दूसरी ओर पांच अक्षों का अर्थ पांच इन्द्रियों को लिया जा सकता है।

अथर्ववेद ८.१३.२ के अनुसार विराज गौ के दोहन के संदर्भ में असुरों ने अयस्मय पात्र में माया रूपी दुग्ध का दोहन किया। शतपथ ब्राह्मण ११.४.२.१७ के उल्लेख से प्रतीत होता है कि अयस्मय स्तर का उपयोग गृहपति बनने के लिए, इस स्तर की पुष्टि के लिए है, जबकि आहवनीय अग्नि, जो देवों की अग्नि है, को क्रमण करते समय अयस्मय स्तर के बन्धनों को निर्ऋति देवी व मय की सहायता से नष्ट कर देना होता है (तैत्तिरीय संहिता ४.२.५.३ तथा अथर्ववेद ६.६३.२)।

शतपथ ब्राह्मण ६.१.१.१३ व ६.१.३.५ में नौ? सृष्टियों का उल्लेख इस प्रकार है : फेन, मृदा, शुष्क आप:, ऊष, सिकता, शर्करा, अश्मा, अय: हिरण्य, ओषधि, वनस्पति। ऋग्वेद के कई मन्त्रों जैसे १०.९६.४ में इन्द्र द्वारा अयस्मय वज्र से शत्रुओं के नाश का उल्लेख है। ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों जैसे ७.३.७ में सौ अयस्मय पुरों का उल्लेख है।

ऋग्वेद ५.६२.७ तथा तैत्तिरीय संहिता १.८.१२.३ में ऐसे रथ का उल्लेख है जिसके अय: स्थूण पर उषा के हिरण्य रूप का उदय हो गया है। इस अवस्था में अदिति रूपी अखण्डित रूप और दिति रूपी खंडित रूप दोनों का निरीक्षण किया जा सकता है।

अथर्ववेद ६.६३.४ के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि अय: स्तर की प्राप्ति कर लेने के पश्चात अर्य स्तर को प्राप्त करना होता है। अर्य स्तर की प्राप्ति पर ही आयु की प्राप्ति संभव है (अथर्ववेद १८.३.२३)

तैत्तिरीय संहिता ५.२.१०.७ इत्यादि में अयों से वय/पक्षी को उत्पन्न करना आवश्यक है। वय से ही अयों पर विजय प्राप्त की जाती है। ऋग्वेद ८.१००.८ के अनुसार आयसी पुर को पार करने के पश्चात सुपर्ण स्वर्ग से सोम लाया। पैप्पलाद संहिता १९.३७.१४ में सुपर्ण को अयोमुख वाला कहा गया है।

अयोगन्ध स्कन्द ४.२.६९.२० (अयोगन्धेश्वर लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य : पितरों का उद्धार)

अयोध्या विष्णुधर्मोत्तर १.१३ (वर्णन), १.२४+ (० में वसंत, ग्रीष्म वर्णन), स्कन्द २.८.१+ (माहात्म्य, निरुक्ति), २.८.२ (० के अन्तर्गत तीर्थ), स्क ३.१.५.७७ (अलम्बुसा अप्सरा का अयोध्यापति कृतवर्मा की कन्या मृगावती के रूप में जन्म), ५.२.८४ (० के राजा परीक्षित द्वारा मण्डूक -कन्या की प्राप्ति व विहार की कथा), स्क ६.१०९ (० तीर्थ में रोहण लिंग), पद्म ५.३+ (र के वन से प्रत्यागमन पर अयोध्या वासियों की स्थिति), प ६.२२८ (० की वैकुण्ठ में स्थिति), वा.रामायण १.५ (दशरथ पालित अयोध्या वर्णन), . वायु १०४.८१ (० पीठ की नासिका पुट में स्थिति), गर्ग ५.१७.३३ (०पुर वासिनी गोपियों द्वारा कृष्ण विरह पर व्यक्त प्रतिक्रिया), ब्रह्माण्ड २.३.४७.७५+ (तालजंघ आदि हैहय राजाओं द्वारा अयोध्या से राजा बाहु का निष्कासन, सगर द्वारा अयोध्या से तालजंघ आदि शत्रुओं का निष्कासन), ३.४.४०.९२ (० में मनुष्यों द्वारा अधिदेवता ललिता देवी की अर्चना), वायु ९९.२८२ (अयोध्या के इक्ष्वाकु वंशी राजाओं के नाम), लक्ष्मी नारायण १.१२५.३२ (महावैकुण्ठ के अंतर्गत व्यूह में अयोध्या

की शोभा वर्णन), कथासरित् १२.२.१५ (अयोध्या के राजा मृगांक दत्त द्वारा शशांकवती को प्राप्त करने की कथा), कस १२.३.३० (अयोध्या के ब्राह्मण दमधि के पुत्र श्रुतधि के शुष्क वृक्ष बनने व उद्धार होने की कथा), कस १२.२१.३ (० में शूल -आरोपित चोर पर वणिक पुत्री के आसक्त होने की कथा), कस १६.२.१४७ (वही)

टिप्पणी : डा० फतहसिंह ने कई लेखों में अयोध्या की व्याख्या की है। अथर्ववेद १०.२.३१ का मन्त्र अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या इत्यादि है। वास्तव में यह सारा सूक्त ही अयोध्या पुरी निर्माण के लिए है। नौ द्वारों वाला हमारा यह शरीर ही अयोध्या पुरी बन सकता है। तुलसीदास ने रामचरितमानस में अयोध्या को सब स्थानों पर अवध कहा है। केवल लंका पर विजय के पश्चात अयोध्या को अयोध्या कहा है। अयोध्या अर्थात अब युद्ध करने की आवश्यकता नहीं रह गई है।

अयोनिज पद्म १.४० (सुरभि व ब्रह्मा - पुत्र, एकादश रुद्रों में एक), स्कन्द ५.३.११४ (० तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य), ५.३.१२६ (० तीर्थ माहात्म्य),

अयोमुख भागवत ६.६.३० (दनु व कश्यप के ६१ पुत्रों में से एक), ६.१०.१९(वृत्रासुर -सेनानी), भा ८.१०.१९ (बलि -सेनानी), पद्म १.६.५० (दनु - पुत्र), मत्स्य ६.१७ (दनु व कश्यप के १०० पुत्रों में से एक), १६३.७१ (हिरण्यकशिपु के क्रोध से ० पर्वत का क्षुब्ध होना), भविष्य ३.४.२३.१८ (बाह्लीक राजा का रूप ?, राजा पुष्यमित्र द्वारा अयोमुख पर विजय)

टिप्पणी : पैप्पलाद संहिता १९.३७.१४ में दिव्य सुपर्ण को अयोमुख वाला कहा गया है। तैत्तिरीय आरण्यक ४.३३.१ में हिरण्यअक्ष व अयोमुख वाले राक्षसों के दूत उलूक का उल्लेख है। अथर्ववेद ११.१२.३ में अयोमुख व सूची मुखों वाले अमित्रों को नाश करने का उल्लेख है।

अयोमुखी वा.रामायण ३.६९ (राक्षसी, लक्ष्मण द्वारा निग्रह), मत्स्य १७९.२९ (अन्धकासुर का रक्त पान करने के लिए शिव द्वारा सृष्ट एक मातृका), ब्रह्माण्ड २.३.५९.१३ (कलि -पुत्र विघ्न की पत्नी), वायु ८४.१३ (वही)

अयश्शंकु वामन ९.२९ (अन्धक - सेनानी, सिंह वाहन), विष्णुधर्मोत्तर १.७०(दैत्य, परशुराम द्वारा वध)

अयश्शिरा वामन ६८.६० (अन्धक - सेनानी, पाशधारी, विशाख आदि से युद्ध), ६९.१८ (० द्वारा नन्दी का पीछा करना)

अरजा वा.रामायण ७.८० (शुक्र - पुत्री, राजा दण्ड द्वारा बलात्कार), वामन ६३ (शुक्राचार्य पुत्री, दण्डक से संवाद), पद्म १.३७ (दण्ड राजा की ० पर आसक्ति, राजा को शुक्र का शाप), लक्ष्मी नारायण २.५० (अरजा -दण्डक कथा)

अरणि भागवत ९.१४.४४ (शमी अरणि : पुरूरवा, उर्वशी व पुत्र रूप), ११.१०.१२ (गुरु -शिष्य रूप), वायु २.४४ (वात रूपी), ७३.२९ (व्यास -पत्नी, शुक -माता), ब्रह्मवैवर्त १.८.२५ (ब्रह्मा की नासिका से उत्पत्ति), १.१२.४ (ब्रह्मा -पुत्र), देवीभाग १.१० (व्यास द्वारा मंथनारणि द्वारा पुत्र प्राप्ति का प्रयास, घृताची रूप में पुत्रारणि की प्राप्ति), ६.१५.२४ (राजा निमि की देह के अरणि मंथन से मिथि पुत्र की उत्पत्ति), ११.२२.२६ (हृदय कमल अरणि, मन मथानी, वायु रज्जु), विष्णु ४.६.८७ (पुरूरवा द्वारा अग्निस्थाली रूप पिप्पल की अरणि बनाना), विष्णुधर्मोत्तर १३६.२८ (वही), पद्म १.४१.९६ (उर्व ऋषि द्वारा दर्भ से पुत्र प्रसव अरणि का मंथन, और्व नामक अग्नि की उत्पत्ति), दृ. दण्डारणि

टिप्पणी : अरणि मन्थन मनुष्य के अन्दर की अग्नि को प्रकट करने का प्रतीक है। मनुष्य स्तर पर तीन प्रकार की अरणियां हैं : स्थूल शरीर के स्तर पर श्वास का आना जाना ही दो अरणियां हैं। सूक्ष्म शरीर के स्तर पर मन का अंदर जाना व बाहर आना ही अरणियां हैं। विज्ञानमय कोश के स्तर पर उन्मनी व समनी शक्तियां ही अरणियां हैं। -फतहसिंह

यज्ञ कार्य में सर्वप्रथम अरणिमन्थन द्वारा अग्नि को उत्पन्न करके गार्हपत्य व आह्वनीय अग्नियों की स्थापना की जाती है। ऋग्वेद ३.२९.२ के अनुसार जातवेदा अग्नि गर्भ रूप में अरणियों में छिपी हुई है जिसे प्रतिदिन जगाना है। अश्विनौ देवगण हिरण्ययी अरणी का मन्थन करते हैं (ऋग्वेद १०.१८४.३)। अरणी का शब्दार्थ क्या हो सकता है, इसके सम्बन्ध में उणादि कोश के अनुसार अरणी ऋ + अन् से बना है। काठकसंकलन २१.२ के अनुसार यदि यज्ञ में दीक्षित यजमान तर जाए तो उससे देवता नहीं तरते, देवता तो अरणी के साथ तरते हैं। अरणी देवरथ है (शांखायन ब्राह्मण २.६)।

अरणि मन्थन अंगुलियों द्वारा किया जाता है (ऋग्वेद ७.१.१)। काठक संकलन २१.१ के अनुसार अरणी का परिमाण २४ अंगुल है जो गायत्री के २४ अक्षरों के तुल्य है। इन २४ अंगुलों में ४ अंगुलों द्वारा अरणी के सिर का परिमाण है, ४ अंगुल ग्रीवा, ४ अंगुल उर, बाहु, पार्श्व, उदर, पृष्ठ, अन्य ४ अंगुल श्रोणी, ४ अंगुल उरु व जानु तथा शेष ४ अंगुलों में जंघा पाद आदि हैं। श्वेताश्वरोपनिषद १.१४, ब्रह्मोपनिषद ३.९ तथा विशेष रूप से ध्यान बिन्दु उपनिषद २२ में स्वदेह या

आत्मा की अरणी रूप में कल्पना करके प्रणव की उत्तर अरणी लेकर ध्यान की मथानी से मन्थन करने का उल्लेख है। इससे हृदयकमल आदि चक्रों में विभिन्न आवरणों के अंदर निहित अग्नि का दर्शन होता है। दक्षिणामूर्ति उपनिषद १६ में वैराग्य को अरणी कहा गया है।
अरणी का निर्माण अश्वत्थ वृक्ष की काष्ठ से होता है (पैप्पलाद संहिता १३.३.३)। पुरूरवा ने अश्वत्थ के अग्र भाग में अग्नि का दर्शन करके अश्वत्थ की अरणी बनाई थी (काठक संहिता ८.१०)। पुरूरवा द्वारा किए गए अरणि मन्थन से आयु रूपी गर्भ/अग्नि की प्राप्ति हुई थी (काठक संहिता २६.७)। अश्वत्थ संवत्सर के १२ मासों का प्रतीक है।

अरण्यभविष्य ४.६६ (० द्वादशी व्रत), ब्रह्माण्ड १.२.३६.१०४ (उदक/वरुण व वारुणी -पिता), हरिवंश १.२.१६ (नड्वला -पिता); पद्म १.१५.१५३ (ब्रह्मा द्वारा ज्येष्ठ, मध्यम व कनिष्ठ पुष्करों नामक अरण्य को यज्ञ की वेदी बनाना), १.१५.२२२ (पुष्कर अरण्य में वास करने वालों की गति : ब्रह्मादि लोकों में वास), विष्णु १.१६८ (अरण्य से लाए गए पुष्पों द्वारा केशव की अर्चना का महत्व वर्णन), २.७४.१४, ३.२३५.१२ (अरण्य में तीन वर्षों (?) तक वास करके वेद अध्ययन करने पर पापों के नाश का उल्लेख), मत्स्य ४०.९ (अरण्य में वास करते हुए ग्राम को पृष्ठ पर रखने वाले की मुनि संज्ञा : ययाति -अष्टक संवाद), नारद १.९०.३७, १.९०.१६५ (अरण्य अथवा वटमूल आदि में यक्षिणी साधना करने का निर्देश), २.४५.४४ (अरण्य में क्षुधा व तृषा से मरने वालों के लिए पिण्ड दान का निर्देश), २.५५.८९ (नृसिंह की उपासना अरण्य आदि में करने का निर्देश), अग्नि २६३.२७ (आरण्यक मृग व पक्षियों के ग्राम में प्रवेश करने अथवा ग्राम्य पशु-पक्षियों के अरण्य में प्रवेश करने पर राजभय होने का कथन), भागवत ९.७.१६ (हरिश्चन्द्र-पुत्र रोहित का प्राणभय से अरण्य को पलायन, इन्द्र द्वारा ६ बार रोहित को अरण्य से ग्राम में लौटने से रोकना), द्र. अनरण्य, आरण्यक, दण्डकारण्य, धर्मारण्य

टिप्पणी : ऋग्वेद १०.१४६ सूक्त की देवता अरण्यानी अर्थात महत् अरण्य है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार यदि अरण्य में वास पर भय हो रहा हो तो इस सूक्त के जप से दूर हो जाता है। अरण्य शब्द की साहित्यिक निरुक्ति इस प्रकार कर सकते हैं कि अर्यते मृगैः, जिसमें मृग विचरण करते हों। सामान्य अर्थों में रण्य का अर्थ है जिससे आनंद प्राप्त किया जा सकता हो। अरण्य अर्थात जहां से आनंद की प्राप्ति न हो सकती हो। तैत्तिरीय संहिता १.६.७.३ में इन्द्रिय को आरण्य कहा गया है। इन्द्रिय को ही सब ओर से आनंद की आवश्यकता होती है।

वैदिक साहित्य में अरण्य के संदर्भ में जो मुख्य कल्पना की गई है, वह सात ग्राम्य पशुओं, सात आरण्यक पशुओं व सात छन्दों के रूप में की गई है। पशु का अर्थ पश्यति अर्थात देखना, सोम, अन्न, इन्द्रियों का वीर्य/रस, श्री, आत्मा, पाश में बद्ध जीव इत्यादि हैं। सात ग्राम्य पशुओं में पुरुष गौ, अश्व, अवि, अज आदि हैं। ऐतरेय ब्राह्मण ५.१३ के अनुसार पशु विवाह का प्रतीक हैं। आरण्यक पशुओं के नामों व उनकी उत्पत्ति अलग अलग प्रकार से कही गई है। शतपथ ब्राह्मण ७.५.२.३३ के अनुसार पुरुष से मायु/किम्पुरुष, अश्व से गौर, गौ से गवय, अवि से उष्ट्र और अज से शरभ की उत्पत्ति हुई। शतपथ ब्राह्मण १२.७.१.८ के अनुसार प्रजापति के ओज का मूत्र द्वारा स्रवण होने पर वृक की, ऊवध्य? से मन्यु का स्रवण होने पर व्याघ्र की, लोहित से सह का स्रवण होने पर सिंह की उत्पत्ति हुई। शतपथ ९.३.२.२४ के अनुसार यह प्रजापति के अवांग प्राण हैं। जैमिनीय ब्राह्मण २.२६७ के अनुसार ललाट से सिंह, उर से शार्दूल, उदर से द्वीपी, केसरों से ऋक्ष आदि की उत्पत्ति हुई। शतपथ ब्राह्मण १३.२.४.१ के अनुसार ग्राम्य पशु से देवलोक की और आरण्यक पशु से मनुष्य लोक की जय होती है। ताण्ड्य ब्राह्मण २३.१३.२ के अनुसार द्वादशाह यज्ञ द्वारा वायु द्वारा आरण्यक पशुओं पर आधिपत्य प्राप्त किया जाता है। गोपथ ब्राह्मण १.४.२३ के अनुसार यदि अविद्वान द्वादशाह यज्ञ करेगा तो उसे भूख, प्यास आदि आरण्यक कष्ट सताएंगे। जैमिनीय ब्राह्मण १.११२ के अनुसार साम गान के बीच में जो अनभिस्वरित गान है, वह अरण्य है।

ऐतरेय ब्राह्मण ७.१५ में हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहित अरण्य में भाग जाता है और जब जब भी वह ग्राम में लौटने का प्रयत्न करता है तो इन्द्र उसको उपदेश देकर पुनः अरण्य में भेज देते हैं। इस प्रकार रोहित ६ संवत्सर पर्यन्त अरण्य में भ्रमण करता है। इन्द्र द्वारा प्रदत्त उपदेश महत्वपूर्ण है। पहली बार श्री का सम्पादन, दूसरी बार पापों का नाश, तीसरी बार भग (भाग्य, भगवान) की प्राप्ति, चौथी बार कृतयुग आदि चार युगों के दर्शन, पांचवी बार मधु व स्वादिष्ट उदुम्बर (ऊर्जा का रूप, आरण्यक ओषधियों में सर्वश्रेष्ठ) की प्राप्ति होती है। इसके पश्चात शुनःशेप के यज्ञ पशु बनने का वर्णन है। ताण्ड्य ब्राह्मण १६.६.२ में रोहित को पशुओं में भूयिष्ठ कहा गया है। यहां अरण्य में तीन बार वास से सर्वश्रेष्ठ अन्न की प्राप्ति कही गई है।

अरण्य में जाकर उदुम्बर के नीचे वास करना होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में रोहित को (कर्मों के फल का?) बीज कहा गया है। उसकी सहायता से इन्द्र सात स्वर्ग लोगों पर आरोहण करता है (ऐतरेय ब्राह्मण ५.१०)। ऋग्वेद के अरण्यानी सूक्त से इस वर्णन का तादात्म्य विचारणीय है।
अरण्य के सम्बन्ध में दूसरी जटिलता वाल्मीकि रामायण का अरण्यकाण्ड है। काण्ड के आरंभ में राम व लक्ष्मण द्वारा विराध राक्षस का वध होता है। वह आरण्यक पशुओं को लादकर ले जा रहा है। ब्राह्मण ग्रन्थों में जहां सिंह, व्याघ्र आदि पशु एक एक ही हैं, विराध तीन

सिंह, चार व्याघ्र, २ वृक, १० पृषत मृग आदि ढो रहा है। वह जव का पुत्र है तथा तुम्बुरु गन्धर्व का शापित रूप है। रामचरित मानस में विराध का प्रसंग केवल एक चौपाई में समाप्त कर दिया गया है। अथर्ववेद में आता है -सं श्रुतेन गमेमहि, मा श्रुतेन विराधिषि, अर्थात हम सम्यक श्रुति के अनुसार आचरण करें और मा अर्थात माया द्वारा जो श्रुत है उसके साथ विरोध करें। यह विराध राधा, आह्लादिनी शक्ति का ही रूप है। वह संगीतराज तुम्बुरु है। यह सामगान के बीच अनभिस्वरित अरण्य है (जैमिनीय ब्राह्मण १.११२)। इसके पश्चात राम के दर्शन से शरभंग मुनि का स्वर्गलोक गमन होता है। शरभंग का एक अर्थ तो यह हो सकता है कि अभी तक शत्रुओं को नष्ट करने के लिए तीर से जो लक्ष्य साध रखा था, अब वह भंग हो गया है, दूसरा अर्थ अजा ग्राम्य पशु से उत्पन्न शरभ नामक आरण्यक पशु से ले सकते हैं। शूर्पणखा खण्डित मानवी शक्ति, दिति की प्रतीक है (दितिः शूर्पम, अदितिः शूर्पग्राही -अथर्ववेद)। खर राक्षस शर अथवा क्षर का प्रतीक हो सकता है। मारीच द्वारा सुवर्ण मृग रूप धारण करने को इन्द्रियों द्वारा दृष्ट मृगमरीचिका का प्रतीक कह सकते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों के अनसार मृग का वास स्थान अरण्य ही है। इसके अतिरिक्त जटायु, त्रिशिरा, कबन्ध, शबरी आदि के प्रतीकार्थ अन्वेषणीय हैं)।

ऋग्वेद ६.२४.१० के अनुसार अरण्य के कष्टों से बचने का उपाय मा अर्थात माया से विपरीत अमा होना है। छान्दोग्य उपनिषद ८.५ में नीचे के दो लोकों को अर और ण्य कहा गया है। इनसे ऊपर तीसरे देवलोक में ब्रह्मा की अपराजिता पुरी है। वहां आनंद ही आनंद है। इस पुरी में पहुंचने से पूर्व ब्रह्मचर्य द्वारा अर और ण्य रूपी दो अर्णवों को जानना पड़ता है, तभी तीसरे पुर की प्राप्ति हो सकती है। बृहदारण्यक उपनिषद ६.२.१५, छान्दोग्य उपनिषद ५.१०.१ तथा मुण्डकोपनिषद १.२.११ के अनुसार जो पुरुष अरण्य में जाकर श्रद्धा व तप आदि की उपासना करते हैं, वह देवयान मार्ग से ऊर्ध्वलोकों की यात्रा करते हैं। इसके विपरीत जो मनुष्य ग्राम में रह कर इष्टापूर्त आदि यज्ञों द्वारा उपासना करते हैं, वह पितृयान मार्ग द्वारा ऊर्ध्वलोकों की यात्रा करते हैं।

अरन्तुक दृ. तरन्तुक - अरन्तुक

अररु ब्रह्माण्ड २.३.६.३१ (अनायुषा - पुत्र, धुन्धु -पिता)

अरव लक्ष्मी नारायण २.५७.१०३ (यम - दूत, बकदान ऋषि के आश्रम की रक्षा)

अरिघ्न ब्रह्माण्ड ३.४.२७.८२ (विघ्न नायक, हेरंबों के अधीश्वर, महागणपति के अग्ररक्षक)

अरिन्दम शिव २.१.१८.५२ (कलिंग - राजा, दम -पिता), स्कन्द ४.१.१३.१२१ (वही)

अरिमर्दन पद्म ६.१९० (उन्मत्त हस्ती, गीता के १६वें अध्याय के प्रभाव से वश में होना), वायु ६२.१२ (पारावत देव गण में से एक, स्वारोचिष मन्वन्तर में देवता), ९९.२१८ (कुरु -पुत्र), भागवत ९.२४.१६ (श्वफल्क व गान्दिनी -पुत्र, अक्रूर -भ्राता), ब्रह्माण्ड २.३.७१.१११ (वही), विष्णु ४.१४.९ (वही), मार्कण्डेय ६.६ (शत्रुमर्दन : ऋतध्वज व मदालसा का तृतीय पुत्र, अलर्क -भ्राता)

अरिष्ट स्कन्द ४.१.४२.२ (आसन्न मृत्यु काल में ० कथन), ७.१.२३७ (द्वारका में यादव नाश से पूर्व ०), ७.२.१७.२२३ (बलि राज्य में ०), पद्म ६.१६८ (वृत्र को इन्द्र द्वारा वध के समय ०), देवीभाग ४.२२.४३ (बलि -पुत्र अरिष्टासुर : ककुद्मी का अंश), ४.२२.४६ (दिति -पुत्र, कुवलयपीड हस्ती रूप में अवतरण), लिंग १.९१ (मृत्युकालीन ०), वा.रामायण ५.५६.२६ (पर्वत, लंका से प्रत्यागमन के लिए हनुमान द्वारा पीड्न से धंसना), वायु १९ (मृत्युकालीन ०), नारद १.५६.२०७ (० वृक्ष की हस्त नक्षत्र से उत्पत्ति), विष्णु ५.१४ (० असुर द्वारा वृषभ रूप धारण, कृष्ण द्वारा वध), गर्ग १.६.४८ (दैत्य, कंस द्वारा पराभव), ४.२४ (वृषभ रूप धारी असुर, कृष्ण द्वारा उद्धार, पूर्व जन्म में बृहस्पति -शिष्य वरतन्तु), भागवत ६.१८.६ (मित्र व रेवती -पुत्र), भा १०.३६ (असुर, वृषभ रूप, कृष्ण द्वारा उद्धार), शिव २.३.१५ (तारकासुर जन्म के समय अपशकुन), मार्कण्डेय ४२ (मृत्युज्ञानकारी ०, दत्तात्रेय कथित), ब्रह्मवैवर्त ३.३४.१० (कार्तवीर्य द्वारा दृष्ट ०), विष्णुधर्मोत्तर १.४६ (साल्व की सेना द्वारा दृष्ट ०), ३.२३८ (मृत्यु समय पर ०), हरिवंश १.४३.१९ (बलि -पुत्र, तारक -सेनानी), १.५४.७२ (बलि -पुत्र अरिष्ट का वृषभ रूप में अवतार), ह २.२१ (असुर, स्वरूप कथन, कृष्ण द्वारा वध), मत्स्य ११.४१ (मनु के १० पुत्रों में एक, इक्ष्वाकु -भ्राता), १७३.२० (बलि -पुत्र, तारक -सेनानी, शिला आयुध), ब्रह्म १.८१.४४ (असुर, स्वरूप कथन, कृष्ण द्वारा वध), वराह १६४.३२ (गोवर्धन क्षेत्र में अरिष्ट असुर के वध स्थल पर अरिष्ट कुण्ड माहात्म्य), लक्ष्मी नारायण १.५१ (मृत्युकालीन ०), ३.११६.४१ (भण्डासुर की सेना के समक्ष ०); दृ. अपशकुन, उत्पात

टिप्पणी : अथर्ववेद सूक्त ४.५ का देवता वृषभ है। इस सूक्त में कामना की गई है कि समुद्र से उदित सहस्रशृंग वाले वृषभ की सहायत से रात्रि में मेरी सभी नाड़ियां/नारियां सो जाएं, स्वप्न अपने अभिकरणों में लीन हो जाए, केवल मैं उषाकाल होने तक जागता रहूं और इन्द्र की भांति अरिष्ट (हिंसा से रहित) रहूं। पुराणों की भाषा में यह अरिष्टासुर वृषभ की स्थिति प्रतीत होती है। वृष का अर्थ होता है अमृत का सिंचन करने वाला। उसे पाकर सारा गौ समूह एकत्रित हो जाता है। लेकिन अरिष्टासुर को पाकर गाएं भाग जाती हैं। यह प्रसंग कृष्ण की गोपियों के साथ रासलीला के समय का

है। एक ओर साधक अपनी नाडियों को सुलाने का प्रयास कर रहा है तो दूसरी ओर कृष्ण इन्दिय रूपी गोपियों के साथ आनन्दमयी लीला कर रहे हैं। शुक्ल यजुर्वेद १०.२१ में अभिषेक कर्म के संदर्भ में उल्लेख है कि अरिष्टो अर्जुनः, अर्थात जब पर्जन्य वृष्टि होने से अर्जुन बनता है तभी अरिष्ट स्थिति की प्राप्ति होती है। अरिष्टासुर पूर्व जन्म में बृहस्पति का शिष्य वरतन्तु था जो गुरु की ओर चरण फैलाकर विद्या ग्रहण करने के कारण अरिष्टासुर बना। तन्तु का अर्थ विस्तार से होता है। वरतन्तु बृहस्पति से प्राप्त विद्या का सभी स्तरों पर, आसुरी स्तरों पर विस्तार करना चाहता है। वैदिक साहित्य में जीवन रूपी यज्ञ में अरिष्ट के विस्तार को अरिष्टतातिं कहते हैं। इस संदर्भ में उल्लेख है कि द्वादशाह यज्ञ में छठे दिन वृत्र के मरण के पश्चात यज्ञ अरिष्ट हो जाता है। शुक्ल यजुर्वेद २.१३ में बृहस्पति से प्रार्थना की गई है कि वह हमारे यज्ञ की अरिष्टताति करें। गोपथ ब्राह्मण २.१.१ के अनुसार यज्ञ की अरिष्टताति के लिए बृहस्पति को यज्ञ का ब्रह्मा नामक ऋत्विज बनाना पडेगा। ब्रह्मा नामक ऋत्विज मौन रह कर अथर्ववेद का जप करता रहता है। ताण्ड्य ब्राह्मण १५.७.५ के अनुसार यज्ञ की अरिष्टि के लिए यह आवश्यक है कि यदि बोले तो अनुष्टुप वाक् (जिसमें प्रायः देवों की स्तुति की जाती है) बोले। पर्जन्य वृष्टि पर ओषधियां उत्पन्न होती हैं। ऋग्वेद १०.९७.७ तथा अथर्ववेद ८.२.६, ८.७.६ व ८.७.२७ में ओषधियों से अरिष्टताति की प्रार्थना की गई है। अथर्ववेद ३.५.५ में पर्णमणि से व ८.५.२० में देवमणि से अरिष्टताति की कामना की गई है। अथर्ववेद ४.१३.५ में शन्ताति और अरिष्टताति की एक साथ कामना की गई है। अथर्ववेद ६.८०.२ में स्वर्ग में देवों की भांति स्थित तीन कालकंजों से भी अरिष्टताति की प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद १०.६० का प्रसंग अरिष्टताति की दृष्टि से रोचक है। श्रुतबन्धु , विप्रबन्धु व सुबन्धु नामक तीन गोपायन भ्राता खाण्डव वन में असमाति राजा के लिए यज्ञ कर रहे हैं। किलात और आकुली नामक दो असुर पुरोहित सुबन्धु के मन/प्राण का हरण करके उसे यज्ञ की अन्तः परिधि में रख देते हैं। सुबन्धु के शेष दो भ्राता सुबन्धु को जीवित करने व अरिष्टताति के लिए विभिन्न उपाय करते हैं जिसका वर्णन ऋग्वेद १०.६०.८ में है। शतपथ ब्राह्मण २.३.२.१९ में विश्व की अरिष्टि के लिए यज्ञ की विभिन्न दिशाओं में इष्टिका स्थापना विधान का वर्णन है। वेदों में विभिन्न देवों से विभिन्न प्रकार से अरिष्ट प्राप्ति की कामना की गई है।

अथर्ववेद ७.५५.५ में उल्लेख है कि प्राणापानौ के अनड्वान/बैलों की भांति व्रज में प्रवेश करने से अरिष्ट की प्राप्ति होती है। शतपथ ब्राह्मण १०.३.५.८ में वर्णन किया गया है कि किस प्रकार मन और चक्षु के संयोग आदि से अधिदैवत और अध्यात्म में यज्ञ की अरिष्टि प्राप्त करनी है। यह वैसी ही विपश्यना है जिसका निर्देश ऊपर अथर्ववेद ४.५ में किया जा चुका है। ऋग्वेद २.२७.१६ में कहा गया है कि आदित्यों के पाश रूपी जो माया तंग करती है, उसे रथ की अश्वी बना लो। काण्व शतपथ ७.२.३.४ तथा ७.३.३.१४ में अरिष्ट प्राप्ति के लिए सोम वनस्पति के दो चक्रों का उल्लेख है -एक अनस प्रकार का, एक रथ प्रकार का। यदि रथ के दो चक्र हों तो वह गिरता नहीं, जैसे दो पाद वाला पुरुष नहीं गिरता (ऐतरेय ब्राह्मण ५.३३)। ऊपर रिष्ट असुर के संदर्भ में अरिष्टासुर कालनेमि के अवतार कंस का सखा है।

अरिष्टनेमि वायु ५२.१८ (० ग्रामणी की तार्क्ष्य सेनानी के साथ सूर्य रथ पर स्थिति), वा ६५.११२ (मरीचि के तप से अरिष्टनेमि प्रजापति की उत्पत्ति वर्णन), वा ८८.१५६ (सगर -पत्नी सुमति के पिता), भागवत ८.६.३१ (असुर, बलि से समुद्र मन्थन प्रस्ताव का अनुमोदन), ८.१०.२२ (समुद्र मंथन के पश्चात देवासुर संग्राम में बलि -सेनानी), ९.१३.२३ (पुरुजित् -पुत्र, श्रुतायु -पिता, जनक वंश), १२.११.४२ (पौष मास में सूर्य रथ पर स्थिति), विष्णु १.१५.१३४ (१६ पुत्रों के पिता), ४.५.३१ (कुरुजित् -पुत्र, श्रुतायु -पिता, जनक वंश), हरिवंश १.३.६४ (विद्युत नाम वाली ४ कन्याओं के पति, १६ पुत्र), वामन २.१३ (दक्ष -यज्ञ में इध्म आहरण का कार्य करना), मार्कण्डेय २.१ (गरुड -पिता, वंश वर्णन), ब्रह्माण्ड १.२.२३.१८ (ग्रामणी, सूर्य रथ में स्थिति), १.२.३७.४५ (दक्ष की ४ कन्याओं के पति), ब्रड २.३.१.११७ (मरीचि के तप से अरिष्टनेमि प्रजापति की उत्पत्ति वर्णन), २.३.७१.११५ (चित्रक -पुत्र), योगवासिष्ठ १.१.२३ (० राजा द्वारा तप, देवदूत से स्वर्ग के गुण -अवगुण श्रवण, वाल्मीकि से मोक्षोपाय रूप में वसिष्ठ -राम संवाद श्रवण)

टिप्पणी : ऋग्वेद १०.१७८ सूक्त के ऋषि तार्क्ष्य - पुत्र अरिष्टनेमि हैं तथा सूक्त के देवता तार्क्ष्य हैं। तृक्ष धातु गमन के अर्थ में है। संभव है कि यह तृषा, दिव्य प्यास से सम्बन्धित हो। वैदिक निघंटु में तार्क्ष्य अश्वनामों में से एक है। ऐतरेय ब्राह्मण ४.२० इत्यादि के अनुसार तार्क्ष्य पवित्र करने वाली वायु है। शतपथ ब्राह्मण ८.६.१.१९ इत्यादि के अनुसार तार्क्ष्य सेनानी है और अरिष्टनेमि ग्रामणी है। खिल २.४.१ में तार्क्ष्य अरिष्टनेमि को देवताओं का महत् वायस कहा गया है। पुराणों में भी तार्क्ष्य को गरुड कहा जाता है। ऋग्वेद १.८९.६ का लोक प्रसिद्ध स्वस्त्ययन मन्त्र है जिसमें तार्क्ष्य अरिष्टनेमि से भी स्वस्ति देने की प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद ३.५३.१७ व १.१८०.१० में इन्द्र व अश्विनौ के रथों की नेमियों (परिधियों) के अरिष्टनेमि होने की कामना की गई है। महाभारत में भी तार्क्ष्य अरिष्टनेमि के प्रसंग दृष्टव्य हैं।

अरिष्टा मत्स्य ६.४५ (कश्यप - भार्या, किन्नर व गन्धर्व -माता), वायु ६९.४८ (अनवद्या, अनवशा

आदि ८ अप्सराओं की माता), ६९.९३ (कश्यप -भार्या, गतिशीला), ब्रह्माण्ड २.३.७.१२ (रिष्टा के ९ गन्धर्व पुत्रों के नाम), २.३.७.२१ (रिष्टा से वेगवती अप्सरागण की उत्पत्ति), ब्रड २.३.७.४७६ (गतिशीला प्रकृति), विष्णु १.२१.२५ (महासत्वशील गन्धर्वों की माता)

टिप्पणी : तैत्तिरीय संहिता ४.१.९.२ में पृथिवी देवी से प्रार्थना की गई है कि वह यज्ञ में अरिष्टा होकर आए। ऋग्वेद १०.८५.२४ में वधू के अरिष्टा होकर पति के साथ जाने की कामना की गई है। यज्ञ में वाक् अरिष्टा होनी चाहिए।

अरुण वामन ५७.१०२ (कार्तिकेय के अभिषेक पर ० द्वारा स्वपुत्र ताम्रचूड को भेंट करना), वायु ४७.१७ (पर्वत, महिमा वर्णन), ६९.३२६ (श्येनी -पति, सम्पाति व जटायु -पिता), मत्स्य ६.३४ (विनता -पुत्र, गरुड -भ्राता, सम्पाती -पिता, वंश वर्णन), म ९.२१ (पांचवें मन्वन्तर में रैवत मनु -पुत्र), १७१.४३ (साध्या व धर्म के पुत्रों में से एक), भविष्य १.१७३+ (गरुड को सौर धर्म का उपदेश), २.१.१७.४ (मारण कर्म में अग्नि का अरुण नाम), ३.४.७.७४ (जयन्ती -पति, सुदर्शन चक्र के अंश रूप निम्बार्क पुत्र की प्राप्ति), स्कन्द २.४.० (सूर्य से संवाद, कार्तिक माहात्म्य), ४.२.५१ (विनता से उत्पत्ति, माता को शाप, सूर्य उपासना से सूर्य सारथित्व पद प्राप्ति), ४.२.६५.१० (० लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य : ऋद्धि प्राप्ति), स्क ५.२.७६ (० लिंग माहात्म्य, विनता -पुत्र अरुण द्वारा ० लिंग पूजन से सूर्य सारथित्व प्राप्ति), ७.१.१५ (० द्वारा पापनाशन लिंग स्थापना), पद्म १.४०.८७ (साध्यदेव गण में से एक का नाम), देवीभाग ५.८.६९ (० तेज से देवी के अधरोष्ठ की उत्पत्ति), देभा ७.१०.६+ (त्रिधन्वा -पुत्र, सत्यव्रत -पिता, मान्धाता वंशज, पुत्र की दुष्टता पर राज्य से निष्कासन, त्रिशंकु रूपी सत्यव्रत पुत्र का राज्याभिषेक, पुत्र को उपदेश, वन गमन, स्वर्ग प्राप्ति), १०.१३.३७ (दैत्य, ब्रह्मा से अवध्यता वर प्राप्ति, गायत्री जप से विरत होने पर भ्रामरी देवी द्वारा वध), ११.२.५ (अरुणोदय काल निर्धारण), गर्ग ७.२०.३१ (प्रद्युम्न -सेनानी, धौम्य से युद्ध), भागवत ९.७.४ (हर्यश्व -पुत्र, त्रिबन्धन -पिता), १०.५९.१२ (मुर असुर -पुत्र, कृष्ण से युद्ध व मृत्यु), १०.९०.३३ (कृष्ण -पुत्र), लक्ष्मी नारायण १.४६३.१२ (उलूक -अनुज, गरुड -अग्रज, माता द्वारा अण्ड प्रस्फोटन से उत्पत्ति, अनूरु नाम, सूर्य सारथित्व प्राप्ति), २.१०७.४६ (० सूर्य पितर के अरुण नामक दूतों द्वारा कन्याओं की राक्षसों से रक्षा का उद्योग), ३.३३.८८ (० पर्वत का मेरु के उत्तर में स्थित होना); दृ. त्र्यरुण

टिप्पणी : प्रकाश का नाम है रुण अर्थात कष्टकारी। लेकिन ब्रह्म का प्रकाश भीतरी चक्षु से देखने पर अरुण, लाल -लाल दिखाई देता है जो कष्टहारी है। पुराण कथा के अनुसार अरुण सुपर्ण गरुड का बड़ा भाई और विनता का पुत्र है। उसका जन्म अंडे को अपक्वावस्था में ही फोड देने से हुआ है। इस कारण वह अनूरु, पाद रहित है। वह सूर्य के रथ का सारथी है। इन कथाओं का रहस्य यह है कि ध्यान में जब प्रकाश दिखाई देना आरंभ होता है तो वह अरुण रंग लिए होता है। यह वह अवस्था है जब ध्यान पका नहीं है। -फतहसिंह

ऋग्वेद ९.४५.३ व ९.७८.४ इत्यादि में सवित होने वाले सोम के द्रप्स (अंग्रेजी भाषा में ड्रोप) को अरुण विशेषण दिया गया है। ऋग्वेद १०.१६८.१ इत्यादि के अनुसार वायु एक ओर तो अरुण करते हुए दिवि/स्वर्ग को जाती है और दूसरी ओर पृथिवी पर धूल बिखेरती है। ऋग्वेद ९.४०.२ व १०.३०.२ इत्यादि के अनुसार स्वर्ग से सोम आहरण का कार्य अरुण सुपर्ण करता है। अथर्ववेद १३.२.३६ में अरुण सुपर्ण को ही सूर्य कहा गया है जबकि पुराणों में वह सूर्य का सारथी है। तैत्तिरीय आरण्यक १०.६३.१ में आरुणि सुपर्णेय पिता प्रजापति से परम का रहस्य पूछता है और प्रजापति उसे परम ज्ञान के रूप में सत्य, तप, दम, शम, दान, धर्म, प्रजनन, अग्निहोत्र, यज्ञ, न्यास आदि १२ साधनों का उपदेश देते हैं।

तैत्तिरीय आरण्यक १.२३.२, १.२३.५, १.२४.४ इत्यादि में अरुण केतुओं और वात रशना ऋषि का उल्लेख आता है। पुराणों के त्रिशंकु/त्रिबन्धन/सत्यव्रत के पिता अरुण का अथर्ववेद ११.१२.२ तथा ११.१२.७ में त्रिसन्धि के अरुण केतुओं से सम्बन्ध विचारणीय हैं। इसके अतिरिक्त, अरुण के संदर्भ में बहुत से वैदिक मन्त्रों का अर्थ अन्वेषणीय है।

अरुणा पद्म ३.२७.४१ (० - सरस्वती संगम माहात्म्य), प ६.१७९.७ (पिंगल द्विज -भार्या, कुलटा, पति की हत्या पर जन्मांतर में शुकी बनना, गीता के प्रथम अध्याय के प्रभाव से नरक से मुक्ति), वामन ४०.३० (विश्वामित्र शाप से ग्रस्त रक्त -तोया सरस्वती की शुद्धि के लिए ऋषियों द्वारा अरुणा नदी को लाना), भागवत ५.२०.४ (प्लक्ष द्वीप की एक नदी), ब्रह्माण्ड २.३.७.५ (२४ मौनेया अप्सराओं में एक), ३.४.१९.४८ (ललिता के रथेन्द्र चक्र पर स्थित एक देवी), लक्ष्मी नारायण १.३१४.११४ (सन्ध्या का शुद्ध होकर कृष्ण -दासी अरुणा बनना)

टिप्पणी : ऋग्वेद ५.६३.६ में मरुतों द्वारा अरुणा व पापहारक द्युलोक से वृष्टि करने का उल्लेख है। त्रिपुरोपनिषद १३ में आदिशक्ति अरुणा द्वारा पांच तीरों से वेधन का उल्लेख है। आथर्वणद्वितीयोपनिषद

३९८.११ में वाग्देवता भगवती अरुणा के बीज मन्त्रों तं थं दं धं नं का उल्लेख है।

अरुणाक्ष वामन ५६.७१ (असुर, देवी के महालि/भ्रमर अवतार द्वारा वध)

अरुणाचल स्कन्द १.३.१++ (० माहात्म्य), स्क १.३.१.६ (अन्तर्गत तीर्थ, माहात्म्य), १.३.१.९ (० प्रदक्षिणा माहात्म्य), १.३.२.४ (० वैभव, माहात्म्य), १.३.२.७ (वार, तिथि, नक्षत्र, राशि, मास आदि में ० की पूजा), १.३.४.३८ (० शिव लिंग, निरुक्ति, पार्वती तप कथा), लक्ष्मी नारायण ३.२८.२ (स्वामीनारायण अवतार द्वारा ० की दाहकता को शान्त करना), ३.३१४.११४ (सन्ध्या/वसिष्ठ -भार्या के तप का स्थान ; मेधातिथि ऋषि के तप का स्थान)

टिप्पणी : स्कन्दपुराण में अरुणाचल के माहात्म्य में पार्वती शिव के नेत्र मूंद लेती हैं तो उन्हें प्रायश्चित्त रूप में कम्पा नदी तट पर तप करने के लिए जाना पड़ता है। वहां वह सिकता लिंग की उपासना करती हैं। इसके पश्चात अरुणाचल पर आकर तप करती हैं। वैदिक साहित्य में उषा और अरुण का सम्बन्ध सार्वत्रिक रूप में मिलता है। भौतिक जगत में भी उषाकाल में अरुणोदय होता है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि वैदिक साहित्य की उषा पुराणों की पार्वती/उमा है। वैसे भी उषा शब्द की निरुक्ति ऊं सा रूप में कर सकते हैं। पार्वती द्वारा शिव के नेत्रों को बंद करना अत्याधिक आंतरिक प्रकाश के कारण चक्षुओं का अंतर्मुखी होना हो सकता है। इस अवस्था में उषा को पृथ्वी पर अवतरण करना होगा। ऋग्वेद १०.१६८.१ के अनुसार वायु स्वर्ग में जाकर तो अरुणता उत्पन्न करती है और पृथ्वी पर आकर रेणु/धूल बिखेरती है। यही धूल पार्वती द्वारा पूजित सिकता लिंग हो सकता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१०.१.४ में आठ सिकताओं एजत्का, जीवत्का, क्षुल्लका, शिपिविष्टका, सरिसरा, सुशेरवा, अजिरास: तथा गभिष्णव: के नाम गिनाए गए हैं। साथ ही साथ संवत्सर के १३ मासों को अरुण आदि संज्ञा दी गई है : अरुण, अरुणरज, पुण्डरीक, विश्वजित, अभिजित, आर्द्र, पिन्वमान, अन्नवान, रसवान, इरावान, सर्वौषध, संभर, महस्वान। प्रथम सिकता का नाम एजत्का अर्थात कंपाने वाली है। यह विचारणीय है कि क्या पार्वती की कथा में इन आठों सिकताओं का परोक्ष रूप से समावेश किया गया है ? विभिन्न मासों में अरुणाचल के माहात्म्य का उल्लेख स्कन्द १.३.१.६.१०८ में हुआ है।

स्कन्द पुराण १.३.१.९ में अरुणाचल की प्रदक्षिणा के माहात्म्य को तैत्तिरीय आरण्यक १.२३.५ में दिए गए विवरण की सहायता से समझा जा सकता है। इस प्रकार प्राची दिशा में अरुणकेतु से सूर्य की प्रतिष्ठा होती है, दक्षिण दिशा में अग्नि की, पश्चिम दिशा में वायु की, उत्तर दिशा में इन्द्र की, मध्य में पूषा की, ऊपर की ऊर्ध्वा दिशा में देवों, मनुष्यों, पितरों, गन्धर्वों व अप्सराओं की।

अरुणाचल माहात्म्य वर्णन में कुछ स्थानों पर तैत्तिरीय संहिता के मन्त्र "असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रु: सुमंगल:। ये चेमा रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिता: सहस्रशो अवैषां हेड ईमहे।" का उल्लेख है। वेदों में अन्य कई मन्त्रों में भी ताम्र, बभ्रु और अरुण का एक ही स्थान पर उल्लेख किया गया है। जैमिनीय ब्राह्मण ३.२६३ में इस प्रश्न का आंशिक उत्तर उपलब्ध होता है। प्रजापति के रेतस्/शक्ति का सम्यक् उपचार करने पर सर्वप्रथम रोहित/लोहित पशु उत्पन्न हुए, फिर तप्यमान रेतस से अरुण पशु, तप्त रेतस् से बभ्रु पशु, दह्यमान रेतस् से श्वेत व कृष्ण पशु उत्पन्न हुए। ब्राह्मण ग्रन्थों के अन्यत्र वर्णन के अनुसार यह श्वेत और कृष्ण दिन और रात्रि हैं। इसका अर्थ यह है कि साधक पुरुष प्रकाश के दर्शन का आरंभ लोहित रूप में करता है, फिर वह अरुण, बभ्रु, प्रकाशों का दर्शन करके दिन और रात्रि की सृष्टि अपने अंदर करता है। फिर अर्धमासों का, फिर मासों का, ऋतुओं का व अन्त में संवत्सर का दर्शन करता है। शतपथ ब्राह्मण में कई स्थानों पर उद्दालक आरुणि और श्वेतकेतु आरुणेय का उल्लेख आता है जो अग्निहोत्र, दर्शपूर्ण मास यज्ञ, संवत्सर आदि का ज्ञान प्रदान करते हैं (उदाहरण के लिए शतपथ ११.४.१.१)। अरुणाचल माहात्म्य के आरंभ में ही विष्णु यज्ञ वराह का रूप धारण करके ज्योतिस्तंभ के मूल का अन्वेषण करते हैं। ब्रह्मा का हंस बनना और सुपर्ण में सम्बन्ध विचारणीय है। शतपथ ब्राह्मण ७.२.३.८ तथा तैत्तिरीय संहिता ५.६.४.१ में अब्द, अयवा, उषा, अरुण आदि चिति व पुरीष के युगलों के रूपों में कथित १३ व्याहृतियों का अर्थ विचारणीय है।

अरुणाचल माहात्म्य प्रसंग के अन्त में वज्रांगद के अश्व का शोण पर्वत से गिर कर कलाधर विद्याधर बनने का उल्लेख है। वैदिक साहित्य में उषा के अरुण अश्वों (ऋग्वेद १.९२.१५), मरुतों के पिशंग व अरुण अश्वों (ऋग्वेद ५.५७.४ तथा १.८८.२) आदि का उल्लेख है। ऐतरेय ब्राह्मण ४.९ में विभिन्न देवता विभिन्न प्रकार के अश्वों पर आरूढ होकर प्रतियोगिता करते हैं। तैत्तिरीय आरण्यक १.१२.४ में अरुणाश्वों को पृथ्वी पर स्थित वसुगणों या अग्नियों का वाहन कहा गया है। उनसे पृथिवी पर आने की प्रार्थना की गई है। दूसरी ओर ताम्र अश्वों पर आरूढ रूद्रों से दूर जाने की प्रार्थना की गई है।

अरुणोद मत्स्य ११३.४६ (मन्दराचल पर सरोवर), वराह ७८.९ (मन्दराचल पर सरोवर, अरुणोद के पूर्व में स्थित शैलों के नाम), वायु ३६.१६ (मेरु के पूर्व में. स्थित सरोवर, ० के पूर्व में स्थित पर्वतों के नाम)

अरुणोदा भागवत ५.१६.१७ (मन्दराचल स्थित आम्र वृक्ष के फलों के रस से उत्पन्न नदी, महिमा), गर्ग ७.४३.४(इलावृत वर्ष में जम्बू रस से उत्पन्न नदी)

अरुन्धती स्कन्द ४.१.१८ (० द्वारा पातिव्रत्य महिमा कथन), ४.१.४२.१४ (० का जिह्वा में स्थान), ४.२.६१.१६८ (० तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य : सौभाग्य वर्धन), ६.३२.५७ (हेमपूर्ण उदुम्बर प्राप्ति पर ० द्वारा प्रतिक्रिया), ७.१.१२४ (सौभाग्य प्राप्ति

हेतु ० द्वारा गौरी पूजा), स्क ७.१.१२९ (वसिष्ठ द्वारा अन्त्यज कन्या अक्षमाला से विवाह करके अरुन्धती में रूपांतरित करना), ७.१.२५५ (हेमपूर्ण उदुम्बर प्राप्ति व बिस चोरी पर ० की प्रतिक्रिया), पद्म १.१९.२६५ (हेमपूर्ण उदुम्बर प्राप्ति पर ० द्वारा प्रतिक्रिया : तृष्णा त्याग), ५.१०५.१६३ (० द्वारा भस्म के प्रभाव से शुचिस्मिता -पति करुण को जीवित करना), वायु १९.२ (अरुन्धती तारे के दर्शन न होने पर जीव की एक वर्ष में मृत्यु), ६९.६५ (नारद पर्वत पर प्रजापति के स्खलित वीर्य से ० की उत्पत्ति), मत्स्य ५.१५ (धर्म -भार्या, पृथ्वी तल सम्भूत प्राणियों की माता), २०१.३० (नारद -भगिनी, वसिष्ठ -भार्या), २०३.२ (धर्म -पत्नी, पर्वतादि महादुर्ग शरीरों की माता), वामन ६.६२ (शिव रूप से ० की अप्रभाविता), ब्रह्मवैवर्त४.४५ (शिव विवाह में ० द्वारा हास्योक्ति), भविष्य ४.९२.१२ (० द्वारा दारु वन में रम्भा व्रत का चीर्णन/अनुष्ठान), ४.९५- (० द्वारा नहुष -पत्नी जय श्री को श्रावणिका व्रत का उपदेश), ४.१०८+ (० द्वारा वसिष्ठ से रूप प्राप्ति उपाय पृच्छा, वसिष्ठ द्वारा नक्षत्र रूपी पुरुषोत्तम पूजा कथन), विष्णुधर्मोत्तर १.११८.२९ (नारद -भगिनी, वसिष्ठ -भार्या, शक्ति -माता), १.११९.२ (धर्म -भार्या, मही दुर्ग शरीरों की माता?), शिव २.२.७ (सन्ध्या का वसिष्ठ -भार्या अरुन्धती रूप में परिवर्तन), विष्णु १.१५.१०८ (धर्म -भार्या, सर्व पृथिवी विषयों की माता), लक्ष्मी नारायण १.१९८.६२ (ब्रह्मा -पुत्री सन्ध्या का तप से मेधातिथि -पुत्री होकर वसिष्ठ -पत्नी ० बनना), १.३१४.४१ (सन्ध्या का चाण्डाली रूप में जन्म लेकर वसिष्ठ -पत्नी बनना, वसिष्ठ द्वारा ० का शोधन, पुनः मेधातिथि की पुत्री बनकर वसिष्ठ -पत्नी बनना), १.५३९.५ (अन्त्यज -कन्या अक्षमाला का वसिष्ठ -पत्नी ० बनना), योगवासिष्ठ ३.१९.४ (वसिष्ठ नामक ब्राह्मण की पत्नी), ३.२०.१ (जन्मांतर में राजा पद्म की पत्नी लीला बनना), कथासरित् ६.२.१९१

टिप्पणी : अरुणं धत्ते इति - जो अरुण को धारण करे वह अरुन्धती?

अथर्ववेद सूक्त ६.५९ तथा पैप्पलाद संहिता के सूक्तों १५.१५ से १५.१७ की देवता अरुन्धती है। इन सूक्तों में अरुन्धती का स्वरूप एक जीवनदायिनी औषधि का है जो सभी अघों व विषों का नाश करती है। पैप्पलाद संहिता ६.४.४ तथा अथर्ववेद ५.५.५ में कहा गया है कि जो प्लक्ष में भद्र होकर स्थित रहती है, जो अश्वत्थ में, खदिर में, धव में, न्यग्रोध में, पलाश में भद्र होकर स्थित रहती है, वह अरुन्धती हमें प्राप्त हो। पैप्पलाद संहिता १६.१२.६ में अरुन्धती को मधुमती व पुष्पा कहा गया है। इसके अतिरिक्त पैप्पलाद संहिता में अरुन्धती के अन्य मंत्र हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१.४.८ में अघ नाशक मघा नक्षत्र के लिए स्वाहा करते समय अरुन्धती के लिए भी स्वाहा कहा गया है। योगकुण्डली उपनिषद १.९ में सरस्वती नाडी को ही अरुन्धती कहा गया है और उसके सुषुम्ना नाडी में प्रवेश की विधि का वर्णन किया गया है। बृहज्जाबालोपनिषद ६.१ में अरुन्धती द्वारा करुण ब्राह्मण को जीवित करने का वर्णन है जो पुराणों के समान है। काठक संहिता ३७.१० में कहा गया है कि अह/दिन गोपायमान है जबकि रात्रि रक्षमाण है। जागृत होना ही अरुन्धती है। जागृत होना यज्ञ है जबकि उसकी दक्षिणा अरुन्धती है।

वसिष्ठ की पत्नी के रूप में अरुन्धती को समझने के लिए वसिष्ठ शब्द का विस्तार वर्षिष्ठ के रूप में किया जा सकता है। इस शरीर में मन और प्राण का संयोग होकर मन तभी वसिष्ठ बन सकता है जब प्राण दिव्य वर्षा से तृप्त हो रहे हों। तभी अरुन्धती रूपी ओषधि का जन्म होता है।

अर्क स्कन्द ४.२.८३.९८ (वृद्धार्क तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य : रवि लोक प्राप्ति), ७.१.१३ (० स्थल, कलियुग में सूर्य नाम), ७.१.१६ (० स्थल, धूम्र राक्षस का पाताल में पतन), ७.१.१७ (० स्थल पूजा विधि), ७.१.१७.११५ (० पुष्प महिमा), स्क ७.१.२४ (० पुष्प की आपेक्षिक महिमा), ७.१.१७५ (० स्थल माहात्म्य), ७.१.३१३ (उत्तरार्क का संक्षिप्त माहात्म्य), ब्रह्म २.३३ (प्रियव्रत के यज्ञ में दानव आगमन पर सूर्य का शरण स्थल), पद्म ६.१५२ (बालार्क / बालाप तीर्थ माहात्म्य, बाला द्वारा स्थापना, महिष का जन्मांतर में राजा बनना), नारद १.५६.२०९ (० वृक्ष की श्रवण नक्षत्र से उत्पत्ति), १.११६.६९ (फाल्गुन शुक्ल सप्तमी को अर्कपुट व्रत विधि), भागवत ६.६.१३ (धर्म व वसु -पुत्र, वासना -पति, तृष्णा आदि के पिता, ८ वसुओं में से एक), ९.२१.३१ (पुरुज -पुत्र, भर्म्याश्व -पिता, नीपवंश), वायु २९.४० (विविचि नामक अग्नि -पुत्र, अनीकवान आदि अग्नियों के पिता), ब्रह्माण्ड १.२.१२.४२ (विविध नामक अग्नि -पुत्र, अनीकवान आदि के पिता), २.३.११.३८ (० वृक्ष : पराद्युति दायक), ब्रड २.३.७.२ (अर्कपर्ण : १६ मौनेय गन्धर्वों में एक), २.३.७.३८२ (अर्कमर्क : पिशाचों के १६ गणों में से एक, प्रकृति व स्वरूप वर्णन), लक्ष्मी नारायण १.४४१.८९ (वृक्ष, सूर्य का रूप), २.५७.४५ (अर्कहनु नामक यमदूत द्वारा मर्क दैत्य का वध), लन २.२६६.७ (अर्कपुरी के राजा शार्दूलचन्द्र का धर्मसुमन्तु विप्र के शाप से मरण, मृत्यु पश्चात सर्प बनने व सर्प उद्धार की कथा), द्र. दिनमानार्क, नवार्क, पिचुमन्दार्क लोलार्क

टिप्पणी : पुराणों में शिव आदि को अर्क पुष्प अर्पित करने का बहुत महत्व बताया गया है। अर्क शब्द का अर्थ मुख्यत: दो धातुओं के आधार पर किया जाता है - अर्चि अर्थात अग्नि की लपटें और अर्च अर्थात अर्चना, स्तुति। लोकभाषा में अर्क के जंगली पौधे से हम सभी परिचित हैं। अध्यात्म और वैदिक साहित्य में पुरुष की कल्पना अर्क वृक्ष के रूप में की गई है। ऋग्वेद ८.५१.४ में अर्क को सात शीर्ष और तीन धातुओं वाला कहा गया है। सात शीर्षों की संभावित व्याख्या संभवत: मनुष्य के शीर्ष भाग में २ कान, २ नाक, २ आंख व एक मुख के रूप में की जा सकती है। तीन धातुओं की कल्पना संभवत: पृथिवी अन्तरिक्ष और द्यौ के रूप में की गई है। इन व्याख्याओं को समझने से पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि मनुष्य का शीर्ष भाग सारे शरीर का रस है, सार भाग है। शतपथ ब्राह्मण १०.३.४.५ में कहा गया है कि हमारे कान अर्क वृक्ष के पत्तों की भांति हैं, जो अक्षियां/चक्षु हैं वह अर्क पुष्प की भांति हैं, जो नासिका हैं वह अर्क कोश की भांति है, जो अर्क समुद्गवि? है वह ओष्ठों की भांति है, जो अर्क धान हैं, वह दन्तों की भांति, अर्कष्ठीला जिह्वा की भांति और अर्कमूल अन्न की भांति है। अर्क के परवर्ती अंग जैसे अर्क धान आदि को अर्क पुष्प के अंगों के रूप में समझना चाहिए। अर्कमूल को अन्न कहा गया है। सारे वैदिक साहित्य में अर्क की अन्न के रूप में ही व्याख्या करने का प्रयत्न किया गया है। सारी प्रजा अन्न के पीछे दौड्ती है। इसी प्रकार मनुष्य के विचार, व सारे शरीर के अणु -अणु को किसी परम अन्न की चाह है। ऋग्वेद ८.५१.१० में मधुमान और घृत स्रवित करने वाले अर्क की कामना की गई है। यह अर्कमूल जिसे अन्न कहा गया है, क्या है, यह विचारणीय है (ऋग्वेद ९.२५.६ व ९.५०.४ के अनुसार सोम का अवतरण अर्क की योनि में होता है)।

ऐतरेय आरण्यक २.१.२ की व्याख्या संभवत: अर्क के त्रिधातु रूप की व्याख्या के लिए है। यदि पृथिवी उक्थ बनता है तो उससे उत्पन्न अग्नि अर्क अन्न का रूप होगी, अन्तरिक्ष के उक्थ बनने पर वायु अर्क अन्न का रूप है और द्यौ के उक्थ बनने पर आदित्य अर्क अन्न का रूप है। अध्यात्म में यह पुरुष शरीर ही उक्थ बन जाता है। उसका मुख पृथिवी जैसा उक्थ है जिसमें वाक् अर्क अन्न है। अन्तरिक्ष की भांति नासिका है जिसमें प्राण वायु अर्क अन्न है। ललाट द्यौ की भांति उक्थ है जिसमें चक्षु अर्क अन्न है। यह देवों के लिए अन्न बनने चाहिएं। जैसे प्रजा अन्न की पीछे दौड्ती है, ऐसे ही यदि चक्षु आदि अन्न बन जाएं, श्लोक बन जाएं तो देवगण अपना -अपना भाग प्राप्त करने के लिए इनके पीछे दौडे आते हैं (ऋग्वेद १.८३.६)।

अर्क शब्द का प्रयोग वेदों में एक वचन और बहुवचन में हुआ है। संभवत: सारे शरीर से निकलने वाली अर्चियों के लिए अर्क का प्रयोग बहुवचन में हुआ होगा। जब अर्चियां एकीकृत रूप धारण कर लें उसे अर्क कहा जा सकता है। ऋग्वेद में अर्क का बहुवचन में प्रयोग बहुत सी ऋचाओं में हुआ है, अत: प्रतीत होता है कि अर्क का यह रूप भी महत्वपूर्ण है। यह मन के बृहद् रूप से संबंधित हो सकता है (शतपथ १०.५.३.३)।

वैदिक साहित्य में एक धारा अर्क - अश्वमेध के बारे में है (पैप्पलाद संहिता ६.८२.७)। जैमिनीय ब्राह्मण १.२५ के अनुसार मेध्य अश्व आदित्य का रूप है। अग्नि वाक् अर्क का रूप है। सायंकाल अर्क अग्नि में आदित्य रूपी अश्व की आहुति देते हैं। प्रात:काल आदित्य रूपी अश्व में अर्क की आहुति देते हैं। डा० फतहसिंह का विचार है कि अर्क एकान्तिक साधना और अश्वमेध सामूहिक, सामाजिक साधना है।

अर्क सम्बन्धी कुछ ऋचाएं वैदिक साहित्य में सर्वत्र उद्धृत की गई हैं। उनमें एक ऋग्वेद १.१६४.२४ की ऋचा में गायत्री और अर्क में सम्बन्ध स्थापित किया गया है। दूसरी ऋचा प्रजा ह तिस्रो इति (ऋग्वेद ८.१०१.१४) की व्याख्या जैमिनीय ब्राह्मण २.८८ में की गई है।

मूक, बधिर, जड, अन्ध व्यक्ति का तथा तीसरी पत्नी की मृत्यु के पश्चात अर्क वृक्ष से विवाह किया जाता है जिसकी विधि बौधायन गृह्यसूत्र ५.५ में दी गई है।

अर्गल दृ. लोहार्गल

अर्घ अग्नि १२९ (० काण्ड : वस्तुओं की मासानुसार महंगाई -सस्ती का विचार), अग २५८.४० (अर्घ के ह्रास या वृद्धि पर देय दण्ड कथन), पद्म २.९२.१२ (तीर्थ : पापों से कलुषित होकर ० का कृष्ण हंस बनना, स्नान से शुक्लत्व प्राप्ति)

अर्घ्य भविष्य ४.११८ (अगस्त्य हेतु ० विधि), ४.११९+ (चन्द्र, गुरु, शुक्र हेतु ० विधि), स्कन्द ४.१.९ (सूर्य हेतु ०), ७.१.६६ (वड्वानल द्वारा स्थापित ० लिंग माहात्म्य), ७.४.७.८ (चक्र तीर्थ में ० मन्त्र), स्क ७.४.१३.३२ (कृष्ण के लिए ० मन्त्र), ७.४.१४.५१ (पांच नदियों के लिए ० मन्त्र), पद्म १.२२.४९ (अगस्त्य को ० प्रदान विधि), ६.१२४.४५ (भीष्म के लिए ० मन्त्र), मत्स्य ६१.५० (अगस्त्य को ० दान विधि), देवीभाग ११.१६.५३ (उदक क्षेपण से मन्देहा राक्षसों का दहन), गरुड १.११९ (अगस्त्य अर्घ्य व्रत), अग्नि ३४.२० (० के अंगभूत ८ द्रव्य कथन), ७४.३४ (० विधि), १८३.१४ (चन्द्रमा हेतु अर्घ्य मन्त्र), २०६ (अगस्त्य हेतु ०), नारद २.४१.२३ (सूर्य हेतु देय ० के आठ अंग)

टिप्पणी : शब्दकल्पद्रुम व वाचस्पत्यम् आदि कोशों में अर्घ्य को जरत्कारु ऋषि के तपोवन में तरु से उत्पन्न मधु कहा गया है।

अर्चना विष्णुधर्मोत्तर १.६३ (० विधि), २.९० (देवकर्म में प्रयुक्त मन्त्र कथन), २.९१ (० में निषिद्ध द्रव्य), विध ३.१ (चित्रसूत्र ० विधि), विध ३.११२ (विष्णु ० मन्त्र), ३.११३ (विष्णु ० मधुपर्क द्वारा),

विध ३.११४+ (विष्णु ०, इज्या), गरुड १.१६.९ (सूर्य अर्चना मन्त्र), गड १.२१+ (शिव अर्चन विधि), अग्नि २०१ (नवव्यूह ० विधि), ३०१ (सूर्य ० विधान), ३४८.१५ (नव दुर्गा ० कथन), विष्णु ३.८ (विष्णु ० विधि व फल), भविष्य १.६६ (सूर्य अर्चन माहात्म्य), १.६७.१ (सूर्य अर्चन विधि), १.२००+ (सूर्य अर्चन विधि), १.२१२+ (सूर्य अर्चन विधि), वामन १६.३० (अष्टमी/नवमी को शिव पूजा विधान कथन), भागवत ६.८.१७ (नारद द्वारा अर्चना -अपराधों से रक्षा का उल्लेख), शिव २.१.११ (शिव अर्चन माहात्म्य), योगवासिष्ठ ६.१.३९ (स्व देह रुपी देह अर्चन विधान), स्कन्द ३.२.९.३५ (अर्चनाना : आत्रेय गोत्र का एक प्रवर; ऋग्वेद में ऋषि); द्र. आराधना, पूजा

अर्चि भागवत ४.१५.५ (वेन की बाहुओं के मन्थन से उत्पत्ति, लक्ष्मी का अंश, पृथु -भार्या), भा ४.२२.५३ (पृथु -भार्या, विजिताश्व आदि पांच पुत्रों की माता), ४.२३.१९ (पति की मृत्यु पर पति शरीर के साथ चिता में भस्म होने का वर्णन), ६.६.२० (कृशाश्व -पत्नी, धूम्रकेश -माता), स्कन्द १.२.५.१३५ (अर्चि व धूम मार्ग का निरूपण), ७.१.१५०.५० (२३वें कल्प का नाम), लक्ष्मी नारायण ३.३६.१ (अर्चिमार्ग वत्सर में विद्युन्नारायण अवतार द्वारा विद्युत्स्राव राक्षस का नाश); द्र. शतर्चि

टिप्पणी : ऋग्वेद के मन्त्रों को ऋचा कहते हैं और सामवेद के मन्त्रों को अर्चि। शतपथ ब्राह्मण १०.५.२.१ तथा महानारायणोपनिषद १२.२ के अनुसार आध्यात्मिक उत्थान या विकास की तीन अवस्थाएं हैं : पहली तो (सूर्य) मण्डल के तपने या महत् उक्थ की अवस्था है जो ऋचाओं का लोक है। दूसरी अवस्था इस मण्डल में स्थित अर्चि पुरुष की है। यह यजुर्वेद का लोक है। तीसरी अवस्था दीप्त आर्चियों की है यह महाव्रत कहलाता है। यह साम या भक्ति वेद का लोक है। अर्चि पुरुष या यजु की स्थिति में पुरुष के भीतर अर्चियों के विकास की कई अवस्थाओं का उल्लेख ब्राह्मणों और उपनिषदों में किया गया है। इन्हीं अवस्थाओं को "पूजा" अर्थात पुरुष के अन्दर जायमान स्थितियां कह सकते हैं। अमृतनादोपनिषद ३८ के अनुसार प्राण वायु रक्त वर्ण मणि की भांति, अपान इन्द्रगोप वर्ण की, समान गोक्षीर वर्ण की, उदान अपाण्डुरवर्ग की और व्यान अर्चि समान वर्ण की है। मुण्डकोपनिषद २.१.८ के अनुसार अर्चि के विकास की सात अवस्थाएं हैं -प्राणापानौ, व्रीहियवौ, तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य, और विधि। प्रथम अवस्था प्राणापानौ का अर्थ होता है अंतर्मुखी व बहिर्मुखी स्थिति में आना जाना। दूसरी व्रीहियवौ स्थिति का अर्थ होता है सर्वाच्च स्तर हिरण्यय कोश व विज्ञानमय कोश के बीच उतार -चढाव करना। प्रश्नोपनिषद ३.५ के अनुसार मध्व में स्थित जो समान प्राण है, वह हुत अन्न को समान रूप से वितरित करता है, इसी से सात अर्चियों का उदय होता है। मुण्डकोपनिषद १.२.२ में अग्नि की सात जिह्वाओं काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी व विश्वरुचि का उल्लेख है।

बृहदारण्यक उपनिषद ६.२.९ तथा छान्दोग्य उपनिषद ५.४.१ में पुरुष के विकास की पांच अवस्थाओं का वर्णन किया है। पहले द्युलोक रूपी अग्नि में आदित्य रूपी समिधा से अह नामक अर्चि उत्पन्न होती है जिसमें श्रद्धा की आहुति दी जाती है। दूसरी अवस्था में पर्जन्य अग्नि व संवत्सर रूपी समिधा से विद्युत अर्चि उत्पन्न होती है जिसमें सोम की आहुति दी जाती है। तीसरी अवस्था में इस लोक रूपी अग्नि में पृथिवी रूपी समिधा से रात्रि रूपी अर्चि उत्पन्न होती है जिसमें वृष्टि की आहुति दी जाती है। चतुर्थ अवस्था में पुरुष रूपी अग्नि व वायु (व्यान ?) रूपी समिधा से वाक् रूपी अर्चि उत्पन्न होती है जिसमें अन्न की आहुति दी जाती है। पंचम अवस्था में योषा रूपी अग्नि व उपस्थ रूपी समिधा से योनि रूपी अर्चि उत्पन्न होती है जिसमें रेत की आहुति देने से पुरुष उत्पन्न होता है। यह विचारणीय है कि पूजा के १६ उपचारों से यह वर्णन किस प्रकार समानता रखता है।

स्कन्द पुराण आदि में जो अर्चि और धूम मार्ग से निधन का वर्णन किया गया है, उसी विषय का विवेचन बृहदारण्यक उपनिषद ६.२.१५ में किया गया है। यह निधन शुद्ध साम या भक्ति की अवस्था है, साधारण मृत्यु नहीं। हो सकता है कि यह ऋग्वेद १.३६.२० की अम:वान अर्चियों का प्रतीक हो। इसी विषय का प्रतिपादन पुराणों में पृथु और उनकी पत्नी अर्चि के माध्यम से किया गया है। यह अन्वेषणीय है कि अर्चि के पांच पुत्रों विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण व वृक का साम में क्या तात्पर्य हो सकता है।

अथर्ववेद २.१९.३ में अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा व आप: की अर्चियों का उल्लेख है जिनसे शत्रुओं के नाश की प्रार्थना की गई है। इस संदर्भ में जैमिनीय ब्राह्मण ३.३८२ का वर्णन भी उल्लेखनीय है। यह स्थिति साम की पांच अवस्थाओं हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार व निधन से संबंधित हो सकती है। वैदिक मन्त्रों जैसे ऋग्वेद १०.८७.१४ व १०.१६.४ में अग्नि की अर्चि की पांच अवस्थाओं तप, हर, अर्चि, शोचि व तेज का उल्लेख मिलता है।

अर्चिमाल्य वा.रामायण ४.४२.४ (वानर गण का नाम, मरीचि -पुत्र, पश्चिम दिशा में सीता अन्वेषण हेतु गमन)

अर्चिष्मती ब्रह्माण्ड २.३.७१.१६८ (सारण -पुत्री), स्कन्द ४.१.१०.२८ (अग्नि की ० पुरी प्राप्ति उपाय वर्णन)

अर्चिष्मान वा.रामायण ४.४२.४ (वानर, मरीचि -पुत्र, पश्चिम दिशा में सीता का अन्वेषण), वायु १००.१५ (वैवस्वत मन्वन्तर में सुतपा नामक देवगण

में एक)

अर्जुन भागवत १.७ (अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी पुत्रों की हत्या के पश्चात अश्वत्थामा का निग्रह व मणि आहरण कथा), ८.५.२ (पांचवें मन्वन्तर में रैवत मनु -पुत्र), भा १०.९ (यमलार्जुन : कृष्ण द्वारा उखल से उद्धार, पूर्व जन्म चरित्र), १०.८६ (० द्वारा सुभद्रा हरण प्रसंग), १०.८९ (० का द्वारका में ब्राह्मण बालक की प्राण रक्षा का उद्योग, असफलता, कृष्ण द्वारा रक्षा), स्कन्द १.२.१ (ग्राह योनि ग्रस्त पांच अप्सराओं का ० द्वारा उद्धार), स्क २.१.२९+ (० द्वारा प्रतिज्ञा भंग के कारण तीर्थ यात्रा, सुवर्णमुखरी तट पर भरद्वाज से वार्तालाप), ५.१.३.२५ (नीललोहित रुद्र द्वारा विष्णु की भुजा से स्रवित रक्त से कपाल को भरना, कपाल से अर्जुन रूपी नर का प्राकट्य), ५.१.३२ (० द्वारा उज्जयिनी में नरादित्य मूर्ति स्थापना, इन्द्र से मूर्ति द्वय प्राप्ति कथा, सूर्य का स्तवन), ६.१५२ (० द्वारा ब्राह्मणों की गायों की रक्षा, चक्रपाणि प्रासाद की स्थापना), ब्रह्म १.१०३ (कृष्ण -पत्नियों की आभीरों से रक्षा में ० की असफलता), पद्म १.१४ (विष्णु के रक्त से उत्पत्ति कथा), ५.७४ (गोपी -कृष्ण रहस्य ज्ञानार्थ त्रिपुरसुन्दरी देवी के दर्शन, अर्जुनी गोपी बनना), कूर्म १.२९+ (द्वैपायन व्यास द्वारा ० को चतुर्युगों में धर्म की स्थिति व शिव भक्ति का उपदेश), नारद १.५६.२०७ (० वृक्ष की स्वाती नक्षत्र से उत्पत्ति), विष्णु ५.३८ (द्वारका वासियों की दस्युओं से रक्षा करने में असफलता), गर्ग १.५.३८ (स्वायम्भुव मनु का अंश), ७.२२.४२ (प्रद्युम्न -सेनानी, कालयवन -पुत्र चण्ड का वध), भविष्य ३.३.१.२५ (कलियुग में परिमल -पुत्र ब्रह्मानंद रूप में अवतरण), ४.५८.४१ (पर्जन्य वृष्टि से योगी कार्तवीर्य का ० बनना), शिव ३.३७.५३+ (व्यास द्वारा ० को शिव आराधना हेतु इन्द्रकील पर्वत पर जाने की प्रेरणा व शक्र विद्या का दान), ३.३९ (अर्जुन व शिव द्वारा शूकर रूपी मूक दैत्य को एक साथ बाण मारना), ३.४०+ (अर्जुन का किरात वेश धारी शिव से युद्ध, शिव का अभिज्ञान होने पर शिव -स्तुति, वर -प्राप्ति, प्रत्यागमन), मार्कण्डेय २.३७ (अर्जुन -भगदत्त युद्ध में अर्जुन के बाण से तार्क्षी की मृत्यु, तार्क्षी के चार पुत्रों की भगदत्त के घण्टे से रक्षा), हरिवंश २.७ (वृक्ष, कृष्ण द्वारा उद्धार प्रसंग), २.१११ (पाण्डव, ब्राह्मण बालक की काल से रक्षा में असफलता), योगवासिष्ठ ६.१.५३+ (कृष्ण द्वारा अर्जुन को वासना त्याग आदि का उपदेश वर्णन), द्र मलयार्जुन, मल्लिकार्जुन, यमलार्जुन, सहस्रार्जुन, हैह्यराज अर्जुन

टिप्पणी : पर्जन्य वृष्टि से अर्जुन बनने तथा स्वाती नक्षत्र से अर्जुन वृक्ष की उत्पत्ति के सूत्र वैदिक तथा पौराणिक साहित्य में अर्जुन शब्द को समझने की कुंजी हैं। अर्जुन श्वेत वर्ग को कहते हैं। लेकिन पौराणिक वर्णन के अनुसार अर्जुन पूर्व जन्म में विष्णु के रक्त से उत्पन्न हुआ था, अतः रक्त वर्ण था। त्रेता युग में वह वालि बना और द्वापर में अर्जुन। दूसरी ओर कर्ण ब्रह्मा के स्वेद से उत्पन्न होने के कारण श्वेत वर्ण था। वह त्रेतायुग में सुग्रीव और द्वापर में कर्ण बना। रक्त और श्वेत बनने की इस प्रहेलिका को अथर्ववेद ५.२८.५ व ५.२८.९ के आधार पर समझा जा सकता है। द्युलोक में हरित/हिरण्यवर्ण रक्षा करता है, अन्तरिक्ष/मध्य में अर्जुन या रजतवर्ण और भूमि पर अयोमय या लौह वर्ण। काठक संहिता ३४.३ में कहा गया है कि इन्द्र द्वारा वृत्र को मारने पर जो उसका लोहित/रक्त था, वही अर्जुन लोहित तूल हुए। इस प्रकार लोहित वर्ण वृत्र के मरने के पश्चात साधना की प्रथम अवस्था है, अर्जुन दूसरी और हरित तीसरी। यह अग्नि के तीन रूप हैं। ऋग्वेद ३.४४.५ में हरित अर्जुन इन्द्र के वज्र के विशेषण हैं। ऋग्वेद की ७.१९.२ तथा १.११२.२३ आदि ४ ऋचाओं में कुत्स आर्जुनेय का उल्लेख आया है जिसकी रक्षा इन्द्र करते हैं। कुत्स अर्थात कुत्सित विचार। अर्जुन अवस्था प्राप्त होने पर कुत्स समाप्त हो जाता है। हो सकता है कि कुत्स के प्रतीक रूप में पुराणों में कर्ण का चरित्र रखा गया हो। अर्जुन वर्ण अग्नि की एक और अवस्था का वर्णन ऋग्वेद ६.९.१, १०.२१.३ तथा अथर्ववेद २०.१३०.३ में किया गया है। वह है कृष्ण और अर्जुन अवस्था का एक साथ होना। शांखायन ब्राह्मण २३.८ के अनुसार यह अवस्था नृत्य की अवस्था है और साधना के छठे दिन वृत्र मरण पर प्राप्त होती है। पौराणिक साहित्य में अर्जुन और कृष्ण का संबंध सर्वविदित है।

यमलार्जुन के संदर्भ में पुराणों में यमलार्जुन को नलकूबर और मणिग्रीव का शापित रूप कहा गया है। काठक संहिता ३४.३ में उल्लेख है कि वृत्र की ग्रीवा से स्रवित रस से अर्जुन बभ्रु तूल (रुई) उत्पन्न हुए। इसका तात्पर्य यह है कि मणिग्रीव की केवल ग्रीवा/कण्ठ में मणि है, वह शरीर के सभी स्तरों पर फैली नहीं है। नारद रूपी भक्ति और मणिग्रीव का संयोग होने पर वह वृक्ष बन कर सारे मनुष्य स्तर पर छा जाएगी। फिर जब वृक्ष का संयोग उलूखल से, उखा रूपी अर्जुनी उषा से होगा तभी वृक्ष का उद्धार होगा (वैदिक निघंटु तथा ऋग्वेद १.४९.३ में उषा का एक नाम अर्जुनी है)।

अथर्ववेद ५.२३.९ तथा २.३२.२ में एक अर्जुन संज्ञक तीन शीर्षों वाली तथा चार आंखों वाली क्रिमि का उल्लेख है जिसका नाश अपेक्षित है। अन्य कई मन्त्रों का निहितार्थ अपेक्षित है।

अर्थ अग्नि ३४४ (अर्थालंकार निरूपण), वराह १७.७३ (इन्द्रिय -अर्थों का पितरगण बनना), भविष्य ३.४.१५.५४ (शब्दमात्र समूहों के स्वामी राम, अर्थमात्र समूहों के स्वामी क्लीब लक्ष्मण), वायु ६१.७८ (अर्थशास्त्र : १८ विद्याओं में एक), मत्स्य ७.६३ (इन्द्र द्वारा अर्थशास्त्र का आश्रय लेकर दिति के गर्भ का छेदन), २४.२ (बुध ; सर्व अर्थशास्त्र के ज्ञाता),

म २२०.११ (अर्थ सम्बन्धी दोष वर्णन), भागवत ४.१५१ (धर्म व बुद्धि -पुत्र), ६.६.७ (अर्थसिद्धि : साध्यगण -पुत्र), ११.२२.१६ (अर्थ की जातियां : शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध), ब्रह्माण्ड ३.४.३६.७१ (चन्द्रमा की १६ कलाओं के अंतर्गत अर्थ आकर्षणिका कला), वामन ५७.८१ (प्रभावा नदी द्वारा कुमार को प्रदत्त गण का नाम), गरुड १.२०५.८३ (अर्थ का महत्व व ० योग्य द्रव्य), स्कन्द १.२.४.५७ (अर्थ दान निरूपण), ६.३२.४० (हेमपूर्ण उदुम्बर प्राप्ति प्रसंग में कश्यप ऋषि द्वारा अर्थ परिग्रह की निन्दा), विष्णुधर्मोत्तर ३.५०.१२ (इन्द्र के ऐरावण/ऐरावत का अर्थ रूप में निरूपण), लक्ष्मी नारायण २.१८१.१९ (अर्थ श्री नगरी में अर्थेष्ट राक्षस द्वारा श्री हरि की परीक्षा, हरि द्वारा उद्धार पर राक्षस का तुषित देव बनना), लन ४.१०१.१०४ (अर्थवेदन : कृष्ण व हरिणी -पुत्र), कथासरित् ७.९.६८ (अर्थलोभ : वैश्य, मानपरा -पति, अर्थ के लोभ में पत्नी का रात्रि में विक्रय करने के कारण पत्नी द्वारा त्याग की कथा), ९.४.१६३ (अर्थ श्री व भोग श्री में चुनाव का प्रश्न : यशोवर्मा द्वारा परीक्षा उपरान्त भोग श्री का वरण), कस १०.१.८९ (अर्थदत्त : ईश्वरदत्त का मित्र, ईश्वरदत्त की वेश्या के मिथ्या प्रेम जाल से रक्षा करने की कथा), १२.२८.५ (अर्थदत्त : वैश्य, अनंगमंजरी कन्या का पिता), द्र धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष; परमार्थ, श्रुतार्थ

टिप्पणी : ऋग्वेद की ऋचाओं में जहां अर्थ शब्द प्रकट हुआ है, उसका अर्थ धन न होकर इन्द्रियों का वह अर्थ है जो कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने के पश्चात प्रकट होता है और जिसका वर्णन श्रीधीश गीता (श्री प्रह्लाद ब्रह्मचारी द्वारा देवबन्द से प्रकाशित) में अधिभूत और अध्यात्म के अन्तर्गत सम्यक् रूप में किया गया है। ऋग्वेद १.१०५.२ के मन्त्र में पत्नी पति का आलिंगन ऐसे करती है जैसे अर्थकामी अर्थ का। ऋग्वेद १०.१४३.१ में अश्विनौ गण ऋत से अभिभूत अत्रि को अर्थ अश्व की प्राप्ति कराते हैं। कुछ ऋचाओं पर दृष्टि डालने से ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं अर्थ के साथ रथ का भी सम्बन्ध न हो। ऋग्वेद ९.६३.४ में अर्थ तरणि/नाव का उल्लेख है। कुछ ऋचाओं जैसे १.१.३०.५ व १.१४४.३ में समान अर्थ का उल्लेख है जिसका निहितार्थ विचारणीय है।

कठोपनिषद १.२.१ में श्रेय अर्थ और प्रेय अर्थ कह कर अर्थ की व्याख्या की गई है। कठोपनिषद १.३.१० में इन्द्रियों से परे अर्थ, अर्थ से परे मन और मन से परे बुद्धि के होने का उल्लेख है। यह पुराणों में बुध ग्रह के अर्थशास्त्र का स्वामी होने की व्याख्या है। मैत्रायणी उपनिषद २.६ में कहा गया है कि जो सत्य संकल्प आकाश आत्मा है वह अर्थ के सेवन के बिना अपने को अकृतार्थ मान रहा था, अतः वह पांच रश्मियों के द्वारा विषयों का सेवन करता है।

अर्धनारीश्वर नारद १.९१.१६० (० शिव मन्त्र विधान), शिव ७.१.१५ (० प्रादुर्भाव, मैथुनी सृष्टि), ३.३ (० की शिव से उत्पत्ति), मत्स्य ६०.२५ (० शिव की शक्ति असितांगी), १९२.२८ (शुक्ल तीर्थ में ० शिव की आराधना), २६०.१ (० शिव स्वरूप वर्णन), ब्रह्माण्ड ३.४.४४.५२ (लिपि न्यास प्रसंग में एक वर्ण के देवता), लक्ष्मी नारायण २.३५.७, २.३५.९९ (कृष्ण द्वारा ० नट के गर्व का खण्डन, केसरी द्वारा ० के सिर का भक्षण, पुनः संजीवन)

अर्बुद स्कन्द ७.३.१+ (० पर्वत माहात्म्य), ७.३.३ (हिमवान -पुत्र, नंदिवर्धन का मित्र, नंदिवर्धन सहित उत्तंक निर्मित गर्त का पूरण), ७.३.३६ (० शोभा वर्णन), पद्म ३.२४.४ (० का संक्षिप्त माहात्म्य), ब्रह्माण्ड १.२.१६.६२ (अपरान्त का एक देश), लक्ष्मी नारायण १.५५१+ (अर्बुदाचल व अन्तर्वर्ती तीर्थों का माहात्म्य वर्णन)

टिप्पणी : अर्बुदाचल माहात्म्य के अन्तर्गत सर्वप्रथम तक्षक नाग द्वारा उत्तंक ऋषि से कुण्डलों के हरण की कथा आती है। तक्षक कुण्डल चुरा कर बिल में घुस गया। उत्तंक ने उस बिल को एक काष्ठ दण्ड से खोदा इत्यादि। उत्तंक = उत् + तंक। तकि/तंक धातु दुःख उठाने, परिश्रम करने के अर्थ में प्रयुक्त होती है। उत् अर्थात ऊपर। उत्तंक तप का प्रतीक है। ऐसे तपस्वी के मार्ग में विभिन्न बाधाएं अपना सिर उठाती हैं। भूख - प्यास उनमें से एक है। इसी समय में उसकी सत्य की प्राप्ति रूपी कुण्डलों का हरण तक्षक नाग कर लेता है। तपस्वी फिर श्वभ्र खोदने के रूप में तप आरंभ करता है उत्तंक की तपस्या ऐसी है जिसमें उसने अपने आनन्द को भी भुला दिया है। अतः उत्तंक के द्वारा खोदा गया श्वभ्र शुष्क है, आनंद रहित है। वसिष्ठ की नन्दिनी गौ उसमें गिर पड़ती है। तब सरस्वती इस श्वभ्र को भर कर नन्दिनी को बाहर निकालती है। सरस्वती अर्थात रस वाली। वह इस श्वभ्र को रसमय बना देती है। जब परमानन्द रूपी रस प्राप्त होने लगता है तो नंदिनी रूपी आनंदवृत्ति का भी उद्धार हो जाता है। हिमवान - पुत्र नन्दिवर्धन का कार्य भी इस शुष्क श्वभ्र को आनंद रस से पूर्ण करना है -फतहसिंह

ऋग्वेद १०.९४ सूक्त का ऋषि कद्रू - पुत्र अर्बुद सर्प है। इस सूक्त का देवता ग्रावाणः अर्थात सोम को कूटने के पत्थर हैं। अथर्ववेद ११.११ सूक्त का देवता अर्बुदि है और ऋषि कांकायन हैं। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं में अर्बुद शब्द आया है। संख्या के अर्थ में अर्बुद शब्द को हिन्दी में अरब कहते हैं। अर्बुद संख्या के पश्चात न्यर्बुद संख्या आती है। कई वैदिक मन्त्रों में अर्बुद और न्यर्बुद साथ -साथ आते हैं। अर्बुद शब्द के निहितार्थ को समझने के लिए हमें ब्राह्मण ग्रन्थों का आश्रय लेना होगा। ऐतरेय ब्राह्मण ६.१ में उल्लेख है कि यज्ञ में पाप नाश न हो सकने के कारण

देवों को उनका भाग प्राप्त नहीं हो पा रहा था। इस क्षण में अर्बुद काद्रवेय सर्प ऋषि ने अपनी ग्रावास्तोत्रीय ऋचा का गान करने का प्रस्ताव किया। माध्यन्दिन सवन में गान से सोम और देवों को मद तथा विष आक्रान्त करने लगा। उससे बचने के लिए उन्होंने ग्रावस्तुत नामक अर्बुद ऋत्विज के सिर पर उष्णीष/पट्टी बांध दी जिससे वह देख न सके। लेकिन समस्या का हल नहीं हुआ। यहां उल्लेख है कि ग्रावास्तोत्रीय ऋचा मन है। शतपथ ब्राह्मण १४.२.२.२३ में उल्लेख है कि ग्रावाण: प्राण हैं। इस प्रकार ऋग्वेद का यह सूक्त मन और प्राण के युगल से सम्बन्धित है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.८.१६.३ में उल्लेख है कि वाक् अर्बुद बन सकती है। तब यह सूक्त मन और वाक् का युगल हो जाता है। साधना में सर्वदा यह प्रयत्न किया जाता है कि मन से उत्पन्न वाक् शक्ति किसी प्रकार अन्तर्मुखी हो जाए। दूसरे शब्दों में, मन बाहरी संसार में दौड न लगाए, शरीर के प्राणों में ही आत्मसात् हो जाए। स्कन्द पुराण के अर्बुदाचल माहात्म्य का यही रहस्य है। माहात्म्य में जो विभिन्न कथाएं दी गई हैं, वह वाक् को अंतर्मुखी करने की विभिन्न विधाएं हैं जिनका सम्बन्ध ऋग्वेद व अथर्ववेद के सूक्तों के मन्त्रों से होना चाहिए। सबसे स्पष्ट राजा वेणु की कथा है जो पूर्व जन्म में पक्षी था और उसका घोंसला अर्बुदाचल पर था। अपने घोंसले की अनायास परिक्रमा करने के कारण वह अगले जन्म में वेणु राजा बना।

अर्बुदाचल पर वसिष्ठ का आश्रम होने के संदर्भ में वसिष्ठ को सर्वाधिक बसने वाले प्राणों के रूप में समझा जा सकता है। वसिष्ठ ऋषि द्वारा अर्बुदाचल पर शिव के निवास के लिए तप करने की कथा को न्यर्बुदि के माध्यम से समझा जा सकता है। अथर्ववेद ११.११.४ में उल्लेख है कि न्यर्बुदि ईशान देव है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.८.१६.३ में कहा गया है कि न्यर्बुद भूमा वाक् है। यह भूमा वाक् पार्वती और शिव का ही रूप हो सकता है।

आश्वलायन श्रौत सूत्र १०.७.५ में पारिप्लव इष्टि के अंतर्गत पांचवें दिन का अधिपति अर्बुद काद्रवेय है। सर्प उसकी विश:/प्रजाएं हैं। विष विद्या वेद है। यह विश: और विष का सम्बन्ध ध्यान देने योग्य है। डा० फतहसिंह के आध्यात्मिक चिन्तन के अनुसार जब मन बाहर को दौडता है तो शरीर के सारे नाग प्राण शरीर में विष उगलने लगते हैं। इसके विपरीत विश: शब्द का अर्थ अन्त:प्रवेश से है। तब यह प्राण सोमरस को शुद्ध करने वाले ग्रावाण:/पत्थर बन जाते हैं। जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, सारा अर्बुदाचल माहात्म्य प्राणों को अन्तर्मुखी करके उन्हें एक नये रूप में प्रकट करता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में अर्बुद सर्प ऋषि के साथ ऋग्वेद १०.१८९ की सार्पराज्ञी ऋषि वाली वाक् सम्बन्धी ऋचाओं को भी सम्बद्ध किया गया है। ताण्ड्य ब्राह्मण ४.९.४ इत्यादि में पुन: पुन: उल्लेख आता है कि अर्बुद सर्प ने इन ऋचाओं के जप से अपनी मृत त्वचा को त्याग कर नवीन रूप प्राप्त किया। भावार्थ ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है।

ताण्ड्य ब्राह्मण ९.८.८ तथा जैमिनीय ब्राह्मण में उल्लेख है कि यदि दीक्षित यजमान की सत्र काल में मृत्यु हो जाए तो उसका संस्कार करके अर्बुदी ऋचाओं का पाठ किया जाता है। ताण्ड्य ब्राह्मण २५.१५.३ में विषुवत् अह में किए जाने वाले सर्प साम का वर्णन है जिसमें सारे सर्प ऋत्विजों में अर्बुद ग्रावस्तोता बनता है। ऋग्वेद १०.१७५ सूक्त का ऋषि अर्बुद -पुत्र ऊर्ध्वग्रावा है।

निरुक्तोपनिषद १.१० में पांच रात्रि के गर्भ की स्थिति को बुद्बुद, सात रात्रि को पेशी, १४ रात्रि वाले गर्भ को अर्बुद व २५ रात्रि वाले को घन की संज्ञा दी गई है। व्याकरण की दृष्टि से अर्बुद शब्द की निरुक्ति अज्ञात है। सायण ने ऋग्वेद २.११.२० की व्याख्या में अम्बूनि ददाति इति अर्बुद अर्थात मेघ व्याख्या की है।

अर्यमा देवीभाग ८.१० (हिरण्मय वर्ष में ० द्वारा विष्णु के कच्छप रूप की आराधना), अग्नि ९३.२९ (वास्तुमण्डल में देवता), भविष्य ३.४.७.५७ (विप्र, पितृमती -पति, धन प्राप्ति हेतु सूर्य की उपासना, सूर्य लोक प्राप्ति), ३.४.१४.३१ (अयर्मा पितर द्वारा स्वकन्या मेना को हिमवान को प्रदान करना), ३.४.१८.१७ (संज्ञा के स्वयंवर में अर्यमा आदित्य का अघासुर से युद्ध), भागवत १.१३.१५ (शाप वश यमराज के विदुर शूद्र बनने पर अर्यमा द्वारा यमलोक का संचालन), ४.१८.१८ (पितरों द्वारा धेनु रूपी पृथ्वीदोहन में ० का वत्स बनना), भा ५.१८.२९ (० द्वारा हिरण्मय वर्ष में कूर्म रूप की आराधना; आराधना -मन्त्र कथन), ६.६.३९ (अदिति -पुत्र, द्वादश आदित्यों में एक, मातृका -पति, चर्षणी -पिता), १२.११.३४ (माधव /वैशाख मास के सूर्य का नाम), मत्स्य १२७.२३ (शिशुमार चक्र की पश्चिम सक्थि में स्थिति), २२५.१२ (अदण्डी देव होने के कारण मनुष्यों द्वारा अपूज्यता), ब्रह्माण्ड १.२.२४.४० (अयर्मा सूर्य का दश सहस्र रश्मियों द्वारा तापन), स्कन्द ४.२.८९.४६ (दक्ष यज्ञ में ० की बाहुओं का छेदन), लक्ष्मी नारायण २.१०७.३९ (० पितर व अर्यमा के अरुण नामक दूतों द्वारा कन्याओं की राक्षसों से रक्षा का उद्योग), २.१०९.१८ (० द्वारा मकरकेतु राजा का वध), २.१११.१६ (अर्यमा पितर द्वारा बालकृष्ण को कन्याएं अर्पित करना, कृष्ण द्वारा अर्यमा के वास हेतु कारुकराद्रि/कश्मेरा पर्वत भूमि देना), लन ४.९४.१७ (पितृलोक के स्वामी, आर्या -पति, ० द्वारा कृष्ण का स्वागत), कथासरित् ८.५.९६ (० का श्रुतशर्मा विद्याधर के सहयोगी उत्पात के रूप में अवतार)

टिप्पणी : वेद मन्त्रों में बहुत से स्थानों पर मित्र, वरुण और अर्यमा एक साथ आते हैं। अर्यमा को अयमा

प्रकृति की शक्तियों का, अघ रूपी अहंकार का देवता समझा जा सकता है। डा० फतहसिंह के अनुसार अर्यमा अर्-यमा से बना है जिसमें शक्तियां चक्र के अरों की भांति परस्पर सहयोग कर रही हैं। यह मनुष्य का सामाजिक पक्ष है।

अर्वावसु स्कन्द ३.१.३३ (रैभ्य - पुत्र व परावसु -अनुज, परावसु के ब्रह्महत्या दोष की निवृत्ति के लिए तप), कूर्म १.४.३.७ (सूर्य रश्मि, बृहस्पति ग्रह पोषक), भविष्य १.८०.२९ (० द्विज द्वारा पुत्र प्राप्ति के लिए सूर्य अर्चना, अरुण द्वारा सम्यक फल प्राप्ति के लिए ० को सप्तमी कल्प विधान कथन)

अर्हत् भागवत ५.६.९ (कर्णाटक देश में राजा, ऋषभ मुनि के परमहंस आचरण का अनुसरण करके पथभ्रष्ट होना)

अलकनन्दा वायु ४२.२७ (० गंगा अवतरण), स्कन्द ४.२.८८.६० (सती के रथ में ईषादण्ड का रूप), गर्ग ७.२३.१२ (अलकनन्दा की अलकापुरी के परितः स्थिति का उल्लेख)

अलका स्कन्द ४.१.१३ (द्यूतकर्म रत गुणनिधि विप्र का राजा दम व अगले जन्म में अलकाधिपति बनने की कथा), ७.१.५६ (धनद लिंग की पूजा से अलका अधिपतित्व की प्राप्ति), भागवत ४.६.२३ (कुबेर की पुरी, शोभा वर्णन), हरिवंश २.६३ (नरकासुर द्वारा सोलह हजार अप्सराओं को कैद करने का स्थान, अलका पुरी पर मुर का आधिपत्य), कथासरित् ८.६.१८५ (यक्षिणी द्वारा आदित्यशर्मा को अलकापुरी में लाना), विष्णुधर्मोत्तर ३.३१२.५ (उष्ट्र या गर्दभ दान से ० पुरी की प्राप्ति), ३.३४१.८४ (रक्त पताका युक्त ऋष्य दान से ० पुरी की प्राप्ति), वराह ८१.११ (विशोक द्वादशी व्रत के संदर्भ में अलकों में माधव का न्यास), भविष्य ३.४.१५.२४ (शिव द्वारा विश्वकर्मा निर्मित अलकापुरी कुबेर को प्रदान करने का उल्लेख), गर्ग ७.२३.१२ (दिग्विजय के सदर्भ में प्रद्युम्न का अलकापुरी आगमन और यक्षों से युद्ध)

टिप्पणी : कुबेर पहले लंका का राजा था। रावण द्वारा लंका पुरी छीन लिए जाने पर उसे शिव से अलकापुरी प्राप्त हुई। लंका और अलका, दोनों शब्द एक ही धातु से बने हैं। यह धातु लक (आस्वादने), लक्ष (दर्शने तथा विचारणे), लख (गमने) में से एक हो सकती है। एक ओर लक (अंग्रेजी भाषा का लक - भाग्य) है तो दूसरी ओर अलका है। हिन्दी भाषा में आज भी अलख निरंजन और अलख जगाना आदि शब्द प्रचलित हैं। वैदिक पदानुक्रम कोश उपनिषद भाग पृष्ठ ९८ पर टिप्पणी में अलक की व्याख्या अलक्ष ठीक ही की गई है। योग में जब दृष्टि बंध जाती है, निमेष-उन्मेष समाप्त हो जाते हैं, तब अलक्ष या अलख स्थिति होती है। अलकापुरी के चारों ओर अलकनन्दा गंगा की स्थिति का उल्लेख आता है। अलक स्थिति प्राप्त होने पर ही नन्द, आनन्द की स्थिति उत्पन्न होती है।

ऋग्वेद १०.७१.६ की सार्वत्रिक ऋचा में उल्लेख है कि जो ईं (डा० फतहसिंह के अनुसार अग्नि के एक रूप का नाम) को सुनता है वह अलक को सुनता है। उसे सुकृत के पन्थ का ज्ञान नहीं है। सायण भाष्य में अलक का अर्थ व्यर्थ किया गया है लेकिन इस ऋचा की ठीक व्याख्या नहीं हो पाई है। पुराणों में आता है कि कुबेर ने उमा/पार्वती की ओर बाईं आंख से घूर कर देखा तो पार्वती ने उसकी बाईं आंख फोड दी। फिर कुबेर दायीं आंख से घूरकर देखने लगा तब शिवजी ने पार्वती को समझाया कि यह क्रूर दृष्टि से नहीं देख रहा है, यह तो अपनी माता की ओर निहार रहा है। तब वह पार्वती का पुत्र बना। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कथानक ऋग्वेद की उपरोक्त ऋचा की व्याख्या है। ईं सुनने तक का क्षेत्र अलक में आता है। उससे ऊपर ऊं, ओंकार की शक्ति उमा को सुनना होता है। ऋग्वेद १०.१०८.७ में सरमा देवशुनी और पणियों के संवाद के संदर्भ में उल्लेख आता है कि यह निधि अद्रियों द्वारा छिपाई गई है जिसकी रक्षा सुगोपा पणि करते हैं और रेकु (?)पद वाले अलक को आते हैं? इस ऋचा की सम्यक् व्याख्या अपेक्षित है।

अलक्ष्मी पद्म ४.९.९ (समुद्र मंथन पर कालकूट विष के पश्चात और लक्ष्मी से पूर्व प्राकट्य, स्वरूप, देवों द्वारा वास स्थान निर्धारण), ६.११६ (उद्दालक -पत्नी बनना, स्वरूप, ० के वास योग्य स्थान कथन, अश्वत्थ मूल में स्थित होना), मार्कण्डेय ५०.३२ (मृत्यु -भार्या, १४ पुत्रों की माता, निर्ऋति उपनाम), लक्ष्मी नारायण १.१५५.४२ (समुद्र मन्थन से उत्पत्ति, स्वरूप, योग्य वास स्थान), द्र. निर्ऋति, ज्येष्ठा

अलंकार अग्नि ३४२ (० भेद निरूपण), ३४३+ (शब्द ०, अर्थ ० विवरण), वायु ८७ (गीत -अलंकार वर्णन), विष्णुधर्मोत्तर ३.१४ (काव्य अलंकार वर्णन), ब्रह्म २.४१.४३ (क्षत्रियों में अलंकारों से विवाह प्रथा का प्रचलन कथन), कथासरित् १०.५.२४ (मूर्ख द्वारा स्वर्ण अलंकारों की अकस्मात प्राप्ति पर उनके सम्यक उपयोग न करने का दृष्टांत), कस ७.१.२३ (अलंकार प्रभा : विद्याधर हेमप्रभ -भार्या, तप से वज्रप्रभ व रत्नप्रभा कन्या की प्राप्ति), ९.१.१५ (अलंकार-वती : विद्याधर राज अलंकार शील -कांचनप्रभा पुत्री, नरवाहन दत्त से विवाह)

अलम्बुषा स्कन्द ३.१.५ (अप्सरा, विधूम वसु पर आसक्ति के कारण मनुष्य योनि में जन्म लेकर कृतवर्मा -पुत्री बनना), अग्नि ८७.६ (शान्ति कला के अन्तर्गत नाडी), विष्णु ४.१.४८ (अप्सरा, राजा तृणविन्दु से संयोग से विशाल नामक पुत्र का जन्म), ब्रह्माण्ड २.३.७.६ (२४ मौनेया अप्सराओं में से एक), ब्रह्म

२.३.८.३७ (अलम्बुषा व तृणबिन्दु से इलविला कन्या का जन्म), वा ६९.५ (३४ मौनेया अप्सराओं में से एक), भागवत ९.२.३१ (तृणबिन्दु -० से इडविडा कन्या की उत्पत्ति), वा.रामायण १.४७.१२ (राजा विशाल की माता), लक्ष्मी नारायण १.४३४ (ब्रह्मा सभा में नृत्य में त्रुटि पर पृथ्वी पर मृगावती रूप में जन्म लेकर सहस्रानीक की पत्नी बनना आदि, a), ३.८५.११७ (वृषायन ऋषि द्वारा मादा चटक पक्षी की श्येन से रक्षा, कालांतर में चटका का अलम्बुषा अप्सरा बनना), कथासरित् १८.२.१४६ (स्वपुत्री कलावती को प्राप्त हुए शाप का अन्त करने के लिए इन्द्र से प्रार्थना), योगवासिष्ठ ६.१.१८ (० देवी के वाहन चण्ड नामक काक से काकभुशुण्डि के जन्म का वृत्तांत) a. कस २.१.२५

टिप्पणी : अलम्बुसा - वह शक्ति जिसके लिए इस देह की बुसी/बासी शक्तियां ही पर्याप्त हैं। ऐसी देवी का वाहन काक है । -फतहसिंह

अलर्क गरुड १.१४७.३ (कुक्कुरों में ज्वर का नाम), ब्रह्म १.९.५१ (काशीराज ऋतध्वज -पुत्र, सन्नति -पिता, काशी को नष्ट करने वाले क्षेमक राक्षस का वध, दीर्घ काल तक राज्य), वायु ९२.६६ (वही), हरिवंश १.२९.७७ (वही), ब्रह्माण्ड २.३.६७.६९ (वही), विष्णु ४.८.१६ (वही), भागवत १.३.११ (दत्तात्रेय अवतार द्वारा अलर्क को आन्वीक्षिकी/ब्रह्मज्ञान का उपदेश मात्र), मार्कण्डेय २६ (ऋतध्वज -मदालसा पुत्र, माता द्वारा प्रवृत्ति मार्ग का अनुशासन), मा २७ (माता द्वारा नृप नीति का उपदेश), २८ (माता द्वारा वर्णाश्रम धर्म का अनुशासन), २९ (माता द्वारा गृहस्थ धर्म का उपदेश), ३० (माता द्वारा नैमित्तिकादि श्राद्ध का उपदेश), ३१+ (पार्वण श्राद्ध का उपदेश), मा ३३ (काम्य श्राद्ध फल कथन), ३४ (सदाचार वर्णन), ३५ (वर्ज्य -अवर्ज्य वर्णन), ३७(अलर्क का शत्रुभय से पीडित होकर दत्तात्रेय से शिक्षा प्राप्ति हेतु गमन, दत्तात्रेय द्वारा आत्मविवेक वर्णन), ३८ (अलर्क द्वारा परमार्थ चिन्तन विषयक प्रश्न), ३९+ (दत्तात्रेय द्वारा अष्टांग योग की शिक्षा), लक्ष्मीनारायण१.३९४.१ / ०३+ (निरुक्ति, शेष मार्कण्डेय पुराण की भांति), ३.१७५.४२ (० द्वारा स्व इन्द्रियों को नियंत्रित करने के लिए बाणों का प्रयोग करने पर इन्द्रियों का अप्रभावित रहना, श्रीहरि द्वारा प्रदत्त बाणों से इन्द्रियों का निग्रह), महाभारत सभा ८.१८ (अलर्क राजर्षि द्वारा यम की सभा को सुशोभित करने का उल्लेख), वन ३.२५.१३ (काशी व करूष देश के राजा अलर्क का उल्लेख), शान्ति ३.१३ (८ पाद वाले अलर्क नामक कृमि द्वारा कर्ण की ऊरु का छेदन, परशुराम के दृष्टिपात से अलर्क कृमि का उद्धार, अलर्क के पूर्व जन्म का वृत्तांत), आश्वमेधिक ३०.७ (अलर्क द्वारा इन्द्रिय रूपी शत्रुओं पर बाण चलाना, इन्द्रियों का अप्रभावित रहना, ध्यान योग रूपी बाण से इन्द्रियों का विद्ध होना)

टिप्पणी : पागल कुत्ते के विष को भी अलर्क कहते हैं। वैदिक साहित्य में अलर्क शब्द कहीं नहीं आया है। अलर्क के लिए अलक पर विचार करना चाहिए। डा० फतहसिंह की विचारधारा के अनुसार जब किसी शब्द में र का समावेश कर दिया जाता है तो वह गति के अर्थों में प्रयुक्त होने लगता है।

अलाबू ब्रह्माण्ड १.२.३६.२१३ (नागों द्वारा पृथ्वी से दुग्ध दोहन हेतु पात्र), विष्णु ३.१६.८ (श्राद्ध कर्म में निषिद्ध)

अलिका स्कन्द ५.३.२२५ (० लिंग तीर्थ माहात्म्य, कुशला गांधर्वी - कन्या अलिका द्वारा पति विद्यानन्द ऋषि की हत्या, पाप से मुक्ति हेतु ० लिंग स्थापना)

अल्पकेतु लक्ष्मी नारायण २.१६७.२७ (० राजा का आप्यायन ऋषि के साथ यज्ञ में आने का उल्लेख), २.१८२.७७ (आल्प पर्वत -राजा), २.१८३.१३ (० राजा द्वारा अन्य राजा के साथ राक्षसों से युद्ध), २.१८४ (जीवनी नगरी/केतुमाल देश का राजा, नगरी में श्री हरि का भ्रमण, शंख -लिखित दृष्टान्त द्वारा उपदेश)

अल्वीनर लक्ष्मी नारायण २.१८१ (अर्थ श्री नगरी के राजा अल्वीनर द्वारा श्री हरि का स्वागत, श्री हरि द्वारा अर्थेष्ट दानव का उद्धार आदि)

अवकीर्ण वामन ३९.२५ (कुरुक्षेत्र का अन्तर्वर्ती तीर्थ, माहात्म्य, दाल्भ्य बक ऋषि द्वारा धृतराष्ट्र के राष्ट्र का होम करने का स्थान)

अवट स्कन्द३.४.२२ (राम द्वारा विराध राक्षस को अवट/गर्त में दबाना), लक्ष्मी नारायण १.५२८ (आवट्य ऋषि द्वारा स्वप्न में कृष्ण के अनेक धामों में विचरण, कृष्ण द्वारा ० को शुभाशुभ स्वप्न फल वर्णन, ० की मुक्ति), योगवासिष्ठ ६.२.६.५४ (इन्द्रियों की अवट से उपमा)

टिप्पणी : यास्क ने वैदिक मन्त्रों में आने वाले अवट शब्द की परिगणना कूप नामों के अन्तर्गत की है।

अवतार देवीभाग ४.१६ (२४ अवतार वर्णन), गरुड १.१ (२१ अवतार कथन), गड १.८७ (१४ मन्वन्तरों में इन्द्र -शत्रु वध के लिए विष्णु के १४ अवतार), गड १.१९६ (२४ अवतारों का विशिष्ट कार्य), वायु ६६.१२१ (विष्णु का विभिन्न मन्वन्तरों में अवतरण क्रम), ९८.६९ (विष्णु के अवतार वर्णन), अग्नि २+ (विष्णु के १२ अवतारों की कथाएं), १६ (कल्कि, विष्णु ० वर्णन), ४९ (विष्णु के १० अवतारों की प्रतिमाओं के लक्षण), हरिवंश १.४० (जनमेजय द्वारा वराह आदि अवतारों के रहस्य विषयक प्रश्न), ह १.४१ (दश अवतारों का विस्तृत वर्णन), १.५४+ (कृष्ण व्यूह के दैत्यों के ० वर्णन), स्कन्द १.१.१८ (मरुत्त यज्ञ में देवों के क्षुद्र योनियों में अवतार वर्णन), स्क ७.१.१९.७३ (दश अवतार वर्णन), ७.१.८१.१८ (७ कल्पों में विष्णु अवतारों के नाम), ७.२.१८ (नारद द्वारा वामन को बलि निग्रह हेतु प्रेरणा, पूर्व अवतारों का वर्णन), ब्रह्म १.७१, १.१०४ (दस ०), पद्म १.४.९१ (भृगु शाप से विष्णु के १० अवतार), भविष्य ३.३.१ (कौरवों व पाण्डवों का कलियुग में ०), भ ३.४.५.१५ (विष्णु का युग अनुसार अवतार लेकर आयु वार्धक्य को प्राप्त होना, वामन के अर्धभाग से नारायण का तीन युगों में अवतार कथन), भ ३.४.२५.८० (विभिन्न राशियों में ०), भ ४.६३ (दशावतार व्रत : विष्णु द्वारा भृगु -पत्नी दिव्या के वध से शाप प्राप्ति के कारण अवतरण), ४.८३ (द्वादश ० : मास अनुसार नाम), भागवत १.३ (२४ अवतार वर्णन), २.७ (२४ अवतार वर्णन), भा ११.४ (द्रुमिल द्वारा निमि को अवतारों का वर्णन), नारद १.११९.१४ (दशावतार दशमी व्रत), ब्रह्मवैवर्त ४.६.१३६ (कृष्ण -व्यूह के अंश -अवतार कथन), ब्रव ४.९ (वही), देवीभाग ४.२२.२७ (वही), गर्ग १.४.१ (वही), गर्ग १.५.१ (वही), मत्स्य २४८.६२ (वराह ० वर्णन), शिव ३.१९ (ब्रह्मा, विष्णु महेश का क्रमशः 'चन्द्र, दत्तात्रेय, दुर्वासा बनना), ३.४ (द्वापरों में शिव का श्वेत मुनि रूप में ० आदि), शि ३.१२ (शिव का शरभ रूप में ०), ३.१३ (शिव का गृहपति रूप में ०), ३.१६ (शिव का यक्षेश रूप में ०), शि ३.१७ (शिव का महाकाल आदि १० रूपों में ०), ३.१८ (शिव का ११ रुद्रों के रूप में ०), शि ३.२४ (शिव का पिप्पलाद रूप में ०), ३.२७ (शिव का द्विजेश रूप में ०), शि ३.२८ (शिव का हंस रूप में ०), ३.३१ (शिव का भिक्षु रूप में ०), ३.३३ (शिव का ब्रह्मचारी रूप में ०), शि ३.३६ (शिव का अश्वत्थामा रूप में ०), ३.३९ (शिव का भिल्ल रूप में ०), शि ३.४२ (शिव का द्वादश ज्योतिर्लिंग रूप में ०), विष्णु धर्मोत्तर १.७४.२२ (विष्णु का द्वैपायन व्यास रूप में ०), १.७४.१२ (विष्णु का प्रमिति रूप में ०), १.७४.१८ (विष्णु का भीमरथ रूप में ०), विध १.७५ (मत्स्य ०), विध ३.१०६.८३ (विष्णु के अवतारों के आवाहन मन्त्र कथन), ३.२२६ (विष्णु का हंस रूप में ०), लक्ष्मी नारायण १.४४१.७९ (कृष्ण व अन्य देवों का वृक्षों के रूप में अवतार), २.१५७.२४ (अंगन्यास में १२ अवतारों के न्यास के स्थान), लन ३.१६४ (विष्णु के १४ अवतार व उनके विशिष्ट कार्य)

अवधूत स्कन्द ४.२.९७.१८० (अवधूतेश लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य : कल्मष नाशक), भागवत ४.२५.४८ (पुरंजन राजा के मित्र अवधूत का उल्लेख), ४.२९.११ (घ्राण इन्द्रिय की अवधूत नाम से प्रतीकात्मकता)

अवन्तिका स्कन्द २.२.७.१४ (मालवा स्थित अवन्ती के राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा पुरुषोत्तम क्षेत्र यात्रा का उद्योग), स्क ५.१.१+ (अवन्तिका खण्ड), स्क ५.१.२६ (देवी), ५.१.३६ (उज्जयिनी का नाम), ५.१.४२ (० नाम हेतु), ब्रह्म १.४१ (० शोभा वर्णन, इन्द्रद्युम्न राजा), वायु १०४.७६ (अवन्ती : नाभि -मण्डल में स्थिति), नारद २.७८ (अवन्ती/महाकाल वन के तीर्थों की महिमा; ० के कल्पान्तरों में नाम), लक्ष्मी नारायण १.४८०.१ (राम के वनवास काल में ० क्षेत्र में लक्ष्मण के मन का परिवर्तन, घोरखनक राक्षस के निवास के कारण शापित भूमि का फल), कथासरित् ३.२.२१ (वत्सराज उदयन की रानी वासवदत्ता द्वारा धारित छद्म नाम), कस १२.१६.५ (अवन्ती क्षेत्र में उज्जयिनी नगरी की स्थिति), १६.२.१४ (अवन्ति वर्धन : उज्जयिनी के पालक नामक राजा का पुत्र, सुरतमंजरी विद्याधरी से विवाह की कथा), भविष्य ४.२८.४५ (अवन्ति सुन्दरी : विदर्भ नगरी की वेश्या का चैत्र तृतीया व्रत के प्रभाव से राजकन्या अवन्ति सुन्दरी रूप में जन्म लेना)

अवभृथ स्कन्द ४.१.३५.१०३ (अवभृथ इति मन्त्र के अप् देवता का उल्लेख), ६.१९० (ब्रह्मा के यज्ञ में ० स्नान वर्णन), मत्स्य ५१.२७ (पावक/योग अग्नि का नाम), अग्नि ६१.१ (० स्नान वर्णन), ब्रह्माण्ड १.२.१२.३३ (० में पावक नामक अग्नि की उपस्थिति, हृच्छय -पिता), वायु २९.३१ (अग्नि, पावक/अपांगर्भ नाम), लक्ष्मी नारायण २.१३०.२८ (० स्नान का माहात्म्य), २.१७१.४९ (० स्नान विधि व माहात्म्य, अवभृथ नामक कुमार का प्राकट्य व तृप्ति कन्या से विवाह), २.२१३.२० (० स्नान विधि), २.२४८.९८ (० इष्टि विधि)

अवर पद्म ६.१३३.७ (० पर्वत पर विश्वकाय तीर्थ की स्थिति)

अवस्फूर्ज ब्रह्माण्ड १.२.१२.३१ (अग्नि, अन्य नाम विवस्वान व आस्थान)

अवि पद्म १.३.१०५ (ब्रह्मा के वक्ष से सृष्टि), कूर्म १.७.५४ (ब्रह्मा के वक्ष से प्राकट्य), भविष्य ४.१६३ (अवि दान विधि); दृ. मेष

टिप्पणी : पुराणों की अपेक्षा वैदिक साहित्य में अवि का बहुत अधिक वर्णन आता है (पुराणों में अवि का प्राकट्य अविमुक्त अथवा वाराणसी के रूप में हुआ है। असि और वरणा नदियों के अ और व अक्षरों को मिलाकर अवि बनता है)। कर्मकाण्ड में अवि के बालों से निर्मित कम्बल से सोम को छाना जाता है। ऋग्वेद के नवम काण्ड में पुन: -पुन: सोम को अवि के बालों (अव्ये वारे) द्वारा पाप रहित करने का उल्लेख आता है (उदाहरण के लिए ऋग्वेद ९.७८.१)। पांच प्राजापत्य पशुओं पुरुष, अश्व, गौ, अवि व अजा में से अवि एक है। अवि का मेध उत्क्रान्त होने पर अमेध्य उष्ट्र बनता है (शतपथ १.२.३.९)। इसके अतिरिक्त अथर्ववेद ३.२९ सूक्त का देवता अवि है (इसी सूक्त का विनियोग बुध ग्रह के लिए भी है)। अवि के रहस्य की कुंजी छान्दोग्य उपनिषद २.६.१ में मिलती है जहां अजा को भक्ति मार्ग में हिंकार और अवि को प्रस्ताव कहा गया है। यज्ञ में प्रस्तोता ऋत्विज अपान का रूप होता है। मनुष्य शरीर में प्राण से जो अपान का निर्माण होता है, उसका सारा व्यय शरीर से मल को निकालने में हो जाता है। इस अपान की रक्षा अन्तर्मुखी होकर की जा सकती है। समाधि में अन्य प्राण समाप्त हो जाते हैं, अपान ही शेष रहता है। अथर्ववेद ३.२९ में इसे स्वधा कहा गया है। इसी तथ्य को शतपथ ४.५.५.३ में अजा के साथ उपांशु पात्र और अवि के साथ अन्तर्याम पात्र का सम्बन्ध जोड़कर कहा गया है। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि अवि का सम्बन्ध अमा अथवा अमावास्या से है। इसकी पुष्टि पैप्पलाद संहिता के मन्त्रों ६.२०.६ तथा १९.९.७ से होती है जहां मा अर्थात माया को अवि को मथने वाला वृक कहा गया है। ऋग्वेद के नवम मण्डल की ऋचाओं में जहां बारम्बार अवि के बालों द्वारा सोम को पाप रहित करने की बात कही गई है, वह बाल शक्ति समाधि में बिखरे हुए प्राण हो सकते हैं (तुलनीय : बालखिल्य ऋषिगण)। शुक्ल यजुर्वेद १३.४४ में अवि को वरूत्री अर्थात चारों ओर से ढककर रक्षा करने वाली विशेषण दिया गया है। यह रज से परे की स्थिति, जहां दिशाएं ही श्रोत्र बन जाती हैं, है।

पुराणों में जहां ब्रह्मा के वक्ष से अवि का प्राकट्य कहा गया है, जैमिनीय ब्राह्मण १.६८ में प्रजापति के पद से अवि का प्राकट्य कहा गया है। अजा को वैरूप और अवि को वैराज साम से सम्बन्धित किया जाता है (जैमिनीय ब्राह्मण १.३३३)। जैमिनीय ब्राह्मण १.२९४ के अनुसार राथन्तरी अर्थात अन्तर्मुखी होने पर अवि की वाक् क्रन्दन जैसी होती है, अर्थात वह अपनी पाप पूर्ण स्थिति देखकर करुणा या शोक से ईश्वर प्राप्ति के लिए क्रन्दन करती है। शतपथ ब्राह्मण १२.७.१.१२ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.४.५ इत्यादि के अनुसार सरस्वती के लिए अवि की बलि दी जाती है और सरस्वती को उपवाक की भेंट दी जाती है। इससे प्रतीत होता है कि अवि की स्थिति में हमारी वाक् अथवा मानसिक क्रिया कलाप शान्त होने पर ही सरस्वती की उपवाक् प्रकट होती है। यह उपवाक् व्यान प्राण का रूप होती है।

मैत्रायणी संहिता २.५.२, काठक संहिता १२.१३ तथा जैमिनीय ब्राह्मण १.८१ इत्यादि में अवि की चार स्थितियां कही गई हैं। पहली कृष्णा अवि पापों का नाश करने वाली है। दूसरी धूम्रा या फल्गु अवि, तीसरी बलक्षी या फल्गु अवि और चौथी वशा अवि है जो नीचे की दिशा से उत्पन्न होती है। यह वशा अर्थात शत्रुओं को वश में करने वाली अवि लोम रहित है। इसे लोम युक्त करने के लिए इसको अदिति रूपी अखण्ड शक्ति से, पृथिवी से जोड़ना पड़ता है (तैत्तिरीय ब्राह्मण १.२.५.२)। यह विचारणीय है कि अथर्ववेद के अवि सूक्त में कथित शितिपात् अवि कौन सी स्थिति है। ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लेख है कि जहां अजा की श्रेष्ठता एक पाद होने में है, अवि की श्रेष्ठता दो पाद होने में। शतपथ ब्राह्मण ६.१.२.३३ के आधार पर यह दो पाद पृथिवी और द्यौ कहे जा सकते हैं।

अविज्ञात भागवत ४.२८ (पुरंजन - मित्र, ब्राह्मण रूप में स्त्री योनि धारी पुरंजन को बोध), भा ५.२०.९ (शाल्मलि द्वीप के ७ खंडों में से एक), ब्रह्माण्ड १.२.१०.७९ (अविज्ञात गति : ईशान / अनिल -शिवा पुत्र, वसुगण वंश), वायु ६६.२५ (वही)

टिप्पणी : अविज्ञात वैदिक साहित्य के अल्प-प्रयुक्त शब्दों में से है। अथर्ववेद १२.४.१६ में उल्लेख है कि जब गौ अविज्ञातगदा (गद-शब्दे, गद्गद करने वाला शब्द), सती होकर तीन वर्षों/युगों/जन्मों तक चरती रहे तो उसे वशा अर्थात वन्ध्या जानना चाहिए। ऐसा लगता है कि भागवत पुराण में पुरंजन-मित्र अविज्ञात तथा ईशान व शिवा-पुत्र अविज्ञातगति के रूप में इसी मन्त्र की व्याख्या की गई है। पुरंजन-मित्र अविज्ञात अपने स्वरूप को प्रकट करते हुए कहता है कि वह ईश है, मानसरोवर पर विचरण करने वाले दो पक्षियों में से एक है, जबकि दूसरा पक्षी पुरंजन जीव का रूप है। यह उल्लेखनीय है कि अविज्ञात का प्राकट्य तभी होता है जब पुरंजन वासना रहित होकर वैदर्भी सती स्त्री बन जाता है। शुक्ल यजुर्वेद २४.५ के अनुसार अविज्ञाता को प्राप्त करने की अधिकारी अदिति, अखण्ड शक्ति है। अविज्ञात गदा या वाणी क्या है, इसका स्पष्टीकरण ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१०.११.४ के अनुसार इन्द्र ने भरद्वाज ऋषि को अविज्ञातों के रूप में तीन वेद रूपी तीन पर्वत दिखाए। बृहदारण्यक उपनिषद १.५.८ के वर्णन के अनुसार आत्मा के तीन रूप हैं - वाक्, मन और प्राण। इनमें वाक् विज्ञात है, मन विजिज्ञास्य है और प्राण अविज्ञात है। प्राण में प्राण, अपान, व्यान, उदान,

[illegible] प्राणों व [illegible] का ज्योतिमर्य रूप अग्नि, मन का सूर्य और प्राण का चन्द्रमा है। इस प्रकार प्राण में चन्द्रमा की १६ कलाओं का समावेश है। काण्व शतपथ ५.६.४.१ तथा काठक संहिता २७.९ के अनुसार यह अविज्ञात गर्भ जैसा है, लेकिन सामान्य गर्भ से इसमें अंतर यह है कि इसकी योनि हिरण्ययी है। इस गर्भ को जन्म देने के लिए संवत्सर रूपी १० मास की साधना अपेक्षित है।

पुराणों में जैसी जोड-तोड अविमुक्त शब्द के साथ की गई है, वैसी ही क्या अविज्ञात शब्द के साथ भी संभव है ? शुक्ल यजुर्वेद २४.५ तथा तैत्तिरीय संहिता ६.५.१०.१ में अविज्ञात शब्द के पूर्व अवि के उल्लेखों से यह संभव लगता है।

अविद्या विष्णु १.५.५ (पंचपर्वा अविद्या की सृष्टि), भविष्य ३.४.८.८९ (अव्यक्त से व्यक्त स्थिति में आने/अहंकार उत्पन्न होने पर १६ अंगों वाली बुद्धि का नाम, अन्य नाम अजा), भागवत ३.२०.१८ (ब्रह्मा द्वारा स्व छाया से पंचपर्वा अविद्या की सृष्टि), योगवासिष्ठ ३.११३+ (अविद्या की निन्दा व ० निग्रह का उपाय वर्णन), ४.४१+ (वही), योव ६.१.८ (संसार वन में ० की लता रूप में कल्पना), ६.१.९ (अविद्या के संक्षय से विद्या का उदय कथन), योव ६.१.१० (वासना त्याग व सतत् अवलोकन से अविद्या नाश कथन), ६.२.१०८+ (अविद्या के संदर्भ में राजा विपश्चित् की विस्तृत कथा), नारद १.४६.८६ (केशिध्वज नृप द्वारा खाण्डिक्य को अविद्या तरु का स्वरूप कथन), ब्रह्माण्ड १.१.५.३२ (पंचपर्वा अविद्या का उल्लेख), वराह ३१.१५ (अविद्या विजय के रूप में शंख प्रतीक का उल्लेख), पद्म ६.३०.३७ (अविद्या तम से व्याप्त संसार में दीप द्वारा ज्ञान व मोक्ष प्रदान करने का मंत्र), ६.१३२.८३ (अविद्या के कारण लोक में कर्म के स्वरूप का ज्ञान न होने का उल्लेख; विष्णु दैवत्य कर्म होने पर गर्भ से मुक्ति), ६.२२७.५२ (सर्ग, स्थिति और लय रूप से अविद्या प्रकृति माया के तीन गुणों का उल्लेख; तुलनीय -शांडिल्योपनिषद ३.१ में अविद्या के लोहित, शुक्ल व कृष्ण रूपों का उल्लेख), स्कं १.१.२४.६२ (काम द्वारा अविद्या से आवृत करके मोहित किए जाने पर शिव द्वारा विवाह को अविद्या का मूल कहना), १.२.१३.५९ (संवर्त ऋषि द्वारा अविद्या के अंतर्गत होने वाले हिंसात्मक यज्ञ से अपना प्रयोजन न होने का कथन), १.२.४२.१५१ (अविद्या के घोर वन और विद्या महावन का वर्णन), २.३.२.३५ (विद्याश्रित होकर सकल ईश और अविद्या द्वारा जीव की उपासना का उल्लेख), २.३.५.१९ (अविद्या के प्रतिबिंब से जीव भाव प्राप्त होने का उल्लेख), ३.१.४३.११ (दीप आरोपण से अविद्या पटल नाश का उल्लेख), महाभारत शान्ति २१८.३३ (अविद्या रूपी क्षेत्र में कर्मबीज तथा तृष्णा रूपी स्नेह का उल्लेख), ३०७.४ (अविद्या के अव्यक्त प्रकृति, २४ तत्वों की परमेश्वरी, सर्ग व प्रलय धर्मी होने तथा २५वें तत्व के सर्ग-प्रलय से मुक्त विद्या होने का उल्लेख), आश्वमेधिक ५१.२८ (अव्यक्त से १६ विशेषान्त तक अविद्या लक्षण होने का उल्लेख), ५१.३१ (जन्तु के कर्म से षोडशात्मक होने तथा पुरुष के अविद्या से ग्रसे जाने आदि का उल्लेख)

टिप्पणी:सम्पूर्ण त्रिपाद्‌विभूति महानारायणोपनिषद तथा महोपनिषद के चौथे व पांचवें खण्ड अविद्या और विद्या से सम्बन्धित हैं। इस वर्णन के अनुसार प्रणवात्मक ब्रह्म का एक पाद अविद्या पाद है और शेष तीन पाद क्रमशः विद्यापाद, आनन्दपाद और तुरीय पाद हैं। जितना कार्य और कारण का विश्व जाल है, वह सब अविद्यापाद के अन्तर्गत आता है। कार्य और कारण के संदर्भ में तीर्थंकर महावीर का अपने शिष्यों से वार्तालाप उल्लेखनीय है जहां वे जगत के दुःखों का दर्शन करने पर शिष्यों को उस दुःख के पीछे छिपी हुई पूर्व जन्म की घटनाएं सुनाते हैं। कार्य के पीछे कारण को जानने की यह शक्ति प्रज्ञा के विकसित होने पर आती है। प्रज्ञा का विकास जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय, इन चार अवस्थाओं में से सुषुप्ति अवस्था में कहा गया है। सुषुप्ति की प्रज्ञा अवस्था के विकास से पूर्व स्वप्नावस्था का विकास करना होता है। स्वप्नों का कारण हमारी अतृप्त वासनाएं होती हैं। उल्लेख आता है कि जिस रात्रि में गौतम बुद्ध को स्वप्न नहीं दिखाई पड़े, उस समय उन्होंने जान लिया कि उन्हें अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति हो गई है। योगवासिष्ठ आदि पौराणिक साहित्य में वासनाओं को समाप्त करने के उपायों का प्रचुरता से वर्णन किया गया है। इस वर्णन के अनुसार संसार को भोगने की इच्छा की निवृत्ति का एक उपाय तो यह है कि हम पृथिवी, जल, अग्नि आदि महाभूतों में धारणा योग का विकास करें। लेकिन इस धारणा योग से मनुष्य केवल प्रबुद्ध बन सकता है, उसे मोक्ष नहीं मिल सकता। मोक्ष तो तभी मिल सकता है जब वह तुरीयातीत अवस्था में पंहुच जाए, जहां अपनी और परायी देह में अंतर का भान नहीं रहता। यही पौराणिक भक्ति है। वराह पुराण में अविद्या विजय के रूप में शंख का उल्लेख स्कन्द पुराण २.४ आदि में वर्णित जालन्धर-वृन्दा तथा तुलसी - शंखचूड की कथा में निहित जाग्रत, स्वप्न आदि चतुर्व्यूह की व्याख्या से स्पष्ट किया जा सकता है। इस कथा के रहस्यों का उद्घाटन अन्यत्र दृष्टव्य हैं।

अविद्या का, तम का विकास संसार में क्यों हुआ, इस प्रश्न का उत्तर यद्यपि त्रिपाद् विभूति महानारायणोपनिषद आदि में दिया गया है, लेकिन इसका निहितार्थ ज्ञात न होने से यह प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है। ईशोपनिषद्ध तथा पैप्पलाद संहिता ६.३.२ के अनुसार अविद्या का उपयोग मृत्यु से पार जाने में और विद्या का उपयोग अमृत प्राप्त करने के लिए होता है। न तो केवल अविद्या का मार्ग पर्याप्त है, न केवल विद्या का। इन दोनों को साथ लेकर चलना

पड़ेगा। मैत्रायणी उपनिषद ७.९ के अनुसार बृहस्पति ने शुक्र का रूप धारण करके इन्द्र के अभय और असुरों के क्षय के लिए अविद्या की सृष्टि की। ईशोपनिषद में अविद्या की व्याख्या करते समय डा० अभयदेव शर्मा आदि का विचार है कि चूंकि आधुनिक विज्ञान मनुष्य को मृत्यु के पार ले जाता है, अतः यह अविद्या है, जबकि ब्रह्मविद्या से मनुष्य को अमृत प्राप्त होता है, अतः वह विद्या है। दूसरा दृष्टिकोण कर्मकाण्ड के इस कृत्य से समझा जा सकता है कि अविद्वान ब्राह्मण को ग्रन्थ भेंट करते हैं। इसका तात्पर्य होगा कि विद्या प्राप्ति से पूर्व अविद्वान बनना, अन्तःप्रेरणा को विकसित करना आवश्यक है। इस अन्तःप्रेरणा को ही अविद्या की स्थिति कहा जा सकता है। पुराणों में अविद्या से उत्पन्न वृक्ष स्वागत योग्य नहीं है, अपितु मूल अविद्या स्वागत योग्य है जिसे स्कन्दपुराण में (पुरुष व प्रकृति का ?) विवाह कहा गया है। महाभारत में २४ तत्वों की परमेश्वरी अविद्या के संदर्भ में तन्त्र साहित्य में क से लेकर म तक २५ व्यंजनों में से अंतिम २५वें तत्व म को पुरुष कहा जाता है। यह केवल एक सांकेतिक भाषा है जिसका विस्तार अपेक्षित है।

बृहदारण्यक उपनिषद ४.४.३ में अविद्या द्वारा आत्मा का उपसंहार करके नया शरीर आदि धारण करने का वर्णन है जिसका क्रियात्मक रूप समझने की आवश्यकता है।

अविन्ध्य वा.रामायण ५.३७.१२ (रावण का सम्मान प्राप्त एक मेधावी राक्षस, रावण को भावी विनाश का पूर्वकथन, सीता को लौटा देने का परामर्श)

अविमुक्त स्कन्द २.२.१२ (० क्षेत्र : शिव द्वारा स्थापना, कृष्ण द्वारा काशिराज वध), ४.१.२६ (० क्षेत्र माहात्म्य, निरुक्ति, अन्तर्वर्ती तीर्थ माहात्म्य), ४.१.३३.१६९ (शिव के शरीर में दक्षिण कर का रूप), ४.१.३९.७४+ (अविमुक्तेश्वर लिंग माहात्म्य, ० क्षेत्र प्राप्ति उपाय), स्क ५.२.७८ (० लिंग माहात्म्य, मनोरमा द्वारा पिता सहित पूजा, पूर्व जन्म वृत्तांत), देवीभाग ७.३८ (० क्षेत्र में विशालाक्षी देवी का वास), ब्रह्माण्ड २.३.६७.६२ (वाराणसी का नाम, शब्दार्थ), लिंग १.९२.१४२ (निरुक्ति), मत्स्य १८१+ (० क्षेत्र माहात्म्य), दृ. काशी, वाराणसी

टिप्पणी : जाबालोपनिषद में नासिका मध्य में वरणा नाडी में स्थित आत्मा रूपी अविमुक्त क्षेत्र की महिमा का वर्णन किया गया है। पुराणों में अविमुक्त शब्द की व्याख्या अलग -अलग प्रकार से की गई है। एक व्याख्या तो यह है कि जिस क्षेत्र को शिवजी कभी नहीं त्यागते (अ -विमुक्त), वह अविमुक्त है। दूसरी लिंग पुराण के अनुसार व्याख्या यह है कि अवि पाप को कहते हैं और उससे मुक्त अविमुक्त है। अवि शब्द पर पहले विचार किया जा चुका है। इस के अतिरिक्त, शतपथ ब्राह्मण १२.७.१.३ में उल्लेख है कि इन्द्र की नासिका से स्रवित वीर्य से अवि की उत्पत्ति हुई (अ - वीर्य = अवि?)। इसका निहितार्थ यह ले सकते हैं कि जब प्राण की गति स्थिर हो जाए तो वह अविमुक्त होगा। यदि अवि के पुल्लिंग शब्द मेष पर विचार किया जाए तो अक्षियों के निमेष उन्मेष से मुक्ति पाना ही अविमुक्त होगा। इसको भ्रूमध्य में स्थित वाराणसी/अवि मुक्त क्षेत्र में असि और वरणा नदियों के संगम से सम्बद्ध कर सकते हैं।

अवियुक्त स्कन्द ७.३.५७ (० क्षेत्र माहात्म्य, शक्र द्वारा पुनः राज्य से युक्त होना)

अवीक्षित मार्कण्डेय १२२+ (करन्धम व वीरा - पुत्र, ग्रहों की विशेष स्थिति से नाम की सार्थकता, विशाला कन्या के स्वयंवर में विशाला का हरण, अन्य राजाओं द्वारा बन्धन व मोचन, विशाला का त्याग, वन में तपोरत विशाला की राक्षस से रक्षा व विवाह, मरुत्त पुत्र प्राप्ति आदि), लक्ष्मी नारायण १.४०९ (वही)

अव्यंग नारद १.११६.२९ (श्रावण शुक्ल सप्तमी को ० व्रत विधि), भविष्य १.१४२.१२ (० की वासुकि नाग से उत्पत्ति, सूर्य आराधना में ० धारण माहात्म्य)

अव्यय मत्स्य १९५.१३ (भृगु व पुलोमा के १२ पुत्रों में एक), ब्रह्माण्ड २.३.१.९० (वही), ३.४.१.१०२ (१३वें मन्वन्तर में एक ऋषि), विष्णु ३.२.४० (वही), वायु ६७.३४ (स्वायंभुव मन्वन्तर में अजित देव गण में से एक), पद्म ५.१०६.६४ (अव्यया ब्राह्मणी : नारद से पति की मृत्यु का ज्ञान होने पर चिता में भस्म होना, पति द्वारा मृत्यु पश्चात श्वान योनि प्राप्ति, श्वान का मृत्यु पश्चात शिव गण बनना), स्कन्द ३.३.१२.२२ (० शिव से शयन स्थिति में रक्षा की प्रार्थना)

टिप्पणी : गोपथ ब्राह्मण १.१.२६ में अव्यय की परिभाषा दी गई है। जो व्यक्ति संसार में रहते हुए भी, उसका उपभोग करते हुए भी अपनी ऊर्जा को व्यय न होने दे, वह अव्यय कहलाता है। शांखायन आरण्यक ३.७ के अनुसार जब सिर सामवेद का, उदर यजु का और मूर्ति? ऋग्वेद का रूप हो जाए तो अव्यय स्थिति आती है। गीता १५.१ के अनुसार जब अश्वत्थ का मूल ऊपर और शाखाएं नीचे हो जाएं तो वह स्थिति अव्यय कहलाती है।

अशना भागवत ६.१८.१७ (बलि - पत्नी, बाण आदि १०० पुत्र)

अशनिप्रभ वा.रामायण ६.४३.१२ (रावण सेनानी, द्विविद से युद्ध)

अशून्यशयन स्कन्द २.७.१०.३ (० व्रत विधि व माहात्म्य), स्क ६.४१ (चातुर्मास में शान्ति हेतु ० व्रत माहात्म्य : इन्द्र द्वारा बाष्कलि का वध), ६.२३१

(इन्द्र द्वारा वृत्र के भय से मुक्ति हेतु ० व्रत चीर्णन : सांकृति मुनि -वृक असुर कथा), ६.२६५.२३ (० व्रत माहात्म्य), पद्म २.८८ (० व्रत : दिव्या देवी की पति मरण दोष से मुक्ति), मत्स्य ७१ (० द्वितीया व्रत : श्रावण कृष्ण द्वितीया को गोविन्द पूजा, शय्या दान), अग्नि १७० (० व्रत : श्रावण कृष्ण द्वितीया), नारद २.११ (० व्रत : श्रावण द्वितीया को व्रत अनुष्ठान से शूद्र का राजा रुक्मांगद बनना), भविष्य ४.१५ (० व्रत विधि व माहात्म्य), विष्णु धर्मोत्तर १.१४५ (० द्वितीया व्रत विधि व माहात्म्य), लक्ष्मी नारायण २.२७.६५ (०द्वितीया व्रत विधि : लक्ष्मी -कृष्ण पूजा, चातुर्मास्य व्रत)

अशोक पद्म १.२८.२४ (वृक्ष, शोक नाशकारी), १.२९.२६ (ललिता देवी आराधना के संदर्भ में ओष्ठ में ललिता का अशोकवनवासिनी नाम से न्यास), गरुड १.१३३.२ (० अष्टमी व्रत), वा.रामायण ५.१४ (० वाटिका : हनुमान द्वारा लंका में शोभा दर्शन), ५.२२.२८ (कल्पवृक्ष रूपी रावण के कुण्डलों की दो अशोक वृक्षों से उपमा), ५.४१.२० (० वाटिका : प्रमदा वन नाम, हनुमान द्वारा विध्वंस), ७.४२ (० वनिका : शोभा वर्णन, राम -सीता का विहार), भविष्य ४.९ (० व्रत विधि व माहात्म्य : अशोक वृक्ष की पूजा), भ ४.१०५ (० पूर्णिमा व्रत), लक्ष्मी नारायण १.४४१.८० (वृक्ष, विद्युत का रूप), स्कन्द २.५.७.२३ (पुष्पों की आपेक्षिक महिमा कथन के संदर्भ में अशोक पुष्प के चम्पक पुष्प से श्रेष्ठ होने व शेवन्ती पुष्प से हीन होने का उल्लेख), ४.२.८०.३७ (चैत्र शुक्ल तृतीया को मनोरथ व्रत में नैवेद्य के रूप में अशोक वर्ति का उल्लेख), ४.२.८३.९२ (० तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य : शोक से मुक्ति), ५.३.१९८.७ (अशोक आश्रम में तपोरत माण्डव्य मुनि के शूल से पीड़ित होने तथा शिव कृपा से शूल के अमृतस्रावी होने का वृत्तांत), ६.२५२.३३ (० वृक्ष : विद्युत का रूप), नारद १.७०.५९ (अशोक फलक में तार्क्ष्य के लेखन व पूजन आदि से तार्क्ष्य/गरुड के प्रकट होने का कथन), १.७४.७८ (हनुमान द्वारा अशोक वाटिका में अक्षकुमार के वध का उल्लेख), १.८२.११९, १४४ (अशोक वन सन्नद्ध : कृष्ण व राधा के सहस्र नामों में से एक), १.८९.१२९ (अशोका : ललिता देवी के सहस्रनामों में से एक), १.११०.२७ (० व्रत : आश्विन शुक्ल प्रतिपदा), १.११७.२ (चैत्र शुक्ल अष्टमी को अशोक कलिका प्राशन का विधान), १.११७.७४ (० अष्टमी व्रत विधि), १.१२२.४१ (० त्रयोदशी व्रत विधि), अग्नि १७८.९ (चैत्र शुक्ल तृतीया को ललिता देवी का अशोक मधुवासिनी नाम से ओष्ठ में न्यास), १९४.१ (अशोक पूर्णिमा व्रत की संक्षिप्त विधि), ब्रह्मवैवर्त ४.२.१०३.५२ (नगर में आरोपण योग्य शुभ वृक्षों में से एक), महाभारत आदि ६७.१४ (अश्व नामक असुर के द्वापर में अशोक राजा के रूप में जन्म लेने का उल्लेख), ८२.२ (देवयानी की दासी शर्मिष्ठा का महल अशोक वनिका के निकट होने का कथन), वन ६४.१०१ (नल के विरह से पीड़ित दमयन्ती द्वारा अशोक वृक्ष से पति से मिलन कराने की प्रार्थना), २८०.४२ (अशोक वाटिका में राक्षसियों द्वारा सीता को भय प्रदर्शन आदि), २८९.२७ (अशोक वाटिका में सीता के वध को उद्धत रावण को मन्त्री अविन्ध्य द्वारा शान्त करना), शान्ति १९८.८ (परमात्मा के अशोक/शोकरहित होने आदि का उल्लेख), ३२९.२० (नारद द्वारा शुकदेव को शोक त्याग कर अशोक स्थान में स्थित होने का निर्देश), ३३०.१ (शास्त्रों द्वारा अशोक होने का उल्लेख), अनु १९.२९ (अष्टावक्र द्वारा बाहुदा नदी तट पर अशोक तीर्थ में विश्राम का उल्लेख), १४९.५० (विष्णु सहस्रनामों में से एक)

टिप्पणी : अशोक शब्द के लिए अक्षोक - अक्षों का घर शब्द पर विचार करना चाहिए। अक्ष-ओक अशोक का पूर्व रूप हो सकता है। रामायण व महाभारत में जो राक्षसियां सीता को अशोकवाटिका में भय दिखाती हैं, उनके विकृत अंगों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त अशोक वाटिका के संदर्भ में केवल अक्षकुमार के वध का उल्लेख करके भी काम चला लिया गया है। रामायण में रावण के कुण्डल-द्वय की तुलना अशोक वृक्ष-द्वय से करने से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि मनुष्य को वास्तविक शोक उसकी इन्द्रियों को, अक्षों को दिव्य आपः प्राप्त न होने का है। दिव्य आपः के अभाव में मनुष्य रूपी रथ के यह अक्ष तपते रहते हैं। इन्हें पर्जन्य द्वारा तृप्त करना होता है (तैत्तिरीय संहिता १.३.९.१, ७.२.७.५)।

वैदिक साहित्य में अशोक के संदर्भ में सामग्री उपलब्ध नहीं होती, लेकिन शोक का निपटारा कैसे करना है, इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। पुरुष, अश्व, गौ, अवि व अज नामक ५ पशुओं के आलभन/वध पर उनके हृदय में शोक उत्पन्न हो जाता है जिसे कोई स्थान देना है। कहा गया है कि इस हृदयशूल को पृथिवी आदि पर न रखे, ऐसा न हो कि यह ओषधि, वनस्पति आदि के माध्यम से यजमान में प्रवेश कर जाए। इसे आपः से घिरी पृथिवी पर, शुष्क व आर्द्र की सन्धि पर रखते हैं जहां आपः इसे शान्त कर देता है (शतपथ ३.८.५.१०)। हृदयशूल का यह उल्लेख स्कन्द पुराण में माण्डव्य ऋषि के शूल के अमृतस्रावी शूल में रूपांतरित होने की व्याख्या कर सकता है। इसके अतिरिक्त इन ५ ग्राम्य पशुओं के शोक के किम्पुरुष, गौर, गवय, उष्ट्र व शरभ नामक ५ आरण्यक पशुओं में जाने की कामना की गई है (शतपथ ७.५.२.३२)। मण्डूक जो अनुपयोगी है, में भी शोक के जाने की

कामना की गई है। ५ ग्राम्य पशुओं में से अज पशु की उत्पत्ति तो अग्नि के शोक से ही कही गई है (अथर्ववेद ९.५.१३, शतपथ ६.५.४.१६ इत्यादि)। अथर्ववेद का यह सूक्त अज पंचौदन से, अर्थात अपनी ५ इन्द्रियों को अज बनाकर उनमें उदान प्राण विकसित करने से सम्बन्धित है। कर्म काण्ड में प्रवर्ग्य कर्म में तप्त घृत में दुग्ध डालकर घर्म उत्पन्न करने के कर्म में अजा दुग्ध का ही उपयोग किया जाता है (शतपथ १४.१.२.१३)। प्रवर्ग्य कर्म हो चुकने के पश्चात जो शोक द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक व पृथिवी लोक में व्याप्त हो जाता है, उसकी शुद्धि के लिए विशेष प्रयत्न किया जाता है (शतपथ १३.३.१.२)। शोक के निदान का एक उपाय यह भी कहा गया है कि उसे उत्तरवेदी रूपी विराट चेतना में रख दिया जाए। शतपथ ब्राह्मण ९.१.२.१२ व तैत्तिरीय संहिता ५.४.४.१ इत्यादि में कामना की गई है कि जो शत्रु हमसे द्वेष करता है, हमारा शोक उसमें पंहुच जाए, वह वज्र बन कर उसे नष्ट कर दे।

अशोककरी कथासरित् १२.४.१५४ (हंसावली की सखी, अन्य सखी कनकमंजरी द्वारा ० की बलि देने की चेष्टा)

अशोकदत्त स्कन्द ३.१.८+ (गोविन्दस्वामी पुत्र, ० द्वारा मल्ल -हनन, राक्षसी से नूपुर प्राप्ति, मदनलेखा से विवाह, विद्युत्प्रभा से विवाह, सुवर्णकमल प्राप्ति, मुक्ति, पूर्व जन्म में विद्याधर), कथासरित् ५.२.७५ (वही)

अशोकमाला कथासरित् ९.२.३४ (बलसेन क्षत्रिय -पुत्री, हठशर्मा से बलपूर्वक विवाह, पूर्व जन्म में अशोककर विद्याधर की पुत्री)

अशोकवती कथासरित् ८.६.६ (राजा महासेन - पत्नी, गुणशर्मा मन्त्री पर आसक्ति, मन्त्री द्वारा उपेक्षा पर मन्त्री के विरुद्ध षड्यन्त्र)

अशोकसुंदरी पद्म २.१०२+ (पार्वती के चिन्तन से उत्पत्ति, नहुष -पत्नी, हुण्ड दैत्य द्वारा हरण, नहुष द्वारा रक्षा करना)

टिप्पणी : अशोकसुन्दरी का जन्म पार्वती उमा द्वारा कल्पवृक्ष के नीचे चिन्तन द्वारा हुआ है। अतः अशोकसुन्दरी को ओंकार की शक्ति कह सकते हैं। अशोकसुन्दरी का पति नहुष यह पाशों में बंधा जीवात्मा है (नह - बन्धने)। नहुष द्वारा अशोकसुन्दरी रूपी ओंकार की शक्ति की प्राप्ति में हुण्ड असुर बाधा है। हुण्ड की प्रकृति का निर्णय करते समय ऐसा कहा जा सकता है कि एक ओर सु है तो दूसरी ओर हु, हुलहुली। हु से सु को जाना है। - फतहसिंह

लौकिक साहित्य में किसी सुन्दरी के पदाघात से ही अशोक वृक्ष के पुष्पित होने की किंवदन्ती प्रचलित है। यह अशोकसुन्दरी क्या है, यह पुराणों से स्पष्ट हो जाता है।

अशौच मत्स्य १८.१ (मृत्यु पर अशौच काल), गरुड १.१०६ (मृत्यु पर ०), गड १.२१४ (विभिन्न पातकों के लिए ० काल निर्धारण), २.१४ (बाल मृत्यु पर ० काल), अग्नि १५७ (मृत्यु पर ० वर्णन), विष्णु ३.१३.१२ (मृत्यु पर ० विधान), विष्णु धर्मोत्तर ३.२.३१.+ (विभिन्न परिस्थितियों में द्रव्यों व स्वयं की शुद्धि विधि), भविष्य १.१८६ (विभिन्न संस्कारों में ०), दृ. शुद्धि

अश्म वा.रामायण ७.२३.१७ (० नगर में कालकेयों का वास, रावण द्वारा ० नगर में विद्युज्जिह्व का वध), स्कन्द ५.३.१३६.१७ (अहल्या द्वारा अश्ममय शरीर त्याग की कथा), विष्णु धर्मोत्तर १.६८ (परशुराम का वरुण के अश्म नगर में प्रवेश, नगर शोभा वर्णन, दैत्यों का नाश)

टिप्पणी : अश्म/पत्थर पापों के नष्ट होने पर अमा स्थिति प्राप्त करने के पश्चात चेतना के व्याप्त होने की स्थिति है (अथर्ववेद ४.१८.३)। शतपथ ब्राह्मण ३.४.३.१३ इत्यादि के अनुसर यह नष्ट हुए वृत्र रूप अज्ञान का शरीर है। यह वह स्थिति है जब स्वर्णिम ज्योति के दर्शन नहीं हुए हैं (शतपथ ६.१.३.५)। ऋग्वेद ७.८८.२ के अनुसार अश्म का अधिपति वरुण माया के रूप का दर्शन करा सकता है। यह ऋचा पुराणों में वरुण द्वारा परशुराम को काल का ज्ञान प्रदान करने से सम्बन्धित हो सकती है। परशुराम को अग्नि का रूप कहा जा सकता है। ऋग्वेद की कई ऋचाओं जैसे २.१२.३ में अश्मा के अंदर अग्नि को जानने की कामना की गई है। रामायण के विवरण के अनुसार रावण अश्म नगर में सुरभि गौ के दर्शन करता है। ऋग्वेद की कई ऋचाओं जैसे ४.१६.६ में अश्म की ऊर्ध्वमुखी स्थिति (अश्मानं चित्) में गायों के व्रज या गोष्ठ के उद्घाटन होने का उल्लेख है।

अश्मक विष्णु ४.४.७१ (राजा सौदास की रानी मदयन्ती के गर्भ से उत्पन्न क्षेत्रज पुत्र, मूलक -पिता), भागवत ९.९.३९ (वही), ब्रह्माण्ड १.२.१६.५८ (दक्षिण का एक देश), गरुड १.५५.१३ (वही), मत्स्य २७२.१६ (कलियुग में २५ अश्मक राजाओं के राज्य का कथन)

टिप्पणी : पुराणों में सौदास की पत्नी मदयन्ती द्वारा सात वर्ष पश्चात गर्भ पर अश्म से प्रहार के संदर्भ में सात वर्ष साधना के सात वर्ष हैं। यह छह या सात वर्ष वृत्र रूपी पाप के नष्ट होने का काल है। ऋग्वेद १.१३०.३ की ऋचा इस संदर्भ से जुडी प्रतीत होती है।

अश्मसारी विष्णु ४.२०.२१ (शन्तनु - मन्त्री, शन्तनु -अग्रज देवापि को वेद मार्ग से विरुद्ध करने का उद्योग)

अश्रु पद्म २.७७.६६ (रति के काम से वियोग होने पर उत्पन्न अश्रुओं से शोक, जरा, कामज्वर आदि की

सृष्टि व काम से संयोग के समाचार पर उत्पन्न अश्रुओं से प्रीति, शांति, कमल आदि की उत्पत्ति), २.१०१.३८ (स्त्री के अश्रुओं से कमलों की उत्पत्ति कथा), २.१२१.१० (कामोदा के अश्रुओं से कमलों की उत्पत्ति व विहुण्ड दैत्य के नष्ट होने की कथा), स्क ४.२.९३.८ (ब्रह्मा का वैभव देखकर रुद्र का आनन्द अश्रुओं से पूर्ण होना), ब्रव २.३०.२५ (नरक में अश्रुकुण्ड प्रापक दुष्कर्म कथन)

टिप्पणी : वैदिक व पौराणिक साहित्य में जहां देवों आदि के द्वारा अश्रु बहाने का उल्लेख आता है, वह करुणा के, जीव की अवस्था पर करुणा से द्रवित होने के कारण उत्पन्न अश्रु होते हैं। -फतहसिंह

अश्रुओं के बारे में उपरोक्त पौराणिक संकलन आंशिक है। वैदिक साहित्य में जहां अश्रु का उल्लेख आया है, वह अधिकांश रूप में चेतना की व्याप्त स्थिति (अश् -व्याप्तौ) से सम्बन्धित है। इस प्रकार शतपथ ब्राह्मण ४.२.१.११, ६.१.१.११, ६.३.१.२८ इत्यादि में कहीं तो अश्रुओं से अश्व का जन्म होता है तो कहीं अश्व के अश्रुओं से यव की उत्पत्ति होती है। यह यव की स्थिति सर्वोच्च आनन्दमय/हिरण्यय कोश से नीचे विज्ञानमय कोश की स्थिति है जो यव की भांति ऊपर के कोश से जुडा है; दो भाग होते हुए भी एक इकाई है। तैत्तिरीय संहिता १.५.१.१ में अग्नि के अश्रुओं से रजत हिरण्य का जन्म कहा गया है जो उपरोक्त कथन की पुष्टि करता है। शतपथ ब्राह्मण १२.७.१.२ में सौत्रामणी याग के संदर्भ में अश्रुओं से स्रवित तेज से कुवल/उत्पल की उत्पत्ति का उल्लेख है जो पुराणों के कमल की उत्पत्ति के उल्लेखों से साम्यता रखता है। रुद्र जाबालोपनिषद १.३ में शिव द्वारा चक्षु का निमीलन करने पर जो जल बिन्दु उत्पन्न हुए, उनसे रुद्राक्ष उत्पन्न हुए और चक्षुओं का उन्मीलन (खोलना) करने पर जो अश्रु गिरे, उनसे रुद्राक्ष के वृक्ष उत्पन्न हुए। यह चेतना की व्याप्ति की ओर संकेत करता है। शतपथ ब्राह्मण ९.१.१.६ के उल्लेख के अनुसार जब शिव अन्तर्मुखी हुए तो वह करुणावश जीव की दशा पर रोए। उनके अश्रु उनके मन्यु में स्थित हो गए। उससे शतशीर्ष रुद्र की उत्पत्ति हुई।

शतपथ ब्राह्मण ६.१.२.२ में पृथिवी, वायु और आकाश इन तीन स्तरों पर अश्रुओं से क्रमशः वयांसि/पक्षी, अश्मा पृश्नि और नक्षत्रों की उत्पत्ति का वर्णन है।

अश्रुता कथासरित् १४.१.२४ (अष्टावक्र - भ्राता कन्या, अंगिरा की पत्नी बनना, अंगिरा की सावित्री पर आसक्ति जानकर आत्म हत्या की चेष्टा)

अश्रुबिन्दुमती पद्म २.७७.७८ (रति के आनंद अश्रुओं से ० की उत्पत्ति, ययाति की ० पर आसक्ति, ० को प्राप्त करने के लिए ययाति द्वारा जरा त्याग का उद्योग), प २.८१.३१ (० को भोगने के पश्चात ययाति में वैराग्य की उत्पत्ति, अश्रुबिन्दुमती को त्याग कर पूरु पुत्र से जरा का ग्रहण)

अश्व विष्णु धर्मोत्तर २.११ (निकृष्ट व उत्कृष्ट अश्वों के शरीर लक्षणों का वर्णन), २.४५ (० प्रशंसा, देवों के वाहक अश्व सपक्ष, मनुष्यों के अपक्ष), २.४६ (० चिकित्सा वर्णन), विध २.४७ (० शान्ति कर्म कथन), २.१६०.४ (० मन्त्र कथन), हरिवंश ३.५.१३ (जनमेजय की पत्नी वपुष्टमा से समागम के लिए इन्द्र द्वारा अश्वमेधीय यज्ञ के मृत अश्व में प्रवेश करके वपुष्टमा को प्राप्त करना), स्कन्द १.३.२.२२ (शोणाचल में गिरने से अश्व को खेचरत्व प्राप्ति), स्क ३.२.१५ (वम्रियों के कारण शिर छेदन होने पर विष्णु का अश्व शिर से युक्त होकर हयग्रीव बनना), स्क ६.१६५ (ऋचीक द्वारा गाधि -कन्या प्राप्ति के लिए मन्त्र जप द्वारा श्याम कर्ण अश्वों की प्राप्ति), ७.१.१६६.३१ (सावित्री के भावी पति सत्यवाक् की अश्व प्रियता का उल्लेख), पद्म १.३.१०६ (ब्रह्मा के पद से ० की सृष्टि), १.२०.१३२ (० व्रत माहात्म्य एवं विधि), १.४०.९७ (अश्वग : मरुत नाम), ५.९ (अश्वमेध योग्य ०, अगस्त्य -राम संवाद), ५.४८ (हेमकूट पर्वत पर राक्षस द्वारा राम के यज्ञीय अश्व का गात्र स्तंभन, मुक्ति), ५.६७.४९ (राम के अश्वमेध में ० द्वारा दिव्य रूप प्राप्ति, पूर्व जन्म में द्विज, दुर्वासा शाप से अश्व), प ६.१८६ (राजा बृहद्रथ के यज्ञीय अश्व की इन्द्र द्वारा चोरी, गीता के १२वें अध्याय के प्रभाव से पुनः प्राप्ति), ६.१८९ (पूर्व जन्म में सरभ -भेरुण्ड नामक सेनापति, गीता के १५वें अध्याय के श्रवण से मुक्ति), मत्स्य २२.७१ (० तीर्थ में श्राद्ध व दान माहात्म्य), म ४९.४९ (अश्वजित् : जयद्रथ -पुत्र, सेनजित् -पिता, अजमीढ वंशज), म ९३.६९ (विष्णु -रूप अश्व से शान्ति की कामना), १०१.७१ (० व्रत), १७१.५३ (अश्वमित्र : मरुत नाम), २८० (हिरण्याश्व दान विधि), लिंग २.३९ (हिरण्य अश्व दान विधि), गरुड १.८७.२४ (महाकाल दानव वध हेतु विष्णु का ० रूप में अवतार), कूर्म १.७.५५ (ब्रह्मा के पदों से ० की सृष्टि), अग्नि २३२.२५ (० द्वारा शुभाशुभ शकुन ज्ञान), २६९.४ (० प्रार्थना मन्त्र), अग २८८ (अश्व वाहन सार : वाहन -वाहक लक्षण आदि, अश्व -मन्त्र), अग २८९ (० चिकित्सा वर्णन), २९० (० शान्ति कथन), गर्ग ५.१६० (इन्द्र -अनुचर कुमुद का इन्द्र के शाप से केशी अश्व बनना), ७.३.१७ (प्रद्युम्न -सेना के अश्वों की विविधता वर्णन), १०.८ (अश्वमेध यज्ञ हेतु उपयुक्त अश्व अवलोकन), १०.१३.४३ (कृष्ण की अश्वशाला में अश्वों के प्रकार), गर्ग १०.५६ (उग्रसेन के अश्वमेधीय यज्ञ पशु का कर्पूर द्रव्य में रूपांतरण), देवीभाग २.१२.११ (सूर्य रथ के अश्व के वर्ण के सम्बन्ध में कद्रू -विनता के विवाद की कथा),

देभा ६.१७.५१+ (लक्ष्मी का रेवन्त के वाहन उच्चैश्रवा को देखकर मोहित होना, विष्णु शाप से वडवा बनना, वडवा का हय रूप धारी विष्णु से समागम, हैहय पुत्र उत्पत्ति), वराह १५१.२२ (लोहार्गल क्षेत्र में आकाश से पृथ्वी पर आते हुए अश्व की कल्पना), ब्रह्म १.११.४ (रौद्राश्व : सुबाहु -पुत्र, दशार्णेयु -पिता, पूरु वंश), १.११.९४ (बाह्याश्व : पुरुजाति -पुत्र, कृमिलाश्व आदि के पिता, अजमीढ वंश), वामन ९.२६ (अन्धकासुर व उसके सेनानियों के रथों के अश्वों का वर्णन), ५९.३ (राजा ऋतध्वज द्वारा विश्वावसु गन्धर्व से प्राप्त अश्व पर आरूढ होकर पातालकेतु राक्षस वध की कथा), वायु ५२.४५ (सूर्य व अन्य ग्रहों के रथों में अश्वों के नाम, वर्ण), ६१.२२ (याज्ञवल्क्य -शिष्यों का अश्व बनकर सूर्य से यजुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करना), ९६.११४ (चित्रक -पुत्र, अनमित्र -वंश), भविष्य २.१.१७.१४ (अश्वाग्नि का मन्थर नाम), ३.३.१०.४० (देशराज द्वारा हय प्राप्ति के लिए सूर्य की आराधना, पपीहक हय प्राप्ति, अश्वों के अन्य अंशावतारों का वर्णन), ३.३.१६.४ (राजा गजसेन द्वारा पावक की आराधना से पावकीय हय प्राप्ति, युद्ध में हय द्वारा शत्रुसेना को जलाना), भ २.१.१७.१४ (अश्वाग्नि का मन्थर नाम), ३.३.१६.५४ (इन्दुल का वडवामृत हय : हय से उत्पन्न मेघों द्वारा अग्नि के हय से उत्पन्न पावक का शमन, वीरों का पुन: संजीवन), ३.३.२१.२० (मकरन्द द्वारा धर्म से शिलाश्व प्राप्ति), ३.३.२५.५१ (बलखानि द्वारा कपोत हय पर आरूढ होकर १२ गर्त पार करने का प्रयास), ३.३.३१.१०७ (आह्लाद, बलखानि आदि वीरों के अश्वों के नाम व दिव्य अंश कथन), ३.३.३२.१९५ (तारक द्वारा मनोरथ नामक हय का वध), भ ४.१३८.४८ (० मन्त्र), ४.१४१ (शुक्र के लिए श्वेत अश्व का दान), भ ४.१८०.३६ (० रथ दान विधि, वेद रूप अश्व), ४.१८६ (हिरण्य ० दान विधि), विष्णु ४.७.१४ (ऋचीक द्वारा सत्यवती से विवाह हेतु गाधि को शुल्क रूप में एक सहस्र श्याम कर्ण अश्व देना), ब्रह्माण्ड १.२.२३.५६ (चन्द्रमा के रथ में १० अश्वों के नाम), १.२.३६.३५ (तृतीय मन्वन्तर में सत्य नामक देवगण में अश्व व सदश्व देव नाम), २.३.७.१३६ (खशा का एक पुत्र), २.३.११.७६ (अश्व प्रजापति के बालों से काश की उत्पत्ति), ३.४.१६.१४ (ललिता देवी की सहचरी अश्वारुढा के अश्वों की विशेषताएं), मार्कण्डेय २०.४८ (समाधिस्थ गालव के समक्ष आकाश से अश्व का प्रकट होना, ऋतध्वज द्वारा अश्वारुढ होकर शूकर रूपी दानव का अनुगमन), भागवत ७.१०.६६ (धर्म रथ में ऋद्धि रूपी अश्वों का उल्लेख), लक्ष्मीनारायण १.६३.१८ (सूर्य का अश्व रूप धारण करके वडवा रूपी संज्ञा से समागम, अश्विनौ व रेवन्त की उत्पत्ति), १.१७०.४७ (कृष्ण के वाम कर्ण से श्वेत तुरंगों का आविर्भाव), लन १.४६४.१२ (उच्चैःश्रवा के रंग के सम्बन्ध में कद्रू व विनता के बीच शर्त), १.५०६.१७ (ऋचीक द्वारा ऋग्वेद सूक्त के जप से वरुण से श्याम कर्ण अश्वों की प्राप्ति), लन २.२३६.४० (बर्बुरि नृप द्वारा अश्व रूप धारी आश्वलायन मुनि का बंधन, शाप से बर्बुरी वृक्ष बनना), लन ३.३१ (वर्मधर नृप का अजहारित मुनि के शाप से अश्व बनना, पुत्र द्वारा अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान से अश्वत्व से मुक्ति), ३.१२८.३६ (हिरण्य अश्व दान विधि), कथासरित ३.४.८८ (आदित्यसेन के श्रीवृक्षक नामक अश्व की महिमा), कस ४.२.१८२ (उच्चैःश्रवा के रंग के सम्बन्ध में कद्रू -विनता विवाद), कस ५.३.८५ (शक्तिदेव द्वारा हयारुढ होने का प्रयास करने पर अश्व द्वारा वापी में क्षेपण), कस १०.३.६५ (सोमप्रभ को उच्चैःश्रवा -पुत्र आशुश्रवा नामक अश्व की प्राप्ति), कस ११.१.६ (हस्तिनी व अश्वों की जव परीक्षा में हस्तिनी की विजय की कथा), कस १८.२.२७७ (पवन जव, समुद्र कल्लोल, शरवेग, गरुड वेग आदि अश्वों की राजाओं द्वारा प्राप्ति), योगवासिष्ठ ३.१०४.३३+ (राजा लवण के समक्ष एन्द्रजालिक अश्व का प्रकट होना, राजा द्वारा अश्व पर आरूढ होकर पृथ्वी का भ्रमण करना व आपत्ति ग्रस्त होना, अश्व का अदृश्य होना), महाभारत वन ७७.१७ (राजा नल द्वारा राजा ऋतुपर्ण को अश्वविद्या सिखाना), १९२.४२ (राजा शल द्वारा मुनि वामदेव से प्राप्त वाम्य अश्वों को न लौटाने पर राक्षस द्वारा शल का वध), विराट ३.४ (नकुल द्वारा विराट को ग्रन्थिक नामक अश्व विशेषज्ञ के रूप में अपना परिचय देना), १२.१ (नकुल का विराट के अश्वों के रक्षक के रूप में नियुक्त होना), उद्योग ५६.१३ (गन्धर्वराज चित्ररथ द्वारा प्रदत्त अर्जुन के रथ के १०० अश्वों की विशेषता), ५६.१४ (भीम, सहदेव, नकुल आदि के रथों के अश्वों की विशेषताएं), ९४.१२ दाक्षिणात्य (श्रीकृष्ण के रथ के शैब्य, सुग्रीव आदि ४ अश्वों के वर्ण), ११४ (गालव द्वारा गुरुदक्षिणा हेतु ययाति से श्यामकर्ण अश्वों की याचना), ११६ (राजा हर्यश्व द्वारा २०० श्यामकर्ण अश्व देकर ययाति -कन्या से वसुमना नामक पुत्र उत्पन्न करना), ११७ (राजा दिवोदास द्वारा २०० श्यामकर्ण अश्व देकर ययाति -कन्या माधवी के गर्भ से प्रतर्दन नामक पुत्र उत्पन्न करना), ११८ (राजा उशीनर द्वारा २०० श्यामकर्ण अश्व देकर माधवी से शिबि नामक पुत्र उत्पन्न करना), १७९.३ (परशुराम के पृथ्वी रूपी रथ में वेद रूपी अश्व), द्रोण २३ (पाण्डव सेना के महारथियों के रथ, अश्वों आदि का वर्णन), ९७.२२ (धृष्टद्युम्न व

द्रोणाचार्य के अश्वों के वर्णों का उल्लेख), १०४.७ (कौरवों के कौलूतक हयों का उल्लेख), ११५.२० (सात्यकि के कुन्द इन्दु रजत प्रभ अश्वों का उल्लेख), १७५.१३ (घटोत्कच के लोहिताक्ष अश्वों का उल्लेख), १७६.१६ (राक्षसराज अलायुध के अश्वों की विशेषता : हस्तिकाय, खरस्वन आदि), १९६.३० (अश्वत्थामा द्वारा जन्म समय पर उच्चैःश्रवा अश्व के समान शब्द करने का उल्लेख), कर्ण ३४.१०५ (रुद्र द्वारा अश्वों के स्तन काटने का उल्लेख), ३८.८ (कर्ण द्वारा अर्जुन का पता बताने वाले को रथ सहित अश्वों आदि को पुरस्कार रूप में देने की घोषणा), ४६.३८ (अग्नि द्वारा अर्जुन के रथ के सप्ति/अश्व रूप में कार्य करने का उल्लेख), ६३.११ (कर्ण द्वारा युधिष्ठिर के कालवाल वाले अश्वों को मार डालने का उल्लेख), शान्ति १२४.१० (दुर्योधन के आजानेय अश्वों का उल्लेख), ३१८.३८ (अश्व और अश्वा के मिथुन का उल्लेख), अनुशासन ४.१६ (ऋचीक ऋषि द्वारा वरुण से श्यामकर्ण अश्व उत्पन्न करने का वरदान प्राप्त करना), ८४.४७ (सूर्य के अश्व होने का उल्लेख), आश्वमेधिक ५८.४२ (नागलोक में उत्तंक मुनि के समक्ष अश्व रूपधारी अग्नि का प्रकट होना, अश्व के अपान में धमन करने से उत्पन्न धूम्र से नागों का व्याकुल होना), ७२+ (अर्जुन द्वारा अश्वमेधीय अश्व की रक्षा के लिए अश्व का अनुगमन वर्णन) द्र. आश्वलायन, उग्राश्व, उच्चैःश्रवा, कपिलाश्व, कुवलाश्व, कुशाश्व, कृशाश्व, दृढाश्व, धूम्राश्व, पृषद ०, बर्हणाश्व, बलाश्व, बहुलाश्व, बृहदश्व, भद्राश्व, युवनाश्व, यौवनाश्व, रक्षाश्व, वड्वा, वध्र्यश्व, वाजी, विजिताश्व, विनीताश्व, विन्ध्याश्व, व्युषिताश्व, शबलाश्व, श्यावाश्व, श्वेताश्व, सप्ताश्व हय, हरिताश्व, हर्यश्व

टिप्पणी : मानव की ज्ञान, क्रिया और भावना, इन तीन चेतनाओं में से चेतना का भावनात्मक रूप जो सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त होने में समर्थ है, अश्व कहलाता है। वेदों में जब अश्व के बदले अश्वा: शब्द होगा तो वह केवल शरीर में व्याप्त होने में समर्थ होगा। अश्व बहिर्मुखी इन्द्रियों के द्वारों से बाहर को दौड लगाता है और काम क्रोधादि से अमेध्य पशु बन जाता है। उसे मेध्य बनाने के लिए अश्वमेध यज्ञ की आवश्यकता होती है -फतहसिंह

ऋग्वेद के १.१६२ व १.१६३ सूक्तों का देवता अश्व है। अश्व शब्द वेद के बहुधा प्रयुक्त शब्दों में से एक है। ऋग्वेद में प्राय: सभी देवताओं के साथ अश्व का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। व्यक्तिगत जीवन में साधना के क्षेत्र में अश्व का महत्वपूर्ण स्थान है। अश्व हमारी बहिर्मुखी वृत्तियों का, जिन्हें वैदिक साहित्य में सर्व नाम दिया गया है, का प्रतीक है (ब्रह्मसूत्र ३.४.२६ इत्यादि)। इन बहिर्मुखी वृत्तियों को सम्यक् प्रकार से नियंत्रित करने की आवश्यकता होती है। संभवत: इसी कारण से ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं में देवों से प्रार्थना की गई है कि वह अश्वों को रथ से युक्त कर दें। रथ रत धातु से बना है, अर्थात जो आत्मा में रत हो सके। बाहरी जीवन में रथ राजमार्ग पर चलता है। बहिर्मुखी वृत्तियों पर नियंत्रण का दूसरा विकल्प अश्व के सभी अंगों को देवों की शक्तियों द्वारा नियंत्रित करना है, जैसा कि ऋग्वेद १.१६२ व १.१६३ के अश्वसूक्तों व शुक्ल यजुर्वेद के अध्याय २५ में किया गया है। अंतर्मुखी होने के लिए अत्युत्तम उपायों में से एक है अपने श्वास -प्रश्वास पर ध्यान लगाना। सतत् प्रयासों से यह संभव है कि जो श्वास शरीर के अंदर बिल्कुल प्रवेश नहीं कर रहा था, वह शरीर के प्रत्येक अंग में जाता हुआ प्रतीत होने लगे (चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से यह असंभव लगता है। वहां तो श्वास का मार्ग केवल फेफडों तक ही है)। जब श्वास नाभि से नीचे जाता हुआ और फिर मूलाधार से भी नीचे पांवों में होता हुआ पादांगुष्ठ तक जाने लगे, यही उत्तम स्थिति है। महाभारत में उत्तंक ऋषि द्वारा जिस अग्नि रूपी अश्व के अपान का धमन करने की बात कही गई है, वह यही स्थिति है। इस अपान देश का धमन करने से नाग प्राण व्याकुल हो जाते हैं। वह उत्तंक के कुंडलों को लौटा देते हैं। हमारे पैर नागों का ही रूप हैं।

ऋग्वेद के बहुत से मन्त्रों में देवताओं से अग्नि, अश्विनौ, सोम, उषा आदि से गोमत और अश्वावत होकर आने की कामना की गई है। अग्नि का अश्व बनना विशेष महत्वपूर्ण है। अग्नि अश्व बन कर ही देवों के लिए हवि का वहन करता है। ऐतरेय ब्राह्मण १.४९ के अनुसार अग्नि अश्व बनकर उक्थों से असुरों को बाहर निकाल फेंकता है। इस संदर्भ में भविष्य पुराण में पावकीय हय पर वडवामृत हय की विजय ध्यान देने योग्य है। काण्व शतपथ ३.१.८.२ के अनुसार अमावास्या के दिन चन्द्रमा आदित्य में और आदित्य अग्नि में प्रवेश कर जाता है। इस प्रकार अमावास्या की रात्रि को अग्नि अश्व रूप में रहता है। इसके विपरीत पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा का अश्व रूप होता है। एक तप्त है तो दूसरा शीतल। ऋग्वेद के नवम मण्डल की कुछ ऋचाओं जैसे ९.६३.१८ में सोम से अश्ववत्, गोमत और हिरण्यवत् होकर क्षरण करने की प्रार्थना की गई है। सूर्य के रथ के वाहक सात अश्वों को पुराणों में वेद रूप तथा छन्द रूप कहा गया है, जबकि सूर्य स्वयं एक अश्व है (शतपथ ब्राह्मण ६.३.१.२९, ऐतरेय ब्राह्मण ६.३५)। बृहदारण्यक उपनिषद १.१.१ इत्यादि के अनुसार उषा मेध्य अश्व का शीर्ष है। सूर्य चक्षु, वात प्राण इत्यादि इत्यादि (तुलनीय : शुक्ल यजुर्वेद अध्याय २५)। पुराणों में उषा और अश्व का सम्बन्ध किस रूप में प्रस्फुटित हुआ है, यह स्पष्ट नहीं है। अश्वमेध यज्ञ में सायंकाल अश्व के पूर्व पदों में आहुति देते हैं। प्रात:काल उत्तर पदों में (काण्वशतपथ ३.१.८.२, शतपथ १३.१.५.३, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.८.९.३)। पूर्वपदों में आहुति से धृति/क्षेम और विधृति की तथा उत्तर पदों में आहुति से रन्ति और रमति की प्राप्ति होती है। आश्वमेधिक अश्व को यूप से बांधने के लिए जिस रस्सी का प्रयोग होता है, वह १३ अरत्नि

लम्बी होती है। १२ अरत्नियां संवत्सर के १२ मासों और १३वीं अरत्नि अधिक मास का प्रतीक है। यह संवत्सर एक ऋषभ/बैल का रूप है जिसका ककुद १३वां अधिक मास है (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.८.३.३)। इस प्रकार अश्व को ऋषभ से जोड्ते हैं।

अश्व शुद्ध रूप में क्या है, यह शतपथ ६.३.१.२८ के आधार पर समझा जा सकता है। प्रजापति के अश्रु ही अश्व बन गए। वह अश्रु करुणा के अश्रु हैं। यह भावनात्मक स्थिति है। बृहदारण्यक उपनिषद १.१.२ इत्यादि के अनुसार अश्व ह्य रूप धारण करके देवों का, वाजी नाम से गंधर्वों का, अश्व नाम से मनुष्यों का और अर्वा नाम से असुरों का वहन करता है। पुराणों तथा वेदों में दधीचि द्वारा अश्वशीर्ष धारण करके अश्विनौ देवगण को मधु विद्या का उपदेश करने का उल्लेख आता है (ऋग्वेद १.८४.१४, १.११७.२२, १.११९.९)। यह मधु विद्या क्या है, इसका वर्णन बृहदारण्यक उपनिषद २.५ में किया गया है। पृथिवी सब भूतों का मधु है और सब भूत पृथिवी के लिए मधु हैं। यही स्थिति आप: और रेतस के बीच, अग्नि और वायु के बीच, वायु व प्राण, आदित्य व चाक्षुष तेज, दिशा व श्रोत्र, चन्द्रमा व मन, विद्युत व तेजस, स्तनयित्नु व शब्द, आकाश व हृद्याकाश, धर्म व धार्म और सत्य व सात्य के बीच है। साधना के स्तर पर, सब भूत हमारे पृथिवी रूपी शरीर के लिए मधु रूप हों, यह स्थिति काल्पनिक सी प्रतीत होती है। दधीचि और मधुविद्या के बीच सम्बन्ध का कारण यह प्रतीत होता है कि वैदिक साहित्य में दधि, मधु और घृत इन तीन प्रतीकों को परम अन्न कहा गया है। साधना में पहली स्थिति दधि की होती है। यह साधना में दशमी तिथि है। फिर अन्य अवस्थाएं हैं।

छान्दोग्य उपनिषद २.६.१ में साम/भक्ति की पांच अवस्थाएं कही गई हैं। हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथं, प्रतिहार व निधन। इनमें हिंकार का प्रतिनिधि पशु अजा, प्रस्ताव का अवि, उद्गीथ का गौ, प्रतिहार का अश्व तथा निधन का पुरुष है। प्रस्ताव व प्रतिहार की अवस्थाएं प्राणों को वापस लाने की अवस्थाएं हैं। इनके निहितार्थों का स्पष्टीकरण छान्दोग्य उपनिषद में कई उदाहरणों के माध्यम से किया गया है। अन्यत्र कहा गया है कि अन्न का प्रतिहरण करने की अवस्था को प्रतिहार कहते हैं। अश्व को ब्राह्मण ग्रन्थों में अन्नाद अर्थात अन्न का भक्षण करने वाला कहा गया है। प्रजा को भी अन्न ही चाहिए। यह अन्न मधु अथवा मधुमती अवस्था हो सकता है तथा प्रजा हमारी मन की भावनाएं, विचार आदि हो सकते हैं। शतपथ ब्राह्मण ४.२.५.३ में प्रतिहर्त्ता को भिषक् या व्यान प्राण कहा गया है।

पद्मपुराण में गीता के १५वें अध्याय के श्रवण से अश्व रूपधारी सरभ -भेरुण्ड नामक सेनापति की मुक्ति का वर्णन है। गीता के १५वें अध्याय में संसार रूपी अश्वत्थ वृक्ष, परमेश्वर के स्वरूप, क्षर -अक्षर और पुरुषोत्तम के तत्व का विवेचन है। इस प्रकार सरभ नाम क्षर का उत्तर रूप प्रतीत होता है। वैदिक साहित्य में शरभ एक अमेध्य पशु है जो अजा के आलभन करने पर उत्पन्न हो जाता है। इस क्षर अश्व का निवास स्थान अश्वत्थ वृक्ष है। अश्वत्थ वृक्ष के रूप की कल्पना गीता में तथा वैदिक साहित्य में इस प्रकार की गई है कि इसका मूल ऊपर की ओर और शाखाएं नीचे की ओर होती हैं, जैसी कि स्थिति मनुष्य के मानसिक शरीर की है। लेकिन पाप कर्मों के फलस्वरूप ऐसा भी हो सकता है कि इसका वासनारूपी मूल नीचे और शाखाएं ऊपर की ओर हो जाएं (गीता १५.२)। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.८.१२.२ में अश्वत्थ को अश्व का व्रज/अस्तबल कहा गया है।

महाभारत आदि में अश्वों के विभिन्न प्रकारों का जो वर्णन मिलता है वैसा ही वर्णन शुक्ल यजुर्वेद के अश्वमेध सम्बन्धी अध्यायों २२ -२५ में भी मिलता है। व्याख्या अनुसंधेय है। पुराणों की कद्रू व विनता के बीच उच्चैःश्रवा अश्व को लेकर विवाद की कथा का वर्णन शतपथ ३.६.२.५ में भी किया गया है जहां अग्नि को श्वेत अश्व कहा गया है। डा० फतहसिंह ने अपनी पुस्तक वैदिक दर्शन में इस कथा की व्याख्या का प्रयास किया है। उनके अनुसार कद्रू स्थिर पृथिवी तत्व है, यह महामोहात्मक है। सुपर्णी नाना रूप में प्रकाश करने वाला द्यौ तत्व है। सुपर्णी का अर्थ है जिसके पंख लगे हों। यह उड कर बहुत दूर तक जा सकती है। सूर्य या अग्नि रूपी अश्व की किरण रूपी पुच्छ (मानुषी त्रिलोकी) को स्थिर पृथिवी तत्व नहीं देख सकता। उसे तो वह काला ही प्रतीत होगा।

महाभारत में वर्णित राजा नल व अश्वविद्या के संदर्भ की व्याख्या अक्ष शीर्षक के अंतर्गत की जा चुकी है।

महाभारत में वर्णित ययाति - कन्या माधवी ब्राह्मी शक्ति का प्रतीक है। यह वही मधु विद्या है जिसका उपदेश दधीचि ऋषि अश्वमुख से अश्विनौ को करते हैं। -फतहसिंह

पुराणों में सत्यवान और सावित्री की कथा की शतपथ ब्राह्मण १३.४.२.६ में अश्वमेध के अन्तर्गत वर्णित सावित्रेष्टि के संदर्भ में समुचित व्याख्या अनुसंधेय है। सावित्रेष्टि में सविता को सत्यप्रसवा कहा गया है। पुराणों में एक ओर सत्यवाक् का पिता द्युमत्सेन है जो बहिर्मुखी वृत्ति के अभाव में अंधा है। वह सत्यवाक् को जन्म देता है जिसकी अश्वों से खेलने में बहुत रुचि है। दूसरी ओर सावित्री का पिता अश्वपति है।

महाभारत में नकुल व सहदेव को अश्विनौ के अंश कहा गया है। विराट पर्व में नकुल को अश्वों का विशेषज्ञ और सहदेव को गायों का विशेषज्ञ कहा गया है। ऋग्वेद ८.२२.१७ आदि में अश्विनौ से अश्वावत् और गोमत् होकर वर्ति/गृह में आने की प्रार्थना की गई है।

महाभारत में शल द्वारा मृगया के पश्चात वामदेव ऋषि से प्राप्त अश्व न लौटाने के संदर्भ में, वामदेव ने एक राक्षस द्वारा शल के चार टुकडे करा दिए। फिर वामदेव ने शल के भ्राता दल से अश्व वापस मांगे तो दल ने विष बुझे वाण से वामदेव को मारना चाहा। लेकिन बाण से उसका १० वर्षीय पुत्र श्येनजित ही मर गया। इस कथा में शल, दल और बल तीनों

भ्राता स्थूल, सूक्ष्म और कारण देह के प्रतीक हो सकते हैं, जबकि वामदेव स्वयं ब्रह्म है। शल द्वारा मृग की खोज ब्रह्म की खोज है। मृग अर्थात जो मृग्य, ढूंढने योग्य है। इस ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए वाम्य अश्वों की आवश्यकता है। प्राण -अपान के रूप में अश्वों का पहला युगल है। उसके पश्चात् मन की अर्वाक -पराक् गति के रूप में अश्वों का दूसरा युगल है। इसी प्रकार अन्य उच्चतर युगल हैं। शल गति व आच्छादन के अर्थों में, दल विदारण के अर्थ में और बल प्राण के अर्थ में आता है। वामदेव ने राक्षस द्वारा शल के चार टुकडे करा दिए। अभी तक शल रूपी स्थूल शरीर समझता था कि मैं शरीर ही हूं। लेकिन अब उसके स्थूल शरीर, प्राण, मन और बुद्धि रूपी चार टुकडे हो गए। दल का दस वर्षीय पुत्र श्येनजित् पांच कर्मेन्द्रियों और पांच ज्ञानेंद्रियों वाला मन है जो श्येन रूपी अग्नि को जीतना चाहता है।

-फतहसिंह

पुराणों में श्यामकर्ण वाले जिस अश्वमेधीय अश्व का पुन: -पुन: उल्लेख आता है, वैदिक साहित्य में उसका मूल अनुसंधेय है। ऋग्वेद १०.६८.११ में श्याव अश्व का उल्लेख है जिसकी सज्जा नक्षत्रों रूपी आभूषणों से की जाती है। ऋग्वेद के बहुत से सूक्तों जैसे ५.५२ व ८.३५ का ऋषि अत्रि -पुत्र श्यावाश्व है। ऋग्वेद की अश्व सम्बन्धी बहुत सी ऋचाएं हैं जिनका सम्यक अर्थ अनुसन्धेय है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद १.११६.७ व १.११७.६ में अश्व के शफों/खुरों को यज्ञ में सोम को छानने के लिए प्रयुक्त छलनी कहा गया है जिससे मधु के १०० घडे भरे जाते हैं। वैदिक निघंटु में अश्व के २६ पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख है जिन पर श्रीमती माधुरी साहू ने शोध प्रबंध लिखा है।

अश्वग्रीव वा.रामायण ३.१४.१६ (दनु - कश्यप पुत्र), वामन ६९.४९ (अन्धक -सेनानी, विशाख से युद्ध), ब्रह्माण्ड २.३.७१.११४ (चित्रक -पुत्र, वृष्णि - वंश)

अश्वतर अग्नि १११.५ (प्रयाग में कम्बल व अश्वतर नागों की स्थिति), पद्म ३.४३.२८ (प्रयाग में यमुना के दक्षिणी तट पर कम्बल व अश्वतर नागों की स्थिति), स्कन्द १.२.१३.१८३ (शतरुद्रिय प्रसंग में ० नाग द्वारा शिव की मध्यम नाम से धान्य रूपी लिंग पूजा), स्क १.२.६३.२७ (दुहृद्रुहा नामक अश्वतरी : शाकिनियों की अधीशा, बर्बरीक द्वारा वध), मार्कण्डेय २३ (० नाग द्वारा सरस्वती आराधना से संगीत विद्या प्राप्ति, शिव आराधना से ऋतध्वज राजा की मृत पत्नी मदालसा को पुत्री रूप में प्राप्त कर पुन: ऋतध्वज को प्रदान करना), विष्णु २.१०.१८ (फाल्गुन मास में सूर्य रथ पर ० नाग की स्थिति), वि ६.८.४६ (विष्णु पुराण श्रवणानुश्रवण परम्परा में वत्स से सुनकर कम्बल को सुनाना), भागवत १२.११.४४ (कार्तिक मास में सूर्य रथ में स्थिति), ब्रह्माण्ड १.२.२०.२३ (द्वितीय सुतल लोक में ० नाग का पुर), २.३.७.३३ (कद्रू -पुत्र), मत्स्य १३३.२० (त्रिपुर दाह हेतु निर्मित शिव के रथ में पक्ष -यन्त्र का रुप), लक्ष्मी नारायण १.३९२ (ऋतध्वज को मदालसा पुत्री प्रदान करने की कथा)

अश्वत्थ वामन १७.८ (वृक्ष, रवि से उत्पत्ति), स्कन्द २.४.३ टीका (विष्णु रूप, पार्वती शाप कथा), स्क २.४.३ टीका (शनिवार को ० स्पर्श द्वारा पूजा, ज्येष्ठा -उद्दालक कथा), ५.१.४.९६ (शमीगर्भ में उत्पन्न अश्वत्थ में भार्गव व आंगिरस अग्नियों के संयोग का उल्लेख), ६.५९ (विदुर द्वारा अश्वत्थ की पुत्र रूप में प्रतिष्ठा), ६.९०.३१ (अग्नि के शमीगर्भ में स्थित अश्वत्थ में छिप जाने पर शुक द्वारा देवों को बताना), ६.२४७.२५ (० माहात्म्य), ६.२५२.३६ (० वृक्ष का बृहस्पति द्वारा वरण), ७.१.१७.११ (० दन्तकाष्ठ माहात्म्य), ब्रह्म २.३३.५ (प्रियव्रत के यज्ञ में दानव आगमन पर विष्णु का शरण स्थल), २.४८.१२ (कैटभ - पुत्र, विप्रों को पीडा, शनि द्वारा भस्म करना), पद्म १.२.८.२३ (रोग नाशक; पुत्र प्राप्ति कारक), १.५८.५ (० महिमा), ६.११६.१८ (० मूल में ज्येष्ठा का स्थिर होना), ७.१२.३८ (० माहात्म्य, धनंजय ब्राह्मण वृत्तांत), देवीभाग. ७.३०.८१ (० तीर्थ में वन्दनीया देवी का वास), मत्स्य १३.५१ (वही), ब्रह्माण्ड २.३.११.३५ (० के बलिपात्र में वसु भावना ?), विष्णु ४.६.८५ (पुरुरवा की अग्निस्थाली का शमीगर्भ अश्वत्थ बनना, अश्वत्थ का अरणि रुप में उपयोग), भविष्य १.१९३.१० (० दन्त काष्ठ महिमा), भ २.३.४ (अश्वत्थ वृक्ष प्रतिष्ठा विधि), २.३.८ (वही), ४.३१.२० (० मन्त्र), लक्ष्मी नारायण १.४४१.९० (बृहस्पति का रूप), १.४४१.९५ (विष्णु का रूप), २.२७.१०४ (अश्वत्थ की रवि से उत्पत्ति का उल्लेख), कथासरित ३.६.२४ (सोमदत्त द्वारा अश्वत्थ वृक्ष का आश्रय लेना, अश्वत्थ -देवता द्वारा सोमदत्त को भावी कार्य का निर्देश), १२.२७.७१ (अश्वत्थ में वास करने वाले ज्वालामुख नामक ब्रह्मराक्षस का वृत्तांत); द्र पिप्पल

टिप्पणी : अथर्ववेद ३.६ सूक्त का देवता अश्वत्थ है। इसके अतिरिक्त पैप्पलाद संहिता के सूक्तों १.६६ व २.५५ का देवता भी अश्वत्थ है। पैप्पलाद संहिता के अन्य मन्त्रों में जिन तथ्यों का उल्लेख है, उनमें से कुछ तथ्यों का विवेचन गीता व उपनिषदों आदि में प्रकट हुआ है। गीता १५.२ तथा मैत्रायणी उपनिषद ६.४ आदि में जिस अश्वत्थ वृक्ष की कल्पना की गई है, उसका मूल ऊपर की ओर और शाखाएं नीचे की ओर हैं। काठक संकलन १८.१, गीता १५.२ तथा पैप्पलाद संहिता १९.१९.१२ के अनुसार वेद उसका मूल है और छन्द उसके पत्ते हैं जो स्वर्णिम हैं। महाभारत उद्योगपर्व ४६.९ के अनुसार योगी जन इस हिरण्य पर्ण वाले

अश्वत्थ के दर्शन में समर्थ होते हैं। गीता १५.३ में उल्लेख है कि यद्यपि यह अश्वत्थ की स्वाभाविक स्थिति है, लेकिन लोक में मनुष्य के कर्मों से बंधने पर इसका मूल नीचे की ओर फैलने लगता है और शाखाएं ऊपर - नीचे दोनों ओर फैलने लगती हैं। ऐसा अश्वत्थ नष्ट करने योग्य है। यह पुराणों का अश्वत्थ असुर हो सकता है। सहज रूप में अश्वत्थ के वेद रूपी मूल को समाधि की स्थिति कह सकते हैं जिसका संकेत पैप्पलाद संहिता ९.२५.१२ से भी मिलता है। शाखाएं मन का रूप हैं। पैप्पलाद संहिता १.६६.२ आदि में अश्वत्थ से मणि (मन का उच्चतर रूप) का निर्माण किया गया है। अश्वत्थ इन्द्र की सभा व समिति हैं (पैप्पलाद संहिता १९.१९.१२ तथा १.६६.३)। डा० फतहसिंह के अनुसार मनोमय कोश समिति है जहां सभी इच्छाएं, भावनाएं एक साथ आते हैं लेकिन अलग -अलग अस्तित्व रखते हैं। सभा में सब मिलकर एकजुट हो जाते हैं, सब सभासदों की आवाज एक हो जाती है। यह विज्ञानमय कोश है। समाधि की अवस्था सभा है तो समाधि से व्युत्थान की अवस्था समिति। इसके अतिरिक्त पैप्पलाद संहिता की कुछ ऋचाओं जैसे १९.११.१ में अश्वत्थ को तीसरे देवलोक में देवसदन कहा गया है जहां अमृत का स्वाद चखा जाता है।

अश्वत्थ के मूल को वैदिक साहित्य में कई प्रकार से समझाया गया है। मैत्रायणी संहिता १.६.१२ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.८.१२.२ इत्यादि के अनुसार जब प्रजापति अश्व रूप होकर अपना सिर भूमि में संवत्सर पर्यन्त छिपा लेता है, उससे अश्वत्थ की उत्पत्ति होती है। अश्व का सिर स्वयं संवत्सर है। पैप्पालाद संहिता के मन्त्रों में यह अश्व अग्नि का रूप है (९.२५.११)। इस प्रकार संवत्सर साधना अश्वत्थ वृक्ष का मूल है। मैत्रायणी संहिता १.६.१२ में उल्लेख के अनुसार पुरूरवा व उर्वशी की कथा में पुरूरवा अग्नि को उखा में स्थापित कर देता है जिससे अश्वत्थ उत्पन्न हो जाता है। जो उखा है वही शमी है, शम की अवस्था है, वह संवत्सर के १२ मासों को धारण करने वाली उषा है। यह आख्यान पैप्पलाद संहिता १९.१२.१ की व्याख्या है। ऐसा भी संभव है कि तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.८.१२.२ इत्यादि में अश्व रूप प्रजापति द्वारा संवत्सर पर्यन्त सिर को भूमि में छिपा लेने का तथ्य अश्वत्थ वृक्ष पर भी लागू होता हो। अश्वत्थ को यहां अश्वों का व्रज (अस्तबल) कहा गया है। संवत्सर अश्व को व्रज में बांधने की रस्सी है। यदि अश्वत्थ को संवत्सर के १३वें अधिक मास के रूप में समझा जाए तो इससे पुराणों में अश्वत्थ के यज्ञ -विष्णु रूप की व्याख्या हो जाती है। शमी -गर्भ से उत्पन्न अश्वत्थ को पुराणों के अश्वत्थ और शनिवार के संदर्भ से सम्बद्ध माना जा सकता है क्योंकि शमी और शनि दोनों में मूल धातु शम् है।

अश्वत्थामा स्कन्द ३.१.३१ (द्रौपदी - पुत्रों के सुप्तमारण दोष की निवृत्ति के लिए ० द्वारा धनुष्कोटि तीर्थ में स्नान), ४.२.७५.८० (अश्वत्थामेश्वर लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य : भय से मुक्ति), देवीभाग. ४.२२.३४ (शिव अंश), ४.२२.४७ (काम, क्रोध, यम, रुद्र का अवतार), गर्ग ७.२०.३२ (प्रद्युम्न -सेनानी वृक से युद्ध), भागवत १.७ (द्रौपदी -पुत्रों की हत्या, अर्जुन द्वारा मानमर्दन), ८.१३.१५ (आठवें मन्वन्तर में ऋषि), मत्स्य ४५.३२ (अक्रूर व अश्विनी -पुत्र, अनमित्र वंश), शिव ३.३६ (शिवांश, उत्तरा गर्भ पर अस्त्र प्रहार)

टिप्पणी : महाभारत आदिपर्व १३०.४८ के अनुसार द्रोण और उनकी पत्नी गौतमी से जिस पुत्र का जन्म हुआ, उसने जन्म लेने पर उच्चैःश्रवा अश्व जैसा नाद किया। उसका स्थाम अश्व जैसा होने के कारण अश्वत्थामा नाम हुआ। स्थाम अश्व के स्वाभाविक निवास स्थान, अस्तबल को कहते हैं। इसका निहितार्थ यह हो सकता है कि जब उच्चैःश्रवा अश्व का नाद सुनाई पडना आरंभ हो जाए तो समझ लेना चाहिए कि अश्व रूपा भक्ति का जन्म हो गया है, अश्व अपने स्थाम में स्थित हो गया है। (ऋग्वेद ९.१०१.२ में इन्दु/सोम के क्षरण की अश्व से तुलना की गई है)। द्रोण के जीवन का सारा प्रयास इसीलिए है कि अश्वत्थामा को दुग्ध की प्राप्ति हो जाए। द्रोण भरद्वाज के पुत्र हैं। भरद्वाज को ब्राह्मण ग्रन्थों में उच्चतर मन का प्रतीक कहा गया है। अतः मोटे रूप में यह कल्पना कर सकते हैं कि मन और उसकी गौतमी रूपी बुद्धि के संयोग से अश्वत्थामा रूपी भक्ति का जन्म हुआ है। अश्वत्थामा काम, क्रोध व शिव का अवतार है। इसका निहितार्थ होगा कि अश्वत्थामा का जन्म होने पर काम दिव्य कामनाओं वाला काम, जिसे गीता में धर्म के अविरुद्ध काम कहा गया है, बन सकता है। अश्वत्थामा के नाद को सुनकर सब वासनाएं तृप्त हो जाती हैं। इसी प्रकार क्रोध भी रूपांतरित होकर अंतर्मुखी बन सकता है। फिर क्रोध अपने ही दुर्गुणों को समाप्त करने के लिए होगा।

महाभारत सौप्तिक पर्व के वर्णन के अनुसार अश्वत्थामा को द्रौपदी पुत्रों के वध का विचार रात्रि में उलूक द्वारा वृक्ष पर सोए हुए काक पक्षियों को मारते देखकर उत्पन्न हुआ। यहां उलूक का प्रतीकार्थ ओंकार की अ, उ तथा म मात्राओं में उकार से ले सकते हैं। मकार के पश्चात अर्धमात्रा, नाद, बिन्दु आदि आते हैं। उकार की ओर अग्रसर होने पर साधक के लिए यह अभीष्ट नहीं है कि उसकी कोई प्रवृत्ति सोई पडी रहे, नाम स्मरण की ओर अग्रसर न हो। डा० फतहसिंह के अनुसार अश्वत्थामा द्रौपदी के पांच पुत्रों का नाश इसलिए करता है कि जब तक शची वाक् रूपी द्रौपदी की शक्ति इसके पांच पुत्रों रूपी पांच ज्ञानेन्द्रियों को मिलती रहेगी, मन स्थिर नहीं हो सकता।

महाभारत के वर्णन के अनुसार अश्वत्थामा कृष्ण से सुदर्शन चक्र प्राप्ति का प्रयास करता है, लेकिन उसे पकड नहीं पाता। सुदर्शन चक्र स्वप्नावस्था का, जाग्रत होते हुए भी अंतर्मुखी होकर स्वप्नावस्था में स्थित रहने का प्रतीक है। उत्तरा के गर्भ की हत्या करने के पश्चात अश्वत्थामा के सिर की मणि को युधिष्ठिर धारण कर लेते हैं और अश्वत्थामा कृष्ण के शापवश व्यास के साथ सारी पृथिवी पर विचरण करता है तथा उसके शरीर से पूय आदि निरन्तर पृथिवी पर गिरती रहती है। मन के

नियंत्रण का यह सबसे अच्छा उपाय है कि मन की उच्च अवस्था की प्रतीक मणि तो धर्मराज युधिष्ठिर धारण कर लें और मन इस पृथिवी रूपी शरीर के चक्कर लगाने के रूप में इस मणि के आस पास विचरण करता रहे।

अथर्ववेद ६.७७.१ में पर्वतों के स्थिर होने और अश्व के स्थाम में स्थित होने आदि पर जातवेदा अग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह मेरे पास पुन: लौट आए। यह ऐसे ही हैं जैसे किसी पलायन परायणा स्त्री को पलायन से रोकने का प्रबन्ध किया जाए। हमारे स्थूल शरीर में मन की या वाक् की प्रवृत्ति शरीर को त्याग दूर जाने की होती है। यह स्थिति सोम रूपी दुग्ध प्राप्ति में बाधक होती है। रात्रि में तो यह स्थिति विशेष रूप से प्रबल होती है। अथर्ववेद ७.१०१.१ में वृक्कद्वय? के स्थाम में बैठने के कामना की गई है। इसके अतिरिक्त पैप्पलाद संहिता ५.१.५ में धेनु के स्थाम में स्थित होने, २.१.४ में विष के, १९.३६.१२ में बृहत् के स्थाम में स्थित होने तथा अक्षियों से अक्षत्र स्थाम निकलने की कामना की गई है। पैप्पलाद २.१५.५ में क्रिमि के स्थाम के नष्ट होने की कामना की गई है। मैत्रायणी संहिता १.१.१३ में विष्णु के स्थाम का उल्लेख है। पूरे वैदिक और पौराणिक साहित्य में केवल अश्वत्थामा के साथ ही स्थाम का सम्बन्ध जोडा गया है, अत: यह संभव है कि अश्वत्थामा के चरित्र में सभी प्रकार के स्थामों का समावेश कर दिया गया हो।

अश्वपट्ट लक्ष्मी नारायण १.५६ (० सरोवर तट पर राजा खट्वांग द्वारा तप), १.२८७ (० सरोवर तट पर पत्नीव्रत ऋषि का वास, पत्नीव्रत द्वारा राजा रुक्मांगद के पूर्व जन्म का वृत्तांत कथन), लन १.५२०.३७ (० सरोवर की सौराष्ट्र देश में स्थिति, पत्नीव्रत ऋषि का वास ० सरोवर तट पर कच्छप पीठ पर राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा यज्ञ), २.८८ (सनत्कुमार प्रोक्त ० सरोवर माहात्म्य), २.२४४+ (० सरोवर तट पर अश्वपाटल नृप द्वारा सोमयाग का अनुष्ठान)

अश्वपति देवीभाग. ९.२६+ (० द्वारा पराशर से सावित्री पूजा विधान श्रवण, सावित्री कन्या प्राप्ति, सत्यवान -सावित्री कथा), स्कन्द ७.१.१६६ (० राजा द्वारा सावित्री व्रत चीर्णन से सावित्री कन्या प्राप्ति, सावित्री -सत्यवान कथा), ब्रह्मवैवर्त २.२३+ (मद्र देश राजा, मालती -पति, पराशर द्वारा गायत्री व सावित्री जप विधान कथन, सावित्री -सत्यवान कथा), भविष्य ४.१०२ (० द्वारा सावित्री कन्या प्राप्ति, सावित्री -सत्यवान कथा), मत्स्य २०८+ (वही), लक्ष्मी नारायण १.३६६ (पराशर से गायत्री व सावित्री जप विधान श्रवण, सावित्री -सत्यवान कथा)

अश्वपाटल लक्ष्मी नारायण २.२४४+ (० नृप द्वारा अश्वपट्ट सरोवर तट पर सोमयाग का अनुष्ठान), लन २.२४९+ (० का लोमश से लोमश गीता रूपी संवाद)

अश्वमुख मत्स्य २६१.५३ (कामदेव की मूर्ति के पार्श्व में अश्वमुख प्रतिमा की स्थिति), वायु ६९.३१ (अश्वमुख किन्नर गण : विशाल -अश्वमुखी पुत्र), स्कन्द ६.८१.१३ (ब्राह्मण -कन्या माधवी का लक्ष्मी शाप से अश्वमुखी होना, जन्मांतर में कृष्ण -भगिनी सुभद्रा रूप में उत्पन्न होना)

अश्वमेध ब्रह्म १.३७.१ (दक्ष के हयमेध विनाश का वर्णन), १.४५ (राजा इन्द्रद्युम्न के हयमेध का वर्णन), २.१३ (प्रमति -पुत्र भौवन के एक साथ दस अश्वमेधों के अनुष्ठान में विघ्न, गौतमी तीर पर अनुष्ठान से दस अश्वमेधों का फल प्राप्त करना), २.३३ (राजा प्रियव्रत द्वारा गौतमी के दक्षिण तट पर अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान, यज्ञ में हिरण्यक दानव के आगमन पर देवों का वृक्षों, पशुओं, पक्षियों आदि के रूप में अदृश्य होना), २.५७ (राजा आर्ष्टिषेण के सरस्वती तट पर आयोजित ० यज्ञ में मिथु दानव द्वारा यज्ञ का विध्वंस, नृप व पुरोहित का अपहरण, पुरोहित -पुत्र द्वारा रक्षा वर्णन), २.९८ (अभिष्टुत राजा के अश्वमेध में सविता देव का आगमन, त्वष्टा व यम द्वारा दैत्यों का हनन इत्यादि), भागवत ४.१९ (पृथु द्वारा अत्रि ऋषि के आचार्यत्व में ० अनुष्ठान, इन्द्र द्वारा पुन: पुन: अश्व का हरण, पृथु -पुत्र विजिताश्व द्वारा अश्व की रक्षा, पृथु द्वारा ० के संकल्प का त्याग), ६.१३.१८ (इन्द्र द्वारा अश्वमेध के अनुष्ठान से वृत्र हत्या जनित पाप से मुक्ति), पद्म २.१२३.५७ (वेन का सदेह विष्णु शरीर में लीन होने के लिए पृथु पुत्र की सहायता से ० अनुष्ठान), ३.१२.२ (जम्बू मार्ग में आने से अश्वमेध फल की प्राप्ति का उल्लेख), ३.१२.८ (ययातिपतन में आने से ००), ३.१२.१० (कोटि तीर्थ में आने से ००), ३.१३.४६ (विशल्या नदी में स्नान से ००), ३.१३.४८ (नर्मदा में स्नान से ००), ३.१८.७३ (नर्मदेश्वर तीर्थ में स्नान से ००), ३.२४.२० (शंकुकर्णेश्वर की अर्चना से ००), ३.२५.७ (रुद्रास्पद तीर्थ में गमन से ००), ३.२५.२५ (रुद्र कोटि तीर्थ में आगमन से ००), ३.२६.८ (विष्णु के सतत् तीर्थ में आगमन से ००), ३.२७.३४ (पृथूदक तीर्थ में अभिषेक आदि करने से ००), ३.२८.१९ (सुवर्ण तीर्थ में वृषभध्वज की अर्चना से ००), ३.२८.३० (कनखल में स्नान से ००), ३.३२.३ (गंगा-सरस्वती संगम में स्नान से ००), ३.३२.७ (ब्रह्मावर्त में गमन से ००), ३.३२.८ (यमुना प्रभव में गमन से ००), ३.३२.९ (दर्वीसंक्रमण तीर्थ में गमन से ००), ३.३२.११ (देवी तीर्थ में गमन से ००), ३.३२.१४ (भृगु तुंग तीर्थ में आगमन से ००), ३.३२.२१ (वेतसिका में आगमन से

००), ३.३८.२ (गया में आगमन से ००), ३.३८.१८ (फल्गु तीर्थ में आगमन से ००), ३.३८.१९ (धर्मपृष्ठ तीर्थ में गमन से ००), ३.३८.२० (ब्रह्मा के तीर्थ में आगमन से ००), ३.३८.२७ (श्रिय तीर्थ में उदपान तीर्थ में अभिषेक से ००), ३.३८.२९ (विनाशन तीर्थ में गमन से ००), ३.३८.३४ (माहेश्वरी धारा में आगमन से ००), ३.३८.३६ (माहेश्वर पद में स्नान से ००), ३.३८.४२ (शालग्राम तीर्थ में आगमन से ००), ३.३८.५६ (निष्ठावास तीर्थ में आगमन से ००), ३.३८.५९ (देवकूट तीर्थ में आगमन से ००), ३.३८.६० (कौशिक ह्रद पर निवास से ००), ३.३८.६३ (कुमार तीर्थ में आगमन से ००), ३.३९.३ (करतोया नदी पर निवास से ००), ३.३९.४ (गंगा - सागर संगम पर वास से ००), ३.३९.१४ (राम तीर्थ में स्नान से ००), ३.३९.१७ (श्रीपर्वत पर देवह्रद में स्नान से ००), ३.३९.२२ (गोकर्ण तीर्थ में ईशान की अर्चना से ००), ३.३९.५६ (मंदाकिनी पर आकर अभिषेक आदि करने से ००), ३.३९.८२ (वासुकि नाग के भोगवती तीर्थ में अभिषेक से ००), ३.४३.३१ (प्रयाग में प्रतिष्ठान कूप पर वास से ००), ३.४३.३३ (प्रयाग में हंस प्रपतन तीर्थ में स्नान से ००), ५.१.८.३०+ (राम द्वारा रावण वध जनित ब्रह्महत्या दोष से निवृत्ति के लिए ० अनुष्ठान, अश्व का चयन, अश्व का पृथ्वी पर संचरण आदि विस्तृत वर्णन), प ६.१८६ (अश्वमेध काल में राजा की मृत्यु पर व देवों द्वारा यज्ञीय अश्व के हरण पर राजपुत्र द्वारा लक्ष्मी की स्तुति, लक्ष्मी के आदेश से समाधि विप्र द्वारा देवों से यज्ञीय अश्व प्राप्त करना व राजा को पुनः जीवित करना, गीता के १२वें अध्याय का माहात्म्य), वराह ४.१३ (राजा अश्वशिरा द्वारा अश्वमेध के अवभृथ स्नान के पश्चात कपिल व जैगीषव्य मुनियों का प्राकट्य व विभिन्न रूप धारण करना), वामन ७८.३२ (धुन्धु दानव द्वारा देविका तट पर ० अनुष्ठान, यज्ञ में वामन का आगमन व धुन्धु का निग्रह वर्णन), मार्कण्डेय १११.१४ (सुद्युम्न द्वारा अश्वमेध अनुष्ठान से पुरुषत्व प्राप्ति), स्कन्द २.२.१६.८+ (राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा जगन्नाथ क्षेत्र में चन्दनवृक्ष के निकट सहस्र वाजिमेधों का अनुष्ठान, अन्त में भगवान के दिव्य रूप का दर्शन), ४.१.२१.३८ (० की क्रतुओं में श्रेष्ठता का उल्लेख), ७.१.२३४ (दशाश्वमेध तीर्थ माहात्म्य : भरत द्वारा १० अश्वमेधों द्वारा यजन का स्थान), हरिवंश ३.५ (जनमेजय के ० में इन्द्र का मृत अश्व में प्रवेश), भविष्य ३.२.२३ (विक्रमादित्य द्वारा ० अनुष्ठान, अश्व का दिशा -भ्रमण, राजा का चन्द्रलोक गमन), ४.२९.७, ४.२९.११ (तृतीया व्रत के संदर्भ में मार्गशीर्ष व पौष कृष्ण तृतीया व्रतों से अश्वमेध फल की प्राप्ति), ४.५७.११ (चैत्र कृष्ण अष्टमी को स्थाणु शिव की अर्चना से ००), ४.९७.२८ (चतुर्दशी तिथियों को उमा-महेश्वर अर्चना से ००), ४.१२१.१४३ (माघ मास की एकादशी, अष्टमी व चतुर्दशी को अजिन / वस्त्र, उपानह, कम्बल आदि दान से ००), ४.१५१.३४ (गौ दान से ००), मत्स्य ५८.५४ (तडाग में वसन्त ऋतु में जल की उपलब्धि कराने से अश्वमेध फल की प्राप्ति, अन्य ऋतुओं में अन्य यज्ञों के फलों की प्राप्ति), ९३.१३८ (कोटि होम से सहस्र अश्वमेध के फल की प्राप्ति का उल्लेख), १०६.३० (प्रयाग में प्रतिष्ठान कूप पर वास से अश्वमेध के फल की प्राप्ति), १०८.९ (प्रयाग में प्रवेश मात्र से पद-पद पर अश्वमेध फल की प्राप्ति का उल्लेख), १८८.८२ (चन्द्र व सूर्य ग्रहण के समय अमरकण्टक तीर्थ में गमन पर अश्वमेध से दस गुने फल की प्राप्ति का उल्लेख), विष्णु धर्मोत्तर १.२०७.१९ (सन्नीति तीर्थ में सूर्य ग्रहण के समय श्राद्ध करने से अश्वमेध शत फल की प्राप्ति का उल्लेख), २.९२.४९ (भूमि दान से ० फल की प्राप्ति का उल्लेख), ३.२१८.१७ (चार्तुमास काल में असिधारा व्रत से ० फल की प्राप्ति), ३.२६५.७ (सत्य की सहस्र अश्वमेधों से श्रेष्ठता का उल्लेख), ३.२६७.१९ (युद्ध में सेनापति का वध करके उसके यान में आरुढ होने पर ० फल की प्राप्ति), ३.२९६.१५ (ग्रीष्म ऋतु में तडाग में जल उपलब्ध कराने पर ० फल की प्राप्ति, अन्य ऋतुओं में अन्य यज्ञों के फलों की प्राप्ति), ३.३४१.१९८ (कर्णाभरण दान से अश्वमेध फल की प्राप्ति का उल्लेख), नारद १.११.१३३ (विप्र को द्रोणिका मात्र पृथिवी दान से गंगा तीर्थ में शत अश्वमेधों के फल की प्राप्ति), १.१३.१२३ (पूजा रहित लिंग की अल्प उदक अथवा कुसुम से अर्चना करने पर लक्ष ० फल की प्राप्ति), १.१२२.४० (गो त्रिरात्र व्रत से सहस्र ० फल की प्राप्ति), १.१२३.४ (चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को शिव अर्चना से ००), २.१.१३ (एकादशी उपवास की तुलना में ० फल की तुच्छता का उल्लेख), २.३९.३२ (गंगा में स्नान से ० फल की प्राप्ति), २.४५.३४ (फल्गु तीर्थ में आगमन से सहस्र ० से अधिक फल की प्राप्ति), २.६०.१ (यज्ञांग से उत्पन्न तीर्थ में जाकर अश्वमेधांग संभूतं इत्यादि मन्त्र का पाठ), २.६३.९६ (प्रयाग में हंस प्रतपन तीर्थ में स्नान से ० फल की प्राप्ति), २.७०.३४ (प्रभास तीर्थ में दुर्वासादित्य के दर्शन से ० फल की प्राप्ति), गर्ग १०.१++ (उग्रसेन के अश्वमेध का आरंभ), १०.८ (अनिरुद्ध द्वारा उग्रसेन के अश्वमेधीय अश्व का अनुगमन), वा.रामायण १.८ (राजा दशरथ द्वारा पुत्र प्राप्ति के लिए ० अनुष्ठान, वर्णन), रा ७.९० (इल द्वारा अश्वमेध अनुष्ठान से

पुरुषत्व प्राप्ति वर्णन), रा ७.९१+ (राम के ० अनुष्ठान का वर्णन, लव -कुश द्वारा रामायण गान, सीता द्वारा शुद्धि प्रमाण हेतु शपथ ग्रहण व रसातल में प्रवेश), विष्णु ४.४.१६ (सगर के यज्ञीय अश्व के हरण व सगर -पुत्रों के नष्ट होने आदि का वृत्तांत), वायु ६७.५३ (कश्यप के अश्वमेध में दिति के गर्भ / हिरण्यकशिपु द्वारा होता का आसन ग्रहण करना), ब्रह्माण्ड २.३.५.७ (वही), २.३.५२.३६+ (सगर के अश्वमेध का वर्णन), वायु १०४.८४ (० की कटि प्रदेश में स्थिति), लक्ष्मी नारायण १.८४ (काशी में ब्रह्मा द्वारा दशाश्वमेध -लिंग स्थापना व माहात्म्य), २.१५७.३० (अंगन्यास में अश्वमेध का मूर्धा में न्यास), लन ३.३१ (पिता की अश्व योनि से मुक्ति के लिए धर्मधर द्वारा अश्वमेध का अनुष्ठान, ० विधि वर्णन), कथासरित ८.२.१८ दृ. दशाश्वमेध, यज्ञ

टिप्पणी : शुक्ल यजुर्वेद के अध्यायों २२ से २५ तथा २९ में अश्वमेध यज्ञ के मन्त्रों का वर्णन है जिनकी व्याख्या शतपथ ब्राह्मण के १३वें काण्ड तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.८.१.१ में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त महाभारत में आश्वमेधिक पर्व के रूप में अश्वमेध यज्ञ की व्याख्या पठनीय है। जैमिनीय अश्वमेध पर्व (खेमराज श्रीकृष्ण दास, बम्बई) पुस्तक भी पठनीय है।

अश्वरथ कूर्म १.४०.२२ (कुशद्वीप स्वामी ज्योतिष्मान का एक पुत्र)

अश्ववाहन स्कन्द ५.२.६१ (प्राग्ज्योतिषपुर - राजा, दुर्भगा पत्नी मदन मंजरी का त्याग, पत्नी द्वारा महाकाल वन में सौभाग्येश्वर लिंग की आराधना से सुभगा बनना), लक्ष्मी नारायण ४.१०१.१०५ (कृष्ण - विश्वा पुत्र)

अश्वशिरा स्कन्द ५.२.५९ (० राजा द्वारा जैगीषव्य व कपिल मुनियों का दर्शन, मुनियों का सिद्धि प्रभाव से विष्णु -गरुड आदि बनना, सिद्ध लिंग पूजा), गर्ग २.१३ (मुनि, वेदशिरा मुनि के शाप से काकभुशुण्डि बनना), मत्स्य २४५.३१ (बलि दैत्य के एक सेनानी का नाम), वराह ४.१३ (० राजा द्वारा अश्वमेध के अंत में कपिल व जैगीषव्य मुनियों का दर्शन, हरि आराधना विषयक प्रश्न के उत्तर में मुनियों का नारायण -गरुड रूप दर्शन), ५.४ (० राजा की कपिल मुनि से मोक्ष के लिए कर्म या ज्ञान मार्ग विषयक पृच्छा, आत्रेय -लुब्धक दृष्टांत, स्थूलशिरा पुत्र को राज्य सौंपना), भागवत ४.१.४२ (अथर्वा व चित्ति -पुत्र दध्यंग का उपनाम), ६.९.५२ (वही), विष्णु धर्मोत्तर ३.११९.३ (विद्यारम्भ में ० देवता ? की पूजा), लक्ष्मी नारायण १.५२५ (कपिल से कर्म या ज्ञान से मोक्ष विषयक पृच्छा, लुब्धक -ब्राह्मण दृष्टांत आदि)

टिप्पणी : गर्ग संहिता की वेदशिरा और अश्वशिरा की कथा के संदर्भ में वेदशिरा उस जीवात्मा का प्रतीक है जो ज्ञान मार्ग से ऊपर चढता है। वेदशिरा के तप का स्थान विन्ध्याचल पर्वत अहंकार का प्रतीक है। स्वभावतः, ज्ञानमार्ग में अहंकार को प्रमुख स्थान मिल जाता है जिससे वेदशिरा को कालिय नाग बनना पडता है। दूसरी ओर अश्वशिरा भक्ति मार्ग से ऊपर चढने वाला जीवात्मा है जिसे नील पर्वत पर काक बनना पडता है। अश्व अर्थात व्याप्त होने वाला। सर्वत्र व्याप्त होने वाली भावना शक्ति ही है, ज्ञान और क्रिया शक्ति नहीं। रामायण में काकभुशुण्डि भक्ति मार्ग के साधक हैं, गरुड जो ज्ञान मार्ग के साधक हैं, काकभुशुण्डि से शिक्षा ग्रहण करने जाते हैं। -फतहसिंह

अश्वसर लक्ष्मी नारायण ४.२६.५५ (कृष्ण का एक नाम, ० द्वारा कर्म दोषों से रक्षा)

अश्वारूढा ब्रह्माण्ड ३.४.१६.२८ (देवी, ललिता -सहचरी, भण्डासुर से युद्ध हेतु प्रस्थान), ३.४.२२.१०३ (० द्वारा कुरण्ड का वध), ३.४.२६.३८ (० द्वारा राज चक्र रथ के पूर्व दिशा की रक्षा), ३.४.२८.३८ (उलूकजित से युद्ध)

अश्विनौ मत्स्य १४८.९६ (० ध्वज पर कुम्भ चिन्ह), १५०.१९२ (तारक -सेनानी कालनेमि से युद्ध), २४१.१० (रथ के चक्रों के रक्षक), गरुड १.११६ (प्रतिपदा को पूजा), वा.रामायण १.१७.१४ (मैन्द व द्विविद वानरों के रूप में जन्म), गर्ग १.५.२९ (नकुल -सहदेव रूप में अवतरण), वराह २०.१६ (प्राण -अपान की सूर्य व संज्ञा से ० रूप में उत्पत्ति, ० द्वारा कर्तव्य ज्ञान के लिए ब्रह्मपाद स्तोत्र द्वारा ब्रह्मा की आराधना, देवभाग प्राप्ति), ५७.१७ (कार्तिक शुक्ल द्वितीया को ० के शेष व विष्णु रूप होने का उल्लेख), स्कन्द १.२.५.८२ (वर्णमाला में सं, ह वर्णों के देवता), स्क १.२.१३.१६५ (शतरुद्रिय प्रसंग में अश्विनौ द्वारा मृन्मय लिंग पूजा), स्क ३.१.११.२५ (अग्नि व वायु रूपी अश्विनौ द्वारा कपालाभरण के अनुजों का वध), ३.१.४९.६० (० द्वारा रामेश्वर की स्तुति), ३.२.१३.४९ (० उत्पत्ति कथन), ५.३.३९.३० (० की कपिला गौ के कर्णों में स्थिति), स्क ५.३.१९९ (० तीर्थ माहात्म्य : अश्विनौ उत्पत्ति कथा), स्क ७.१.११.२०५ (अश्व रूप धारी सूर्य -संज्ञा से नासत्य व दस्र की उत्पत्ति), ७.१.१६४ (० लिंग माहात्म्य), ७.१.२८२ (च्यवन द्वारा अश्विनौ को सोम प्रदान करने पर इन्द्र द्वारा च्यवन की भुजा का स्तंभन, च्यवन द्वारा मद असुर की उत्पत्ति आदि), ७.१.२८४.१ (अश्विनौ का च्यवन के साथ स्नान करने से च्यवन का

अश्विनौ रूप होना), ७.३.३६.१८२ (महिषासुर वध के पश्चात ० द्वारा चण्डिका को वरदान), अग्नि १७७.१ (द्वितीया तिथि को ० पूजा माहात्म्य कथन), भागवत २.३.५ (आयु कामना हेतु ० की आराधना), ४.७.५ (दक्ष यज्ञ में आहत याज्ञिकों द्वारा अश्विनौ की बाहुओं का उपयोग कथन), ८.१०.३० (बलि -सेनानी वृषपर्वा से युद्ध), शिव २.१.१२.३२ (० द्वारा पार्थिव लिंग पूजा), २.५.३६.१२ (शंखचूड -सेनानी दीप्तिमान से युद्ध), पद्म ५.१५.११ (यज्ञ में भाग मिलने पर च्यवन ऋषि को चक्षु प्रदान की कथा), प ६.६.९० (जालन्धर -सेनानी अंगारपर्ण से युद्ध), वामन ५७.६४ (स्कन्द को गण प्रदान करना), ६९.५९ (अन्धक -सेनानी नरकासुर से युद्ध), ब्रह्म १.४.४३ (अश्व रूपी सूर्य व वडवा रूपी संज्ञा से उत्पत्ति कथन), ब्र २.१९.३४ (वही), वायु ८४.२३ (वही), हरिवंश १.९.५४ (वही), ३.५७.४४ (बलि -सेनानी वृत्रासुर से युद्ध व पराजय), भविष्य ३.३.३१.१२१ (मद्र देश अधिपति मद्रकेश द्वारा ० की आराधना से १० पुत्र व १ कन्या प्राप्ति), भ ३.४.१८.४१ (० द्वारा छाया -पुत्रों का बन्धन, सूर्य से वर प्राप्ति, इडा व पिंगला को पत्नियों के रूप में प्राप्त करना, जन्मकुण्डली में विशिष्ट कार्य कथन, कलियुग में इडा -पति का सधन शूद्र व पिंगला -पति का रैदास चर्मकार रूप में अवतार), देवीभाग. ७.४+ (च्यवन -पत्नी सुकन्या के पातिव्रत्य की परीक्षा, च्यवन द्वारा सरोवर में स्नान से अश्विनौ के तुल्य रूप होना, च्यवन द्वारा ० को सोमपायी बनाना), ७.७ (० द्वारा सोमपान करने पर इन्द्र द्वारा च्यवन पर वज्र प्रहार की कथा), ७.३६.२८ (० द्वारा दध्यंग आथर्वण से विद्या प्राप्ति हेतु दध्यंग को अश्वशिर से युक्त करना), ९.२२.७ (शंखचूड -सेनानी दीप्तिमान से युद्ध), मार्कण्डेय ५.१२ (इन्द्र द्वारा गौतम रूप धारण कर अहल्या धर्षण के समय इन्द्र के रूप का नासत्यौ में अवगमन), मा ७८.२३ (० उत्पत्ति कथन), १०८.९ (वही), ब्रह्मवैवर्त १.१०.१२३ (० के ब्राह्मणी से समागम पर गणक/ज्योतिषी पुत्र की उत्पत्ति), १.११.२ (सुतपा ब्राह्मण द्वारा ० को व्याधिग्रस्त होने व यज्ञ भाग रहित होने का शाप, पुनः तप से नीरोगी करना), लक्ष्मी नारायण १.६३.४० (० उत्पत्ति कथन), १.२६७.११ (चैत्र शुक्ल द्वितीया को ० की उत्पत्ति, ० व्रत विधि), १.३९०.६८ (० द्वारा च्यवन को नवयौवन प्रदान करना, सुकन्या के पातिव्रत्य की परीक्षा, यज्ञ में भाग ग्रहण करना), १.४४१.८८ (० का मदन वृक्ष रूप में अवतरण), २.११.७ (० द्वारा बाल कृष्ण का कर्ण वेध संस्कार कर्म करना), २.७८.८८ (० द्वारा पापों से कृष्णता को प्राप्त हुए विप्रों को रूपवान बनाना), २.११२.९ (० की ब्रह्मपुत्र नदी में वक्र गति में स्थिति का उल्लेख), २.२४५.२३ (यज्ञ के महावीर कर्म में घर्म के देवता), २.२४५.३२ (० द्वारा विष्णु की यज्ञ मूर्ति का छिन्न शीर्ष जोडने पर सोमयाग में भाग प्राप्ति), कथासरित ७.७.१५ (० द्वारा नागार्जुन को अमृत निर्माण से रोकना), ८.५.७६ (केतुमालेश्वर क्षेत्र में अश्विनौ के अंश से दम व नियम नामक विद्याधरों की उत्पत्ति), ८.७.३१; द्र. दस्र, नासत्य, प्रतिपदा आदि तिथियां, तिथि, मास

टिप्पणी : वेद में अश्विनौ शब्द सदा द्विवचन में प्रयुक्त होता है। यह एक देवमिथुन है। इन्हें देवभिषजौ कहा जाता है। इनके अन्य नाम नासत्य और दस्र आते हैं। वृद्ध से युवा कर देना, टूटी जांघ के स्थान पर लोहे की जांघ लगा देना, अंधकार से प्रकाश में ले आना, समुद्र से डूबते को बचा लेना आदि उनके अनेक चमत्कार बताए जाते हैं। अश्विनौ मूलतः अश्व नामक व्यापनशील चेतना की पराक् और अर्वाक् गति के प्रतीक हैं। अश्व - जिसका कल नहीं है, जो सदा वर्तमान है। यह पहला अश्व परमात्मा है। उस अश्व में से एक दूसरा अश्व बनाना होता है। उस परमात्मा की शक्ति को लेकर जीवात्मा को अजर-अमर कर देना है। यह दूसरा अश्व है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इन्हें प्राणापानौ कहा गया है। प्राणों की यह पराक् और अर्वाक् गति ही अन्नमय, प्राणमय आदि कोशों को जोडने वाला मानो सेतु तैयार करती है (रामायण में अश्विनौ के अवतार नल-नील तथा मैन्द - द्विविद रामेश्वर सेतु निर्माण करते हैं)। अश्विनौ का रथ तीन चक्रों/पहियों वाला है। दो चक्रों को तो ब्राह्मण लोग ऋतुथा जानते हैं, लेकिन तीसरे को सत्य की खोज करने वाले योगी ही जान सकते हैं। रथ के तीन पहिए हैं - एक स्थूल शरीर में, एक सूक्ष्म शरीर में और एक कारण शरीर में। तीनों में एक ही चेतना एक साथ चलेगी। जब तक जीवात्मा अश्व नहीं बनता, तब तक वह अधिक से अधिक मन तक पहुंच सकता है। तब तक रथ के दो ही चक्र हैं - स्थूल और सूक्ष्म शरीर। मन ऊर्ध्वमुखी होने पर तीन चक्रों का रथ बन जाता है। समाधि लग जाने पर अश्वनौ दिखाई नहीं पडते। सत्य हिरण्यय कोश है, वही समाधि है। अश्विनौ का नाम नासत्य (न - असत्य) है जो संकेत करता है कि यह समाधि से नीचे की स्थिति है। - फतहसिंह

उत्तर कुरु क्षेत्र में अश्व रूपी सूर्य और अश्वा रूप धारी संज्ञा से अश्विनौ की उत्पत्ति की पौराणिक कथा के संदर्भ में हमें सर्वप्रथम संज्ञा के स्वरूप को समझना होगा। जैमिनीय ब्राह्मण १.२६९ के अनुसार मन रेतस्या बन जाए, प्राण गायत्री, चक्षु त्रिष्टुप, श्रोत्र जगती, वाक् अनुष्टुप छन्द बन जाएं, यह संज्ञाएं हैं। जैमिनीय ब्राह्मण २.११५-१२१ में वर्णन है कि आदित्यों ने अंगिरसों को श्वेत बडवा लाकर दी, लेकिन अंगिरसों ने अस्वीकार कर दिया । तब वह बडवा क्रोध में उभयमुखी सिंही हो गई। बाद में देवों द्वारा उसे स्वीकार कर लेने पर वह उत्तरवेदी बन गई। जब आदित्यों ने श्वेत अश्व के द्वारा स्वर्ग लोक प्राप्त कर

लिया तो अंगिरसों ने भी श्वेत बडवा को स्वीकार करके स्वर्ग लोक की प्राप्ति की। इस कथानक में जो उत्तर वेदी का उल्लेख है, वह पुराणों का उत्तरकुरु ही है जहां संज्ञा तप करती है (ब्राह्मण ग्रन्थों में आता है कि कुरुक्षेत्र, जो खाण्डव वन का प्रतीक है, देवों की यज्ञ वेदी है)। पुराणों में अन्यत्र बडवाग्नि द्वारा समुद्र जल पान का उल्लेख आता है। इन का निहितार्थ यह है कि पृथिवी या संज्ञा का एक रूप बडवाग्नि के रूप में विकसित होकर काल समुद्र का, असुरों का नाश करता है। दूसरा उत्कृष्ट रूप यज्ञ की उत्तरवेदी बनता है। यहीं अश्विनौ का जन्म होता है।

वैदिक साहित्य में संज्ञा और सूर्य के मिथुन से अश्विनौ की उत्पत्ति का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है। ऋग्वेद १०.१७.१ की ऋचाओं को इस कथा से जोडा जा सकता है। अथर्ववेद ७.५४.१ में अश्विनौ से प्रार्थना की गई है कि वह हमें अपनों से और परायों से संज्ञान प्राप्त कराएं। इसका निहितार्थ होगा कि संज्ञा के विराट रूप संज्ञान को प्राप्त होना ही अश्विनौ का जन्म लेना है। तैत्तिरीय आरण्यक ४.१.१ तथा शतपथ ब्राह्मण १४.१.१.१ में प्रवर्ग्य नामक यज्ञ का वर्णन है। कहा गया है कि जब यज्ञ रूपी विष्णु का सिर किन्हीं कारणों से कट गया तो देवगण कुरुक्षेत्र में शीर्ष रहित यज्ञ का अनुष्ठान करते रहे जिससे वांछित फलों की प्राप्ति नहीं हुई। तब अश्विनौ सर्वता की प्राप्ति के लिए यज्ञ के अध्वर्यु नामक ऋत्विज बने और दधीचि से प्राप्त मधु विद्या द्वारा यज्ञ के शीर्ष को जोडा। (बृहदारण्यक उपनिषद २.५.१९ में दधीचि बताते हैं कि मधु विद्या क्या है ? रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव इत्यादि, अर्थात कण-कण में उसी परमात्मा के रूप का दर्शन करना मधु विद्या है)। इस यज्ञ में अध्वर्यु ऋत्विज यजमान रूपी सूर्य के तेज का क्रमशः विकास करता है। उस सूर्य को आकाश में विचरण करने योग्य, पतन रहित, १२ मास के १२ सूर्यों और १३वें मास के सूर्य को धारण करने वाला, चन्द्रमा, नक्षत्रों और ऋतुओं को धारण करने वाला बनाते हैं। दूसरी ओर प्रतिप्रस्थाता (अध्वर्यु ऋत्विज का एक सहायक, आसुरी पक्ष), आग्नीध्र (प्रस्तुत कथा में त्वष्टा का रूप, तैत्तिरीय आरण्यक ३.३.१) तथा अन्य ऋत्विज पत्नी या पृथिवी को दसों दिशाओं में व्याप्त होने वाली, मनु को वहन करने वाली अश्वा का रूप देते हैं। सूर्य के तेज (जिसे इस यज्ञ में धर्म या प्रवर्ग्य कहते हैं) का विकास पूर्ण हो चुकने पर यज्ञ में काम आए मिट्टी से निर्मित महावीर पात्र तथा अन्य सहायक उपकरणों जैसे परीशास (संडासी) आदि को उत्तरवेदी में स्थापित कर दिया जाता है (तुलनीय : पुराणों में अश्विनौ द्वारा मिट्टी का शिवलिंग बनाना)। यज्ञ रूपी उत्तरवेदी में महावीर पात्र शिर का प्रतीक है। परीशास आदि यज्ञ के उपकरणों से शरीर की बाहुओं आदि का प्रतीक लिया जाता है। कहा गया है कि प्रत्येक यज्ञ का एक शीर्ष होता है जैसे अग्निहोत्र में आहवनीय अग्नि शीर्ष है, दर्श - पूर्णमास यज्ञ में आज्यभाग द्रव्य व पुरोडाश शीर्ष हैं, सोम यज्ञ में हविर्धान यज्ञ का शीर्ष है, चातुर्मास्य में पयस्या यज्ञ की शीर्ष है (शतपथ ब्राह्मण १४.२.२.४८)। अतिथि को भी यज्ञ का शीर्ष कहते हैं। लेकिन प्रवार्य नामक इस देवों के यज्ञ में अश्विनौ अध्वर्युओं द्वारा स्थापित शीर्ष अन्य सब यज्ञों को समाहित करता है।

पुराणों में अश्व रूपी सूर्य और अश्वा रूप धारी संज्ञा के मिथुन से जो अश्विनौ की उत्पत्ति कही गई है, इस संदर्भ में प्रश्न उठता है कि सूर्य अश्व कब बनता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गया है कि सायंकाल होने पर सूर्य अश्व बनकर आहवनीय अग्नि में प्रवेश कर जाता है। इसके अतिरिक्त अमावास्या काल में भी सूर्य अश्व रूप में रहता है। चूंकि आमावास्या तथा सायं काल से आगे रात्रि को समाधि की अवस्था कहा जा सकता है, अतः पुराणों का यह कथन तर्कसंगत है कि कार्तिक शुक्ल द्वितीया को अश्विनौ का जन्म हुआ। शुक्ल पक्ष समाधि से व्युत्थान का प्रतीक हो सकता है ।

शतपथ ब्राह्मण १२.७.१.१ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.१.१ में सौत्रामणी यज्ञ का वर्णन किया गया है। आख्यान है कि इन्द्र ने त्वष्टा विश्वरूप का वध करके उसके यज्ञकलश में उपलब्ध समस्त सोम को पी लिया था। वह सोम इन्द्र के विभिन्न अंगों से विभिन्न हिंसक पशुओं के रूप में प्रकट हुआ। अश्विनौ और सरस्वती ने उसकी चिकित्सा की। अश्विनौ के चरित्र में भेषज्य कर्म को समझना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिस सोमरस का, भक्तिरस का, आह्लाद का इन्द्र ने अचानक पान किया है, वह उसे आत्मसात करने में समर्थ नहीं हो रहा है। अतः वह आह्लाद नमुचि असुर के रूप में (नमुचि अर्थात जो एक बार पकड कर मुक्त न करे) तथा हिंसक प्रवृत्तियों के रूप में प्रकट हो रहा है। उस शक्ति को प्रवाहित होने का सम्यक् मार्ग कैसे दिया जाए? शांखायन ब्राह्मण १८.१ के अनुसार यह जो अतिरिक्त सोम है, यह आश्विन है। अश्विनौ के पास इसकी भेषज यह है कि वह इसे ओंकार रूपी रथ पर आरूढ करके उसका वहन करते हैं। वेद मन्त्र अश्विनौ के रथ के उल्लेखों से भरे पडे हैं। अश्विनौ और सरस्वती को भेषज कर्म में साथ-साथ क्यों रखा गया है, इसका उत्तर इस प्रकार हो सकता है कि वैदिक भाषा में भक्ति के मुख्य रूप से चार प्रकार होते हैं : हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ और प्रतिहार। इनसे सम्बन्धित पशु क्रमशः अज, अवि, गौ और अश्व हैं। ऋतुओं की दृष्टि से यह चार अवस्थाएं वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा व शरद होती हैं (जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण १.३.२.७)। इनमें अज अवस्था अश्विनौ का (शतपथ ब्राह्मण १२.७.१.११) और अवि अवस्था सरस्वती का ग्रह है, वह यहां आकर स्थित हो सकते हैं। अग्नि के वाहन अज रूपी तेज का विकास प्रतिहार अवस्था में चक्षु के तेज के रूप में हो जाता है, ऐसा चक्षु जिसे कण-कण में उस परमात्मा का ही रूप दिखाई पडने लगे (जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण १.१८.२.९ में अश्विनौ को शरद या प्रतिहार कहा गया है)। प्रतिहार से अगली निधन अवस्थामें चक्षु ग्रह के बदले श्रोत्र ग्रह बन जाता है। यही कारण है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में अश्विनौ के ग्रह का उल्लेख कहीं छाग, कहीं चक्षु तो कहीं श्रोत्र है (शतपथ ब्राह्मण १२.८.२.२२, ४.१.५.१ आदि)। पुराणों में अश्विनौ की कपिला गौ के कर्णों में स्थिति कही गई है। उन्हें कर्ण

वेध संस्कार करने वाला कहा गया है। सरस्वती के ग्रह अवि को वीर्य (वीर स्थिति?) से जोडा गया है जिसका विकास प्राण, अपान, उदान, व्यान आदि अन्य रूपों में होता है (शतपथ ब्राह्मण १२.८.२.२२)। योग की दृष्टि से अवि को असि और वरणा नदियां अथवा इडा या पिंगला नाडियां कहा जा सकता है जिनके मिलने से तीसरी सरस्वती या सुषुम्ना नाडी का विकास होता है। डा० फतहसिंह के अनुसार अन्य सब नाडियां तो पर्वतों से निकल कर समुद्र में विलीन होती हैं, लेकिन सरस्वती नदी ऐसी है जो विज्ञानमय कोश रूपी सिन्धु से निकलती है। ऋग्वेद ५.७५.२ तथा ८.२६.१८ से ऐसा प्रतीत होता है कि यह सरस्वती या सुषुम्ना या सिन्धु नदी ऐसी है जो हिरण्यवर्तनी है, हिरण्यय कोश के, समाधि अवस्था के बार बार चक्कर लगाती रहती है और अपने साथ अश्विनौ को भी ले जाती है और रस का आस्वादन कराती है। ऋग्वेद ८.२६.१५ आदि कई ऋचाओं में अश्विनौ से इस नृ प्राणों का उद्धार करने वाली वर्ति में हमें स्थापित करने की प्रार्थना की गई है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद १.११६.१४ आदि में उल्लेख है कि अश्विनौ ने वर्तिका को वृक के मुख से बचाया। यह वर्तिका, दीपक की बत्ती यही सरस्वती नाडी प्रतीत होती है। अश्विनौ का तेज उसे जलाता है। इसके अतिरिक्त अश्विनौ और सरस्वती का एक और सम्बन्ध विचारणीय है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.४.६ तथा शतपथ ब्राह्मण १२.९.१.४ में उल्लेख है कि अश्विनौ ने तो अंगों की चिकित्सा आत्मा में की (?) तथा सरस्वती ने आत्मा को अंगों से युक्त किया / अंगों द्वारा धारण किया, (अथर्ववेद ११.९.६ के अनुसार यज्ञ के अंगों का निर्माण उच्छिष्ट से, अतिरिक्त शक्ति से होता है)। इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.१२.६ तथा २.६.१२.३ में प्रार्थना की गई है कि दिवस काल में अश्विनौ और रात्रि काल में सरस्वती हमारी रक्षा करें। ऋग्वेद की कई ऋचाओं में अश्विनौ के रथ को प्रात:काल में जुडने वाला कहा गया है जो उषा को अपने रथ पर बैठा कर ले जाते हैं।

महाभारत आदि में अश्विनौ का अवतार अश्वों के विशेषज्ञ नकुल और गायों के विशेषज्ञ सहदेव के रूप में होने के संदर्भ में यह प्रतीत होता है कि भक्ति में अज और अवि अवस्था को पार करने के पश्चात गौ और अश्व अवस्थाएं परस्पर मिश्रित हैं। ऋग्वेद २.४१.७ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.१३.३ में अश्विनौ के गोमत् और अश्ववत् होने का उल्लेख है। जब वह गोमत् होंगे तब उनका नाम नासत्य होगा और वह इन्द्रियों की पुष्टि गौ प्राणों द्वारा करेंगे। उनका रथ अरिष्टनेमि प्रकार का होगा (ऋग्वेद १.१८०.१०)। विराट के राज्य में सहदेव का नाम भी अरिष्टनेमि ही है। जब वह अश्वावत् होंगे तो उनका नाम अश्विनौ होगा और वह वीर्य और बल की पुष्टि करेंगे। जैसे अश्विनौ रूपवान हैं, ऐसे ही नकुल व सहदेव भी बहुत रूपवान हैं, विशेषकर नकुल, क्योंकि स्वर्गारोहण के समय जब नकुल मृत होकर गिर पडता है तो युधिष्ठिर उसका कारण बताते हैं कि इसको अपने रूप पर गर्व था। सहदेव के मृत होने पर उन्होंने कहा कि इसको अपनी प्रज्ञा पर गर्व था। कौशीतकि उपनिषद ३.४ में उल्लेख है कि प्रज्ञा द्वारा ही चक्षु पर आरूढ होकर सब रूपों के दर्शन करता है। अत: गौ और अश्व को या नकुल और सहदेव को एक दूसरे से अलग करके देखना कठिन है।

वराह पुराण में प्राण- अपान का प्रजापति के शरीर को त्यागना और फिर द्वितीया तिथि को अश्विनौ के रूप में पुन: शरीर धारण करने के संदर्भ में अथर्ववेद ७.५५ का अश्विनौ देवता का सूक्त विचारणीय है (ऊपर प्राण-अपान का संबंध सरस्वती से जोडा गया है)। इसके अतिरिक्त, वैदिक तथा पौराणिक वांग्मय में सार्वत्रिक रूप से उल्लेख आता है कि सवितुः प्रसवितृभ्यां, अश्विनोर्बाहुभ्यां, पूष्णोः हस्ताभ्यां इत्यादि। ऐसा प्रतीत होता है कि सविता से सव प्राप्त करना ही अश्विनौ का सर्व बनना है। अश्विनौ उस शक्ति को पूषा रूपी वत्स को देते हैं जो उस शक्ति का सर्वत्र च्यावयन करता है, उसे वितरित करता है (ऋग्वेद १०.१७.१)। अश्विनौ के संदर्भ में च्यवन ऋषि की कथा पर इसी दृष्टिकोण से विचार करने की आवश्यकता है। पुराणों में जहां च्यवन नाम आता है, वैदिक ऋचाओं में इसे च्यवानं कहा गया है (उदाहरणार्थ ऋग्वेद १०.१७.१)। शतपथ ब्राह्मण ४.१.५.१ में आश्विन ग्रह के संदर्भ में च्यवन-सुकन्या आख्यान का वर्णन किया गया है। ऋग्वेद १०.१३१.५ में अश्विनौ को पितरद्वय कहा गया है जो सोम के कच्चे रूप सुरा को पीकर अपने यजमान रूपी पुत्र इन्द्र की रक्षा करते हैं। यह संदर्भ आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की पितृ पक्ष के रूप में प्रतिष्ठा के कारणों पर विचार करने के लिए उपयोगी है।

श्री कृष्णस्वामी अय्यर द्वारा प्रस्तुत तथा चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस द्वारा ई० सन् १९७५ में प्रकाशित शोध प्रबन्ध वेदे अश्विनौ उल्लेखनीय है।

अष्टक वायु ९१.१०३ (दृषद्वती व विश्वामित्र - पुत्र), मत्स्य ३८+ (० का स्वर्ग से पतनशील ययाति से संवाद), ४१+ (० द्वारा ययाति को अपने पुण्यों के दान का प्रस्ताव, स्वर्ग गमन प्रतिस्पर्धा), नारद १.११७.८८ (० संज्ञक श्राद्ध : पौष शुक्ल अष्टमी), विष्णु ४.१४.३० (आनकदुन्दुभि -पुत्र), पद्म १.२९.१० (सौभाग्य अष्टक द्रव्य उत्पत्ति व महिमा), भविष्य ३.२.२२.२९ (दुर्गा अष्टक / स्तोत्र महिमा : क्षत्रसिंह राजा का वेताल बनना)

अष्टका देवीभाग. ७.९.१ (विकुक्षि का अष्टका श्राद्ध हेतु मांस लाने के लिए वन जाना व मांस भक्षण कथा), मत्स्य १४.१८ (पितरों की कन्या अच्छोदा का शापवश पितरलोक में अष्टका व मनुष्य लोक में सत्यवती नाम से जन्म लेना), म १४१.१७ (अष्टकापति : काव्य पितरों का नाम), पद्म १.९.२८ (शापित अच्छोदा का पितरलोक में ० नाम), ३.५३.७६ (० तिथियां कथन); द्र. अच्छोदा, एकाष्टका

टिप्पणी : जैसा कि अच्छोदा की टिप्पणी में कहा जा चुका है, वैदिक साहित्य में अच्छावाक् ऋत्विज की वाक् पुराणों में अच्छोदा कन्या के रूप में प्रस्फुटित हुई है। यह मनोमय तथा विज्ञानमय कोश की वाक् है जो स्वयं इतनी बलशाली नहीं है कि जीवन यज्ञ से असुरों को निकाल बाहर करे। अतः इसे इन्द्राग्नि देवता का आश्रय लेकर अमावास्या तथा इन्द्राविष्णु देवता का आश्रय लेकर अष्टका? बनना पड़ता है। अष्ट शब्द व्याप्ति के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

आश्वलायन गृह्य सूत्र २.४.१ तथा बौधायन गृह्य सूत्र २.११.१ में अष्टका होम का वर्णन किया गया है। अष्टका श्राद्ध जो पौष, माघ तथा फाल्गुन की कृष्ण अष्टमी को किया जाता है, में अपूप (हिन्दी में पूडे), पशु वपा तथा मांस द्वारा श्राद्ध करने का विधान है। पशु का अर्थ होता है जीवात्मा जो पाशबद्ध है। इसे पशुपति शिव के आधीन करना है। देवबन्द स्थित स्वामी ब्रह्मानन्द जी के अनुसार मांस भक्षण का अर्थ है चेतना को स्थूल से सूक्ष्म करना। जैमिनीय ब्राह्मण में स्थान -स्थान पर उल्लेख है कि अच्छावाक का साम इडा साम होता है और पशु इडा या आनंद की वृत्ति बन सकते हैं। इन उल्लेखों से यह अनुमान होता है कि पशु को इडा में रूपांतरित करने की कोई एक निश्चित विधा नहीं है, अपितु बहुत सी विधाएं हैं। इनमें से एक विधा को पुराणों में विकुक्षि द्वारा जंगल में पशु के मांस भक्षण से दर्शाया गया है। विकुक्षि के संदर्भ में, आश्वलायन गृह्य सूत्र में अग्नि द्वारा "कक्ष का उपोषण" करने का उल्लेख आता है।

जैमिनीय ब्राह्मण ३.२ के अनुसार प्रजापति ने दीक्षा द्वारा पौर्णमासी को, उपसदों द्वारा अष्टका को और प्रसुत द्वारा अमावास्या को प्राप्त किया। यहां उपसद का अर्थ ऐतरेय ब्राह्मण ६.१५ के आधार पर समझा जा सकता है। असुरों ने देवों को यज्ञभूमि में से उतना भाग प्राप्त करने की अनुमति दी जितनी में विष्णु सो सकते हैं। इसके पश्चात अच्छावाक ऋत्विज ने ऐरयण ? कर्म किया। उपसद का अर्थ है यज्ञ को देवों के स्थित होने का स्थान बना देना। अन्यत्र ब्राह्मण ग्रन्थों में उपसद को तप कहा गया है तथा दीक्षा को गर्भ कहा गया है जिसका असुरों से गोपन करना होता है।

षड्विंश ब्राह्मण· ३.४.२२ में संवत्सर साम में अहोरात्रों को हिंकार, अर्धमासों को प्रस्ताव आदि, अष्टका को उपद्रव व अमावास्या को निधन कहा गया है। उपद्रव की व्याख्या इस प्रकार की गई है कि जैसे जंगल में पुरुष को देखकर आरण्यक पशु अपनी गुफाओं में भाग जाते हैं (उपद्रवन्ति)। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३ में उल्लेख है कि इन्द्र ने श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए प्रजापति से पौर्णमासी और अमावास्या प्राप्त की। लेकिन उसे देवों में श्रेष्ठता तभी प्राप्त हुई जब उसने पौर्णमासी और अमावास्या के बीच अष्टका को रखा।

अष्टमी अग्नि १८३ (भाद्रपद कृष्ण ०, कृष्ण जन्माष्टमी व्रत विधि), अग १८४ (बुधाष्टमी व्रत विधि व माहात्म्य : कौशिक ब्राह्मण का व्रत प्रभाव से अयोध्यापति बनना), १८४.१ (चैत्र शुक्ल ० : ब्रह्मा व मातृकाओं का पूजन), १८४.२ (मार्गशीर्ष कृष्ण ० : कालाष्टमी व्रत, मास अनुसार शिव पूजा विधि), १८४.२१ (चैत्र शुक्ल ० : अशोक वृक्ष की पूजा), अग २६८.१३ (आश्विन शुक्ल ० : भद्रकाली पूजा), नारद १.११७ (० तिथि व्रत : दुर्गा आदि की पूजा, कृष्ण व राधा जन्माष्टमी, दूर्वा व्रत, महालक्ष्मी व्रत, अशोक अष्टमी, गोपाष्टमी, अष्टक श्राद्ध आदि), भविष्य ३.३.२५.३६ (माघ कृष्ण अष्टमी : लक्ष्मण का गृह आगमन), भ ३.४.२५.१५ (मार्गशीर्ष कृष्ण ० : कल्कि अवतार), ४.५४ (बुध ० व्रत विधि व माहात्म्य : व्रत के पुण्य की प्राप्ति से श्यामला -माता उर्मिला का नरक से उद्धार), भ ४.५५ (भाद्रपद कृष्ण अष्टमी : जन्माष्टमी व्रत विधि व माहात्म्य), ४.५६ (भाद्रपद शुक्ल ० : दूर्वाष्टमी व्रत विधि व माहात्म्य), ४.५७ (कृष्ण अष्टमी व्रत : मास अनुसार विशिष्ट नाम से शिवलिंग पूजा), ४.५८ (मार्गशीर्ष कृष्ण ० : अनघाष्टमी व्रत विधि व माहात्म्य, अनघ/दत्तात्रेय के प्रसाद से कार्तवीर्य का गुण सम्पन्न होना), ४.५९ (सोमाष्टमी व्रत विधि व माहात्म्य : शिव या सूर्य की आराधना) वराह ६३ (कृष्ण ० व्रत माहात्म्य : पुत्र प्राप्ति हेतु), पद्म ४.७ (भाद्रपद शुक्ल ० : राधा जन्माष्टमी माहात्म्य), ५.३६.२३ (माघ शुक्ल ० को रावण द्वारा सीता हरण), मत्स्य ५६ (कृष्ण अष्टमी व्रत : मास अनुसार शिव पूजा), वामन १६.३० (भाद्रपद कृष्ण ० : कालाष्टमी को शिव पूजा विधान), स्कन्द २.२.२९.३१ (चैत्र शुक्ल अष्टमी को गुंडिचा यात्रा), ४.२.६१.१२६ (चैत्र अष्टमी को भवानी तीर्थ की यात्रा), ४..२.९७.१५० (अशोक नामक चैत्र अष्टमी को मध्यमेश लिंग की पूजा), ६.११६.२ (चैत्र शुक्ल ० : रेवती देवी की पूजा), ६.१६८.५३ (चैत्र शुक्ल ० : विश्वामित्र द्वारा वसिष्ठ वधार्थ उत्पन्न धारा नामक कृत्या की पूजा), ७.१.४.११९ (चैत्र शुक्ल ० : गौरी पूजा), १.२.३६.३६ (वैशाख कृष्ण ० : रुद्र के सिद्ध लिंग की पूजा का माहात्म्य), २.२.२७.१०२ (वैशाख शुक्ल अष्टमी को विष्णु की अर्चना), स्क ६.२०९.४४ (वैशाख शुक्ल ० : शंख तीर्थ में स्नान से कुष्ठ से मुक्ति), स्क ४.२.६३.१४ (ज्येष्ठ शुक्ल ० को काशी में ज्येष्ठा गौरी की आराधना), ५.१.७०.२ (भाद्रपद शुक्ल ० : रम्य सर में स्नान का माहात्म्य), स्क ६.१९९.५७ (भाद्रपद शुक्ल ० : विश्वामित्रेश्वर तीर्थ में स्नान), १.२.६५.१११ (आश्विन शुक्ल ० : वत्सेश्वरी देवी की पूजा), ६.११६.५० (आश्विन शुक्ल ० : रेवती द्वारा अम्बा देवी की पूजा), ६.१९९.५८ (आश्विन शुक्ल ० :

शक्रतीर्थ में स्नान का माहात्म्य), स्क ७.३.१५.१० (कार्तिक शुक्ल ० : अमृत विद्या प्राप्ति हेतु शुक्र लिंग पूजा), स्क ७.३.२८.१० (बुध ० : मनुष्य तीर्थ में स्नान), ब्रह्मवैवर्त २.२७.८६ (भाद्रपद शुक्ल ० को महालक्ष्मी पूजा का माहात्म्य), देवीभाग. ९.३८.८३ (भाद्रपद शुक्ल ० : महालक्ष्मी व्रत), गरुड १.१३१ (भाद्रपद शुक्ल अष्टमी : दूर्वा अष्टमी), गड १.१३१ (मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी : रोहिणी अष्टमी व्रत विधि), गड १.१३२ (पौष शुक्ल अष्टमी : बुध पूजा माहात्म्य; कौशिक द्विज की कथा), गड १.१३३ (अश्वयुज शुक्ल अष्टमी : महानवमी नाम, दुर्गा पूजा), गड १.१३३.२ (चैत्र शुक्ल ० : अशोक अष्टमी व्रत), विष्णु धर्मोत्तर ३.१७२ (चैत्र शुक्ल ० से आठ वसुओं की अर्चना का माहात्म्य), ३.१७३ (शुक्ल पक्ष में सोमवार अष्टमी को शिव अर्चना महत्व), ३.२१७ (सन्तान ० व्रत : चैत्र कृष्ण अष्टमी से कृष्ण पूजा), लक्ष्मी नारायण १.२७३ (वर्ष की २४ अष्टमी तिथियों में करणीय व्रतों का वर्णन), १.३००.२८ (पुरुषोत्तम मास ० माहात्म्य : ब्रह्मा के दुन्दुभि आदि ९ पुत्रों का कृष्ण -पार्षद बनना), १.३१५.८५ (पुरुषोत्तम मास की अष्टमी तिथि का माहात्म्य व विधि), १.४७२.१०५ (कार्तिक कृष्ण अष्टमी माहात्म्य : परिमलालय विद्याधर की तीन पत्नियों द्वारा गोलोक प्राप्त करना), २.१९ (कार्तिक कृष्ण अष्टमी को कृष्ण के द्वितीय जन्मोत्सव की विधि वर्णन), २.२७.७७ (कालाष्टमी नामक भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को शिव का शयन), २.३३.५ (आश्विन ० : गौरी व्रत, गौरी विसर्जन काल में व्याघ्र का प्रकट होना), लन २.१९० (भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को कृष्ण की दिनचर्या वर्णन), २.२०९ (भाद्रपद शुक्ल अष्टमी को कृष्ण कृत यज्ञनारायण पूजा व दिनचर्या वर्णन), २.२२८ (आश्विन कृष्ण अष्टमी को कृष्ण की दिनचर्या वर्णन), २.२३४ (कार्तिक कृष्ण अष्टमी को कृष्ण के १५वें जयन्ती उत्सव का वर्णन), २.२४४ (मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी को अश्वपाटल नृप द्वारा सोमयाग का आरंभ वर्णन), ३.१.३६ (अष्टमी को स्वर्ण गौ दान से उत्तम द्रव्य की प्राप्ति का उल्लेख), कथासरित ८.३.५२ (फाल्गुन कृष्ण अष्टमी को वल्मीक स्थान पर चक्रवर्तियों के लक्षण प्रकट होने का उल्लेख); द्र. जन्माष्टमी

टिप्पणी : तिथियों के देवताओं का क्रम सामान्य रूप से इस प्रकार लिया जाता है : प्रतिपदा के प्रजापति देवता, द्वितीया के अश्विनौ, तृतीया की गौरी, चतुर्थी के गणेश, पंचमी के सर्प, षष्ठी के स्कन्द, सप्तमी के सूर्य, अष्टमी की दुर्गा। इसी क्रम से मिलता हुआ क्रम मैत्रायणी संहिता १.८.१ में इस प्रकार है : प्रथमा -पुरुष, द्वितीया -अश्व, तृतीया -गौ, चतुर्थी -अवि, पंचमी -अज, षष्ठी -यव, सप्तमी -व्रीहि, अष्टमी वसन्त, नवमी -ग्रीष्म, दशमी -वर्षा, एकादशी -शरद, द्वादशी -हेमन्त, त्रयोदशी -शिशिर। छान्दोग्य उपनिषद आदि के अनुसार पुरुष, अश्व, गौ, अवि व अज क्रमशः निधन, प्रतिहार, उद्गीथ, प्रस्ताव व हिंकार भक्ति के प्रतीक हैं। इनमें अश्व और गौ अवरोहरण -आरोहण का एक युगल है, अवि व अज दूसरा युगल। इसी प्रकार यव और व्रीहि तीसरा युगल है। इसके पश्चात अष्टमी से ऋतुएं आरंभ होती हैं। यह भक्ति का एक नया क्रम है। बृहदारण्यक उपनिषद २.२.४ के अनुसार इस व्यक्तित्व रूपी चमस में, जिसका पेंदा ऊपर की ओर है, यश भरा पडा है। इसके किनारे सात ऋषि बैठे हैं और वाक् अष्टमी है। वाक् रूपी मुख से ही अन्न भक्षण करते हैं। अतः यह वाक् ऐसी है जो देवों का मुख है। यह अत्रि है। वैदिक साहित्य में अग्नि को देवों का मुख कहा जाता है। अग्नि ही देवों के लिए अन्न का वहन करती है। इसे भक्ति रूपी वाक् के रूप में समझ सकते हैं! शतपथ ब्राह्मण १.४.१.३६ के अनुसार अष्टमी गायत्री ही है जिसमें आठ अक्षर होते हैं। पैप्पलाद संहिता ५.३५.१२ के अनुसार पहली सात तो संनमः की स्थितियां हैं और अष्टमी धीति साधनी है। पैप्पलाद संहिता ९.२०.८ के अनुसार अष्टमी को ओज, तेज, सह, बल की प्राप्ति करते हैं।

अष्टमी को समझने के लिए ओंकार की मात्राओं का भी आश्रय लिया जा सकता है। तुरीयोपनिषद ९ आदि के अनुसार प्रथम कला अकार, दूसरी कला उकार, तीसरी कला मकार, चतुर्थ कला अर्धमात्रा; पंचम कला नाद, षष्ठम कला बिन्दु, सप्तम कला कला, अष्टम कला शक्ति, नवम शान्ति, दशम समाना, एकादश आत्मा, द्वादश मनोन्मना, त्रयोदश वैखरी, चतुर्दश मध्यमा, पंचदश पश्यन्ती और षोडश परा है। नादबिन्दु उपनिषद १० में ओंकार की कलाओं के नाम इस प्रकार हैं : १. घोषिणी (राज्य प्राप्ति कारक), २. विद्या (यक्षत्व प्राप्ति कारक), ३.पतंगिनी (विद्याधरत्व प्राप्ति कारक), ४. आयु (गन्धर्वत्व प्राप्ति), ५. वेगिनी? (देवत्व प्राप्ति), ६. ऐन्द्री (इन्द्र सायुज्य प्राप्ति), ७. वैष्णवी (वैष्णव पद प्राप्ति), ८. शांकरी (रुद्र तथा पशुपति से सायुज्य प्राप्ति), ९. महती (महर्लोक प्राप्ति), १०. धृति (जन लोक प्राप्ति), ११. नारी (तपोलोक प्राप्ति), १२. ब्राह्मी (शाश्वत ब्रह्म प्राप्ति)। अद्वैतोपनिषद २४ के अनुसार अष्टमी निर्गुणावस्था है जिसमें ब्रह्म शरीर में ब्रह्मा की ज्ञान लहरी स्पंदन करती है।

अष्टावक्र स्कन्द ३.१.२३.२६ (देवों के माहेश्वर यज्ञ में धुरी वहन करने वाला एक ऋत्विज ?), स्क ४.१.४५.३५ (अष्टवक्रा : ६४ योगिनियों में से एक), ब्रह्म १.१०३.७२ (० द्वारा अप्सराओं को कृष्ण पति प्राप्ति का वर व दस्यु हरण का शाप), विष्णु ५.३८.७१ (० द्वारा अप्सराओं को कृष्ण -पत्नियां बनने का वरदान व रुष्ट होने पर शाप), गर्ग २.६ (० द्वारा अघासुर को शाप देकर सर्प बनाना), ४.२३ (सुदर्शन विद्याधर द्वारा उपहास होने पर ० द्वारा

विद्याधर को शाप से अजगर बनाना), १०.१७.२५ (नारीपाल द्वारा उपहास होने पर शाप), ब्रह्मवैवर्त ४.२९.३३+ (कृष्ण के पास आगमन, कृष्ण की स्तुति, प्राण त्याग, पूर्व काल में असित -पुत्र देवल का रम्भा शाप से विकृत -देह होना), विष्णु धर्मोत्तर ३.२२२+ (कुबेर से धर्मफल संबंधी संवाद), ३.२२४ (उत्तर दिशा से स्त्री सम्बन्धी संवाद), कथासरित १४.१.२२ (अंगिरा द्वारा अष्टावक्र -पुत्री सावित्री से विवाह की याचना, अस्वीकृत होने पर अष्टावक्र -भ्राता की पुत्री अश्रुता से विवाह)

टिप्पणी : महाभारत वनपर्व १३२ के अनुसार कहोड व सुजाता के गर्भ में स्थित पुत्र अष्टावक्र ने अपने पिता को टोका कि वह वेदों का गलत उच्चारण कर रहे हैं। कहोड मुनि ने गर्भ में स्थित पुत्र को शाप दे दिया कि तू गर्भ में रह कर ही इतना टेढा बोल रहा है, तू आठ स्थानों पर वक्र हो जा। वही अष्टावक्र हुआ। कहोड की व्युत्पत्ति व्याकरण ग्रन्थों में कहिकः अर्थात शिरोवस्त्र या टोपी से की गई है।

"गर्भ से तात्पर्य विज्ञानमय कोश के गर्भ से है जहां वेदों का ज्ञान स्वतः ही हो जाता है। यह गर्भ आठ प्रकार से वक्र (अन्तर्मुखी?) है -पांच ज्ञानेन्द्रियां, मन, अहंबुद्धि और महत्बुद्धि। ऋग्वेद १०.१११ सूक्त के ऋषि का नाम अष्टदंष्ट्र वैरूप है -जो आठ प्रकार से काटता है। जीवात्मा की पांच ज्ञानेन्द्रियां, मन, अहंबुद्धि व महत् बुद्धि आठ प्रकार से उसका दंशन करती है। तंत्र शास्त्र के अनुसार घृणा, लज्जा, भय, शंका, जुगुप्सा, कुल, शील और जाति यह आठ पाश हैं।" -फतहसिंह

महाभारत वनपर्व १३४ के अनुसार अष्टावक्र के पिता कहोड को जनक के पुरोहित बन्दी ने शास्त्रार्थ में हराकर जल में डुबा दिया था। १२ वर्षीय अष्टावक्र ने बन्दी से शास्त्रार्थ किया। बन्दी ने १ की महिमा बताई तो अष्टावक्र ने २ की। बन्दी ने ३ की तो अष्टावक्र ने ४ की इस तरह चलते चलते बन्दी ने ११ की महिमा बताई तो अष्टावक्र ने १२ की। तब बन्दी ने कहा कि त्रयोदशी तिथि उत्तम है। 'यह पृथिवी १३ द्वीपों से युक्त है। इस प्रकार आधा श्लोक कह कर बन्दी चुप हो गया। तब अष्टावक्र ने शेष आधा श्लोक इस प्रकार पूरा किया कि केशी ने १३ दिन तक विष्णु से युद्ध किया था। अतिच्छन्द में १३ अक्षर होते हैं। तब बन्दी हार गया। उसने कहोड को वापस लाकर दे दिया। अष्टावक्र ने अपने पिता के परामर्श पर समंगा नदी में स्नान किया जिससे उनके सारे अंग सीधे हो गए।

"जीवात्मा अपने लक्ष्य को तभी प्राप्त कर सकता है जब वह ब्रह्म की शक्ति को लेकर आगे बढे। ब्रह्मशक्ति दो प्रकार से चलती है : सूक्ष्म से स्थूल की ओर और स्थूल से सूक्ष्म की ओर। ऊपर से नीचे आने वाली शक्ति प्रकाश है, मित्र रूप है। नीचे से ऊपर जाने वाली शक्ति छाया रूप है, वरुण रूप है। वेद में मित्र और वरुण का अलग -अलग तरह से वर्णन आता है। बारह में उतरता है, बारह में चढता है। यह द्वादशी व्रत है। इसे अष्टावक्र और बन्दी दोनों जानते हैं (यहां १२ वर्ष के दो यज्ञ चल रहे हैं -एक जनक का, नीचे वरुण का)। १३ को दोनों आधा -आधा जानते हैं। जब यह दोनों मिल जाते हैं, वह त्रयोदशी व्रत है। इससे परे चतुर्दशी का ज्ञान है। तब न मित्र रहता है, न वरुण। यह आत्मा की द्वैत से ऊपर अद्वैत की अवस्था है। पंद्रहवीं तिथि में सविकल्प समाधि होती है। सोलहवीं अवस्था निर्विकल्प समाधि की होती है। अष्टावक्र की वक्रता तभी दूर होती है जब वह अपने पिता कहोड, अर्थात उच्च स्थिति से मिलता है।" फतहसिंह

ऋग्वेद १०.१११ से आरंभ करके कुछ सूक्तों के ऋषि अष्टदंष्ट्र वैरूप, नभ प्रभेदन वैरूप, शतप्रभेदन वैरूप व सध्रीची वैरूप हैं। यह संभव है कि अष्टावक्र की कथाएं इन सूक्तों के गूढांशों को प्रस्तुत करती हों। इसके अतिरिक्त अष्टावक्र गीता व उस पर रजनीश की व्याख्या भी दृष्टव्य हैं।

असम गर्ग ७.१५.१८ (० देश के अधिपति बिम्ब द्वारा प्रद्युम्न को भेंट), लक्ष्मी नारायण २.११५.१७ (आसाम देश में कामाक्षी देवी का वास, निरुक्ति)

असमंजस ब्रह्माण्ड २.३.५१.५४ (सगर - पुत्र, पूर्व जन्म में वैश्य, पिशाच को प्रतिश्रुत न देने पर पिशाच द्वारा असमंजस का आवेष्टन, नृशंस कार्यों के कारण पिता द्वारा निष्कासन), वायु ८८.१६५ (बर्हिकेतु उपनाम), देवीभाग. ९.११.५ (सगर -शैब्या पुत्र, गंगा अवतारण हेतु तप), हरिवंश १.१५.६ (सगर -केशिनी पुत्र, पंचजन उपनाम), भागवत ९.८.१५ (असमंज : सगर -पुत्र, अंशुमान -पिता, दुष्ट व विचित्र कर्मों के कारण पिता द्वारा त्याग), विष्णु ४.४.५ (वही)

असि वराह १६६ (मथुरा में वराह द्वारा दिव्य असि से विमति राजा के शिर का छेदन करने के पश्चात असि कुण्ड का निर्माण, असि कुण्ड माहात्म्य), स्कन्द १.३.१.११.४+ (गौरी देवी द्वारा महिषासुर पर खड्ग, चक्र, असियों आदि द्वारा प्रहार, खड्ग द्वारा महिष का सिर कर्तन, शीर्ष के कण्ठ में स्थित लिंग का गौरी के पाणितल से चिपकना, देवी द्वारा अरुणाचल पर खड्ग तीर्थ में लिंग की स्थापना और शिव के वास्तविक लिंग का दर्शन करना आदि), ३.३.१२.३४ (ऋषभ योगी द्वारा सीमन्तिनी - पुत्र भद्रायु को शत्रु नाश हेतु दिव्य खड्ग व शंख प्रदान करना), ४.१.५.२५ (वरणा व असि नदियों में असि इडा नाडी का प्रतीक), ४.१.३०.१५ (वाराणसी में असि व वरणा नदियों का माहात्म्य), ४.२.७४.५५ (असि तट पर स्थित गणों के नाम), ७.१.८३.३९ (आश्विन शुक्ल पंचमी को खड्ग पूजा विधान वर्णन), ब्रह्म २.६९ (पैलूष द्वारा ज्ञान

खड्ग से क्रोध, तृष्णा, संग, संशय, आशा आदि शत्रुओं का छेदन), २.७३.१५ (रावण को शिव से चन्द्रहास खड्ग प्राप्ति), भागवत ६.८.२६ (विष्णु की तलवार से शत्रुओं को छिन्न -भिन्न करने की प्रार्थना), १२.११.१५ (विष्णु के आयुध असि का नभस्तत्व का प्रतीक होने का उल्लेख), नारद २.४८.२१ (असी : काशी में शुष्क नदी, पिंगला नाडी का स्वरूप), लक्ष्मी नारायण १.३४८.७२ (असि कुण्ड माहात्म्य : मथुरा तीर्थ को दूषित करने वाले राजा विमति का वराह भगवान द्वारा असि से वध), विष्णु धर्मोत्तर २.१७ (लोहासुर के उपद्रव की शान्ति हेतु ब्रह्मा द्वारा नन्दक नामक खड्ग को उत्पन्न करके केशव को प्रदान करना, उत्तम खड्ग के लक्षण आदि), २.१६०.२६ (असि के खड्ग आदि आठ नामों, कृत्तिका नक्षत्र और रोहिणी शरीर का उल्लेख), ३.१०.६ (वही), पद्म ६.१३५.११६ (साभ्रमती तट पर राजखड्ग तीर्थ माहात्म्य : स्नान से राजा वैकर्तन की कुष्ठ रोग से मुक्ति), ६.१४७ (खड्ग तीर्थ में विश्वेश्वर शिव के दर्शन का माहात्म्य), ६.१५४.१ (खड्ग धारा तीर्थ माहात्म्य : चण्ड किरात द्वारा अनायास शिव की अर्चना का वृत्तांत), ६.१९० (खड्गबाहु राजा द्वारा गीता के १६वें अध्याय का महत्व जानकर अरिमर्दन नामक उन्मत्त हाथी को वश में करना), ६.१९१ (खड्गबाहु राजा के दुःशासन नामक रोगग्रस्त हाथी का गीता के १७वें अध्याय के श्रवण से मुक्त होने का वृत्तांत), ७.६.३ (वीरवर पुरुष/स्त्री द्वारा भीमनाद नामक खड्ग/गंडक का वध और खड्ग के पूर्व जन्म का वृत्तांत), मार्कण्डेय ८२.२४ (महिषासुर वध के संदर्भ में काल द्वारा चण्डिका देवी को खड्ग व चर्म भेंट करना), भविष्य ४.१३८.६७ (खड्ग मन्त्र : खड्ग के ८ पर्यायवाची नाम आदि), अग्नि ८१.१९ (दीक्षा कर्म में कुश से बोधमय खड्ग निर्माण), २४५.१४ (ब्रह्मा के यज्ञ में अग्नि से खड्ग का प्राकट्य, विष्णु द्वारा नन्दक खड्ग रूप में ग्रहण करके लोह दैत्य का वध, देश अनुसार खड्ग की विशिष्टता का वर्णन), २५२.४ (खड्ग द्वारा युद्ध की ३२ विधियां), २६९.२९ (खड्ग स्तुति मन्त्र), वा.रामायण (विश्वामित्र द्वारा राम को विद्याधर -अस्त्र नन्दन नामक असि प्रदान करने का उल्लेख), हरिवंश ३.१२५.१४ (खड्ग युद्ध के ज्ञाताओं के रूप में डिम्भक, सात्यकि आदि ६ वीरों तथा खड्ग युद्ध के ३२ प्रकारों के नाम), गर्ग १०.७.५३ (अश्वमेध के संदर्भ में असिपत्र व्रत की महिमा), ब्रह्मवैवर्त २..३०.११९ (नरक में असिपत्र वन प्रापक दुष्कर्मों का कथन), योगवासिष्ठ ३.३९.४ (अन्धकार रूपी असि से दिन रूपी हस्ती का वध होने पर गजमुक्ताओं रूपी तारों का प्रकट होना), कथासरित २.२.४५ (कालनेमि ब्राह्मण -कुमार श्रीदत्त द्वारा सिंह रूप धारी यक्ष को परास्त करके मृगांक नामक खड्ग प्राप्त करना), २.३.३८ (राजा महासेन द्वारा चण्डिका देवी से दिव्य खड्ग प्राप्त करना), ५.३.२५९ (ब्राह्मण पुत्र शक्तिदेव द्वारा स्व पत्नी के उदर को फाडकर गर्भ के कण्ठ को मुष्टि द्वारा ग्रहण करने पर गर्भ का खड्ग रूप में रूपांतरित होना), कस ७.८.११८ (इन्दीवरसेन राजकुमार द्वारा विन्ध्यवासिनी देवी की आराधना से प्राप्त खड्ग की सहायता से राक्षसों का विनाश, माया को नष्ट करने हेतु खड्ग द्वारा राक्षस की मूर्धा के दो टुकडे करना और खड्ग दंष्ट्रा सुन्दरी को प्राप्त करने आदि का वृत्तांत), ९.६.१५० (खड्ग नामक वैश्य पुत्र का सिर पर रखे तप्त चक्र से पीडित होने और चक्र नामक वैश्य-पुत्र द्वारा उसे तप्त चक्र से मुक्त करने का वृत्तांत), ९.६.२१४ (त्रिभुवन राजा द्वारा पाशुपत की सहायता से बिल में दिव्य खड्ग प्राप्त करने का वृत्तांत), १२.१.६६ (ब्राह्मण -पुत्र वामदत्त द्वारा काल संकर्षिणी विद्या की साधना से उत्तम खड्ग प्राप्त करना), १२.५.१६६, १२.५.३६९ (राजकुमार इन्दुकलश द्वारा राजा विनीतमति से अश्व व खड्ग प्राप्त करना व खड्ग की सहायता से कनककलश को अहिच्छत्र राज्य से च्युत करना), १२.१४.१०८ (राजा चण्डसिंह द्वारा कालनेमि असुर-कन्या से अपराजित नामक खड्ग प्राप्त करने का उल्लेख), १५.१.२० (कामदेव के अवतार राजा नरवाहनदत्त द्वारा अहीन्द्र आभावाली खड्ग को लक्ष्मी के केशपाश की भांति पकडना और खड्ग का सिद्ध होकर जैत्र खड्ग रत्न बनना), १७.२.१४३ (शिव द्वारा विद्याधर राज-पुत्र मुक्ताफलकेतु को अपराजित नामक खड्ग प्रदान करना); द्र. असिधार, असी, खड्ग आदि

महाभारत कर्ण २५.३१ (भीम-पुत्र सुतसोम द्वारा शकुनि से युद्ध में असि के १४ मण्डलों का प्रदर्शन करने का उल्लेख), सौप्तिक ७.६६ (अश्वत्थामा द्वारा शिव से दिव्य असि प्राप्ति व उसके द्वारा रात्रि में सोए हुए पांचालों का संहार), शान्ति १६६.१ (नकुल के खड्ग युद्ध विशारद होने का उल्लेख), १६६.४३ (ब्रह्मा द्वारा असुरों के विनाश हेतु यज्ञ से असि नामक भयंकर भूत को प्रकट करना, रुद्र द्वारा असि से असुरों का वध, असि का विष्णु, मरीचि, इन्द्र आदि को क्रमशः हस्तान्तरण आदि), आश्वमेधिक ४७.१४ (तत्वज्ञान रूपी असि से अज्ञान के वृक्ष को छिन्न-भिन्न करने का निर्देश)

टिप्पणी : कथा सरित्सागर तथा पुराणों में दिए गए संकेतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि क्षत्रिय वीर को अश्व और असि एक साथ प्राप्त होते हैं। साधक को पहले अग्नि का विकास अश्व रूप में करना होता है, ऐसा अश्व जिसकी पंहुच देवों तक हो। इस अश्व का शीर्ष संवत्सर के १२ मास होते हैं। यही

कथासरित्सागर में कथित कालनेमि तथा तप्त चक्र से पीडित खड्ग नामक वैश्य है। इसके पश्चात १३वें अधिक मास के रूप में असि की प्राप्ति होती है। यह चन्द्रमा का रूप है। इस तथ्य की पुष्टि पुराणों में रावण, अश्वत्थामा आदि द्वारा शिव/सोम से खड्ग प्राप्ति से होती है। रावण की असि का नाम भी चन्द्रहास है। कथा सहित्सागर में श्रीदत्त की खड्ग का नाम मृगांक है। इसके अतिरिक्त पुराणों में सार्वत्रिक रूप से असि के शरीर के रूप में रोहिणी का उल्लेख है। रोहिणी चन्द्रमा की प्रियतम पत्नी है। शतपथ ब्राह्मण ३.८.१.४ में कहा गया है कि असि शास है। इसका निहितार्थ होगा कि असि शशि का रूप है, शासन करने वाली है। असि किसका और किस प्रकार शासन करती है? शतपथ ब्राह्मण में असि को अश्व के अंगों का शासन करने वाली के रूप में वर्णित किया गया है। लेकिन पद्मपुराण में गीता के १६वें १७वें अध्यायों के माहात्म्य के संदर्भ में राजा खड्गबाहु पहले तो अपने काम, क्रोध आदि आवेगों को नियंत्रित करके अरिमर्दन हाथी पर शासन करता है और फिर भक्ति के सात्विक, राजस और तामस तीन भेदों को समझ कर दु:शासन नामक हाथी को रोगमुक्त करता है। कात्यायन श्रौत सूत्र २०.७.४ में स्वर्ण, रजत और लौहमय असियों का उल्लेख आता है। हो सकता है कि यह भक्ति के उपरोक्त तीन भेदों का प्रतीक हो।

शतपथ ब्राह्मण ५.३.१.१० आदि में असि के अश्व से सम्बन्ध को एक अन्य प्रकार से दर्शाया गया है। कहा गया है कि असि नखर है (सायण भाष्य के अनुसार कोश/म्यान से रहित है)। इस असि का प्रवद्ध/कोश वालों को, बिखरे हुए प्राणों को बांधने वाला, अक्षों को संग्रह करने वाला पात्र है। यह संकेत करता है कि एक ओर अक्ष विद्या रूपी एकान्तिक साधना है तो दूसरी ओर चेतना को व्यापक रूप देने वाली अश्व साधना है।

ऐतरेय ब्राह्मण ७.१६ तथा शांखायन श्रौत सूत्र १५.२१.१ में हरिश्चन्द्र के राजसूय यज्ञ के संदर्भ में आख्यान है कि यज्ञ के पुरुष-पशु के आलभन के लिए शुन:शेप के पिता अजीगर्त को धन देकर तैयार किया गया। अजीगर्त अपनी असि को तेज करने गया। इतने में शुन:शेप ने बद्ध पाशों से मुक्त होने के लिए क्रमश: प्रजापति, अग्नि, सविता, - वरुण आदि देवों की ऋचाओं द्वारा स्तुति की और प्रत्येक ऋचा पर उसके पाश खुलते चले गए। ऐसा अनुमान है कि असि का निर्माण करने वाली ऊर्जा पर नियंत्रण न होने पर वह ऊर्जा सर्प ऊर्जा बन कर विष का पान करती है, विष को पाशों में बांधती रहती हैं। इस ऊर्जा का नियंत्रण होने पर यह पाशों का छेदन करने वाली असि बन जाती है (तुलनीय : कथा सरित्सागर में नरवाहनदत्त द्वारा अहीन्द्राभ खड्ग ग्रहण करना)। ऋग्वेद आदि में असि के पुत्र-पुत्रियों के रूप में स्वधिति/क्षुरिका आदि के उल्लेख आते हैं। डा० फतहसिंह के अनुसार यह स्वधिति स्तुति का ही रूप है। क्षुरिकोपनिषद भी क्षुरिका की सहायता से पाशों का छेदन करके अनन्त आकाश रूपी चेतना में विचरण करने से सम्बन्धित है।

पुराणों में यत्र-तत्र रावण आदि द्वारा स्वयं अथवा अन्य देवों द्वारा असुरों के सिर काटने और पुन:-पुन: नये सिरों के प्रकट होने के उल्लेख आते हैं। कथासरित्सागर से यह संकेत मिलता है कि जब खड्ग द्वारा मूर्धा का विभाजन तर्क प्रधान और भावना प्रधान खंडों के रूप में हो जाएगा तो यह नये शीर्ष उत्पन्न होने की माया समाप्त हो जाएगी। असि को इडा का प्रतीक मानने का रहस्य भी उपरोक्त तथ्य में निहित हो सकता है।

असि की व्युत्पत्ति अस्-दीप्तौ धातु से की जाती है। कर्मकाण्ड में असि के प्रतीक के रूप में काष्ठ निर्मित स्फ्य नामक शस्त्र/वज्र का प्रयोग किया जाता है। जिस प्रकार रथ व शर क्षत्रिय के अस्त्र हैं, वैसे ही स्फ्य व यूप ब्राह्मण के अस्त्र हैं (शतपथ ब्राह्मण १.२.४.१)। विस्तृत व्याख्या अपेक्षित है।

असिक्नी देवीभाग. ७.१ (दक्ष - पत्नी, नारद - माता, ब्रह्मा के वाम हस्त अंगुष्ठ से प्राकट्य, वीरिणी उपनाम), विष्णु १.१५.९० (वीरण प्रजापति -पुत्री, दक्ष -पत्नी, पांच सहस्र हर्यश्वों, एक सहस्र शबलाश्वों व ६० कन्याओं की माता), भागवत ५.१९.१८ (भारत की एक नदी), भा ६.४.५१ (पंचजन प्रजापति की पुत्री, दक्ष -पत्नी, हर्यश्वों, शबलाश्वों व ६० कन्याओं की क्रमश: उत्पत्ति), शिव २.२.१३ (पंचजन -कन्या, दक्ष से विवाह, मैथुनी प्रजा की सृष्टि)

टिप्पणी : ऋग्वेद व अथर्ववेद के कुछ मन्त्रों में असिक्नी शब्द आया है। निघंटु में यह रात्रि नामों के अंतर्गत है। असिक्नी शब्द के लिए अक्षिक्नी शब्द पर विचार करना चाहिए। संभव है कि यह समाधि अवस्था में अथवा वीर प्राणों की स्थिति में इन्द्रियों की अवस्था विशेष हो। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.४.४.१ में ओषधी को असिक्नी कहा गया है जिसका निलय व आस्थान असित अवस्था में है। ऋग्वेद १०.७५.५ में गंगा, यमुना आदि नदियों के साथ असिक्नी का भी उल्लेख है।

असित वा.रामायण १.७०.२७ (भरत - पुत्र, इक्ष्वाकु वंश, कालिन्दी -पति, सगर -पिता, हैहय आदि राजाओं द्वारा राज्य से च्युति, तु० बाहु राजा), हरिवंश १.१८.२३ (असित -देवल : एकपर्णा -पति), ह १.२३.२५ (असित -देवल की पुत्री सन्नति का ब्रह्मदत्त राजा की भार्या बनना), वायु ७२.१७ (एकपर्णी - पति, देवल -पिता), ब्रह्माण्ड २.३.८.२७ (कश्यप -पुत्र, ब्रह्मा का अंश, एकपर्णा -पति, देवल -पिता), २.३.१०.१८ (वही), वराह ७८.९ (असितोद : मेरु के पश्चिम में सरोवर का नाम), पद्म ५.१० (राम अश्वमेध में ० की पूर्व द्वार पर स्थिति), वायु ७०.२५ (कश्यप - पुत्र, ब्रह्मा का अंश), विष्णु ४.२४.१२७ (० द्वारा जनक को पृथ्वी प्रोक्त श्लोक कथन), ब्रह्मवैवर्त ४.३० (प्रचेतस -पुत्र, शिव की स्तुति, देवल पुत्र प्राप्ति), ब्रह्माण्ड २.३.७.७ (असिता : २४ मौनेया

अप्सराओं में से एक), ३.४.१९.७७ (असितांग : ललिता के गीति रथ चक्र के षष्ठम पर्व में स्थित भैरवों में से एक), स्कन्द ४.२.६८.७१ (असितांग भैरव का संक्षिप्त माहात्म्य : यम दर्शन से मुक्ति), कथासरित् १८.१.३ (असित गिरि पर कश्यप के आश्रम में नरवाहनदत्त द्वारा स्व वृत्तांत कथन)

टिप्पणी : ऋग्वेद ९.५ से ९.२५ तक के सूक्त काश्यप या असित देवल ऋषि के हैं जिनका देवता पवमान सोम है। वैदिक साहित्य में असित दैवल शब्द का प्रयोग हुआ है जिससे असित के देवल -पुत्र होने का भ्रम होता है जबकि पुराणों के अनुसार असित का पुत्र देवल है। अथर्ववेद व पैप्पलाद संहिता के मन्त्रों में असित असुर का उल्लेख आया है (उदाहरण के लिए पैप्पलाद संहिता ४.१८.५)। यह वह आसुरी अवस्था है जो मनुष्य व्यक्तित्व में शुक्लत्व को रोकती है। इसे नष्ट करने की आवश्यकता है। ऋग्वेद ४.१३.४ की सार्वत्रिक ऋचा के अनुसार सूर्य असित अथवा तम की अवस्था को दूर करता है। दूसरी ओर तमोगुणी प्रवृत्ति से बचने के लिए अंतर्मुखी होने की आवश्यकता है। यह अवस्था प्रलय के समान है। इस अवस्था में मनुष्य न तो व्यथा पाता है, न क्रोध आदि करता है (बृहदारण्यक उपनिषद ३.९.२६ तथा अन्यत्र)। अथर्ववेद ३.२७.१ के अनुसार प्राची आदि चार दिशाओं में से प्राची दिशा की रक्षा असित करता है, अग्नि अधिपति है तथा आदित्यों की प्राप्ति लक्ष्य है। आदित्यों की प्राप्ति का यह लक्ष्य ऋग्वेद की ऋचा ४.१३.४ के समान ही है। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३८१ तथा ३.३८२ में प्रजापति ने असित मुख से असुरों की सृष्टि की, तथा असुरों ने असित मुख से सुरा प्राप्त की, ऐसा उल्लेख है। जैमिनीय ब्राह्मण ३.२७० व ३.२७१ के वर्णन के अनुसार असित दैवल ने चमस का वरण किया और प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन व सायं सवन में क्रमशः देवों, मनुष्यों और पितरों की समिति में भ्रमण किया। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.२.९.१५ में असित दैवल आपः प्राप्ति के लिए प्रोक्षणी की आवश्यकता बताते हैं। इस प्रकार असित की प्रवृत्ति देवल बनने की, इस मर्त्य शरीर को अमृत बनाने की, देवपान चमस बनाने की है जिसका वर्णन ऋग्वेद के सूक्तों ९.५-९.२५ में किया गया है। यह समाधि से व्युत्थान की अवस्था है, अतः असित को कश्यप -पुत्र कहा गया है।

असित - पुत्र देवल का वृत्तांत ब्रह्मवैवर्त पुराण में उपलब्ध है जो राधा व कृष्ण के दर्शन से मोक्ष प्राप्त करते हैं। यह असित की सर्वोच्च अवस्था है। वैदिक मन्त्रों में यह किस रूप में प्रदर्शित की गई है, यह अन्वेषणीय है।

असिधार स्कन्द ४.२.७७.२१ (केदार तीर्थ में एक पर्वत, गुरु हिरण्यगर्भ की मुक्ति का स्थान), विष्णुधर्मोत्तर ३.२१८.१५ (असिधारा व्रत की महिमा का वर्णन), पद्म ६.१५४.१ (खड्गधारा तीर्थ माहात्म्य : चण्ड नामक किरात द्वारा अनायास शिव की अर्चना का वृत्तांत)

असिलोमा देवीभाग ५.१५.२ (महिषासुर - सेनानी, देवी द्वारा वध), हरिवंश ३.५१.१९ (बलि -सेनानी, स्वरूप), ३.५३.१५ (० का मारुत से युद्ध), ३.५७.१३ (० द्वारा देवों की सेना को पीड़ित करना, हरि देवता से युद्ध व उन्हें पराजित करना), मार्कण्डेय ८२.४१ (महिषासुर -सेनानी, देवी से युद्ध), पद्म १.६.५२ (दनु -पुत्र)

असी नारद २.४८.२१ (काशी में शुष्क नदी, पिंगला नाडी का स्वरुप); दृ. असि

असुर लक्ष्मी नारायण २.१५७.२२ (अंगन्यास में असुरों का वाम पाद में न्यास), दृ. दानव, दैत्य, राक्षस

असूया नारद १.७.१० (प्रजा में असूया वृत्ति के कारण राजा बाहु की राज्य से च्युति), वराह २७ (अनसूया : वाराही मातृका का रूप), भागवत १०.६०.२९ (रुक्मिणी का कृष्ण वचन से रुष्ट होना), दृ. अनसूया

अस्त ब्रह्माण्ड १.२.१९.८९ (शाक द्वीप का एक पर्वत), वायु ४९.८३ (वही), ५०.९९ (सूर्य का विभिन्न पुरियों में उदय -अस्त वर्णन), ५०.११२ (अस्त होने पर सूर्य का अग्नि में प्रवेश), भागवत ८.११.४६ (अस्त गिरि पर शुक्राचार्य द्वारा असुरों का पुनः संजीवन), विष्णु २.४.६२ (शाक द्वीप का एक पर्वत), मत्स्य १२२.१४ (शाक द्वीप का रजतमय पर्वत, गरुड द्वारा देवों से अमृत हरण का स्थान), पद्म १.४०.६ (सिद्धों के आश्रयभूत पर्वतों में से एक)

टिप्पणी : अध्यात्म में अस्त का अर्थ निर्वाण या मोक्ष प्राप्त करना है। सुबालोपनिषद ९ में चक्षु, श्रोत्र, रसना आदि ५ महाभूतों को क्रमशः अस्त करके आनन्दमय कोश तक पंहुचने का क्रमिक विकास दर्शाया गया है। वराहोपनिषद ४.२२ के अनुसार जहां सुख -दुःख का न उदय है न अस्त, वह अवस्था जीवन्मुक्त अवस्था कहलाती है। प्रश्नोपनिषद ६.५, मुण्डकोपनिषद ३.२.८, गुह्यकाली उपनिषद ३८ व अथर्ववेद १४.१.४३ के अनुसार जैसे नदियां समुद्र में अस्त होकर अपना नाम रूप खो देती हैं, इसी प्रकार पुरुष की १६ कलाएं पुरुष रूपी पति को प्राप्त करके अस्त हो जाती हैं। बृहदारण्यक उपनिषद १.५.२३ तथा ऋग्वेद १०.९५.२ के अनुसार वायु देवता का अस्त नहीं होता। छान्दोग्योपनिषद ३.८ में सूर्य के विभिन्न दिशाओं में उदय -अस्त का वर्णन किया गया है। निघंटु में अस्त शब्द की परिगणना गृह नामों के अंतर्गत की गई है। ऋग्वेद ५.६.१ के अनुसार अग्नि धेनुओं और अश्वों का अस्त है।

अस्ति गर्ग १.६.१५ (जरासन्ध - कन्या, कंस -

भार्या), हरिवंश २.३४.५ (जरासन्ध -कन्या, कंस -भार्या)

अस्तेय पद्म २.१३.२५ (० निरूपण), स्क १.२.५५.१७ (वही) दृ. चोरी

अस्त्र वा.रामायण १.२१.१४ (अस्त्र - शस्त्र : महर्षि कृशाश्व के पुत्र), १.२७ (राम द्वारा विश्वामित्र से प्राप्त अस्त्रों के नाम), १.२८.४ (राम द्वारा प्राप्त अस्त्रों के नाम), रा १.३०.१५ (राम द्वारा मारीच पर मानवास्त्र का प्रयोग), १.५६.५ (विश्वामित्र द्वारा वसिष्ठ पर प्रयुक्त अस्त्रों के नाम), ३.१२.३२ (अगस्त्य द्वारा राम को दिव्य धनुष, बाण, तूणी व असि भेंट), ६.९०.६८ (इन्द्रास्त्र महिमा : लक्ष्मण द्वारा इन्द्रास्त्र से इन्द्रजित का वध), हरिवंश २.१२५.४ (कृष्ण द्वारा शिव के विरुद्ध प्रयुक्त जृम्भण ०), ह ३.४४.६ (हिरण्यकशिपु द्वारा नृसिंह पर प्रयुक्त अस्त्रों के नाम), ब्रह्माण्ड २.३.३९.३२ (परशुराम द्वारा सुचन्द्र पर प्रक्षिप्त शिव शूल का पुष्पमाला बनना, आग्नेयास्त्र से सुचन्द्र की मृत्यु), ब्रड ३.४.२४.८० (तिरस्करिणी देवी द्वारा बलाहक असुर पर प्रयुक्त अन्धबाण), ३.४.२८.४५ (विशुक्र दैत्य द्वारा मुक्त तृषा अस्त्र से देवी सेना का पीड़ित होना, अमृत अस्त्र से शांति), ब्रड ३.४.२९.६२ (भण्डासुर व ललिता द्वारा प्रयुक्त अन्धतामिस्र, पाखण्ड, गायत्र, चाक्षुष्मत विश्वावसु, अन्तक, बलीन्द्र, हैरण्याक्ष, हैहय, द्विविद, गजासुर, शाम्भव, नारायण, कलि, महाकामेश्वर, पाशुपत, महामोह आदि अस्त्र), मार्कण्डेय २१.८५ (राजा ऋतध्वज द्वारा त्वाष्ट्र अस्त्र से पातालकेतु आदि दानवों को दग्ध करना), मा ६३.२७ (इन्दीवर विद्याधर -कन्या मनोरमा द्वारा स्वारोचिष को सम्पूर्ण अस्त्रों का हृदय प्रदान करना), मा ७८.१७ (सूर्य के तेज से देवास्त्रों का सृजन), ८२.१९ (देवों द्वारा देवी को ० प्रदान), मा १३०.६ (राजा मरुत्त द्वारा नागों के नाशार्थ संवर्तक अस्त्र को ग्रहण करना), ब्रह्मवैवर्त ३.३८.२३ (राजा सुचन्द्र के वध हेतु परशुराम द्वारा पाशुपत अस्त्र का सन्धान करने पर नारायण द्वारा निवारण), ३.४०.७२ (परशुराम द्वारा ब्रह्मास्त्र से कार्तवीर्य की सेना व पाशुपत अस्त्र से कार्तवीर्य का वध), अग्नि ३२१ (अघोर अस्त्र शान्ति कल्प वर्णन), ३२२ (पाशुपत अस्त्र शान्ति वर्णन), अग ३२३ (षडंग अघोर अस्त्र वर्णन), भविष्य १.१२३.७६ (सूर्य तेज से अस्त्र निर्माण वर्णन), भ ३.३.२१.१०२ (जयन्त द्वारा वैष्णव अस्त्र द्वारा शिलाश्व को भस्म करना, ब्रह्मास्त्र से शनि -प्रदत्त भल्ल को निष्प्रभावी बनाना), देवीभाग ५.९.१० (देवों द्वारा तेज से प्रकट देवी को स्व आयुध प्रदान करना), भागवत ६.८.२३ (विष्णु के आयुधों चक्र, गदा, शंख आदि की महिमा), भा १२.११.१४ (विष्णु के आयुधों के प्रतीकार्थ), वराह २१.५४ (दक्ष यज्ञ में विष्णु व शिव के बीच नारायण व रौद्र अस्त्रों से युद्ध), लक्ष्मी नारायण २.१५७.३९ (० न्यास कथन), ३.११७.७८ (ललिता देवी से युद्ध में भण्डासुर द्वारा प्रयुक्त अस्त्रों के नाम), ३.१८६.७८ (साधु की आत्मा में नारायण अस्त्र के वास का उल्लेख), योगवासिष्ठ १.९.१७ (कृशाश्व व जया के अस्त्र रूपी ५० पुत्रों की विश्वामित्र द्वारा प्राप्ति), योव ३.४८.२४+ (विदूरथ व सिन्धुराज के युद्ध में प्रयुक्त नाग, सौपर्ण, तमो, राक्षस, नारायण, आग्नेय, वारुण, शोषण, पर्जन्य, वायव्य, पर्वत, वज्र, ब्रह्म, पिशाच आदि अस्त्रों का वर्णन), कथासरित् १४.३.१०४(रक्त रूपी युद्ध की नदी में अस्त्र शस्त्रों की सर्प से उपमा), महाभारत : उद्योग ९६.४२ (काकुदीक, शुक, नाक आदि ८ अस्त्रों के नाम व काम -क्रोध आदि से उनका साम्य), १८३.१२ (भीष्म को अष्टवसुओं से प्रस्वापनास्त्र की प्राप्ति व भीष्म द्वारा परशुराम के विरुद्ध उसका प्रयोग), भीष्म ७७.५३ (द्रोणाचार्य द्वारा प्रज्ञास्त्र से धृष्टद्युम्न के मोहनास्त्र के नाश का उल्लेख), ८२.४२ (सात्यकि द्वारा ऐन्द्रास्त्र से अलम्बुष की माया का नाश करना), १०२.१९ (अर्जुन द्वारा त्रिगर्तों के विरुद्ध वायव्य अस्त्र का प्रयोग, द्रोणाचार्य द्वारा शैल अस्त्र से वायव्य अस्त्र का नाश), १२१.२२ (अर्जुन द्वारा पर्जन्यास्त्र से जल उत्पन्न करके शरशय्या पर भीष्म को तृप्त करना), द्रोण २९.१७ (भगदत्त द्वारा अर्जुन के विरुद्ध अंकुश रूपी वैष्णवास्त्र का प्रयोग, कृष्ण द्वारा रक्षा), ८१.११ (अर्जुन द्वारा स्वप्न में शिव से पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति का वर्णन), १०३.२१ (अश्वत्थामा द्वारा सर्वास्त्रघातक अस्त्र से अर्जुन के मानवास्त्र को नष्ट करना), १९५.३२+ (अश्वत्थामा द्वारा पाण्डव सेना के विरुद्ध नारायणास्त्र का प्रयोग), २००.१ (कृष्ण द्वारा नारायणास्त्र से भीमसेन की रक्षा का वृत्तांत, नारायणास्त्र मोक्ष पर्व), २०१.३१ (अश्वत्थामा द्वारा प्रयुक्त आग्नेयास्त्र से कृष्ण व अर्जुन का अप्रभावित रहना), कर्ण ५३.२४ (अर्जुन द्वारा पादबन्ध/नाग अस्त्र का प्रयोग), ५३.३८ (अर्जुन द्वारा संशप्तकगणों व गोपालों की सेना के विरुद्ध ऐन्द्रास्त्र का प्रयोग), ६४.४७ (कर्ण द्वारा पांचालों के विरुद्ध भार्गवास्त्र का प्रयोग), सौप्तिक १२.४+ (अश्वत्थामा द्वारा प्राप्त ब्रह्मशिर अस्त्र की महिमा, अश्वत्थामा द्वारा पाण्डवों के विरुद्ध उसका प्रयोग, अर्जुन के ब्रह्मास्त्र द्वारा निवारण आदि); दृ. आयुध

टिप्पणी : डा० फतहसिंह के अनुसार जब किसी शब्द में र अक्षर का समावेश कर दिया जाता है तो वह गतिवाचक अर्थों में प्रयुक्त होने लगता है। इस प्रकार अस्त्र शब्द का मूल अस्त, अस्ति व अस्थि जैसे शब्द होने

चाहिएं। पुराणों में अस्त्रों को कृशाश्व -पुत्र कहना, दधीचि की अस्थियों से अस्त्रों का निर्माण आदि इस आधार की पुष्टि करते हैं।

पैप्पलाद संहिता १०.११.८ में हिंकार को अस्त्र कहा गया है तथा ५.३७.१ में अस्त्रों में प्रज्ञा के वास का उल्लेख है। शब्दकल्पद्रुम कोश में युक्तिकल्पतरु पुस्तक के आधार अस्त्रों का अग्नि, जल, काष्ठ आदि मायिक अस्त्रों और खड्ग आदि निर्मायिक अस्त्रों, दो भागों में विभाजन किया गया है।

अस्थि स्कन्द २.१.१० (० सरोवर माहात्म्य : मृत ब्राह्मणी द्वारा स्नान से पुनः संजीवन), स्क ४.१.३०.४३ (गंगा में प्रक्षेप के लिए ० बंधन विधि), स्क ५.३.८३.६३ (नर्मदा में हनुमान तीर्थ में अस्थि क्षेप का माहात्म्य : शिखंडी राज -कन्या का पूर्व जन्म का वृत्तांत आदि), ब्रह्माण्ड १.२.१०.३८ (शर्व रुद्र का रूप), गरुड २.२२.५९ (अस्थियों में जम्बू द्वीप की स्थिति), पद्म ३.२०.२ (नरक तीर्थ में ० क्षेप माहात्म्य), ३.२७.६४ (० पुर तीर्थ माहात्म्य), प ६.२१०.१३ (इन्द्रप्रस्थ के अन्तर्गत कोशला तीर्थ में अस्थि क्षेपण से मुकुन्द ब्राह्मण को स्वर्ग प्राप्ति), ६.२११.४० (कोशला तीर्थ में अस्थि क्षेप से सर्प को स्वर्ग प्राप्ति), ६.२३५ (भस्म, अस्थि आदि अवैदिक चिन्हों के धारण से असुरों का विनाश कथन), प ७.८.५८ (गंगा में अस्थिपात माहात्म्य : क्रौंची का इन्द्रप्रिया पद्मगन्धा बनना), अग्नि १५९ (गंगा में अस्थि पात माहात्म्य), ब्रह्म २.३०.४२ (नरक में अस्थि कुण्ड प्रापक दुष्कर्म कथन), वा.रामायण ४.११.७२ (राम द्वारा पादांगुष्ठ से दुन्दुभि असुर की अस्थियों को फेंकने का उल्लेख), लक्ष्मी नारायण १.३८८ (राजा नन्दसावर्णि द्वारा वराह की दन्तास्थि के प्रभाव से धन का संग्रह, पत्नी द्वारा अस्थि को भस्म करने पर मरण कथा), भविष्य २.१.१७.९ (अस्थि दाह में अग्नि का शिखंड़ी नाम), कथासरित् १०.५.१९३ (अस्थि मूर्ख की कथा : अन्य स्त्री की अस्थियों को पत्नी की अस्थियां मानना), कस १२.२९.३१ (अस्थि आदि से विद्या द्वारा सिंह उत्पन्न होने पर सिंह द्वारा ब्राह्मण भ्राताओं की हत्या की कथा); द्र. दधीचि

टिप्पणी : अस्थि शब्द अस्ति का द्योतक है। हरेक जीव की चेतना अस्थि/अस्ति है। -फतहसिंह

लौकिक रूप में जिसे निधन या मृत्यु कहते हैं, योग मार्ग या भक्ति मार्ग में समाधि की अवस्था को निधन कहते हैं। समाधि से व्युत्थान के पश्चात प्रथम अवस्था अस्ति, दूसरी भाति, तीसरी प्रिय, चौथी नाम और पांचवीं रूप की होती है (सरस्वती रहस्योपनिषद ३.२३)। पुराणों में इस तथ्य को दधीचि ऋषि के निधन के पश्चात उनकी अस्थियों से इन्द्र के वज्र निर्माण के रूप में प्रदर्शित किया गया है। इसके पूर्व दधीचि ऋषि ने देवों के अस्त्रों के तेज को पीकर उन्हें अपनी अस्थियों में आत्मसात कर लिया था। इस कथा का मूल स्रोत ऋग्वेद १.८४.१३ की सार्वत्रिक ऋचा है।

अस्थि और समाधि के रूप को और अधिक स्पष्ट करने के लिए अस्थियों से वृक्ष की उत्पत्ति के प्रतीक का आश्रय लिया गया है। शतपथ ब्राह्मण १२.७.१.९ के वर्णन के अनुसार सौत्रामणि याग के संदर्भ में इन्द्र द्वारा सोमपान करने पर उसकी अस्थियों से स्वधा का स्रवण हुआ जिससे न्यग्रोध वृक्ष उत्पन्न हुआ, मज्जा से व्रीहि उत्पन्न हुए, मांस से स्रवित ऊर्जा से उदुम्बर वृक्ष उत्पन्न हुआ इत्यादि। यहां अस्थियों से उत्पन्न न्यग्रोध वृक्ष का स्वरूप इस प्रकार है कि इसका मूल तो ऊपर की ओर और शाखाएं नीचे की ओर हैं, जैसी कि अश्वत्थ के बारे में भी कल्पना की जाती है। लेकिन न्यग्रोध और अश्वत्थ में अंतर यह है कि न्यग्रोध के मूल से अवरोह या उपमूल निकल कर नीचे की ओर फैला करते हैं जिनसे नये वृक्ष उत्पन्न हो जाते हैं। शतपथ १३.४.४.१० इत्यादि में अस्थियों से खदिर वृक्ष की उत्पत्ति कही गई है। काठक संहिता २५.६ इत्यादि के अनुसार अग्नि के शरीर की अस्थियों से पीतदारु/पूतद्रु वृक्ष का उद्भव हुआ।

अस्थि और समाधि के संदर्भ को समझने में शतपथ ब्राह्मण १०.४.१.१७ का उल्लेख सहायक होगा। इसके अनुसार लोम, त्वक्, असृग, मेद, मांस, स्नायु, अस्थि और मज्जा यह सब २ -२ अक्षरों वाले हैं। इन्हें मिलाकर १६ कलाएं बनती हैं। इनमें विचरने वाला प्राण प्रजापति कहलाता है जो १७वां है। यह १६ कलाएं प्राण प्रजापति के लिए अन्न का आहरण करती हैं। वैदिक साहित्य में अस्थियों का अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी, दोनों अवस्थाओं से सम्बन्ध जोडा गया है। अस्थियों को इष्टकाएं/ईंट कहा गया है जो इष्ट कामना की पूर्ति करती है। अस्थियों को ऋग्वेद की ऋचाएं, मज्जा को यजुर्वेद की यजुष और मांस को सामवेद की अर्चियां कहा गया है। यदि ऋक् के साथ यजुष का कथन किया जाए तो अस्थि का सम्बन्ध मज्जा से जुड जाता है (शतपथ १०.५.४.१२)। कहा गया है कि शरीर में ३६० अस्थियां हैं जो संवत्सर के ३६० अहोरात्रों का प्रतीक हैं। अस्थि रूपी ३६० इष्टकाओं का सम्बन्ध मज्जा रूपी ३६० इष्टकाओं से जुडने पर संवत्सर के ७२० दिन व रात्रि बन जाते हैं। यह उल्लेखनीय है कि आयुर्विज्ञान के अनुसार शरीर में लगभग ३०० ही अस्थियां हैं। शतपथ ब्राह्मण १०.५.४.१२ के अनुसार जो ३६? इष्टकाएं बचती हैं वह संवत्सर के १३वें मास आत्मा का प्रतीक हैं।

यदि ऋक् के साथ साम का गान किया जाए तो अस्थि का सम्बन्ध मांस से जुड जाता है (जैमिनीय ब्राह्मण १.२५९)। यह भक्ति का रूप है (जैमिनीय ब्राह्मण १.२९७)। ऋक् और साम तथा ऋक् और यजुष् के युगलों से एक ओर दांत वाले पशु जैसे गाय आदि उत्पन्न होते हैं। यदि ऋक् के साथ ऋक् का कथन किया जाए तो वह इस प्रकार है जैसे दोनों ओर दांत वाले हिंसक पशु, क्योंकि दांत भी अस्थि ही है। इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.५.८ इत्यादि में सौत्रामणि

अभिषेक के संदर्भ में अस्थि को वसु कहा गया है। राजा नन्दसावर्णि द्वारा वराह की दन्तास्थि द्वारा धन एकत्र करने की कथा के तत्व पर इन तथ्यों को ध्यान में रखकर विचार करने की आवश्यकता है।

ऐतरेय आरण्यक २.१.६ में लोम को उष्णिक छंद, त्वचा को गायत्री, मांस को त्रिष्टुप् स्नायुओं को अनुष्टुप, अस्थि को जगती और मज्जा को पंक्ति कहा गया है। दूसरी ओर काठक संहिता ३८.१४ में सौत्रामणि के संदर्भ में १३वें अधिक मास में कहा गया है कि लोम द्वारा गायत्री में प्रवेश करे, त्वचा द्वारा त्रिष्टुप् में, मांस द्वारा जगती में, अस्थियों द्वारा अनुष्टुप में, मज्जा द्वारा पंक्ति में। ऐतरेय आरण्यक ३.२.१ के उल्लेख के अनुसार आत्मा में प्राण उष्मा रूप, अस्थियां स्पर्श अक्षरों का रूप व मज्जा स्वर रूप है।

पुराणों में मृत्यु पश्चात गंगा में अस्थि प्रवाह का जो वर्णन है, वैदिक साहित्य में उसका रूप इस प्रकार है कि अस्थियां यज्ञ की समिधाएं हैं (शतपथ ९.२.३.४६ इत्यादि)। यज्ञ में कुछ काष्ठ खण्डों पर आज्य/घृत का लेप करके उनके बीच में अग्नि प्रज्वलित की जाती है। इसी प्रकार अस्थि रूपी समिधाओं पर अस्थियों के अंदर स्थित मज्जा रूपी आज्य का लेप करके इनके बीच अग्नि को प्रज्वलित करना है। यह अग्नि कौन सी है, इसके विषय में शतपथ १०.५.४.१२ का कथन है कि आत्मा ही अग्नि है। शतपथ १०.२.६.१२ के अनुसार प्राण जो अमृत है, वही अग्नि है। शतपथ १०.१.४.२ के अनुसार मज्जा के लिए अग्नि प्राण है, अस्थि के लिए अग्नि अपान, स्नायु के लिए व्यान, मांस के लिए उदान और मेद के लिए समान है। अस्थि स्वयं में निर्जीव है, उसमें प्राण नहीं है। प्राणों द्वारा, अग्नि द्वारा अमेध्य अस्थि आदि को मेध्य बनाते हैं। मेध्य बनाने पर क्या होगा, इसके बारे में अथर्ववेद ११.१०.२९ मन्त्र का कहना है कि अस्थि को समिधा बनाने पर आठ आप: या जलों का अवतरण होता है। अथर्ववेद ४.१०.७ के अनुसार अस्थि के कृशन (सुवर्ण रूप, कृष्ण रूप?) होने पर वह आप: के अन्त तक जाती है। पैप्पलाद संहिता १६.१३७.८ के अनुसार मज्जा, अस्थि, मांस, रक्त से अमिक्षा, क्षीर, घृत/सर्पि और मधु का दोहन किया जाता है। काठक संहिता १३.२ के अनुसार पुरुष की अस्थियां आग्नेय हैं, अर्थात उनमें अग्नि को प्रज्वलित करना है। दूसरी ओर मांस वारुण है। उसमें आप: का अवतरण होता है। यह वर्णन मृतक की अस्थियों का गंगा में प्रवाह करने की व्याख्या हो सकता है। शतपथ १०.६.४.१ के अनुसार अश्व के मेध्य बनने पर उसकी अस्थियां नक्षत्र बन जाती हैं और मांस नभ का रूप हो जाता है। तैत्तिरीय आरण्यक १.११.३ के अनुसार अन्धस् के द्वारा सारा द्युलोक आवृत होने के कारण सारी रश्मियां लुप्त हो जाती हैं। रात्रि में यह दिखाई पडती हैं और अस्थि से अस्थि (का उदय?) संभव हो सकता है।

ऋग्वेद १.१६४.४ में प्रश्न किया गया है कि जिस अस्थिवान का अनस्थि वाला भरण करता है, उसका जन्म होते हुए किसने देखा है। काठक संहिता २४.५ के अनुसार कर्मकाण्ड में घृत में हिरण्य/सुवर्ण का प्रक्षेप किया जाता है। कहा गया है कि यह कर्म गर्भ में अस्थि निर्माण करने का प्रतीक है। ज्योतिष शास्त्र में अस्थियों का कारक पिता व मांस, रुधिर आदि का कारक माता को कहा गया है। इसे आध्यात्मिक रूप में समझने की आवश्यकता है।

अस्मकी वायु ९६.१४३ (शूर - भार्या, देवमीढुष -माता), ९६.१८६ (देवश्रव -भार्या, अनादृष्टि -माता)

अस्माहक स्कन्द ५.३.१४६ (० तीर्थ माहात्म्य : पितर तीर्थ, पिण्ड व श्राद्ध आदि कर्म)

अह कूर्म १.७.४४ (ब्रह्मा के त्यक्त तनु से उत्पत्ति), पद्म ३.२६.९५ (अह व सुदिन तीर्थों का संक्षिप्त माहात्म्य), शिव ३.२९.१८ (आंगिरसों द्वारा सत्र में षष्ठम अह के कर्म में त्रुटि, नभग द्वारा शोधन), दृ. द्वादशाह

अहंकार देवीभाग ३.७.२२ (० के सात्विक, राजस आदि भेद, तन्मात्राओं की सृष्टि), ११.२२.३२ (प्राणाग्नि होत्र में पशु का रूप), शिव २.५.८.१४ (शिव रथ में कोणों का रूप), शि २.५.९.३८ (अहंकारकारक : शिव का एक गण), विष्णु धर्मोत्तर ३.२४८ (० के दोष), लक्ष्मी नारायण ३.१६९.५६ (अहंकार नाश का उपाय कथन, साधुभावायन ऋषि का दृष्टान्त), योगवासिष्ठ १.१५.१४ (० के दोष कथन, विन्ध्याचल व सिंह से उपमा), १.१८.१६ (० की गृध्र से उपमा), योव ४.३३.२४ (ज्ञान प्राप्ति से अहंकार का नाश, अहंकार की वृक्ष के अंकुर व पिशाच से उपमा, सात्विक आदि अहंकार के तीन प्रकार कथन), ६.२.४ (अहंभाव के क्षीण होने पर घटित चमत्कारों का कथन), ६.२.५७ (विचार द्वारा व चिदाकाश के स्वच्छ परमाकाश में स्थित होने पर अहंकार का लोप; अहंकार की स्वप्न सर्ग से तुलना)

अहल्या कूर्म २.४१.४४ (० तीर्थ : चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को अहल्या पूजा), वा.रामायण १.४९ (राम द्वारा ० का उद्धार), ७.३० (ब्रह्मा द्वारा अहल्या का निर्माण, निरुक्ति, इन्द्र द्वारा बलात्कार कथा), विष्णु धर्मोत्तर १.१२८.३० (ब्रह्मा द्वारा अहल्या का सृजन, गौतम द्वारा पालन कथन), भविष्य ४.१०३.१५ (शाण्डिल्य -भार्या योगलक्ष्मी की माता), हरिवंश १.३२.३१ (वध्यश्व व मेनका -कन्या, दिवोदास -भगिनी, गौतम -भार्या), मत्स्य ५०.७ (विन्ध्याश्व व मेनका -पुत्री), ब्रह्मवैवर्त ४.४५.३४ (० द्वारा शिव विवाह में हास्योक्ति), ब्रव ४.४७ (इन्द्र द्वारा ० के धर्षण की कथा), ४.६१ (इन्द्र द्वारा ० का धर्षण, राम द्वारा मोक्ष), भागवत ९.२१.३४ (मुद्गल -कन्या, गौतम -पत्नी), स्कन्द १.२.५२ (० सरोवर : गौतम के तप का स्थान), ५.३.१३६ (० लिंग तीर्थ माहात्म्य

: राम द्वारा शिला की मुक्ति के पश्चात ० द्वारा तप, शतानन्द व गौतम सहित लिंग स्थापना), ब्रह्म २.१६ (० संगम तीर्थ : अहल्या -इन्द्र कथा, अहल्या का शाप से शुष्क नदी बनना, गौतमी से संगम द्वारा मुक्ति), पद्म १.५४ (० -इन्द्र कथा), ३.१८.८९ (अहल्या तीर्थ का माहात्म्य), लक्ष्मी नारायण १.३७५ (० द्वारा अति वृष्टि रोकने के लिए देवों का क्रमशः आह्वान, इन्द्र द्वारा चन्द्रमा की सहायता से अहल्या का धर्षण, अहल्या का उपल/शिला बनना), कथासरित् ३.३.१३७ (इन्द्र द्वारा अहल्या का धर्षण, इन्द्र द्वारा मार्जार रूप धारण)

टिप्पणी : आत्मा का सर्वश्रेष्ठ ज्ञान रूप गौतम कहलाता है। मन के ऊर्ध्वमुखी होने पर, पश्यन्ती वाक् प्रकट होने पर व्यक्तित्व सहस्राक्ष (हजार आंखों वाला इन्द्र) हो जाता है। यदि सहस्राक्ष व्यक्तित्व अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करता है, अंतर्दृष्टि से काम नहीं लेता तो इन्द्रियों से काम लेने वाला जीवात्मा सहस्राक्ष नहीं रह पाएगा। उसकी बुद्धि पत्थर की अहल्या बन जाएगी। अहल्या रूपी बुद्धि जब तक गौतम के पास है तब तक तो ठीक है, लेकिन जब जीवात्मा रूपी इन्द्र उसका उपयोग करना आरंभ कर देता है तो वह पत्थर बन जाती है। -फतहसिंह

यज्ञ में उत्कर (वेदी के बाहर स्थित एक गर्त जहां सोम लता का रस निकालने के पश्चात नीरस लता को फेंका जाता है) में बैठकर यज्ञ का एक ऋत्विज तीन बार पुकारता है -"सुब्रह्मण्योम्। इन्द्र आओ हरि आओ। इन्द्र मैत्रेयी अहल्या का जार है। उसने गौर बनकर अर्णव/समुद्र को पार किया" (तैत्तिरीय आरण्यक १.१२.४, शतपथ ३.३.४.१९, जैमिनीय ब्राह्मण २.७९, षड्विंश ब्राह्मण १.१.१९)। इस वाक्य समूह की ब्राह्मण ग्रन्थों में पर्याप्त रूप से व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। इस वाक्य में वाक् ही सुब्रह्मण्या है। इस वाक् को ओम के साथ जोडना है। विशेष ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि अहल्या को मैत्रेयी, मित्र की पुत्री कहा गया है। इस प्रकार गौतम के पास जो अहल्या है, वह मित्र की शक्ति है। मित्र की शक्ति व्यक्तित्व के ऊर्ध्वमुखी पक्ष में, मनोमय कोश से ऊपर के कोशों में रहती है। मनोमय तथा उसके नीचे के कोशों में मित्रावरुण की शक्ति इला रूप में या प्रज्ञा रूप में रहती है। अहल्या को अह्वर्या कहा जा सकता है -ऐसी शक्ति जिसका हरण नहीं किया जा सकता। यदि इन्द्रियों के स्वामी इन्द्र को, हमारे निचले व्यक्तित्व को अहल्या की कामना हो तो वह गौतम का रूप धारण करने पर ही मिल सकती है। लेकिन नीचे आने पर यह ब्रह्मशक्ति शिथिल होकर शिला बन जाती है। इसका उद्धार राम करते हैं - फतहसिंह

अहिंसा मत्स्य १०१.३५ (० व्रत विधि व माहात्म्य), वामन ६०.६९ (धर्म -भार्या, सनकादि की माता), पद्म १.२०.८० (० व्रत की संक्षिप्त विधि व माहात्म्य), २.१३.३२ (० का संक्षिप्त निरूपण), ५.८४.५७ (पुष्प रूप ०), महाभारत शान्ति २६५ (राजा विचख्नु द्वारा यज्ञ में अहिंसा धर्म की प्रशंसा), २७२ (सत्य नामक ब्राह्मण द्वारा यज्ञ में मृग की हिंसा का विचार करने पर तप का नष्ट होना)

अहि भागवत ३.२०.४८ (ब्रह्मा के त्यक्त शरीर के केशों से उत्पत्ति, सर्पों व नागों से अन्तर कथन) द्र. अजगर, नाग, सर्प

टिप्पणी : ऋग्वेद की कई ऋचाओं जैसे २.१२.३ में उल्लेख है कि इन्द्र ने अर्णव में सोते हुए अहि को मार कर सात सिन्धुओं के जल को मुक्त किया। यह कार्य इन्द्र ने त्रिकद्रुकों (ज्योति, गौ व आयु प्राप्ति रूपी त्रिकद्रुक याग) में स्थित सोम को पीकर किया (ऋ० १.३२.३ इत्यादि)। अथर्ववेद १०.४.२६ के अनुसार अग्नि ने अहि का विष निकालकर उसे अमृत बना दिया। अथर्ववेद १०.४.१ के अनुसार अहियों का रथ बहुत मन्द गति वाला है? वृत्र को भी अहि कहा जाता है (ऋग्वेद १०.११३.८)। अहि का एक अर्थ है -जिसकी हिंसा नहीं की जा सकती। यह वृत्र रूपी माया ऐसी ही है। ब्राह्मणों के अनुसार यह वह शक्ति है जो स्वर्ग में आरोहण नहीं कर पाती (अहीयत इति अहि)।

अहिच्छत्रा पद्म ५.१२ (सुमद राजा द्वारा पालित ० पुरी में कामाक्षा देवी की स्थिति, शत्रुघ्न का आगमन), हरिवंश १.२०.७४ (द्रुपद -पिता पृषत् का राज्य, नीप राजाओं, उग्रायुध व अर्जुन द्वारा अधिकार), कथासरित् ६.२.११९, १२.५.२३ (० नगर पर उदयतुंग राजा का शासन, राज-प्रतीहार विनीत मति द्वारा कालजिह्व यक्ष को हराना, राज कन्या उदयवती से विवाह करके ० नगरी पर राज्य करना)

अहिदंष्ट्र स्कन्द ३.१.५ (दैत्य, ० से युद्ध में शतानीक राजा की मृत्यु)

अहिफेन लक्ष्मी नारायण २.३७.५८ (वराटक दैत्य का सेनानी, विष रूप होना)

अहिर्बुध्न्य पद्म १.४०.८४ (सुरभि - ब्रह्मा पुत्र, -एकादश रुद्रों में एक), मत्स्य ५.२९ (वही) म ५१.२३ (अग्नि नाम, स्थान), वायु २९.२४ (गृहपति अग्नि का नाम, १६ धिष्ण्य अग्नियों में से एक), विष्णु धर्मोत्तर १.५६.११ (एकादश रुद्रों में ० की श्रेष्ठता), १.८२.४ (द्वादश खण्ड्युगेश्वरों में से एक), स्कन्द ३.१.२३.१ (गन्धमादन पर्वत पर तपोरत ० ऋषि की सुदर्शन चक्र द्वारा राक्षसों से रक्षा), अग्नि १८.४२ (एकादश रुद्रों में एक), शिव ३.१८.२६ (वही), ब्रह्माण्ड २.३.३.७१ (वही)

टिप्पणी : अहिर्बुध्न्य का सामान्य रूप में अर्थ नदियों के जल के अधोतल में स्थित अहि या सर्प से किया जाता है। पुराणों के अनुरूप ही, ऐतरेय ब्राह्मण ३.३६

में उल्लेख है कि अहिर्बुध्न्य को गार्हपत्य अग्नि बनाया जा सकता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.५.१.५ में उल्लेख है कि अहिर्बुध्न्य का उपयोग अभिसिंचित सोम को शुद्ध करने के लिए अथवा पार्थिव स्तर को सोम की प्राप्ति हेतु शुद्ध करने के लिए किया जा सकता है। इसी कथन के सायण भाष्य में कहा गया है कि जो ऊर्जा अभी तक शरीर के पालन पोषण में लगी थी, उसका उपयोग आरोहण के लिए किया जा सकता है। ज्योतिष ग्रन्थ से प्राप्त संकेत के अनुसार अहिर्बुध्न्य शब्द की निरुक्ति इस प्रकार की जा सकती है कि वह अहि जिसे बुध रूपी बोध प्राप्ति के मार्ग में स्थापित किया जा सकता है। ऋग्वेद की कई ऋचाओं में अहिर्बुध्न्य से शान्त होने की प्रार्थना की गई है।

आ

आकथ पद्म ५.११७ (मंकणक - पुत्र, सुशोभना - पति, शिव का उन्मत्त रूप में ० के निकट आगमन)

आकर्षण कथासरित् १.३.५३ (आकर्षिका : पुत्रक राजा द्वारा आकर्षिका नगरी में राजकन्या पाटली से विवाह की कथा)

आकाश वा.रामायण ४.५८.२६ (० में पक्षियों के गमन के विभिन्न स्तर : सम्पाती द्वारा वर्णन), वराह २३.११ (शिव द्वारा आकाश तत्व में स्व -मूर्ति स्थापना के लिए गणेश की सृष्टि), भागवत ११.७.४३ (दत्तात्रेय द्वारा ० से शिक्षा), मत्स्य २५३.२४ (वास्तुमण्डल के ८१ देवताओं में एक), म २६५.६२ (भीम नामक शिव द्वारा आकाश तत्व की रक्षा), ब्रह्माण्ड १.२.१०.५२ (भीम नामक रुद्र का तनु), स्कन्द २.१.३ (आकाशराज : मित्रवर्मा व मनोरमा - पुत्र, धरणी -पति, वसुदान व पद्मिनी -पिता, पद्मिनी के श्रीनिवास से विवाह की कथा), विष्णुधर्मोत्तर ३.६२ (आकाश की प्रतिमा का स्वरूप), योगवासिष्ठ १.१७.१ (० की चेतना से उपमा), ३.२ (आकाशज ब्राह्मण के ऊपर मृत्यु द्वारा आक्रमण में असफलता), योव ३.२४ (सरस्वती देवी व लीला द्वारा आकाश मण्डप में विचरण व संसार की विचित्रता का दर्शन), ३.२९.४५ (लीला व सरस्वती देवी द्वारा सूर्य आदि से भी परे परमाकाश व चिदाकाश का दर्शन), ३.३१ (लीला द्वारा युद्ध प्रेक्षण के लिए भूतों, विद्याधरों आदि से पूर्ण आकाश का दर्शन), ३.७९.३ (आकाश व अनाकाश के सम्बन्ध में कर्कटी का राजा से प्रश्न), ३.९७.१४ (आकाश के तीन रूपों चित्ताकाश, चिदाकाश व भूताकाश का निरूपण), ६.१.११२ (आकाश मूर्ख द्वारा आकाश को गृह, कूप, कुम्भ, कुण्ड, शाला आदि में सीमित करके आकाश की रक्षा का यत्न), ६.२.५६ (निर्विकल्प समाधि के संदर्भ में वसिष्ठ द्वारा आकाश में कुटी का निर्माण, आकाश में सिद्ध आदियों के गमनागमन का विघ्न देखकर अत्यन्त शून्य स्थान में स्थित होना), ६.२.५९+ (परमाकाश में स्थित होकर जगत जाल का दर्शन), ६.२.१२८ (भूगोल वर्णन के प्रसंग में विपश्चित् द्वारा सर्गों के उत्पत्ति ,स्थान ब्रह्माकाश का दर्शन व वर्णन) द्र. अन्तरिक्ष, अम्बर, चिदम्बर, चिदाकाश

टिप्पणी : वैदिक संहिताओं में आकाश शब्द का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है, जबकि ब्राह्मणों और उपनिषदों में आकाश शब्द का प्रयोग बहुलता से हुआ है। जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण १.८.१.२ के अनुसार आदित्य ही आकाश है जिसके उदित होने से सर्वत्र काश/प्रकाश हो जाता है। जैमिनीय ब्राह्मण २.५६ के अनुसार आदित्य आकाश की दमुमूढ? आत्मा है जबकि चन्द्रमा परम

आकाश की समुमूढ आत्मा है। अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों में आकाश और आदित्य के सम्बन्ध का किंचित् विस्तार से वर्णन है। ऐतरेय आरण्यक ३.१.२ के अनुसार आत्मा के पांच उक्थ पृथिवी, वायु, आकाश, आपः और ज्योतियां हैं (तुलनीय : योगवासिष्ठ में वसिष्ठ द्वारा पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश की धारणा)। जैसे भौतिक आकाश में वायु स्थित है, ऐसे ही इस (?) आकाश में प्राण स्थित हैं। मैत्रायणी उपनिषद ६.२ तथा ब्रह्मोपनिषद २ इत्यादि में हृदय में स्थित आकाश का उल्लेख है जिसे हिरण्मय पुरुष, पुष्कर आदि कहा गया है। षड्विंश ब्राह्मण २.६.३ में अन्तः चक्षुओं में स्थित आकाश को यज्ञ के सदस्य की संज्ञा दी गई है। तैत्तिरीय आरण्यक ९.९ में पृथिवी को अन्न व आकाश को अन्नाद (अन्न का भक्षण करने वाला) कहा गया है।

वैदिक साहित्य आदित्य और आकाश के सम्बन्ध का उल्लेख करके चुप हो जाता है, जबकि योगवासिष्ठ में आकाश को आदित्य के उदय होने योग्य बनाने के लिए क्या अपेक्षित है, इसका विस्तार से वर्णन है। संक्षेप में, कार्य और कारण से परे कैवल्य स्थिति प्राप्त करना ही आकाश में स्थित होना है (योगवसिष्ठ ३.२.२१)।

आकाशगंगा भागवत ८.१५.१४ (देवों की अमरावती पुरी के परितः ० की परिखा/खाई के रूप में स्थिति), स्कन्द २.१.२१ (० तीर्थ माहात्म्य : रामानुज भक्त द्वारा विष्णु के दर्शन), स्क २.१.२२.२३ (० माहात्म्य : ० में स्नान से पुण्यशील की गर्दभ मुख विकृति से मुक्ति), २.१.३९.३२+ (अंजना द्वारा पुत्र प्राप्ति हेतु ० तीर्थ में तप, ० स्नान काल निर्णय)

आकाशशयन वराह १३१.९ (दन्तकाष्ठ से मुखशुद्धि न करने पर आकाशशयन रूप प्रायश्चित्त विधान), १३२.२४ (रजस्वला नारी के स्पर्श पर ०), वर १३३.१२ (आराधना काल में पुरीष उत्सर्ग पर ०), १३४.३ (पूजा कर्म काल में वार्तालाप करने पर ०), १३६.६ (दीप का स्पर्श करके अर्चन कार्य करने पर ०), वर १३६.५३ (श्मशान से प्रत्यागमन पर शुद्धि किए बिना अर्चना करने पर ०), वर १३६.५८ (पिण्याक भक्षण करके विष्णु के समीप गमन पर ०), १३६.११० (भेरी शब्द के बिना विष्णु का प्रतिबोधन करने पर ०), १३६.११७ (अधिक अन्न का भक्षण करके विष्णु पूजा पर ० प्रायश्चित विधान), विष्णु धर्मोत्तर ३.३२१.११ (० से भृगुओं के लोक की प्राप्ति)

आकूति देवीभाग ८.३.११ (स्वायम्भुव मनु - पुत्री, रुचि -पत्नी, यज्ञपुरुष -माता), वायु १०.१७ (वही), वा २१.५५ (२४वें कल्प का नाम), ६६.१२९ (विष्णु के अवतार क्रम में प्रथम माता), भागवत २.७.२ (रुचि प्रजापति -भार्या, सुयज्ञ अवतार की माता), भा ४.१.३ (वही), ४.१३.१५ (सर्वतेजा -पत्नी, चक्षु मनु -माता), ५.१५.६ (पृथुषेण -पत्नी, नक्त -माता), १२.११.१६ (विष्णु के आयुधों का प्रतीकार्थ : आकूति स्यन्दन/रथ का रूप), ब्रह्माण्ड १.२.९.४४ (यज्ञ व दक्षिणा -माता), मार्कण्डेय ५०.१६ (स्वायंभुव मनु व शतरूपा -पुत्री ऋद्धि, रुचि -पत्नी), लिंग १.७०.२७८ ; द्र. आकृति

टिप्पणी : आ-समन्तात्, अर्थात चारों ओर से; कू - शब्दे, अभिव्यक्त करना। चारों तरफ जिसका शब्द एक साथ होने लगे, बाढ की तरह, वह आकूति है। हमारे अन्दर तीन प्रकार की शक्तियां हैं -भावना शक्ति, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति। क्रिया शक्ति के कारण क्रिया केवल एक - दो अंगों में ही हो सकती है, सारा शरीर एकदम क्रियाशील नहीं हो सकता। इसी प्रकार ज्ञान भी स्थानिक है। लेकिन भावना शक्ति पूरे व्यक्तित्व को प्रभावित करती है, बाढ की तरह। इसका मूल है काम - वह काम नहीं जो वासना में प्रकट होता है, अपितु काम का दूसरा रूप - धर्म के अविरुद्ध काम। चित्तवृत्तियों का माता के समान पालन करने वाली, उन्हें शुद्ध करने वाली आकूति है। हरेक नर नारी के लिए यह सुलभ नहीं है। यह सुलभ तब होगी जब हम बाह्य वृत्तियों से, काम-क्रोध-लोभ आदि से ऊपर उठें। यह परमात्मा की आह्लादिनी शक्ति है, राधा है - फतहसिंह

बाह्य संसार में दौड लगा रहे मन को कैसे अपनी ओर आकर्षित किया जाए, इस संदर्भ में मैत्रायणी संहिता १.४.१४ में संवत्सर के १२ मासों के प्रतीकों आकूत व आकूति, चित्त व चिति, आधीत और आधीति, विज्ञात और विज्ञाति, भग व क्रतु, दर्श व पूर्णमास, का उल्लेख है। अन्य स्थानों जैसे तैत्तिरीय संहिता ३.४.४.१ में यह क्रम अन्य प्रकार से है। इनमें आकूत व आकूति क्रमशः यज्ञ और दक्षिणा के प्रतीक हैं (पुराणों में यज्ञ व दक्षिणा को आकूति की सन्तान कहा गया है जो तैत्तिरीय ब्राह्मण २.५.३.२ के उल्लेख के अनुरूप है)। इस प्रकार अमावास्या के देवता द्वय इन्द्राग्नि संसार में दौड लगा रही आकूति को अंतर्मुखी करते हैं। बृहस्पति देवता को भी आकूति को अन्तर्मुखी करने वाला कहा गया है (अथर्ववेद १९.४.२ इत्यादि) जो सहस्री पुष्टि देने वाली है (पैप्पलाद संहिता १९.५३.४)। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१२.३.३ के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि जब आकूति का प्रयोग बहुवचन में होता तो वह मन से संबंधित होगी, आकूतियों का अधिपति मन होगा। यदि आकूति का प्रयोग एक वचन में होगा तो वह हृदय से संबंधित होगी जिसके द्वारा श्रद्धा की उपासना की जाती है (ऋग्वेद १०.१५१.४)। संभवतः उसे ही वैदिक मन्त्रों में देवी कहा गया है (अथर्ववेद १९.४.२)। अथर्ववेद ३.२९.२ में अवि-प्रदत्त? आकूति का उल्लेख है जो सभी कामों का पूरण करती है।

आकूति का सामान्य अर्थ संकल्प किया जाता है। तैत्तिरीय आरण्यक १०.५२.१ में वाक्, मन, चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, घ्राण, रेत, बुद्धि, आकूति व संकल्प के शुद्ध होने की कामना की गई है। सायण भाष्य में बुद्धि को निश्चय रूपा वृत्ति, आकूति को अनिश्चय रूपा वृत्ति तथा संकल्प को कल्पना रूपा वृत्ति कहा गया है। अथर्ववेद ६.१३१.२ में अनुमति तथा आकूति में अंतर स्पष्ट किया गया है। अनुमति अनु-छंद है तो आकूति

सम-छंद।

पुराणों में आकूति को ऋद्धि कहा गया है जिसकी पुष्टि अथर्ववेद ४.३६.४ के मन्त्र से होती है। लेकिन पुराणों में आकूति के रुचि प्रजापति से विवाह का जो सार्वत्रिक उल्लेख है, इसका मूल तथा निहितार्थ वैदिक साहित्य में अन्वेषणीय है।

आकूति ब्रह्माण्ड १.२.९.१ (रुद्र द्वारा सृष्ट ५ मातृकाओं में से एक), २.३.३.११३ (स्वायम्भुव मनु -पुत्री, प्रथम अवतार विभु की माता), २.३.७०.३८ (बभ्रु -पुत्र, क्रोष्टा/ज्यामघ वंश), देवीभाग ८.३.११ (आकृति/आकूति : स्वायम्भुव मनु की तीन पुत्रियों में से एक, रुचि -पत्नी, यज्ञ -माता)

आखण्डल पद्म २.५.१०१ (इन्द्र - नाम)

आखु दृ. मूषक

आगम पद्म ६.८०.७३ (नारद प्रोक्त ० निरूपण व महिमा), मत्स्य १४३.१३ (यज्ञ में पशु बलि के लिए उद्यत विश्वभुक् नामक इन्द्र से आगम के अनुसार यज्ञ करने का ऋषियों का आग्रह)

आग्नीध्र भागवत ५.१.२५ (प्रियव्रत व बर्हिष्मती -पुत्र), ५.२ (आग्नीध्र चरित्र: पूर्वचित्ति अप्सरा से वर्ष नाम प्रत्यय वाले नाभि आदि ९ पुत्रों की प्राप्ति), भा ८.१३.२८ (१२वें मन्वन्तर में एक ऋषि), देवीभाग ८.४.४ (प्रियव्रत व बर्हिष्मती -पुत्र, जम्बू द्वीप स्वामी), ११.२२.३२ (प्राणाग्नि होत्र में आग्नीध्र ऋत्विज की श्रोत्र में स्थिति), कूर्म १.४०.२८ (जम्बू द्वीप स्वामी, पुत्र/वर्ष नाम), वायु ६३.१३ (पृथ्वी रूपी गौ के दोग्धा), स्कन्द ७.१.१७२ (भारतवर्ष की स्थापना करने वाले भरत का उपनाम), ब्रह्म १.१२१.२२ (कामदमन नगर का राजा, शुचि -पिता, ० द्वारा पुत्र से विवाह का आग्रह करने पर पुत्र द्वारा पूर्व जन्म में विष्णु माया दर्शन का वृत्तांत कथन)

टिप्पणी : ब्राह्मण ग्रन्थों में सार्वत्रिक रूप से वर्णन आता है कि देवगण असुरों से हार रहे थे। उन्होंने हारने के कारण का पता लगाता तो पता चला कि असुरों ने अपने लिए अयस्मय, रजतमय और हिरण्मय पुरों का निर्माण कर लिया है, अतः वह जीत रहे हैं। तब देवों ने अपने लिए पृथिवी पर सदः/यज्ञवेदी को, अन्तरिक्ष में आग्नीध्र को और द्युलोक में हविर्धान को अपना पुर बनाया (गोपथ ब्राह्मण २.२.७ इत्यादि)। तब वह जीते। इसी आख्यान का दूसरा रूप इस प्रकार है कि दक्षिण दिशा में देवगण असुरों से हार गए। असुरों ने उन्हें यज्ञ से निकाल दिया। तब देवगण उत्तर दिशा में आग्नीध्र पर पत्नियों सहित आकर बैठे। तब वह जीत गए (मैत्रायणी संहिता ३.८.१०)। यज्ञ स्थल पर आग्नीध्र ऋत्विज का स्थान बहिर्वेदी और अन्तर्वेदी के बीच में होता है। अन्तर्वेदी मनुष्य का स्व लोक है। इससे देव लोक पर जय होती है। बहिर्वेदी मनुष्य लोक है। आग्नीध्र ऋत्विज ज्यों-ज्यों बहिर्वेदी से अन्तर्वेदी की ओर सर्पण करता है, वह देवों का, विश्वेदेवों का स्थान बनता जाता है (शतपथ ४.३.४.११)।

आग्नीध्र की प्रकृति को समझाने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों में आग्नीध्र को सार्वत्रिक रूप से अन्तरिक्ष में स्थित कहा गया है। अन्तरिक्ष अर्थात अन्तः ईक्षते, अपने अंदर झांक कर देखना। अन्तरिक्ष रूपी आत्मा के एक ओर देवलोक है, एक ओर पृथिवी। यज्ञ स्थल पर हविर्धान को देवलोक मानते हैं और सदः/वेदी को पृथिवी लोक। एक ओर आहवनीय अग्नि है तो दूसरी ओर गार्हपत्य अग्नि। बीच में आत्मा है। इस आत्मा में प्राणों का, अग्नि का, संचार करना है (शतपथ ७.१.२.१४)। आग्नीध्र का अर्थ होता है -अग्निम् इन्धते अर्थात अग्नि का दीपन करना। वैदिक भाषा में इन प्राणों को अतिरिक्त ऊर्जा, धर्म, व्यान आदि नाम दिए गए हैं (शतपथ १४.३.१.६, ७.१.२.२१)। यह प्राण ९ हैं। इनके बीच दसवां स्वयं आग्नीध्र है (तुलना : पुराणों में आग्नीध्र के नाभिवर्ष, हरिवर्ष, किम्पुरुष वर्ष, इलावृत्त वर्ष आदि ९ पुत्र)। यज्ञ में इन ९ प्राणों का प्रतीक ८ धिष्ण्य अग्नियां व ९वीं अश्मा पृश्नि होती है (शतपथ ९.४.३.६)। कर्मकाण्ड में मन्थन द्वारा अग्नि को उत्पन्न करके सर्वप्रथम आग्नीध्र की अग्नि को प्रज्वलित किया जाता है। आग्नीध्र की अग्नि से धिष्ण्य अग्नियों को प्रज्वलित किया जाता है। यह प्राण रूपी अग्नियां आग्नीध्र किस प्रकार उत्पन्न करता है ? ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार आग्नीध्र सदः/वेदी को पत्नी रूप में मानकर उसमें अपने हिरण्य रूपी रेतस् का सिंचन करता है। पुराणों में यही तथ्य आग्नीध्र राजा द्वारा पूर्वचित्ति अप्सरा से पुत्र उत्पन्न करने के रूप में कहा गया है। आग्नीध्र ही पूर्वचित्ति अप्सरा के शरीर की शोभा को निहारने में समर्थ होता है (मैत्रायणी संहिता में सदः को अपान व जगती का रूप, हविर्धान को प्राण व गायत्री का रूप और आग्नीध्र को व्यान व त्रिष्टुप छन्द का रूप कहा गया है)।

ऐसी कौन सी विशेषता है जिससे आग्नीध्र असुरों से पराजित नहीं होता ? गोपथ ब्राह्मण १.१.२३ से संकेत मिलता है कि आग्नीध्र के पास ओंकार का बल है, वह सारी पृथिवी को ओंकार की कलाओं से अभिभूत कर देना चाहता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१२.९.५ के अनुसार स्वयं श्रद्धा ही आग्नीध्र बन जाती है।

आग्नेयी मत्स्य ४.४३ (ऊरु - पत्नी, ६ पुत्रों की माता), ४.४५ (अग्नि -कन्या धिषणा का उपनाम), भागवत १०.८९.४४ (अग्नि कोण की दिशा का नाम), विष्णु १.१३.६ (कुरु -पत्नी, ६ पुत्रों के नाम, ध्रुव वंश)

आंगिरस स्कन्द ३.२.९.८९ (आंगिरस गोत्र के ऋषियों के ३ प्रवर व गुण कथन), स्क ४.१.१७.२६ (अंगिरा -पुत्र द्वारा शिव की आराधना व शिव लिंग स्थापना, लिंग माहात्म्य, जीव/बृहस्पति नाम प्राप्ति), ५.१.४.९६ (द्वैधा विभक्त अग्नि में से एक की संज्ञा), स्क ५.३.११२ (० तीर्थ माहात्म्य : अंगिरा द्वारा पुत्र

प्राप्ति हेतु शिव आराधना), ब्रह्म २.८८ (अंगिरस के आंगिरस पुत्रों द्वारा माता शाप से तप में सिद्धि न मिलने पर गंगा तट पर तप, भावी व्यास बनना), विष्णु ४.२.१० (ब्राह्मण, रथीतर क्षत्रिय वंशज), हरिवंश १.१८.५९ (पितरों का गण, यशोदा नामक मानसी कन्या के पिता), नारद १.५१.२ (पांच कल्पों में से एक, आंगिरस कल्प में अभिचार विधान का उल्लेख), भविष्य ४.३७.२० (आंगिरस/बृहस्पति द्वारा इन्द्र को श्री की पुनः प्राप्ति हेतु श्री पंचमी व्रत विधान कथन), शिव ३.२९.१८ (आंगिरसों द्वारा सत्र में षष्टम अह के कर्म में त्रुटि, नभग द्वारा शोधन), विष्णु धर्मोत्तर २.१३२.११ (आंगिरसी शान्ति के रोचनाभ वर्ण का उल्लेख), लक्ष्मी नारायण १.१६५.१५ (अंगिरस व सुरूपा के आयु, दनु, दक्ष आदि १० पुत्रों की ० संज्ञा)

आचमन कूर्म २.१३.५ (० समय/परिस्थिति व विधि कथन), नारद १.६६.४९ (वैष्णव व शैव ० विधि, विष्णु न्यास), देवीभाग ११.३.१ (० प्रकार), भविष्य १.३.७० (० विधि, प्रशंसा), स्कन्द ४.१.३५.६७ (आचमन जल से शरीर के विभिन्न अंगों की शुद्धि कथन)

आचार अग्नि १५५ (दैनिक जीवन में आचरणीय ०), विष्णु धर्मोत्तर २.८९, २.९४, ३.२३३ (दैनिक ०), विध ३.२५० (० हीनता, दोष), ३.२७१ (० वर्णन), ३.३२१.१४ (स्वाचार से वैश्वदेव लोक की प्राप्ति), ब्रह्म १.१०७ (नरक दुःख निवारक ०), १.११६ (स्वर्ग फल प्राप्ति हेतुभूत ०), पद्म ६.२५३ (वैष्णवोचित ०), नारद १.४.२२ (० महिमा), १.२६.१९ (गृहस्थोचित शिष्टाचार वर्णन), ब्रह्माण्ड २.३.७.११ (रिष्टा/अरिष्टा के ९ गन्धर्व पुत्रों में एक का नाम), भविष्य १.१९३. (दन्तकाष्ठ आदि नित्यकर्म), ब्रह्म वैवर्त्त ४.७५ (कृष्ण प्रोक्त आह्निक ०), शिव ६.४ (आह्निक ०), ६.२० (यति हेतु ०), स्कन्द १.२.४१.११७ (सदाचार वर्णन), ४.१.४०.९ (काशी गमन हेतु निषिद्ध आचार कथन) दृ. आह्निक, नित्यकर्म, सदाचार

आचार्य अग्नि २८ (आचार्य अभिषेक विधान), विष्णु धर्मोत्तर २.३७.५१ (ब्रह्म मूर्ति रूप), भविष्य ३.४.१४.८७ (आचार्यशर्मा : रामानुज के पिता), लक्ष्मी नारायण ३.३५.१३० (नारायण का महाचार्य रूप में प्रकट होकर बृहद्धर्म नृप को यज्ञ की दीक्षा देना); दृ. गुरु

आजगव विष्णु १.१३.४० (राजा पृथु के लिए ० धनुष का आकाश से पतन), वि १.१३.६९ (पृथु द्वारा ० धनुष से पृथ्वी का पीछा), ब्रह्माण्ड २.३.६५.३२ (शिव धनुष का नाम)

आजीविका नारद १.५५.१६७ (ज्योतिष द्वारा ० ज्ञान)

आज्य नारद २.२३.७० (पूर्णिमा तिथि को का वर्जन), विष्णु १.८.२० (आज्याहुति : लक्ष्मी का रूप), वायु ६.१७ (० की यज्ञ वराह की नासिका से साम्य), १००.२२ (सावर्णि मनु के ९ पुत्रों में एक), शिव १.१५.४८ (० दान से पुष्टि प्राप्ति कथन), १.१८.१२६ (व्याधि नाश हेतु आज्य अवेक्षण का उल्लेख); दृ. घृत

टिप्पणी : याज्ञिक कर्मकाण्ड में आहुतियों आदि में आज्य का उपयोग सार्वत्रिक रूप से किया जाता है। भौतिक दृष्टि से आज्य को विलीन - सर्पि अवस्था वाला घृत कहा जाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से आज्य क्या होता है, इसका स्पष्ट संकेत काठक संहिता २४.७ में किया गया है कि चूंकि अज ने इसे जाना, अतः इसका नाम आज्य है। अज अर्थात हमारी इन्द्रियों से विचार, काम, क्रोध आदि किसी भी विकार का जन्म नहीं होता। अथर्ववेद ९.५.३८ अजौदन सूक्त के अनुसार इस अज अवस्था को पकाकर पांच ओदनों का, उदान प्राणों का विकास करना होता है। इसके पश्चात आज्य का विकास होता होगा। शतपथ ब्राह्मण १३:१.१.१ तथा तैत्तिरीय संहिता ५.७.३.४ के अनुसार आज्य का उपयोग ब्रह्मौदन को पकाने के लिए किया जाता है और उससे जो शेष बचता है उसका आगे और उपयोग किया जाता है।

आज्य अवस्था कैसी हो सकती है, इसका ब्राह्मण ग्रन्थों में बार - बार संकेत किया गया है। तैत्तिरीय संहिता २.६.१.२ आदि कई स्थानों पर आज्य को तेज कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण २.२ तथा शतपथ ब्राह्मण ३.७.१.१३ आदि में आज्य को मधु कहा गया है जिसका उपयोग यूप रूपी यजमान का लेपन करने के लिए किया जाता है। तैत्तिरीय संहिता ६.५.११.२ इत्यादि में आज्य को उक्थ कहा गया है। और सार्वत्रिक रूप से, जैसे तैत्तिरीय संहिता २.६.२.४ में, आज्य को वज्र कहा जाता है जो शत्रुओं का नाश करता है। लेकिन आज्य वज्र किस प्रकार से है ? इसका उत्तर हमें शतपथ ब्राह्मण ७.२.३.४ से मिलता है कि आज्य सर्व का, आपः का, ओषधियों का रस है और जहां रस है, वहीं आत्मा है। सारे प्राण रस की ओर, मधु की ओर खिंचे चले आते हैं। अतः जब हमारी इन्द्रियां किसी बाहरी उद्दीपन स्रोत के बिना आनंद प्रदान करने लगती हैं तो आज्य का जन्म समझ लेना चाहिए। यह वज्र अवस्था है। अब यह शत्रुओं का नाश करने में समर्थ है। ऋग्वेद १०.९०.६ पुरुष सूक्त में आज्य को वसन्त ऋतु कहा गया है जो मधु का ही प्रतीक है। अथर्ववेद १३.१.५२ के अनुसार आज्य वर्षा से विश्व आत्मवत् हो जाता है। शतपथ ब्राह्मण १२.९.१.१ आदि में आज्य को अस्थि रूपी इध्म के भीतर स्थित मज्जा कहा गया है।

याज्ञिक कर्मकाण्ड में, विशेष रूप से दर्श-पूर्णमास यज्ञ के संदर्भ में, आज्य का उल्लेख अधिक आता है। इस

यज्ञ में मुख्य रूप से आरंभ में ५ प्रयाज नामक इष्टि, उसके पश्चात २ आज्य भाग, फिर इडा कर्म और उसके पश्चात अनुयाज नामक कर्म होता है।कहा गया है कि पांच प्रयाज साधना में क्रमशः प्रकट होने वाली पांच ऋतुओं वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद और स्वाहा के प्रतीक हैं (शतपथ ब्राह्मण १.५.३.९)। यह ऐसे है जैसे शीर्ष भाग में पांच प्राणों के रूप में १ मुख, दक्षिण नासिका व सव्य नासिका, दक्षिण कर्ण व सव्य कर्ण स्थित हैं। प्रयाज कर्म में आज्य के उपयोग द्वारा इन प्राणों की पुष्टि करनी होती है। अथवा ऋतुओं को ही आज्य के रूप में ग्रहण किया जाता है। प्रयाज कर्म आत्मोन्मुखी होने का क्रमिक प्रयास है।

प्रयाज कर्म के पश्चात आज्य भाग कर्म होता है। कहा गया है कि आज्य भाग कर्म इस प्रकार है जैसे शीर्ष में चक्षुओं की स्थापना की जाती है। इसी प्रकार आग्नेय व सौम्य नामक २ आज्य भाग भी यज्ञ के चक्षु हैं। इनमें अग्नि के चक्षु से यजमान देवलोक को देखता है और सोम के चक्षु से पितृलोक को (तैत्तिरीय संहिता २.६.२.१, शतपथ ब्राह्मण १.६.३.३९)। चक्षु रूपी अग्नीषोमीय आज्यभागों की स्थापना के पश्चात मेध रूपी पुरोडाश की हवि दी जाती है जिसका वर्णन अलग से किया जाएगा। प्रयाज और आज्य भागों को पुराणों में गंगा और यमुना के बीच स्थित प्रयाग तीर्थ के आधार पर समझा जा सकता है।

उपरोक्त सारी क्रियाएं एकांगी साधना के अंग हैं। एकांगी साधना का लक्ष्य था कि बाह्य प्राणों के पास जो आज्य बिखरा पडा था, उसे आत्मा को प्राप्त कराना। इसके पश्चात समाधि से व्युत्थान अथवा यों कहें कि समाधि में प्राप्त आनंद को व्यवहार में भी अवतरित करने के लिए इडा आदि कर्म और तीन अनुयाज होते हैं। दर्शपूर्ण मास से इतर यज्ञों में अनुयाजों की संख्या अधिक भी हो सकती है (उदाहरणार्थ तैत्तिरीय संहिता ६.३.११.५)। शतपथ ब्राह्मण १.३.२.९ में कहा गया है कि छंद ही अनुयाज है। इस क्रिया का लक्ष्य होता है कि जिस आज्य रूपी आनंद का संग्रह समाधि अवस्था में किया है, उसका सब प्राणों में, प्रजा में वितरण करना।

यज्ञ कर्म में आत्मा का प्रतीक जुहू नामक पात्र होता है और प्रजा का प्रतीक उपभृत् नामक पात्र होता है (शतपथ ब्राह्मण १.३.२.२)। प्रयाज कर्म में उपभृत् पात्र में स्थित आज्य को जुहू पात्र में ले लिया जाता है, जबकि अनुयाज कर्म में जुहू में स्थित आज्य को उपभृत पात्र में ग्रहण किया जाता है। एक तीसरा सबसे महत्वपूर्ण पात्र ध्रुवा होता है - आत्मा की ध्रुव स्थिति का प्रतीक। यह अनुष्टुप वाक् का प्रतीक है।

ऐसा अनुमान है कि उपरोक्त दर्श पूर्णमास यज्ञ की चरम अवस्था आज्यभाग रूपी चक्षुओं की स्थापना के पश्चात पुरोडाश और आज्य के मिथुन की स्थापना है। विष्णु पुराण में इसी स्थिति की ओर संकेत करते हुए विष्णु को पुरोडाश और लक्ष्मी को आज्य का रूप कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण १.६.३.२४ से ऐसा संकेत मिलता है कि पुरोडाश अर्धमासों और आज्य अहोरात्रों के प्रतीक हैं। शतपथ ब्राह्मण १.२.२.४ के अनुसार यज्ञ की आत्मा का आधा भाग आज्य है और आधा भाग हवि / पुरोडाश। इन दोनों के मिलन से ही पूरी आत्मा बनती है। जैमिनीय ब्राह्मण २.२८७ के अनुसार पुरोडाश योनि है तो आज्य रेतस् है। लेकिन शतपथ ब्राह्मण ११.४.२.१५ के अनुसार दधि और पुरोडाश के मिथुन होने पर ही गर्भ संभव होता है। यह उल्लेखनीय है कि पौर्णमास यज्ञ में आज्य व पुरोडाश द्वारा अग्नीषोम देवता को हवि दी जाती है, जबकि दर्श/अमावास्या यज्ञ में इन्द्राग्नि देवता के लिए दधि व पुरोडाश की हवि दी जाती है।

शिवपुराण में आज्य अवेक्षण के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण १.३.१.१८ में यजमान - पत्नी द्वारा अदब्ध चक्षु से आज्य अवेक्षण का उल्लेख दृष्टव्य है।

आज्यप गरुड १.८९.४१ (० पितरों द्वारा प्रतीची दिशा की रक्षा), वायु ७३.४५ (० पितर : कर्दम प्रजापति -पुत्र, वैश्यों द्वारा पूजित, विरजा कन्या के पिता), मत्स्य १५.२० (सुस्वधा नामक पितरों का नाम, कर्दम प्रजापति-पुत्र, वैश्यों द्वारा पूजित), स्कन्द ४.२.९७.१६२(आज्यपेश्वर लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य : प्रपितामहों की तुष्टि)

टिप्पणी: शतपथ ब्राह्मण१.५.३.२३ इत्यादि में प्रयाज-अनुयाजों को ही आज्यप देव कहा गया है। निहितार्थ अन्वेषणीय है।

आटरूष स्कन्द७.१.१७ (० दन्तकाष्ठ महत्व), भविष्य१.१९३.९ (वही)

आडि पद्म१.४४.५० (बक -भ्राता, पार्वती रूप धारण करके शिव के निकट गमन, शिव द्वारा वध), स्कन्द १.२.२९.१० (० दैत्य द्वारा पार्वती रूपधारण, शिव द्वारा वध), मत्स्य १५६ (अन्धक -पुत्र, बक-भ्राता, तप से वर प्राप्ति, पार्वती रूप धारण, शिव द्वारा वध), मार्कण्डेय ९.१० (परस्पर शाप -प्रतिशाप के कारण वसिष्ठ का आडि व विश्वामित्र का बक बनना, आडि -बक युद्ध वर्णन), ब्रह्माण्ड २.३.७२.७४ (छठां आडि -बक नामक देवासुर संग्राम), वायु ८८.२५ (आडि -बक नामक देवासुर संग्राम में इन्द्र का ककुत्स्थ राजा का वाहन बनना), लक्ष्मी नारायण ३.१००.२० (आडी -बक नामक देवासुर संग्राम में शक्र/विष्णु द्वारा जम्भ के वध का उल्लेख)

आतप भागवत ६.६.१६ (विभावसु व उषा पुत्र, पंचयाम -पिता); द्र. शातातप

आतापी लक्ष्मी नारायण १.५४५.८ (इल्वल व वातापी -भ्राता, अगस्त्य के समक्ष आतापी का पर्णशाला व वातापी का फल बनना, अगस्त्य द्वारा भस्म करना)

आत्म ब्रह्म २.४७ (आत्म ज्ञान प्राप्ति हेतु ० तीर्थ वर्णन, दत्तात्रेय द्वारा शिव स्तुति), पद्म २.७+ (ज्ञान का संग त्याग पंचेन्द्रियों से मैत्री पर आत्मा को दुःख प्राप्ति, वीतराग के उपदेश से विवेक, ज्ञान प्राप्ति),

भविष्य ४.१८५ (० प्रतिकृति दान विधि), भागवत ११.२८ (आत्मा, माया से परे की स्थिति), देवीभाग ७.३६.६ (प्रणव धनुष, शर आत्मा, ब्रह्म लक्ष्य), योगवासिष्ठ ४.२२ (विशुद्ध ज्ञान प्राप्त होने पर आत्मा की प्रसन्नता का वर्णन), योव ६.१.५९ (आत्म अवबोध हेतु चित्त स्पन्दन -अस्पन्दन ज्ञान कथन), योव ६.२.४० (आत्मा की विश्रान्ति पर जगत का स्वप्नवत् भासित होना), योव ६.२.७३ (विराट आत्मा की स्थिति का वर्णन), ब्रह्माण्ड १.२.३२.१०४ (आत्मवान :२१ मन्त्रकर्ता भार्गव ऋषियों में से एक), वायु ५९.९६ (वही), वा ६५.९० (आत्मवान : च्यवन व सुकन्या -पुत्र, दधीचि -भ्राता), मत्स्य १४५.९८ (आत्मवान : १९ मन्त्रकर्ता भार्गव ऋषियों में एक), लक्ष्मी नारायण २.३९.९ (आत्मा नदी, शील तीर्थ, सत्य जल), ३.१०६.७ (आत्मा : औरस पुत्र का रूप), लन ४.१०१.१०९ (आत्मबोधिनी : कृष्ण -पिंगला पुत्री)

आत्मदेव पद्म ६.१९६ (धुन्धली - पति, धुन्धुकारी व गोकर्ण -पिता, भागवत माहात्म्य प्रसंग)

आत्रेय वराह १०.२० (० द्वारा राजा सुप्रतीक को पुत्र प्राप्ति का वरदान, इन्द्र को शाप), ब्रह्माण्ड १.२.११.२२ (अनसूया से पांच आत्रेय पुत्रों का जन्म), ब्रह्म २.७० (इन्द्र के वैभव की स्पर्धा में ० द्वारा कृत्रिम इन्द्रपुरी का निर्माण, असुरों द्वारा इन्द्र के भ्रम में आत्रेय का बन्धन, आत्रेय द्वारा इन्द्र की स्तुति व पूर्व स्थिति में लौटना), स्कन्द ३.२.९.९५ (आत्रेय गोत्र के ऋषियों के ५ प्रवर व गुण कथन), स्क ७.१.२५७ (सौराष्ट्र देश में विप्र, एकत, द्वित व त्रित का पिता, त्रित के कूप पतन की कथा), वराह १८७.२८ (निमि -पुत्र, ० की मृत्यु पर निमि का शोक, श्राद्ध करना), वायु ६२.१७ (स्वारोचिष मन्वन्तर में ऋषि), ६२.४१ (तामस मन्वन्तर में ऋषि), वा ६२.५४ (रैवत मन्तन्तर में ऋषि), १००.११, १००.६७ (नवम मन्वन्तर में ऋषि), वा १००.८२ (११वें मन्वन्तर में ऋषि), १००.९६ (१२वें मन्वन्तर में ऋषि), १००.१०७ (१३वें मन्वन्तर में ऋषि), दृ. स्वस्त्यात्रेय

आत्रेयी ब्रह्म२.७४ (अत्रि - पुत्री, अंगिरस - पत्नी, पति के परुष वचनों की शांति के लिए परुष्णी नदी बनना), वामन ८२.४ (वीतमन्यु -भार्या, उपमन्यु -माता, पुत्र को क्षीर प्राप्ति हेतु विरूपाक्ष शिव की आराधना करने का आदेश), दृ. अपाला

आदम भविष्य ३.१.४.१८ (हव्यवती- पति, विष्णु कर्दम से उत्पत्ति, आत्म ध्यान परायण, पाप वृक्ष के नीचे फल भक्षण, म्लेच्छ पुत्रों की उत्पत्ति)

आदिकेश ब्रह्म २.९९.३(वेद व व्याध द्वारा ० शिव की भक्ति, व्याध की भक्ति से ० शिव का प्रसन्न होना)

आदित्य विष्णु धर्मोत्तर १.१२०.३ (विष्णु के अंश साध्यगण का अदिति गर्भ से जन्म लेकर १२ आदित्य बनना), ३.१८२ (द्वादश आदित्य व्रत विधि), ३.३२१.१४ (दया से ० लोक की प्राप्ति), स्कन्द १.२.४३.१६ (भट्ट/नारद द्वारा स्थापित भट्टादित्य का माहात्म्य), स्क १.२.४९.१, १.२.५१.५४ (कमठ द्विज बालक द्वारा स्थापित जयादित्य का माहात्म्य), स्क ३.१.४९.५४ (आदित्य कृत रामेश्वर शिव की संक्षिप्त स्तुति), स्क ४.१.४६.४५ (काशी में १२ आदित्यों के नाम), ४.२.५१.२८ (वृद्ध आदित्य माहात्म्य : वृद्ध हारीत द्वारा आराधना से तारुण्य प्राप्ति), ४.२.५१.४४ (० द्वारा केशव/हरि के निर्देश पर केशवादित्य नामक शिवलिंग की आराधना), ४.२.५१.८३ (विमल क्षत्रिय द्वारा कुष्ठ से मुक्ति हेतु विमलादित्य की स्थापना), ४.२.५१.१०१ (० द्वारा गंगा की आराधना), स्क ४.२.८४.१७ (आदित्य केशव तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य), स्क ५.१.७०.५१ (१२ आदित्यों के नाम), स्क ५.३.१७.१३ (सृष्टि संहरण काल में १२ आदित्यों का रुद्र मुख से उत्पन्न होकर भूमण्ड्ल को जलाना), ५.३.५९ (आदित्य तीर्थ माहात्म्य), ५.३.६० (० तीर्थ माहात्म्य, तीर्थ में स्नानसे ब्रह्महत्या आदि पापों का कुरूपा स्त्रियों के रूप में अलग होना), ५.३.१५३ (० लिंग तीर्थ माहात्म्य, जाबालि द्वारा कुष्ठ निवारण हेतु तप), ५.३.१९१ (द्वादश ० तीर्थ माहात्म्य, द्वादश आदित्यों की प्रलय काल में दिशा सापेक्ष स्थिति), स्क ६.५६ (साम्बादित्य माहात्म्य : गालव द्वारा पुत्र प्राप्ति के लिए आराधना), स्क ६.६०.९ (नरादित्य माहात्म्य, अर्जुन द्वारा स्थापित सूर्य आदित्य), ६.१५५+ (पुष्पादित्य माहात्म्य, याज्ञवल्क्य द्वारा स्थापना, पुष्प द्विज द्वारा आराधना वृत्तांत), स्क ६.२७८.९६ (याज्ञवल्क्य द्वारा पुनः वेद प्राप्ति के लिए १२ आदित्यों की स्थापना), स्क ७.१.१७ (निरुक्ति, माहात्म्य), स्क ७.१.४३ (आदित्येश्वर लिंग माहात्म्य : समुद्र द्वारा रत्नों से पूजा), ७.१.१००+ (साम्बादित्य माहात्म्य), ७.१.१०१.५८ (आदित्य के १२ अतिरिक्त नाम, मास अनुसार ० नाम, रश्मि संख्या), स्क ७.१.११८ (गोप्यादित्य लिंग माहात्म्य : कृष्ण की १६ सहस्र गोपियों/१६ कलाओं द्वारा स्थापना), ७.१.१२८ (२१ आदित्य नाम), ७.१.१३९ (तीर्थों में ० नाम), स्क ७.१.२५६ (नन्दादित्य माहात्म्य, नन्द राजा द्वारा पद्म ग्रहण के प्रयास से कुष्ठरोग प्राप्ति, आदित्य आराधना से कुष्ठ से मुक्ति), ७.१.३०५ (नारदादित्य माहात्म्य : नारद द्वारा जरा से मुक्ति हेतु ० आराधना),

भागवत ६.६.३९ (१२ अदिति -पुत्रों का नाम), ६.१८.१ (सविता, भग, धाता, वरुण, मित्र, विष्णु नामक आदित्यों की भार्याएं व पुत्र), पद्म १.६.३५ (चाक्षुष मन्वन्तर के तुषित देवों का वैवस्वत मन्वन्तर में १२ आदित्य बनना, ० नाम), १.२५ (० शयन व्रत, नक्षत्रों में सूर्य नाम व न्यास), भविष्य १.४८+ (साम्बादित्य माहात्म्य : साम्ब -वासुदेव संवाद), १.५०.१३ (मास अनुसार ० नाम), ३.४.६.५५+ (ब्राह्मण रूप धारी इन्द्र, धाता आदित्यों के विशिष्ट कार्यों का वर्णन), ३.४.७.८५ (निम्बादित्य : अरुण व जयन्ती -पुत्र, सुदर्शन चक्र के तेज का अवतार, निम्ब में तेज स्थापना से कृत्रिम सूर्य का निर्माण), भ ३.४.१८.१६ (संज्ञा के स्वयंवर में आदित्यों का असुरों से युद्ध), भ ४.४४ (आदित्य मण्डल दान विधि), वराह ६२ (सार्वभौम राजा द्वारा पद्म ग्रहण के प्रयास से कुष्ठ प्राप्ति, आदित्य आराधना से मुक्ति), वर ९४ (आदित्यों का १२ महिषासुर सेनानियों से युद्ध), १३८ (० तीर्थ माहात्म्य के अन्तर्गत खंजरीट का मनुष्य बालक बनना), वर १५६.१४ (कृष्ण द्वारा यमुना में कालिय दमन के पश्चात द्वादश आदित्यों की स्थापना), वर १७७ (साम्ब द्वारा प्रातः आदि तीन कालों में तीन आदित्यों की आराधना), मत्स्य १९.३ (प्रपितामह का रूप), ५५ (० शयन व्रत विधि एवं माहात्म्य, नक्षत्र अनुसार आदित्य न्यास), ९७ (० वार कल्प विधान, द्वादश दल कमल पर दिशा अनुसार आदित्य पूजा), १७२.३३ (० नारायण : सागर में महाद्वीप रूप), लिंग १.५९ (मास अनुसार ० नाम, रश्मि संख्या व वर्ण), वा.रामायण ६.१०५ (० हृदय स्तोत्र, रावण पर विजय हेतु अगस्त्य द्वारा राम को कथन), अग्नि ५१.५ (द्वादश आदित्यों के स्वरूप, वर्ण व शक्तियां), नारद १.७०.२० (द्वादश आदित्यों का महाविष्णु की १२ मूर्तियों के साथ न्यास), १.१२१.५४ (० द्वादशी व्रत : १२ आदित्य नाम), ब्रह्म १.२८.२८ (१२ आदित्य मूर्तियों की विश्व में स्थिति वर्णन), हरिवंश १.३.६२ (चाक्षुष मन्वन्तर के तुषित देवों का वैवस्वत मन्वन्तर में आदित्य बनना), विष्णु १.१५.१३२ (वही), ब्रह्माण्ड १.२.२३.१ (आदित्य रथ व्यूह वर्णन), वायु ६६.४४ (रात्रि के १५ मुहूर्तों में से एक), शिव २.१.१२.३३ (आदित्यों द्वारा ताम्रमय लिंग की पूजा), शिव २.५.३६.१४ (० गण का शंखचूड सेनानियों से युद्ध, शि २.५.३६.१४ (० गण का शंखचूड सेनानियों से युद्ध), लक्ष्मी नारायण १.२०८.२२ (आदित्य तीर्थ : आदित्यों द्वारा तप करके सूर्यता प्राप्ति), १.३५३.२८ (साम्ब द्वारा कुष्ठ से मुक्ति हेतु मथुरा में ६ सूर्यों की आराधना), लन १.४४१.८८ (जपा वृक्ष रूप में अवतरण), १.५३८.४६ (१२ आदित्यों द्वारा मास अनुसार प्रभास क्षेत्र में स्नान), लन २.१७८.६१ (आरण्यक मुनि व उनके २५ सहयोगी ऋषियों का १४ मनु व १२ आदित्य बनना, पुनः १२ आदित्यों का राजाओं के रूप में जन्म), ३.४५.२७ (पंचाग्नि तप से आदित्य मण्डल की प्राप्ति का उल्लेख), ३.५३.१०० (ब्रह्मा द्वारा स्वपुत्रों को कर्म में प्रवृत्त होने का आदेश, पुत्रों का आदित्य नाम), योगवासिष्ठ ४.३६ (चित् रूपी आदित्य का स्वरूप वर्णन), कथासरित् १.५.५९ (आदित्यवर्मा : राजा, मन्त्री शिववर्मा के वध की युक्ति), ३.४.६९ (आदित्यसेन : उज्जयिनी का राजा, श्री वृक्षक नामक अश्व की सहायता से कठिनाइयों पर विजय वर्णन, विदूषक ब्राह्मण द्वारा पुत्री की रक्षा), ७.८.२०० (आदित्य प्रभा : विद्याधर -कन्या, पद्मसेन -भार्या, श्वसुर के शाप से यमदंष्ट्रा रूप में जन्म लेना), कस ८.६.१५९ (आदित्यशर्मा : सुलोचना नामक यक्षिणी को सिद्ध करके उससे पुत्र प्राप्त करना); दृ. कोण ०, चन्द्र ०, जय ०, नर ०, बाल ०, भट्ट ०, मधुरा ०, यम ०, राम ०, विक्रम ०, सूर्य

टिप्पणी : आदित्य अदिति के पुत्र हैं। यह आदान का काम करते हैं - विषयों का आदान करने वाले प्राण। ये आदान करके सबको विज्ञानमय कोश में डालते रहते हैं। वेद में सात या आठ आदित्य वर्णित हैं जबकि पुराणों में १२ हैं। वेद में आदित्य शब्द के कुछ सूक्ष्म भेद हैं। पहले बाहर से कान, नाक, आंख आदि से शक्ति का आदान करने वाले प्राण आदित्यासः कहे जाते हैं। चित्तवृत्तियों का निरोध करने पर, चित्त को अन्दर की तरफ ले जाने पर आदित्यासः आदित्याः हो जाते हैं। पिर यह आदान अंदर करते हैं। अन्त में केवल एक आदित्य रह जाता है । - फतहसिंह

डा.फतहसिंह ने आदित्यों के सम्बन्ध में जो सुझाव दिया है, उसकी पुष्टि पुराणों के इस कथन से होती है कि चाक्षुष मन्वन्तर के तुषित देव वैवस्वत मन्वन्तर में १२ आदित्य बने। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, चक्षु, श्रोत्र, रस, घ्राण, स्पर्श, बुद्धि और मन यह १२ तुषित देव हैं (ब्रह्माण्ड पुराण २.३.३.२०)। वैदिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से आदित्य शब्द की निरुक्ति आदान करने वाले के रूप में की गई है (जैसे शतपथ ब्राह्मण११.६.३.८)। यह भूतों से किस-किस गुण का आदान करते हैं, इसका विस्तार जैमिनीय ब्राह्मण२.२६ तथा ३.३५८ में किया गया है- जैसे नक्षत्रों से क्षत्र का, अन्तरिक्ष से आत्मा का, वायु से रूप का, मनुष्यों से आज्ञा का, पशुओं से चक्ष का, आपः से ऊर्जा का, ओषधियों से रस का इत्यादि।

आदित्यों का जन्म अदिति द्वारा ब्रह्मौदन उच्छिष्ट भाग के भक्षण से होता है (तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१.९.१ इत्यादि)। ओदन उदान प्राण का रूप है। अतः उदान प्राण के सूक्ष्म भाग के विकास से आदित्यों का जन्म होता है। शतपथ ब्राह्मण ७.५.१.६ में कूर्म को आदित्य

कहा गया है। कूर्म भी उदान प्राण का एक रूप है। पुराणों में हारीत - पुत्र कमठ बालक के समक्ष आदित्य के प्राकट्य का वर्णन किया गया है। कमठ का अर्थ भी कूर्म होता है। अथर्ववेद १८.४.८ में उल्लेख है कि आदित्यों का अयन गार्हपत्य अग्नि है। शतपथ ब्राह्मण ७.१.२.२१ के अनुसार गार्हपत्य अग्नि उदान प्राण है। लेकिन यहां आहवनीय अग्नि को आदित्य कहा गया है। ऐसा संभव है कि गार्हपत्य अग्नि के स्तर पर जो आदित्य समूह में थे, आहवनीय अग्नि के स्तर पर वह केवल एक आदित्य रह जाए। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१.६.३ में शुचि अग्नि को आदित्य कहा गया है।

आदित्य अग्नि का ही एक रूप है। शतपथ ब्राह्मण १०.६.२.११ के अनुसार प्राण द्वारा अग्नि का दीपन होता है, अग्नि से वायु का, वायु से आदित्य का, आदित्य से चन्द्रमा का, चन्द्रमा से नक्षत्रों का और नक्षत्रों से विद्युत का। ऐतरेय ब्राह्मण८.२८ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.११.१.११ में यह वर्णन थोडे अंतर से मिलता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.६.६.२ इत्यादि में उल्लेख है कि रात्रि में जो अग्नि दूर से ही दिखाई देती है, उसकी किरण भी उसमें स्थित आदित्य के कारण ही है। आधुनिक विज्ञान के आधार पर ऐसी कल्पना की जा सकती है कि प्रकाश उत्पन्न होने से पूर्व की अवस्था, जिसे अवरक्त भाग कहते हैं, अग्नि की अवस्था है। साधना में प्रकाश के उत्पन्न होने के पश्चात संवत्सर के १२ मासों के रूप में १२ उषाओं का उदय होने लगता है। शतपथ ब्राह्मण ११.६.३.८ के अनुसार संवत्सर के १२ मास ही आदित्य हैं। यह उल्लेखनीय है कि वैश्वानर अग्नि को भी संवत्सर का रूप कहा गया है (शतपथ ब्राह्मण ५.२.५.१५ इत्यादि)। वैश्वानर अग्नि और आदित्यों, दोनों का यज्ञ में स्थान तृतीय सवन में होता है। ऐतरेय ब्राह्मण ३.३४ में उल्लेख है कि अग्नि में केवल वैश्वानर अग्नि रूप ही ऐसा है जिससे आदित्य का उदय हो सकता है। अथर्ववेद १३.१ से आरंभ करके कुछ सूक्त रोहित आदित्य देवता के हैं। रोहित अर्थात बीजावस्था का रोहण, क्रमशः उदय। अग्नि और आदित्य दोनों को ही रोहित कहा जाता है (शतपथ ब्राह्मण १४.२.१.२)। इनसे यजमान स्वर्ग को रोहण करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि साधना की पहली अवस्था में आदित्य उदित होकर रोहण करता है और दूसरी अवस्था में यह आकाश में परिक्रमा करता है (शतपथ ७.५.१.३६)। भौतिक रूप में तो आदित्य का उदय पूर्व में होकर पश्चिम में अस्त होता है। लेकिन साधना में यह चारों दिशाओं में उदित होकर व अस्त होता है। यह इसकी प्रदक्षिणा है। छान्दोग्य उपनिषद ३.६.१ में इन अवस्थाओं का वर्णन है। यह उदय - अस्त अवस्थाएं साधारण नहीं हैं। छान्दोग्य उपनिषद ३.१.१ तथा ३.६.१ इत्यादि के अनुसार यह आदित्य की मधुमती अवस्थाएं हैं। इनसे देवों का जन्म होता है, इस अमृत के दर्शन मात्र से देवगण तृप्ति को प्राप्त होते हैं। जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण १.८.१.६ के अनुसार आदित्य का उदय अमृत से ही होता है और वह अमृत में ही संचरण करता है। ऋग्वेद १०.६३.३ तथा अथर्ववेद ९.१.४ के अनुसार आदित्यों की माता अदिति स्वयं मधुविद्या है और वह अपने पुत्रों को मधु रूपी दुग्ध का ही पान कराती है। पुराणों में मधुरादित्य का माहात्म्य इस दृष्टिकोण से विचारणीय है।

छान्दोग्य उपनिषद ३.११.१ में आदित्यों की प्रदक्षिणा अवस्था के पश्चात एक और अवस्था का उल्लेख है - जब यह ऊर्ध्व दिशा में उदित होकर फिर न तो उदित होता है, न अस्त होता है, मध्य में ही स्थित रहता है। इस अवस्था का नाम श्लोक है। यह विचारणीय है कि क्या आदित्य की इसी अवस्था को विवस्वान कहते हैं?

वैदिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से आदित्य को चक्षु से सम्बद्ध किया गया है। प्रश्नोपनिषद ३.८ में आदित्य को बाह्य प्राण कहा गया है जो चाक्षुष प्राण को ग्रहण करके उदित होता है। शतपथ ब्राह्मण७.५.२.२७ के अनुसार आदित्य देवों और मनुष्यों, दोनों का चक्षु है। शतपथ ८.१.२.१ के अनुसार आदित्य स्वयं में विश्वव्यचा है, अन्दर की ओर दर्शन करता है। लेकिन चक्षुओं में स्थित होने पर यह बाहर की ओर, जिसे सर्व कहते हैं, दर्शन करने वाला हो जाता है। वर्षा (आनन्द की ?) को चाक्षुष्य कहा गया है। यह उल्लेखनीय है कि वैदिक तथा पौराणिक साहित्य में दक्षिण चक्षु को आदित्य तथा सव्य चक्षु को चन्द्रमा का रूप कहा जाता है (उदाहरण के लिए अथर्ववेद १५.१८.२)। अथर्ववेद ८.२.१५ में सूर्य और चन्द्रमा को आदित्यद्वय कहा गया है। शतपथ १२.८.२.३६ के अनुसार चन्द्रमा प्रत्यक्ष रूप में आदित्य यजमान है। प्रश्नोपनिषद १.५ में आदित्य को प्राण और चन्द्रमा को रयि कहा गया है। अन्यत्र ब्राह्मण ग्रन्थों में चन्द्रमा को परम अन्न कहा गया है जिसका भक्षण आदित्य करता है। शतपथ ब्राह्मण १०.३.३.७ तथा जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण १.९.१.४ के अनुसार चक्षु आदित्य है जबकि मन चंद्रमा है। बृहदारण्यक उपनिषद १.५.१२ के अनुसार आदित्य मन की ज्योति का रूप है। जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण १.८.३.२ के अनुसार चक्षु में पुरुष की प्रतिष्ठा है, आदित्य में अति पुरुष की और विद्युत में परमपुरुष की। चक्षु में स्थित पुरुष का नाम अनुरूप, आदित्य में प्रतिरूप और विद्युत में सर्वरूप है। यह विचारणीय है कि पौराणिक साहित्य में चाक्षुष मन्वन्तर के तुषित देवगण का वैवस्वत मन्वन्तर में आदित्य गण के रूप में जन्म होने के उल्लेख का उपरोक्त वर्णन से कितना तादात्म्य है।

ऋग्वेद १.४१.५ तथा ८.२७.६ में आदित्यों के लिए नर विशेषण का प्रयोग हुआ है। अथर्ववेद १३.२.१ में आदित्य के लिए नृचक्षा अर्थात नृ प्राणों के दर्शन करने वाले विशेषण का प्रयोग हुआ है। नर प्राण दिव्य प्राण होते हैं। शतपथ ब्राह्मण ९.३.१.३ में वर्णन है कि वैश्वानर शब्द के संदर्भ में यह पृथिवी विश्व है जिसमें अग्नि नर है। अन्तरिक्ष विश्व है जिसमें वायु नर है। द्यौ विश्व है जिसमें आदित्य नर है। शिर ही द्यौ है जिसमें केश नक्षत्रों का रूप हैं। उस द्यौ रूपी विश्व में चक्षु रूपी आदित्य नर स्थित है। जिस प्रकार भौतिक जगत में आदित्य द्यौ से नीचे स्थित रहता है, उसी

प्रकार चक्षु शिर से नीचे स्थित हैं। पुराणों में अर्जुन द्वारा नरादित्य की स्थापना का वर्णन आता है। अथर्ववेद १३.३.२६ में अर्जुन कृष्णा रात्रि के वत्स के रूप में जन्म लेता है जो द्यौ में आरोहण करता है। यही स्थिति आदित्य की भी होती है। भविष्य पुराण ४.५८.४१ में पर्जन्य वृष्टि से अर्जुन होने का उल्लेख है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि नर आदित्य की स्थापना अर्जुन बनकर ही की जा सकती है। पुराणों में नरादित्य के साथ-साथ केशवादित्य का भी वर्णन आता है। केश वपन करने वाले को भी केशव कहा जाता है और इस संदर्भ में अथर्ववेद ६.६८.१ का क्षुरिका सूक्त विचारणीय है।

साम्ब द्वारा कुष्ठ प्राप्ति व आदित्य आराधना से कुष्ठ से मुक्ति की कथा का स्रोत अथर्ववेद १९.३९.५ का मन्त्र है। इस मन्त्र के अनुसार तीन शाम्बों, अंगिराओं, तीन आदित्यों और तीन बार विश्वेदेवों से उत्पन्न होने पर कुष्ठ विश्वभेषज बन जाता है। साम्ब, शाम्भु, शाम्भवी और शम्ब, इन शब्दों का मूल एक ही है। कण्ठ से लेकर मूर्धा तक का स्थान शांभव स्थान कहा जाता है। मंडल ब्राह्मणोपनिषद व अद्वयतारकोप-निषद में शाम्भवी मुद्रा का विस्तृत वर्णन किया गया है। तालुमूल के ऊर्ध्वभाग में महाज्योति होती है जिसके दर्शन से अणिमादि सिद्धियां प्राप्त होती हैं। निमेष - उन्मेष से रहित अवस्था शाम्भवी मुद्रा कहलाती है। पहले अग्निमण्डल, उसके ऊपर सूर्यमण्डल, उसके बीच में सुधाचन्द्र मण्डल, उसके बीच में अखण्ड ब्रह्मतेजो मण्डल होता है। वही शांभवी लक्षण है।

साम्ब द्वारा नारद को जरा प्राप्ति का शाप व नारद द्वारा नारदादित्य की स्थापना के संदर्भ में छान्दोग्य उपनिषद २.९.१, २.१४.१ तथा २.२०.१ इत्यादि में आदित्य व चन्द्रमा की उदय के पूर्व व पश्चात की स्थितियों का साम भक्ति के हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ व प्रतिहार आदि से सम्बन्ध उल्लेखनीय है। ब्राह्मण ग्रन्थों जैसे शतपथ ब्राह्मण १३.३.३.३, १३.४.४.१ व १३.५.१.५ में बार-बार आदित्य का एक विंश स्तर निर्धारित किया गया है और उसकी व्याख्या के रूप में भक्ति की हिंकार, प्रस्ताव आदि अवस्थाओं के शब्दों को गिनकर २१ कहा गया है। अन्यत्र (उदाहरण के लिए जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण १.५.१.९ आदि) १२ मासों, ६ ऋतुओं आदि को मिलाकर २० कहा गया है। इनसे परे २१वां आदित्य है। इस संदर्भ में पुराणों में आदित्य के २१ नामों की प्रासंगिकता विचारणीय है।

पुराणों में कृष्ण की १६ सहस्र गोपियों द्वारा स्थापित गोप्यादित्य के संदर्भ में आदित्य को ओंकार का रूप कहा गया है (ऐतरेय ब्राह्मण ५.३२ इत्यादि) और गोपियां ओंकार की १६ कलाएं हैं। अथर्वशिखोपनिषद में ओंकार की अ, उ व म मात्राओं में तृतीय मकार को आदित्य से सम्बद्ध किया गया है। शतपथ ब्राह्मण ८.५.१.१० में १५ को वज्र को कहा गया है जिसे षोडशी आदित्य ग्रहण करके असुरों का नाश करता है।

अगस्त्य द्वारा राम को आदित्य हृदय स्तोत्र प्रदान करने के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण ९.१.२.४० में आदित्य को हृदय की संज्ञा दी गई है। निहितार्थ अन्वेषणीय है। मैत्रायणी उपनिषद ६.१७, ७.१७ तथा ६.३४ इत्यादि के अनुसार अग्नि में जो पुरुष प्रतिष्ठित है, जो हृदय में है तथा जो आदित्य में है, वह यह एक ही है।

अंगिरसों द्वारा आदित्यों से स्वर्ग में जाने की प्रतिस्पर्धा का उल्लेख अंगिरसों की टिप्पणी में किया जा चुका है। आदित्य एक दिन के सत्र द्वारा स्वर्ग पहुंचना चाहते हैं, जबकि अंगिरस २ दिन के सत्र द्वारा। साधना में पहला दिन आत्मा के अनुदिश यज्ञ का प्रतीक है, जबकि दूसरा दिन प्रजा के अनुदिश। इसके अतिरिक्त, जैमिनीय ब्राह्मण २.३६६ में उल्लेख है कि आदित्य की उत्तराभिमुखी रश्मियां आदित्य हैं, जबकि दक्षिणामुख रश्मियां अंगिरस। तैत्तिरीय ब्राह्मण३.९.२१.१ के अनुसार अंगिरसों ने आदित्यों को दक्षिणा रूप में आदित्य रूपी श्वेत अश्व प्रदान किया। चूंकि इस अश्व ने असुरों से लोकों को छीन लिया/आदान कर लिया, अत: उसे आदित्य कहा जाता है।

आदित्य व सूर्य शब्द कुछ वैदिक मन्त्रों में एक साथ आए हैं और इनका अंतर अथर्ववेद ६.५२.१, ८.२.१५, १०.८.१६, १३.२.२, १३.२.२९, १४.१.१, १७.१.२५, ऋग्वेद १.११९.९, ७.६०.४, शतपथ ब्राह्मण ९.५.१.३७ आदि के आधार पर समझने की आवश्यकता है।

शतपथ ब्राह्मण ४.५.१.१, ५.३.१.४, ६.६.१.८ तथा १०.३.५.३ आदि में उदयनीय आदित्य के लिए चरु की हवि देने का उल्लेख है। कहा गया है कि जब आदित्य उदित होता है तब सर्व को चरता है। एक ओर वैश्वानर अग्नि है जो द्यौ में शिर की भांति स्थित है। वैश्वानर के लिए पुरोडाश की, जो एक देवत्य है, हवि दी जाती है। दूसरी ओर आदित्य आत्मा का रूप है जिसके लिए चरु की हवि का विधान है। आत्मा बहुत से अंगों से युक्त है। इसी का प्रतीक तण्डुलों से युक्त चरु को भी कहा गया है। इस प्रकार शिर को आत्मा में धारण करते हैं? वैश्वानर क्षत्र है तो आदित्य उसकी प्रजाएं। यह उल्लेखनीय है कि उदित होते समय आदित्य का नाम मित्र, चरण करते समय सविता, मध्याह्न के समय इन्द्र और अस्त होते समय वरुण होता है (अथर्ववेद १३.३.१३)। १२ आदित्यों में से कुछ के लिए पुरोडाश की हवियों का भी उल्लेख है। इस संदर्भ में यह विचारणीय है कि अरुण जो उदित होते हुए आदित्य का रूप हो सकता है, को अनूरु अर्थात पाद रहित क्यों कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.९.२३.२ आदि में अश्वमेधीय अश्व को आदित्य कहा गया है। जहां जहां अश्व विवर्तन करता है (पद रखता है?) वहीं वहीं आहुति दी जाती है। कहा गया है कि दर्शपूर्ण मास अश्व के पद हैं।

शतपथ ब्राह्मण ६.२.३.६, ८.७.१.९, ८.७.२.१ तथा ८.७.३.१० आदि में अग्निचयन के अंतर्गत पांच चितियों के मध्य में स्थापित की जाने वाली स्वयमातृण्णा (स्वाभाविक रूप से छिद्र युक्त) इष्टिका को प्राण का रूप तथा लोकम्पृणा इष्टिका को आदित्य का रूप कहा गया है। इस प्रकार प्राण का आदित्य द्वारा समिन्धन करते हैं। शतपथ ब्राह्मण ८.७.१.९ के अनुसार

द्यौ उत्तमा स्वयमातृष्णा है तो आदित्य उत्तमा विश्वज्योति है।

आद्य ब्रह्माण्ड १.२.३६.६६ (चाक्षुष मन्वन्तर में देवगण नाम)

आनकदुन्दुभि ब्रह्म वैवर्त ४.७.५ (देवमीढ व मारिषा -पुत्र, वसुदेव का नाम, जन्म पर देवों द्वारा दुन्दुभि वादन), विष्णु ४.१४.१३ (अनु -पुत्र, अभिजित् -पिता), ४.१४.२९ (शूरसेन व मारिषा -पुत्र, जन्म पर देवों द्वारा दुन्दुभिवादन), हरिवंश १.३४.१८ (शूर व भोज्या -पुत्र)

आनन्द स्कन्द २.१.३.३ (भगवान श्रीनिवास का आनन्द नामक विमान में विराजमान होकर अगस्त्य के समक्ष प्रकट होना, विमान के अदृश्य रूप का कथन), ३.२.१६.२० (आनन्दा मातृका का स्वरूप व माहात्म्य), ४.१.३२.८१ (आनन्दवन : काशी में शिव के वन का नाम, हरिकेश यक्ष के तप का स्थान, वन की शोभा वर्णन), ४.२.७४.५७ (आनन्द नामक शिव के गण की वरणा तट पर स्थिति), ४.२.८५ (दुर्वासा का काशी/आनन्दकानन में आकर तप करना, सिद्धि प्राप्त न होने पर क्रोध, शिव के प्रहसन से आनन्दात्मक लिंग का प्रादुर्भाव), ४.२.९४.४२ (आनंद कानन की महिमा), स्क ५.१.६८.५ (महाकाल वन में आनन्द भैरव का संक्षिप्त माहात्म्य), ५.२.३३ (अनमित्र व गिरिभद्रा -पुत्र, जातहारिणी द्वारा हरण पर विक्रान्त व हेमिनी -पुत्र बनना, आनन्द लिंग की स्थापना, मनु बनना), स्क ५.३.६५ (० तीर्थ माहात्म्य : दानवों का वध करके रुद्र का आनन्दित होना), पद्म १.२०.७६ (० व्रत माहात्म्य व विधि), २.९३ (मेरु पर्वत पर आनन्द वन में सुबाहु राजा द्वारा क्षुधा तृप्ति हेतु शव भक्षण की कथा), नारद १.११८.३२ (० नवमी व्रत), मार्कण्डेय ७६ (अनमित्र व गिरिभद्रा -पुत्र, मार्जारी द्वारा हरण, अन्त में चाक्षुष मनु बनना), मत्स्य १०१.३२ (० व्रत विधि व माहात्म्य), विष्णु २.४.४ (प्लक्ष द्वीप -अधिपति मेधातिथि के सात पुत्रों में एक), वायु २१.२८ (भव नामक प्रथम कल्प में आनन्द भगवान की उपस्थिति), ४१.७२ (जातुधि देव पर्वत पर स्थित आनंद जल नामक सरोवर महिमा, चण्ड नामक नागपति का वास स्थान), ४९.१४ (प्लक्ष द्वीप में एक वर्ष का नाम), ब्रह्माण्ड १.२.३६.३५ (उत्तम मन्वन्तर में सत्य देवगण में एक देव), ब्रड ३.४.३७.४७ (ललिता देवी की बिन्दु नाद महापीठ का एक नाम), लक्ष्मी नारायण १.४६०.४ (ईशान नामक दिक्पाल का आनन्दवन की ऊषर भूमि में प्रवेश करके विश्वेश लिंग की स्थापना, आनन्दवन में ज्ञान वापी का माहात्म्य), २.१७६.३ (ज्योतिष के २८ योगों में से एक), ३.१५६.४८ (आनन्दवर्णी वैश्य का भगवद्भक्ति से धर्मसावर्णि मनु बनना), कथासरित् ६.३.२४ (० नामक वैद्य द्वारा कलिंगसेना के क्षुधा नाश का कारण बताना), द्र. आर्द्र ०, धर्मानन्द, ब्रह्म ०, योग ०, शत ०, शारदा ०, सच्चिद् ०, सदा ०,

टिप्पणी : पुराणों में आनन्द को अनमित्र का पुत्र कहा गया है। अनमित्र अर्थात अन् - अमित्र, जिसने चारों दिशाओं को अपना मित्र बना लिया है, जिसने चारों दिशाओं से अनुग्रह प्राप्त किया है। आनन्द के उत्पन्न होने पर उसकी माता उसका उल्लापन/चुम्बन (तुलनीय : अथर्ववेद ११.१०.२५) आदि करती है तो आनन्द अपनी माता का प्रबोधन करता है कि क्या उसे पता है कि मैं कौन हूं। तब उसकी माता उसे त्याग कर चली जाती है और जातहारिणी (तुलनीय : मैत्रेय्युपनिषद १.१२ में आशा पिशाची) आनंद का हरण कर लेती है। पुराणों में आनन्द को अनमित्र का पुत्र कहना अथर्ववेद ९.१२.२३ की व्याख्या है जहां उल्लेख है कि "मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः"। आनन्द के बारे में वास्तविक स्थिति यह है कि हमारे कण-कण में बसे प्राण आनंद की मांग करते हैं और इस आनंद का भरण वह पंच महाभूतों पृथिवी, जल आदि का रस (छान्दोग्य उपनिषद ७.१०.१ के शब्दों में अन्न) प्राप्त करके करते हैं। आनंद का भरण करने के कारण इन प्राणों को भरत कहा जाता है। यह भरत प्राण विषय वासनाओं से लिप्त आनंद का भरण करते हैं। लेकिन शास्त्रों का वचन है कि रसो वै सः, अर्थात परमात्मा ही वास्तविक रस है (तैत्तिरीय आरण्यक ८.७.१)। उसकी प्राप्ति के उपाय के रूप में शांखायन आरण्यक ५.६ इत्यादि का कथन है कि प्रज्ञा द्वारा उपस्थ पर समारूढ होकर आनन्द, रति, व प्रजाति को जानता है। लेकिन साथ ही चेतावनी भी दी गई है कि प्रज्ञा को प्राप्त पुरुष यदि आनन्द, रति, प्रजाति को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है तो उसका मन भटक सकता है। प्रज्ञा प्राप्त पुरुष को आनन्द, रति, प्रजाति के विज्ञाता / परमात्मा को जानना चाहिए। प्रज्ञा क्या है, इसे अन्नपूर्णोपनिषद ५.८० तथा नृसिंहोत्तर तापनीयोपनिषद १.१ के शब्दों में इस प्रकार समझा जा सकता है कि जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय इन चार अवस्थाओं में सुषुप्ति और तुरीय के बीच आनन्द की अवस्था उत्पन्न होती है जो क्रमशः घनीभूत होती जाती है। यह सुषुप्ति अवस्था ऐसी है जिसमें विषयों के रस सो जाते हैं। रामोत्तर तापिन्युपनिषद २.३ के शब्दों में लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत तथा राम क्रमशः विश्व, तैजस, प्राज्ञ और ब्रह्मानंद के प्रतीक हैं जो प्रणव की क्रमशः अ, उ, म व अर्धमात्राएं भी हैं। रामचरितमानस के भरत द्वारा नन्दीग्राम में तप सर्वविदित है। आवश्यकता इस बात की है कि भरत प्राण अथवा प्रज्ञा की स्थिति स्वयं को राजा न समझे, वह विषय वासनाओं में लिप्त न हो, वह राजा पद पर राम रूपी ब्रह्मानन्द को आसीन करे। पुराणों में इसी तथ्य की व्याख्या दुर्वासा ऋषि द्वारा आनन्द वन में तप के रूप में की गई है। आत्मप्रबोधोपनिषद १५ में भी विषयानन्द का वर्जन किया गया है। जहां कर्मों के

बीज जल कर समाप्त हो जाएं वही महाश्मशान है जहां आनंद वन है (निर्वाणोपनिषद ४)। अवधूतोपनिषद ३, ऋग्वेद ९.११३.११ तथा अथर्ववेद ११.१०.२४ इत्यादि में मोद और प्रमोद के माध्यम से आनन्द को गोष्पद में स्थापित करने का उल्लेख है जिसका निहितार्थ अपेक्षित है।

आनर्त स्कन्द ६.६५ (राजा सुहय द्वारा स्थापित आनर्तेश्वर लिंग का माहात्म्य), ६.१०३.११ (० तीर्थ माहात्म्य : अगस्त्य -राम संवाद, राजा श्वेत द्वारा स्वर्ग से आकर स्वदेह भक्षण, दान से मुक्ति, दीपदान से चक्षु प्राप्ति), ६.१११, ६.११३.३० (० अधिपति व दमयन्ती -पति द्वारा शंख तीर्थ में स्नान से कुष्ठ से मुक्ति, पूर्व जन्म में प्रभंजन राजा), स्क ६.१२५ (आनर्त देश अधिपति सत्यसन्ध का कर्णोत्पला कन्या के साथ ब्रह्मलोक जाना, प्रत्यागमन पर बृहद्बल राजा से मिलन, युद्ध में बृहद्बल की मृत्यु के पश्चात आनर्त देश का राजा -विहीन होना), ६.१२८.३९ (आनर्त अधिपति अट की उत्पत्ति व अट नाम प्राप्ति वर्णन), ६.१८४.२३ (आनर्त -अधिपति सुतपा की रानी पिंगला का आशा त्याग कर सुख से सोना), ६.१९५.१०+ (आनर्त -अधिपति, मृगावती -पति द्वारा रत्नावती पुत्री के विवाह का प्रसंग), ६.२०९ (आनर्त अधिपति सिद्धसेन की शत्रुओं द्वारा राज्य से च्युति, कुष्ठ प्राप्ति, नारद के उपदेश से शंख तीर्थ में स्नान व पूर्व वैभव प्राप्ति), स्क ६.२१० (आनर्त अधिपति का विश्वामित्र से वार्तालाप, विश्वामित्र द्वारा नागवल्ली/ताम्बूल उत्पत्ति व भक्षण दोष वर्णन), मत्स्य १२.२१ (शर्याति -पुत्र, रोचमान -पिता, आनर्त देश अधिपति), ४३.४९ (वीतिहोत्र -पुत्र, दुर्जय -पिता, हैहय वंश), विष्णु ४.१.६३ (शर्याति -पुत्र, रेवत -पिता), भागवत १.११.१ (आनर्त/द्वारका में अधिपति श्रीकृष्ण के आगमन पर प्रजा द्वारा स्वागत), भा ९.३.२८ (आनर्त -अधिपति रैवत ककुंद्मी का कन्या रेवती सहित ब्रह्मलोक गमन व प्रत्यागमन कथा), भा. १०.६७.४ (द्विविद वानर का आनर्त देश में उपद्रव, बलराम द्वारा द्विविद का वध), गर्ग ६.९.५ (शर्याति -पुत्र, पिता द्वारा निष्कासन पर तप, द्वारका निर्माण), लक्ष्मी नारायण १.१५७.११६ (शर्याति -पुत्र, तप से कृष्ण से गोलोक खंड की प्राप्ति व स्थापना, गोलोक खंड का आनर्त -पुत्र रैवत बनना), १.२१७ (वही), १.३१५.४० (वही), लन १.३९०.९६ (राजा रैवत ककुद्मी व रेवती की कथा), २.२५७.३४+ (आनर्त नृप का कुशला योगिनी से मोक्ष या गृहस्थ धर्म की श्रेष्ठता विषयक विवाद, कुशला का योग विद्या से राजा के शरीर में प्रविष्ट होना)

टिप्पणी : आ - समन्तात् अर्थात चारों ओर से जब नृत्य उत्पन्न हो जाए, उसे आनर्त कहते हैं। आनर्त का उल्टा है अनृत। वैदिक साहित्य में अनृत, ऋत् और सत्य, यह तीन शब्द मुख्य रूप से आते हैं। १२ दिनों के द्वादशाह नामक यज्ञ में प्रथम ६ दिन तो अनृत अवस्था होती है। उसके पश्चात सातवें से ९वें दिनों को छन्दोम कहते हैं। यह छन्दों के उत्पन्न होने की स्थिति है। इन्हें अनृत से ऋत् बनाया जा सकता है। अनृत से ऋत होने के क्या लक्षण हैं? इसके सम्बन्ध में ऐतरेय आरण्यक २.६.६ का कथन है कि ओम सत्य है, ओम की अनुपस्थिति अनृत है। इसका तात्पर्य है कि जब साधना में आह्लादपूर्वक गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टप आदि छन्द प्रकट होने लगें तो उसे ओंकार की स्थिति समझना चाहिए। ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लेख है कि यह रैवत साम की स्थिति है (तुलना : पुराणों में आनर्त - अधिपति रैवत) यह पशुओं का घोष है। छठे दिन उत्पन्न हुई वाक् को रेवती कहा जाता है (जैमिनीय ब्राह्मण २.१)। यही पुराणों में रैवत की पुत्री रेवती है जिसे लेकर रैवत ब्रह्मा की सभा में गया।

साधारण भाषा में अनृत असत्य या झूठ को कहते हैं। लेकिन वैदिक साहित्य में अनृत अवस्था तब होती है जब मर्त्य स्तर पर ही अमृतत्व की प्राप्ति हो जाती है (जैमिनीय ब्राह्मण १.८९)। मर्त्य स्तर पर मनुष्य वरुण के पाशों से बद्ध होता है। ऋग्वेद की कई ऋचाओं जैसे ७.६५.३ में मित्र और वरुण से अनृत को नष्ट करके ऋत् तथा सत्य की ओर ले जाने की प्रार्थना की गई है। दूसरी ओर कुछ ऋचाओं में आदित्य (ऋग्वेद ७.६६.१३) तथा अग्नि (जैसे ७.१०४.१४) से भी अनृत से ऋत की ओर ले जाने की प्रार्थना की गई है। यदि मित्र को दिन और वरुण को रात्रि मानें तो मित्र का आदित्य से और वरुण का अग्नि से तादात्म्य स्थापित हो जाता है। रात्रि में आदित्य की अनुपस्थिति में अग्नि की ही स्थिति होती है। पुराणों में आनर्त देश के राजाओं के विभिन्न नामों जैसे सत्यसन्ध, सुतपा, सुहय, रैवत आदि से ऐसा प्रतीत होता है कि आनर्त अवस्था को प्राप्त करने के यह विभिन्न मार्ग हैं। सत्य मार्ग केवल देवों के लिए ही है (ऐतरेय ब्राह्मण १.६)। अनृत मनुष्यों के लिए है। अनृत को ऋत में रूपांतरित करने का एक उपाय है अपनी चेतना को अश्व बनाकर वरुण को दक्षिणा देना (तैत्तिरीय ब्राह्मण १.७.२.६)। यह पुराणों का आनर्त - अधिपति सुहय हो सकता है। एक अन्य उपाय है तप करना। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.७.५.३ के अनुसार तप करने की अवस्था अनृत है, तप के फलस्वरूप वर्षण की अवस्था सत्य है। यह पुराणों का आनर्त - अधिपति सुतपा हो सकता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७.१२.१ में गार्हपत्य अग्नि से अनृत से मुक्त करने की प्रार्थना की गई है। यह विचारणीय है कि क्या तप करने का तात्पर्य गार्हपत्य अग्नि को पुष्ट करने से, गृहपति बनने से है?

अनृत अवस्था में कौन-कौन से कार्य करणीय हैं, इस सम्बन्ध में जैमिनीय ब्राह्मण ३.२७० का कथन है कि अनृत अवस्था में स्त्री, नर्म या सखी स्थिति की कामना करनी चाहिए। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३४८ के अनुसार कार्त/कातर अवस्था में स्थित होना ही अनृत में प्रतिष्ठित होना है।

पुराणों में आनर्त-अधिपतियों द्वारा कुष्ठ प्राप्ति व

शंख तीर्थ में कुष्ठ से मुक्ति का उल्लेख है। जैमिनीय ब्राह्मण ३.७७ तथा ताण्ड्य ब्राह्मण १२.११.११ में आख्यान है कि अंगिरसों ने स्वर्ग पहुंचने के मार्ग को एक गंधर्व से जाना और पूछने पर झूठ ही कह दिया कि यह मैंने स्वयं जाना। वह अनृत अहि श्वित्र/कुष्ठ बन गया (शाम्भवी अवस्था में स्थित होने को भी कुष्ठ कहते हैं)। इससे मुक्ति का उपाय है शंख रूपी शंसन या स्तुति अवस्था को प्राप्त करना। इस संदर्भ में यह विचारणीय है कि द्वादशाह के पांचवें दिन में प्रयुक्त नाराशंसी ऋचा को ब्राह्मण ग्रन्थों में अनृत अवस्था क्यों कहा गया है (काठकसंहिता १४.५)।

भागवत पुराण में आनर्त देश में द्विविद वानर के वध के संदर्भ में, ऋग्वेद १०.१००.७ में अनृत से परे की अवस्था को अदिति, अखंडित शक्ति कहा गया है, जबकि द्विविद खण्डित शक्ति का प्रतीक हो सकता है। अखंडित अवस्था ही आनर्त-अधिपति की राजधानी कुशस्थली हो सकती है। यह समाधि की अवस्था प्रतीत होती है।

पुराणों में आनर्त को शर्याति-पुत्र कहा गया है जो पिता द्वारा राज्य से निष्कासन के पश्चात समुद्र तट पर तप करता है। शर्या रात्रि को कहते हैं। इसे अनृत की अवस्था कहा जा सकता है। समुद्र तट पर तप करने का अर्थ ऋग्वेद १.२३.२२ की सार्वत्रिक ऋचा से समझा जा सकता है जहां आपः से कामना की गई है कि वह मेरे सारे अनृत को बहा कर ले जाए।

आन्त्र योगवासिष्ठ ३.३९.२४ (युद्ध में वीणा का रूप), ६.१.८०.३६ (आन्त्र वेष्टनिका नाडी की प्रकृति का वर्णन; आन्त्र वेष्टनिका नाडी में कुण्डली शक्ति की स्थिति), स्कन्द ४.१.४५.३८ (आन्त्रमालिनी : ६४ योगिनियों में से एक), लक्ष्मी नारायण ३.१६३.१०७ (बलासुर की आन्त्रों से विद्रुम मणि की उत्पत्ति का उल्लेख) वायु ६.१९ (वराह अन्त्र का उद्गाता से साम्य), गरुड १.८०.१ (बल असुर की आन्त्रों से केरल देश में विद्रुम रत्नों की उत्पत्ति), भागवत ३.३१.८ (गर्भ का बाहर से अन्त्रों से आवृत रहने का उल्लेख), ७.९.१५ (प्रह्लाद द्वारा नृसिंह की स्तुति के संदर्भ में नृसिंह को आन्त्रों की माला से विभूषित कहना), महाभारत उद्योग १४३.३२ (कर्ण द्वारा स्वप्न में पृथिवी को आन्त्र से लिपटी हुई देखने का उल्लेख); द्र. अन्त्र, शरीर

टिप्पणी : यजुर्वेद १९.८६ की सार्वत्रिक यजु के अनुसार आन्त्र एक स्थाली/थाली हैं जो मधु का सिंचन करती हैं। आन्त्रों की यह स्थिति किस प्रकार प्राप्त हो सकती है, इस संदर्भ में ऋग्वेद ४.१८.१३ का कथन है कि वामदेव ऋषि ने शुनः की आन्त्रों को पकाया लेकिन कोई फल प्राप्त नहीं हुआ। तब इन्द्र ने श्येन बन कर मधु की प्राप्ति करायी। योगवासिष्ठ में आन्त्रों को महतन्त्री/वीणा का रूप कहा गया है, जबकि बृहद् देवता ७.७९ के अनुसार जब अग्नि ने देवों से अमरता के वरदान प्राप्त किए, तो अग्नि की आन्त्र अवक्का (अवाक्) बनी। पुराणों में आन्त्रों की माला के उल्लेख के संदर्भ में अथर्ववेद ११.३.१० का कथन है बार्हस्पत्य ओदन पकने पर (ओदन उदान प्राण का रूप है) आन्त्र जत्रु अर्थात गले का आभूषण बन जाती हैं। यह कहा जा सकता है कि आन्त्र की शक्ति जत्रु में समाहित हो जाती है। यही आन्त्र का वीणा बनना हो सकता है।

आन्ध्र भविष्य ३.४.२३.५५ (० देश के राजा सुगद का उल्लेख; राक्षसारि नृप द्वारा आन्ध्र देश से धन का हरण करने वाले राक्षसों को जीतकर धन का वितरण करना)

आप वायु ६९.१३० (यातुधान, सूर्य अनुचर, जम्बुक -पिता), ब्रह्माण्ड १.२.२३.१५ (वही)

आपगा पद्म ३.२६.६४ (० नदी माहात्म्य), वम ३६.१ (० नदी माहात्म्य : श्राद्ध हेतु प्राशस्त्य), ब्रह्म २.३०.१३ (सुपर्णा व कद्रू का अपमार्ग पर स्थित होने पर आपगा/नदी बनना)

आपव भविष्य ३.४.१६.८ (० द्विज द्वारा भद्रकाली की आराधना, जन्मांतर में वरुण बनना), ब्रह्म १.११.१९४ (वसिष्ठ ऋषि का उपनाम), मत्स्य ४४.१२ (कार्तवीर्य अर्जुन द्वारा सूर्य तृप्ति हेतु आपव के आश्रम सहित वृक्षों को जला देने पर आपव द्वारा कार्तवीर्य को छिन्न बाहु होने का शाप), वायु ९४.४३ (वही), ९५.११ (वही)

आपवत्स मत्स्य २५३.३१ (वास्तुमण्डल में एक देवता का नाम), २६८.२० (० हेतु देय बलि द्रव्य), स्कन्द ३.२.९.७४ (आपवत्सार : काश्यप गोत्र के ऋषियों का एक प्रवर; गुण कथन)

आपस्तम्ब स्कन्द ४.२.९७.१५७ (आपस्तम्बेश्वर लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य : ज्ञान दायक), स्क ७.१.३३८ (जल मध्य में तपोरत ० ऋषि का धीवर जाल में बंधकर बाहर निकलना, नाभाग राजा द्वारा गौ मूल्य देकर मुक्त कराना), ब्रह्म २.६० (अक्षसूत्रा -पति, कर्कि -पिता, अगस्त्य से शिवकी श्रेष्ठता जानकर शिव की स्तुति), मत्स्य ७.३३ (० द्वारा दिति हेतु पुत्रेष्टि यज्ञ करना), वामन ६.९० (कालमुख सम्प्रदाय के आचार्य का नाम), लक्ष्मी नारायण १.५४९.५५ (नाभाग द्वारा गौ मूल्य देकर ० को धीवर जाल से मुक्त कराने की कथा), २.३८.१०१ (बालखिल्यों द्वारा शिव का अपमान करने पर शाप से जल के ऊपर स्तम्ब/तृण बनना), २.२४२.२५ (आपस्तम्बी आदि ५ सतियों द्वारा पंकिल मुनि के दर्शन), २.२४३.१५ (पंकिल भ्राता द्वारा आपस्तम्बी का कृष्ण से विवाह करना), भागवत ४.२२.३० (इन्द्रियों के विषयों में आकृष्ट मन द्वारा बुद्धि से चेतना हरण की जलाशय के निकट स्थित स्तम्ब/तृण द्वारा जलाशय के जल के अपहरण से उपमा), ७.८.१५ (हिरण्यकशिपु द्वारा सभा में स्तम्भ का मुष्टि

से ताडन करने पर नृसिंह देव का प्राकट्य), ११.१.४ (यादवों के परस्पर लडकर नष्ट होने की वंश स्तम्बों में परस्पर घर्षण से उत्पन्न अग्नि द्वारा नष्ट होने से उपमा), महाभारत शल्य २९.५४ (दुर्योधन का युद्ध से पलायन करके द्वैपायन ह्रद के जल को स्तम्भित करके जल में विश्राम करना),

टिप्पणी : संस्कृत भाषा में जब किसी घटना का प्रदर्शन निम्न स्तर पर करना हो तो भ के स्थान पर ब कर देते हैं। इस प्रकार आपः के स्तम्भ के बदले आपः स्तम्ब कहा गया है। भागवत पुराण में स्तम्बों की तुलना दिव्य जल का भक्षण करने वाली विषय वासनाओं से करना आपस्तम्ब को समझने की कुंजी है। दूसर कुंजी लक्ष्मी नारायण संहिता में वालखिल्यों के शापित रूप को जल के ऊपर उगे स्तम्ब कह कर दी गई है। वालखिल्य हमारे शरीर में बिखरे हुए प्राण हैं। एक तीसरी कुंजी बौधायन श्रौत्र प्रवर १७ से प्राप्त होती है जहां ब्रह्मस्तम्भों, राजस्तम्भों, अग्नि ०, वायु ०; सूर्य ०, सोम ०, यम०, इन्द्र ०, विष्णु ०, यज्ञ ०, आपस्तम्भों आदि को भारद्वाज कुल के अन्तर्गत परिगणित किया गया है। मन को भरद्वाज का प्रतीक कहा जाता है। उसके यह वंशज हैं। वैदिक साहित्य में यद्यपि इतने सारे प्रकार के स्तम्भों के उल्लेख आए हैं, लेकिन पौराणिक साहित्य में केवल आपःस्तम्ब का ही मुख्य रुप से उल्लेख आया है।

पुराणों में राजा नाभाग द्वारा आपस्तम्ब ऋषि की रक्षा की कथा के संदर्भ में ऋग्वेद ८.३९ से ८.४२ तक के सूक्त काण्व - पुत्र नाभाक ऋषि के हैं। इनमें पहला सूक्त अग्नि देवता का, दूसरा इन्द्राग्नि, तीसरा व चौथा वरुण व विश्वेदेव देवताओं का है। इन सभी सूक्तों में प्रत्येक ऋचा में 'नभन्ताम् अन्यके समे' शब्दों की पुनरावृत्ति होती है। पुराणों में नाभाग को नभग का पुत्र कहा गया है, अर्थात नभ में गति करने वाला। आपस्तम्ब ऋषि की रक्षा का उपाय यही है कि जो बल मन को प्राप्त हो रहा है, उसे नभोमुखी, ऊर्ध्वमुखी कर दिया जाए। इस ऊर्ध्वमुखी बल को ओदन अर्थात उदान प्राण का रूप (अथर्ववेद ४.३५.३), रोहित (अथर्ववेद १३.१.७), उक्थ (शतपथ ब्राह्मण ८.६.१.६ जैमिनीय ब्राह्मण ३.३५९), स्तोम (ऐतरेय ब्राह्मण ४.१८) आदि कहा गया है। ऐसा नहीं है कि यह सब एक ही हैं, अपितु बल को किन किन दिशाओं में तथा किस प्रकार से गतिमान किया जा सकता है, उसके प्रतीक हैं। इसके अतिरिक्त अग्नि को संवत्सर सूर्य में रूपांतरित करना भी बल को स्तम्भित करने का एक उपाय है (जैमिनीय ब्राह्मण ३.२)। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३५९ के अनुसार जब यजमान सूर्य बनता है तो उसकी नीचे जाने वाली रश्मियां निचले स्तर के प्राण शरीर का स्तम्भन करती हैं, जबकि ऊर्ध्वगामी रश्मियां उसके शरीर से परे के लोकों का स्तम्भन करती हैं। ऐतरेय ब्राह्मण ६.२४ में उल्लेख है कि साधना रूपी यज्ञ के छठे दिन देवों ने प्रातःसवन में नभाक ऋचाओं द्वारा वल असुर का नभयन किया और तृतीय सवन में वालखिल्य वज्र से उसे मार कर गाएं प्राप्त कर ली। ऋग्वेद की कई ऋचाओं में वृषभ इन्द्र द्वारा द्यौ में सूर्य आदि की स्थिरता हेतु द्यौ के स्तम्भन (ऋग्वेद ३.३०.९) तथा असुरों द्वारा स्तम्भित सिन्धु के जल को प्रवाहित करने (ऋग्वेद ८.९६.१८, ३.५३.९ तथा १०.११३.४ इत्यादि) के उल्लेख आते हैं। लेकिन पुराणकारों ने अपनी सारी शक्ति ऋग्वेद की नाभाक ऋचाओं पर केंद्रित की है जिनमें से ऋग्वेद ८.४२.१ की ऋचा का वैदिक साहित्य में सर्वत्र उल्लेख होता है। आपस्तम्ब ऋषि का उद्धार करने में पुराणों में कथित गौ के महत्व की व्याख्या के लिए गौ तत्व का रहस्य अन्वेषणीय है।

लक्ष्मीनारायण संहिता में आपस्तम्बी, द्रुम०, मरुत ०, फेन ० तथा धूम्र स्तम्बी नामक ५ सखियों के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण ८.६.१.६ में पांच दिशाओं में आज्य, प्रउग, मरुत्वतीय, निष्केवल्य और वैश्वदेव उक्थों द्वारा स्तम्भन के उल्लेखों की प्रासंगिकता अन्वेषणीय है। यही संदर्भ आपस्तम्ब ऋषि द्वारा दिति हेतु पुत्रेष्टि यज्ञ करके मरुतों को उत्पन्न करने के संदर्भ में भी उपयोगी हो सकता है। दिति अर्थात खण्डित/मर्त्य स्तर पर शक्ति का आरोहण मरुतों के रूप में हो सकता है जो इन्द्र के सखा बन कर क्रीडा करते रहते हैं। ब्रह्मपुराण में आपस्तम्ब ऋषि को अक्षसूत्रा -पति कहने के संदर्भ में ऋग्वेद १०.८९.४ की ऋचा की प्रासंगिकता अन्वेषणीय है जिसमें इन्द्र द्वारा पृथिवी और द्यौ का स्तम्भन ऐसे किया गया है जैसे अक्ष के चारों ओर चक्र। जुए के पासों को भी अक्ष कहते हैं। यदि आपस्तम्ब अक्ष का पति न हो तो यह शक्ति कितव/जुए में नष्ट होगी। वरुण देवता इस कितव से रक्षा करते हैं (तैतिरीय ब्राह्मण२.८.१.६)।

काशकृत्स्न धातु कोश में आपस्तम्ब की व्युत्पत्ति ष्टुबि-मर्दने धातु से की गई है। मर्दन से अग्नि उत्पन्न होगी। तैत्तिरीय ब्राह्मण२.२.१.४ में उल्लेख है कि दर्भ स्तम्ब अग्निवान है। यदि अग्निहोत्र के लिए कोई अन्य अग्नि न प्राप्त हो तो कुशस्तम्ब में ही आहुति दे (षड्विंश ब्राह्मण ५.१.१२)। स्तम्बों के मर्दन का क्या रहस्य हो सकता है, यह अन्वेषणीय है।

आपाक भविष्य ४.१६७ (आंवां/आपाक दान विधि, शुभावती -पिप्पलाद संवाद)

आपूरण विष्णु २.१०.१० (यक्ष, भाद्रपद मास में सूर्य रथ पर स्थिति); दृ. रथ -सूर्य

आपः ब्रह्म २.५६ (अग्नि और आपः में ज्येष्ठता निर्णय के लिए ऋषियों का तप, सरस्वती वाक् द्वारा आपः की ज्येष्ठता कथन), पद्म ६.१६८.६१ (० द्वारा इन्द्र से ब्रह्महत्या अंश की प्राप्ति), मत्स्य ९.९ (वसिष्ठ के सात पुत्रों में से एक, स्वारोचिष मन्वन्तर में प्रजापति), भागवत ५.२०.२२ (क्रौंच द्वीप वासियों द्वारा आपः देवता की पूजा- वर्णन); दृ. अभिषेक, अम्भ, उदक, जल, जालन्धर आदि

टिप्पणी : आपः की गणना पृथिवी, जल, वायु , आदि पांच महाभूतों में से जल महाभूत के अन्तर्गत की जाती

है। योग साधना में पंच महाभूतों की धारणा के अन्तर्गत आप: की धारणा भी की जाती है जिसका शरीर में स्थान जानु से पायु पर्यन्त माना जाता है। वैदिक साहित्य में यह स्पष्ट किया गया है कि आप: का रूप जड अथवा जल नहीं है, अपितु वह ऊर्जित रूप है। आप: की निरुक्ति प्राय: आप्यायन के अर्थों में की गई है, अर्थात जो हमारे व्यक्तित्व को चारों ओर से आप्लावित कर दे। लेकिन उपनिषद वाक्य महाकोश में उद्धृत उपनिषद के एक वाक्य के अनुसार आप: वह है जिसका आ अर्थात चारों ओर से पान किया जाए (आपा: इत्याप इति)। वेदमन्त्रों में भी पुन: पुन: अभीप्सा की गई है कि आप: मेरे तन के भेषज और वरूथ बन जाएं (उदाहरण के लिए ऋग्वेद १०.९.७)। सामान्य रूप में आप: में जो रस निहित है, उसका अनुभव. केवल जिह्वा को ही हो पाता है। लेकिन वैदिक साहित्य की कल्पना के अनुसार शरीर के कण-कण में बसे प्राण उस दिव्य आप: की, रस की अभीप्सा करते हैं (छान्दोग्य उपनिषद ६.५.४ इत्यादि)। केवल केश और श्मश्रु आदि ही ऐसे हैं जिनमें आप: की स्थिति नहीं है और इसी कारण से दीक्षा से पूर्व यजमान का क्षौर कर्म किया जाता है (शतपथ ब्राह्मण ३.१.२.२)। प्राय: कहा जाता है कि रसो वै स:, अर्थात परमात्मा रस रूप ही है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राय: उल्लेख आता है कि आप: वज्र है जिसके द्वारा इन्द्र ने वृत्र को मार डाला (उदाहरण के लिए जैमिनीय ब्राह्मण २.६७)। असुरगण आप: को तैर कर पार नहीं कर सकते। यह एक ज्वलंत प्रश्न है कि आप: वज्र कैसे बन सकते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में अथवा उपनिषदों में इस प्रश्न का उत्तर सीधे-सीधे कहीं भी नहीं दिया गया है, लेकिन परोक्ष रूप से सम्भवत: सर्वत्र इसी प्रश्न का समाधान है कि आप: वज्र कैसे बन सकता है। यदि आप: को ओंकार का रूप प्राप्त हो जाए तो यह वज्र बन जाता है (जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण १.२.१०)। आप: को वज्र बनाने के लिए मुख्य रूप से दो चीजों की आवश्यकता है। एक तो आप: को धारण करने वाले पात्र को ठीक किया जाए और दूसरे आप: में ऊर्जा का समावेश किया जाए। आप: के पात्रों के रूप में मैत्रायणी संहिता ३.६.३ में तीन प्रकार के आप: का उल्लेख आता है - दिव्य, पार्थिव और सामुद्रिय। ब्राह्मणों में जो सत्य और श्रद्धा आदि को आप: कहा गया है, उसे दिव्य आप: का रूप मान सकते हैं। तैत्तिरीय आरण्यक १.२२.५ के अनुसार नक्षत्र आप: का आयतन हैं और आप: नक्षत्रों का आयतन हैं। इसका अर्थ यह होगा कि दिव्य आप: को तभी धारण किया जा सकता है जब व्यक्ति को अपने अंदर नक्षत्रों का दर्शन हो गया हो। दूसरी ओर पार्थिव आप: हैं। भौतिक रूप में पृथिवी से जल प्राप्त करने के लिए कूप निर्माण की आवश्यकता पड्ती है। योग में हो सकता है कि कूप का निर्माण श्वास के माध्यम से होता हो। श्वास जैसे-जैसे शरीर के निचले भागों में प्रवेश करेगा, जल ऊपर सिर की ओर गति करेगा।

आप: में ऊर्जा के समावेश के संदर्भ में, सामान्यत: आप: का प्रयोग अग्नि को शान्त करने के लिए किया जाता है। लेकिन वैदिक साहित्य के आप: ऐसे हैं जो घृतवन्त हैं (ऋग्वेद १०.१७.१०), जिनमें अग्नि प्रतिष्ठित रहता है। आप: के एक रूप का प्रतीक अवका/शैवाल घास है। अवका अर्थात अवाक्। जब आप: और वाक् रूपी तेज का मिलन होता है तभी आप: के दूसरे रूप वेतस (वेत्ति, ज्ञान का प्रतीक) का प्राकट्य होता है (मैत्रायणी संहिता ३.३.६, शतपथ ९.१.२.२२, १०.६.५.२)। आप: और अग्नि के मिथुन को वैदिक व पौराणिक साहित्य में बहुत महत्त्व दिया गया है (उदाहरण के लिए शतपथ ६.८.२.३, २.१.१.५ इत्यादि तथा महाभारत व स्कन्द पुराण ६.९० आदि में अग्नि का जल में छिपना)। इससे हिरण्य का जन्म होता है।

भौतिक जगत में सूर्य अपनी किरणों द्वारा आप: का कर्षण करता है जिससे मेघों की सृष्टि होती है। आध्यात्मिक जगत में इस तथ्य का बहुत उपयोग किया गया है और कहा गया है कि आतप के पश्चात जो वर्षा होती है, वह तेज और ब्रह्मवर्चस की वर्षा होती है (ऐतरेय ब्राह्मण ८.८ इत्यादि)। मेघों से वर्षा होने के समय विद्युत और गर्जन भी होता है। तैत्तिरीय आरण्यक १.२४.१ के अनुसार विद्युत और स्तनयित्नु भी आप: के ही ऊर्जित रूप हैं। कहा गया है कि विद्युत और ज्योति आप: के सर्वोत्कृष्ट रूप हैं (शतपथ ७.५.२.४९, जैमिनीय ब्राह्मण १.२९२)। चन्द्रमा तथा वेतस को भी आप: का सर्वश्रेष्ठ रूप अथवा पुष्प कहा गया है (तैत्तिरीय आरण्यक १.२२.१, मैत्रायणी संहिता ३.३.६)। शिवजी के मस्तक पर चन्द्रमा की स्थिति तथा जल के बूंद-बूंद (द्रप्स) टपकने से हम सब परिचित ही हैं। ऋग्वेद १०.१७.११ में आप: के एक रूप को द्रप्स कहा गया है। योगतत्वोपनिषद ८८ में अर्धचन्द्र को आप: का प्रतीक कहा गया है। अन्यत्र आप: को स्वयं एक पुष्कर/कमल की संज्ञा दी गई है (शतपथ ६.४.१.९, १०.५.२.६ इत्यादि) तथा इस पुष्कर के पर्ण के रूप में पृथिवी स्थित रहती है।

भागवत पुराण में जो क्रौंच द्वीप के निवासियों द्वारा आप: देवता की उपासना का उल्लेख है, इस संदर्भ में तैत्तिरीय आरण्यक १.२४.३ का यह कथन उपयोगी है कि ओज के द्वारा ही आप: बहते हैं, ऊपर उछलते हैं, कूजन करते हैं। अत: यदि क्रौंच रूपी कूजन की स्थिति उत्पन्न करनी हो तो आप: में ओजस का समावेश करना होगा। आप: में ऊर्जा की मात्रा के अनुसार ही आप: की वहन्ती स्थिति, स्थावर स्थिति आदि १७ स्थितियां शतपथ ब्राह्मण ५.३.४.२२ में कही गई हैं। इन स्थितियों को समझना इसलिए महत्वपूर्ण है कि किसी तीर्थ का जल स्थिर होता है तो किसी तीर्थ का गतिमान। मैत्रायणी संहिता ४.८.५ का कथन है कि स्थावर आप: वरुण का रूप हैं जबकि बहता हुआ पशुओं का। तैत्तिरीय संहिता ६.४.२.३ के अनुसार जो मेध्य, यज्ञिय, दैवी है, उसका प्रतीक बहता हुआ आप: है।

अवभृथ स्नान के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण ४.४.५.२० आदि में आप: का वर्णन किया गया है। शतपथ ७.५.२.४० में १५ आपस्य इष्टिकाओं की

स्थापना का वर्णन है जो आपः को वज्र बनाने के लिए अपेक्षित हैं। शतपथ ५.३.४.१ में अभिषेक के लिए अपेक्षित विभिन्न आपः का वर्णन है। आपः और वरुण के सम्बन्ध को ठीक-ठीक समझने की आवश्यकता है। आपः और मित्रावरुण आदि के मिथुन से रैवत पशुओं की सृष्टि होने के कथन का निहितार्थ समझना भी अपेक्षित है। पशुओं को आपः कहने (ऐतरेय ब्राह्मण १.८), पशुओं के संज्ञान को आपः कहने (तैत्तिरीय आरण्यक १.२६.४) .इत्यादि के निहितार्थ भी अपेक्षित हैं। और सन्ध्या कर्म में गायत्री से अभिमंत्रित करने पर आपः कैसे वज्र बन जाते हैं (तैत्तिरीय आरण्यक २.२.१) जो मन्देहा राक्षसों को सूर्य से अलग फेंक देते हैं?

आप्तोर्याम लक्ष्मी नारायण २.१५७.३२ (० यज्ञ का ऊरु में न्यास)

आप्यायन लिङ्ग १.५४.५६ (अग्नि के धूम व ब्रह्मा के श्वास आदि से उत्पन्न मेघों का नाम), कूर्म ४३.३५ (सूर्य की सुषुम्ना किरण द्वारा सोम के आप्यायन का कथन), लक्ष्मी नारायण २.१८२.७८, २.१८४.३५ (ऋषि, गंगा व कृष्ण -पुत्र), २.१६६.३१, २.१८५.२ (अल्पकेतु राजा के गुरु ० का उल्लेख)

टिप्पणी : आप्यायन शब्द पुराणों में जहां एक गौण शब्द के रूप में प्रकट हुआ है, वैदिक साहित्य में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। छान्दोग्य आदि कई उपनिषदों का आरंभ ऊं आप्यायन्तु ममांगानि इत्यादि शान्ति मंत्र से होता है। ओंकार ही ऐसा अक्षर है जो सारे व्यक्तित्व को आप्यायित करता है (जैमिनीय ब्राह्मण १.१३६)। सामान्य जीवन में हम अन्न के द्वारा शरीर का आप्यायन अर्थात वर्धन, मोटा-ताजा करते हैं। योग के क्षेत्र में प्रतीक के रूप में दधि, मधु और घृत को अन्नाद्य अर्थात परम अन्न कहा जाता है जो अलौकिक आनंद देने वाले हैं, आप्यायन करने वाले हैं (जैमिनीय ब्राह्मण १.२२४)। प्रश्न उठता है कि यह दिव्य अन्न कहां से प्राप्त हो। इसका उत्तर तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.२.१.४ व ३.७.४.१६ में एक धेनु की कल्पना करके दिया गया है जो अपने वत्स इन्द्र को दुग्ध आदि से आप्यायित करती है। सायण टीकाकार ने इस गौ को गंगा, यमुना आदि कहा है जो लक्ष्मी नारायण संहिता में कथित ऋषि आप्यायन की माता गंगा की व्याख्या हो सकता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७.५.१३ में अमावास्या को ही आप्यायन करने वाली धेनु कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७.५.२ में घृतयोनि वाली अग्नि से आप्यायन की प्रार्थना की गई है।

केवल गंगा को आप्यायन करने वाली गौ कहने मात्र से काम नहीं चलता। तैत्तिरीय आरण्यक ४.११.४ तथा शतपथ १४.३.१.८ में घर्म (संभवतः मुख पर प्रकट होने वाली गर्मी, तेज) को आप्यायन करने वाला कहा गया है। यह शरीर में व्यय होने के पश्चात अवशिष्ट ऊर्जा का रूप है (शतपथ १.५.३.२५)। यह विचारणीय है कि क्या पुराणों में अग्नि के धूम से आप्यायन मेघों की उत्पत्ति कहने से तात्पर्य घर्म से है।

लिंग पुराण में आप्यायन मेघों की ब्रह्मा के श्वास उत्पत्ति के संदर्भ में तैत्तिरीय आरण्यक १०.३६.१ में प्राण, अपान, व्यान, उदान व समान का श्रद्धा में क्रमशः निवेश कराकर इनका आप्यायन करने का उल्लेख है। गोपथ ब्राह्मण १.१.३९ में उल्लेख है कि सात प्राणों, सात अपानों और सात व्यानों के आप्यायन से क्या-क्या प्राप्ति होती है।

आप्यायन के संदर्भ में कुछ वैदिक मन्त्रों की व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थों में पुनः-पुनः की गई है। शुक्ल यजुर्वेद ५.७ तथा तैत्तिरीय संहिता १.२.११.१ के मन्त्र अंशुरंशुष्टे देव सोम आप्यायताम् इन्द्राय एकधनविदे इत्यादि मन्त्र की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण ३.४.३.१८ तथा गोपथ ब्राह्मण २.२.४ में की गई है। यज्ञ में यजमान रूपी इन्द्र सोम का आप्यायन करता है और सोम इन्द्र का। इस मन्त्र तथा कई अन्य मन्त्रों जैसे अथर्ववेद ५.२९.१२, ७.८६.५ तथा १२.३.२० आदि में आप्यायन के संदर्भ में अंशु और सोम का एक साथ उल्लेख आता है जो एक दूसरे का आप्यायन करते हैं। अंशु को संवत्सर के अंश अर्थात मास, ऋतु , पर्व, अहोरात्र आदि कह सकते हैं जो सोम अथवा चन्द्रमा को ज्योति प्रदान करते हैं, उसका आप्यायन करते हैं। देवगण अंशु का आप्यायन करते हैं (अथर्ववेद ७.८६.६) और उसको अक्षित ही भक्षण करते हैं, जबकि सोम या चन्द्रमा का पान करने के पश्चात उसको पुनः आप्यायित करके पूर्ण करना होता है (ऋ. १०.८५.५)।

अथर्ववेद १८.४.६४ में पितृमेध के संदर्भ में उल्लेख है कि अग्नि पितरों को अंगों सहित पितृलोक में ले जा सके, इसके लिए अंगों के आप्यायन की आवश्यकता होती है। शतपथ ब्राह्मण ३.९.१.४ में प्रजापति द्वारा एकादश प्रकार से स्वयं के आप्यायन का वर्णन है।

आभिल ब्रह्माण्ड ३.४.२९.२१ (भण्डासुर - सेनानी, रथ में सहस्र सिंह वाहक, घातक नामक खड्ग)

आभूतरयस ब्रह्माण्ड १.२.३६.५६ (पंचम स्वारोचिष ? मन्वन्तर में १४ देवों का एक गण, अन्य नाम भूतरय), मत्स्य ९.२० (अमूर्तरजस : पांचवें रैवत मन्वन्तर में देवों का एक गण)

आभूषण पद्म ५.९०.२८ (वसिष्ठ द्वारा देवशर्मा को स्त्री के १२ आध्यात्मिक आभूषण कथन), नारद १.११६.३२ (भाद्रपद शुक्ल सप्तमी को आभरण व्रत का उल्लेख), लक्ष्मी नारायण ३.१३० (माला, अंगुलीयक, कंकण आदि ० दान विधि व माहात्म्य); द्र. अलंकार, कंकण, कुण्डल आदि; कालिकापुराण अध्याय ६८.

टिप्पणी : यद्यपि वैदिक मन्त्रों में भूषण, आभूषण, परिभूषण आदि शब्द प्रकट होते हैं, फिर भी ब्राह्मणों और उपनिषदों में भूषण शब्द अपेक्षाकृत बहुत कम स्थानों पर आया है। ऋग्वेद में अधिकांश स्थानों पर

इन्द्र, मित्रावरुण, अश्विनौ व आग्ने आदि को उक्थों, स्तोमों, वाज, यज्ञों, सुमतियों व ओ सु द्वारा आभूषित करने के उल्लेख आते हैं। दूसरी ओर तैत्तिरीय ब्राह्मण २.७.८.१ आदि कुछेक मन्त्रों में यजमान को आभूषित करने का उल्लेख है।

मनुष्य शरीर को आभूषित करने वाले स्वर्ण आभूषणों को योग में अतिरिक्त ऊर्जा के प्राकट्य के रूप में समझा जा सकता है।

आम स्कन्द ३.२.३६.३४ (कान्यकुब्ज अधिपति ० द्वारा बौद्ध धर्म का अंगीकरण, आम -कन्या रत्नगंगा का जैन धर्म में दीक्षित होना), ब्रह्माण्ड १.२.३६.२१५ (यक्षों द्वारा पृथ्वी दोहन हेतु ० पात्र), भागवत ५.२०.२१ (क्रौंच द्वीप अधिपति घृतपृष्ठ के ७ पुत्रों में एक), भागवत १०.६१.१३ (कृष्ण व नाग्नजिती सत्या -पुत्र), वायु १८.२० (यति के लिए आम श्राद्ध का निषेध)

आमर्दक पद्म ६.१८२.१ (आर्मदक पुर वासी भावशर्मा ब्राह्मण की कथा : गीता के अष्टम अध्याय का माहात्म्य), स्कन्द २.४.१२.२ (आमलकी वृक्ष माहात्म्य : कार्तिक मास में पूजा, दुराचार द्विज की मूषक योनि से मुक्ति), ४.१.३१.४४ (काल भैरव का विशेषण); द्र. आमलक, धात्री

आमलक नारद १.१२०.७७ (आमलकी एकादशी व्रत विधि), पद्म ६.४५ (ब्रह्मा के ष्ठीवन/थूक से ० वृक्ष की उत्पत्ति, ० वृक्ष में देवों का वास वर्णन, आमलकी व्रत विधि व माहात्म्य), स्कन्द ५.३.२१३ (आमलकेश्वर माहात्म्य : शिव द्वारा आमलकों से क्रीड़ा का स्थान), ७.२.१७.१९५ (० वृक्ष माहात्म्य), वामन ९०.४९ (कूप पतित बालक निशाकर का कूप में आमलकी वृक्ष के फलों द्वारा पालन), लक्ष्मी नारायण १.२४५ (फाल्गुन शुक्ल आमलकी एकादशी व्रत माहात्म्य वर्णन : लक्ष्मी के ललाट आभूषण के पृथ्वी पर पतन से आमलकी का प्राविर्भाव), कथासरित् १०.५.२९५ (मूर्ख भृत्य द्वारा आमलकी फलों के आस्वादन के पश्चात स्वामी को प्रस्तुत करना); द्र. आमर्दक, धात्री

आमुष्यायण वराह १४४.९१ (सालंकायन ऋषि-शिष्य, गुरु -पुत्र नन्दी से मिलन, नन्दी को गोधन प्रदान करना आदि), स्कन्द ४.२.७६.१३९ (आमुष्यायण -पुत्र नारायण का वृत्तांत)

टिप्पणी : अथर्ववेद के कुछ मन्त्रों तथा काठक संहिता, मैत्रायणी संहिता आदि में आमुष्यायण शब्द का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। वैदिक साहित्य में आमुष्यायण को किसी आसुरी स्तर से सम्बद्ध किया गया है (मैत्रायणी संहिता २.६.६) जो वरुण के पाशों से हमारा बन्धन करता है (अथर्ववेद १०.५.४४ आदि)। इस आमुष्यायण को तेज, ब्रह्मवर्चस, ओज, वीर्य आदि से सिंचित करने की आवश्यकता है (तैत्तिरीय ब्राह्मण २.७.७.७, काठक संहिता ३६.१५)।

आमोद ब्रह्माण्ड ३.४.२७.८१ (छह विघ्न नायकों में से एक), ३.४.४४.६८ (५१ गणेशों में से एक), विष्णु धर्मोत्तर ३.१०६.१४४ (आमोद -प्रमोद : अनिरुद्ध के प्रतीहारों आमोद व प्रमोद के आवाहन मंत्र का कथन), लक्ष्मी नारायण २.७३ (० नगर के सुधना भक्त की श्रीहरि द्वारा चोरों से रक्षा)

आम्नाय ब्रह्माण्ड ३.४.३६.४१ (चिन्तामणि गृह के चार द्वार पूर्वाम्नाय आदि चार आम्नायों के प्रतीक)

आम्र वायु १११.३६ (गया में आम्र वृक्ष माहात्म्य), अग्नि ८१.५१ (ज्वर से मुक्ति हेतु आम्रपत्र का होम), ११५.४० (गया क्षेत्र में स्थित आम्र सिंचन से पितर तर्पण का फल), नारद १.५६.२१० (० वृक्ष की पूर्वा भाद्रपद नक्षत्र से उत्पत्ति), भविष्य ४.९४ (विद्या दान अभाव से विद्वान ब्राह्मण का जन्मांतर में आम्र वृक्ष बनना), भागवत ५.१६.१६ (मन्दराचल पर आम्र वृक्ष महिमा), देवीभाग. ८.५ (मन्दर पर्वत पर स्थिति, दिव्यता वर्णन), ७.३८ (आम्रकेश्वर क्षेत्र में सूक्ष्मा देवी का वास), स्कन्द २.४.३.३८टीका (शक्र का रूप), लक्ष्मी नारायण १.४४१.८२ (प्रजेश्वर देवों का रूप), १.५५९.३२ (बिल्वाम्रक लिंग/तीर्थ माहात्म्य : हरिकेश विप्र का ब्रह्मराक्षस योनि से उद्धार, गन्धर्व कन्याओं की कुब्जत्व से मुक्ति), लन २.२३० (आम्रजनी : नारायण से उत्पन्न अप्सरा, नदी बनकर सात रूप धारण करना, माहात्म्य), ३.११४.७५ (आम्र वृक्ष के नीचे स्थित शुकायन साधु का दावानल में आम्र वृक्ष को न त्यागना, आम्र वृक्ष का सरस बनना), कथासरित् ६.२.१२६ (आम्र वृक्ष के फल तोड़ने पर राजपुत्र की मृत्यु का विधान), १८.५.१४१ (कन्या द्वारा उष्ण व शीत आम्र देने का हास्य); द्र. एकाम्र, कालाम्र, कुब्जाम्रक

आयति भागवत ४.१.४४ (मेरु - कन्या, धाता - भार्या, मृकण्ड/प्राण की माता), ९.१८.१ (नहुष के ६ पुत्रों में एक, ययाति -अनुज), विष्णु १.१०.३ (मेरु -कन्या, धाता -भार्या, प्राण/मृकण्डु -माता), वायु २८.४ (वही), ३०.३४ (मेरु व धारणी - पुत्री, धाता -पत्नी), ब्रह्माण्ड १.२.११.५ (मेरु -कन्या, विधातृ -पत्नी, प्राण -माता?)

टिप्पणी : वैदिक साहित्य में दो शब्द आए हैं - आयाति और आयति। आयाति का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है जबकि आयति का बहुत कम। महोपनिषद ३.२४ में उल्लेख है कि हृत्पद्म पर स्थित षट्पदी तृष्णा क्षण में पाताल में आती है (आयाति) और क्षण में नभ में जाती है

(याति)। इसके विपरीत, प्रश्नोपनिषद ३.१, ३.३ तथा३.१० में यह प्रश्न उठाया गया है कि प्राण इस शरीर में कैसे आ सकता है। इसका उत्तर दिया गया है कि जो मन है, चित्त है, उसके द्वारा प्राण इस शरीर में आता है। फिर प्रश्न उठेगा कि मन इस शरीर में कैसे आ सकता है। इसका उत्तर मुक्तिकोपनिषद २.१८ में दिया गया है कि वासना के विलय होने पर चित्त दीप की भांति शम को प्राप्त हो जाता है। अन्नपूर्णोपनिषद २.३२ के अनुसार प्राणों का क्षय होने पर मन प्रशम को प्राप्त होता है। योगशिखोपनिषद १.१३५ के अनुसार एकत्व की साधना करने पर चित्त विलीन हो जाता है और लय योग का उदय होने पर पवन/प्राण स्थिरता को प्राप्त होता है (आयाति)। ध्यानबिन्दूपनिषद ९० के अनुसार बिन्दु रूपी शिव और रज रूपी शक्ति की एकता रवि के द्वारा होती है। उपरोक्त वर्णन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि एकत्व की स्थिति को ही पुराणों में मेरु कहा गया है। यह मेरु मन और प्राण को धारण करने में समर्थ होता है। यह धारण करना ही मेरु की पुत्री आयति है, अर्थात हमारा व्यक्तित्व मन और प्राण का आयतन, धारण करने वाला पात्र बन गया है। फिर आयति स्थिति से प्राणों को नवीन रूप में जन्म दिया जा सकता है।

आयु स्कन्द ३.१.२८.५२ (उर्वशी द्वारा पुरूरवा के साथ रमण के पश्चात पुरूरवा को आयु पुत्र देना), स्क ५.२.८४.४६ (राजा, गालव शाप से दर्दुरत्व/मंडूकत्व प्राप्ति, परीक्षित को कन्या दान व उत्तरेश्वर लिंग पूजा से मुक्ति), ब्रह्म १.९.१ (प्रभा -पति, नहुष आदि के पिता, वंश वर्णन), ब्र १.११६.५२ (दीर्घायु प्रापक कर्म कथन), भविष्य ३.४.२५.५६ (विभिन्न मन्वन्तरों के चार-चार चरणों में मनुष्यों की आयु का मान), मत्स्य २४.३३ (उर्वशी व पुरूरवा के ८ पुत्रों में से एक), ५१.३३ (पशु प्रीतिकारक अग्नि का नाम, महिमान -पिता), म १०१.२२ (० व्रत विधि व संक्षिप्त माहात्म्य), देवीभाग. २.९.३२ (रुरु पति द्वारा आयु प्रदान से मृत पत्नी प्रमद्वरा का जीवित होना), पद्म २.१०३.१०५ (पुरूरवा -पुत्र, इन्दुमती -पति, दत्तात्रेय प्रसाद से नहुष पुत्र प्राप्ति), विष्णु धर्मोत्तर १.५६.१२ (अंगिरसों में आयु नामक अंगिरस की श्रेष्ठता), भागवत ५.२०.२६ (शाकद्वीप की एक नदी), भा ६.६.१२ (प्राण व उर्जस्वती -पुत्र, वसु गण वंश), ९.१५.१ (पुरूरवा व उर्वशी के ६ पुत्रों में एक, वंश वर्णन), ९.१७.१ (० वंश वर्णन), १२.११.४२ (पौष मास में सूर्य रथ पर स्थित एक ऋषि), विष्णु ४.८.१ (० वंश कथन), ब्रह्माण्ड १.२.१२.३८ (शुचि अग्नि का अन्य नाम, महिष -पिता, वंश वर्णन), ब्रड १.२.३३.१३ (चरकाध्वर्युओं में से एक), १.२.३६.१४ (स्वारोचिष मन्वन्तर के पारावत देवगण में से एक), २.३.३.२१ (अष्ट वसुओं में एक, वैतण्ड आदि तीन पुत्रों के पिता), २.३.६७.१ (आयु वंश वर्णन), वायु २९.३७ (शुचि अग्नि का नाम, वंश वर्णन), वा ६५.१०७ (१० अंगिरस गणों में एक), ७३.५ (अमावसु पितर -पिता, अच्छोदा कन्या प्रसंग), वा ९१.५१ (अमावसु -भ्राता, पुरूरवा -पुत्र), ९२.१ (प्रभा -पति, वंश वर्णन), लक्ष्मी नारायण १.१६५.१५ (अंगिरस व सुरूपा के १० आंगिरस पुत्रों में एक), १.५२०.३३ (लोमश ऋषि का आयु की अल्पता विचार कर गृह निर्माण न करना), ३.८० (० नाशक व ० प्रापक कर्मों का कथन), ३.१७१.२ (वही), योगवासिष्ठ १.१४ (मूर्ख पुरुष की आयु की निन्दा);द्र. चिरंजीवी, भद्रायु, विश्वायु

टिप्पणी : शतपथ ब्राह्मण ४.३.४.२४ तथा ५.१.५.२८ इत्यादि में बार-बार उल्लेख आता है कि अमृत आयु हिरण्य है, अतः हिरण्य दान से आयु की प्राप्ति होती है। अयस् शब्द की टिप्पणी में उल्लेख किया जा चुका है कि सृष्टि के ९ स्तरों में से तीन स्तर अश्मा, अय और हिरण्य हैं। इनमें अय स्तर के हिरण्य का विकास अर्य और आयु के रूप में होता है (अथर्ववेद १८.३.२३)। इसके अतिरिक्त, अय से पहले अश्मा स्तर के हिरण्य का उल्लेख भी आयु प्राप्ति के लिए किया गया है (अथर्ववेद २.१३.४, ५.१०.१, तथा शतपथ ९.२.३.१६)। अथर्ववेद ५.२८.६ तथा १९.२६.१ में अग्नि, सोम व आपः से उत्पन्न ३ प्रकार के हिरण्यों से आयु प्राप्ति का उल्लेख है। वैदिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्यौ से आयु प्राप्ति का उल्लेख है। इन तीनों की कल्पना धेनुओं के रूप में की गई है जो क्रमशः अग्नि, वायु व आदित्य रूपी वत्सों के लिए आयु रूपी दूध देती हैं (अथर्ववेद ४.३९.२)। साधना में अग्नि, वायु व आदित्य के स्तरों पर आयु की प्राप्ति किस प्रकार से होती है, इसका वैदिक साहित्य में यत्र-तत्र उल्लेख आता है। तीनों स्तरों पर परम लक्ष्य ज्योति की प्राप्ति होना है। अग्नि के स्तर पर यह ज्योति तप द्वारा तमस् का नाश करके प्राप्त होती है (अथर्ववेद ७.६३.१)। इस ज्योति का नाम वैश्वानर अग्नि है जो संवत्सर का रूप है (तैत्तिरीय ब्राह्मण २.५.८.७, अथर्ववेद ६.४७.१)। अथर्ववेद १२.२.४५ में अग्नि से सुगार्हपत्य रूप धारण करके आयु प्रदान करने की प्रार्थना की गई है । गोपथ ब्राह्मण २.२.१९ में आयु के संदर्भ में अग्नि को उपद्रष्टा? कहा गया है।

अन्तरिक्ष के स्तर पर वायु अथवा प्राणों का विकास प्राण, अपान तथा व्यान रूप में किस प्रकार हो सकता है तथा उनसे किस-किस गुण की प्राप्ति हो सकती है, इसका वर्णन अथर्ववेद १५.१५.१ में व्रात्य काण्ड के अन्तर्गत किया गया है। लेकिन शतपथ ब्राह्मण १०.२.६.१९ इत्यादि के अनुसार प्राण अध्रुव हैं। आयु प्राप्ति के लिए उनको ध्रुव करने की आवश्यकता है। कर्मकाण्ड में प्राणों की ही प्रतीक स्वयमातृण्णा इष्टिकाओं (ऐसी ईंटें जिसमें स्वाभाविक रूप से छेद हों) को गार्हपत्य अग्नि चयन की पांच चितियों/तहों में मध्य में एक के ऊपर एक रखते हैं (शतपथ

८.७.३.११, ७.६.१.१५)। यहां यह उल्लेखनीय है कि स्टेला क्रामरिश ने अपन पुस्तक हिन्दू टैम्पिल्स में यह संभावना प्रकट की है कि मन्दिरों में इष्टदेव की प्रतिमा की स्थापना स्वयमातृण्णा इष्टिकाओं पर ही होती है। स्वयमातृण्णा इष्टिका के दोनों ओर आयु की प्रतीक विकर्णी नामक इष्टिकाओं की स्थापना करते हैं। शतपथ ब्राह्मण ४.२.३.१ में आत्मा को अनिरुक्त प्राण कहा गया है जिसे आयु कहा गया है और जिसको ग्रहण करने के लिए स्थाली नामक यज्ञपात्र की आवश्यकता होती है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.४.१.५ के अनुसार विभिन्न प्रकार के दुग्धों की प्राप्ति के लिए विभिन्न स्तरों पर विभिन्न प्रकार की स्थालियों की आवश्यकता होती है जैसे आदित्य स्थाली, उक्थ स्थाली, आग्रयण स्थाली। मनुष्य स्तर पर आयु रूपी दुग्ध प्राप्ति के लिए ध्रुवा स्थाली की आवश्यकता होती है। इस संदर्भ में पुराणों में उर्वशी - पुरुरवा कथा के अन्तर्गत पुरुरवा द्वारा गन्धर्वों से उर्वशी के स्थान पर आयु व स्थाली की प्राप्ति, स्थाली का शमी वृक्ष के गर्भ में स्थित अश्वत्थ वृक्ष में रूपांतरित होना, पुरुरवा द्वारा शमी व अश्वत्थ वृक्षों से अधरारणि व उत्तरारणियों का निर्माण तथा उनके मंथन से अग्नि को प्रकट करना, स्व शरीर की अरणि रूप में कल्पना करना तथा अग्नि को सर्वप्रथम गार्हपत्य, दक्षिण व आहवनीय अग्नियों में त्रेधा विभाजित करना उल्लेखनीय है। यह ध्रुव स्थाली की समुचित व्याख्या है।

आकाश में आदित्य वत्स के स्तर पर ज्योति की प्राप्ति संभवत: चन्द्रमा के रूप में होती है। गोपथ ब्राह्मण २.२.१९ में आदित्य को अनुख्याता? कहा गया है।

वैदिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से आयु, विश्वायु, सर्वायु, अत्यायु आदि शब्दों का उल्लेख आता है। पुराणों में उर्वशी -पुरुरवा कथा में भी पुरूरवा के पुत्रों के रूप में आयु, विश्वायु, शतायु, गतायु, दृढायु आदि का उल्लेख आता है। डा. फतहसिंह की विचारधारा के अनुसार विश्व शब्द चेतना को बहिर्मुखी से अंतर्मुखी करने के अर्थ में आता है, जबकि सर्व शब्द चेतना को बहिर्मुखी करने के अर्थ में आता है। अग्नि के स्तर पर मुख्य रूप से विश्व आयु की प्राप्ति होती है। पितरों, पितामहों आदि से भी विश्वायु की प्राप्ति होती है (तैत्तिरय ब्राह्मण २.६.३.३)। पुरोडाश तथा अग्नीषोम से भी विश्वायु की प्राप्ति का उल्लेख है (शतपथ १.२.२.७, तैत्तिरीय ब्राह्मण २.८.७.१०)। जैमिनीय ब्राह्मण २.४३३ के अनुसार विश्वायु रथन्तर साम है जो अग्नि के स्तर पर होता है, समायु वामदेव्य साम है जो वायु के स्तर पर होता है, सर्वायु बृहत् साम है जो आदित्य के स्तर पर होता है, आयु गायत्र साम है जो चन्द्रमा के स्तर पर होता है, अत्यायु यज्ञायज्ञीय साम है जो विद्युत के स्तर पर होता है। अत्यायु के संदर्भ में जैमिनीय ब्राह्मण २.२५८ दृष्टव्य है। अत्यायु आदित्य का दिन रूपी सत्य पद है। इसके विपरीत रात्रि के अनृत पद को पृश्नि कहा गया है। सारी साधना केवल पृश्नि पद के लिए ही है।

शतायु के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण १३.२.१.६ में पुरुष को शतायु तथा आत्मा को उससे परे १०१वीं कहा गया है जिसे आयुओं में प्रतिष्ठित करना होता है। शतपथ ब्राह्मण ४.२.३.१ के अनुसार जो ध्रुव आयु है, वही आत्मा है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.४.६ के अनुसार अश्विनौ देवगण ने अंगों को आत्मा में धारण किया?, जबकि सरस्वती ने आत्मा को अंगों से पूर्ण किया। ऐसा करके उन्होंने शतमान आयु आदि की प्राप्ति की। इसी प्रकार का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण १२.७.३.१६ में भी है जहां शरीर को प्राणों से और प्राणों को शरीर द्वारा धारण करते हैं।

सर्वायु के संदर्भ में, ताण्ड्य ब्राह्मण २०.१६.५ में सर्वायु के लक्षण कहे गए हैं : जब प्राण गायत्र हो जाएं, चक्षु त्रैष्टुभ तथा श्रोत्र जागत हो जाएं। शतपथ ब्राह्मण ११.८.३.७ में कुमार के लिए सर्वायु की प्राप्ति के लिए पांच दिशाओं में प्राण, अपान आदि के भरण करने का उल्लेख है। अथर्ववेद २०.१२९.१ सूक्त में ऐतश प्रलाप द्वारा सर्वायु की प्राप्ति का उल्लेख है। वात्सप्री सूक्त (ऋग्वेद १०.४५) को भी सर्वायु प्राप्ति कारक कहा गया है।

ऐतरेय ब्राह्मण, जैमिनीय ब्राह्मण तथा ताण्ड्य ब्राह्मण में ६ दिनों के गुणकों के रूप में षड्ह, द्वादशाह, अष्टादशाह आदि का विस्तृत वर्णन है जिनके प्रथम तीन दिनों की संज्ञा ज्योति, गौ व आयु है। इसके पश्चात क्रम गौ, आयु व ज्योति है (ऐतरेय ब्राह्मण ४.१५)। ताण्ड्य ब्राह्मण ४.८.१, १६.३.७ व २०.१२.१ इत्यादि के अनुसार ज्योति और गौ रूपी दिन का आयुरूपी अतिरात्र से मिथुन होता है जिससे प्रजा की उत्पत्ति होती है। अतिरात्र में प्रजा की उत्पत्ति का निहितार्थ इष्टदेव की मूर्ति का प्रकट होना हो सकता है।

पुरूरवा के पुत्र आयु की पत्नी इन्दुमती के संदर्भ में, ऋग्वेद ८.४८.४, ९.६२.२०, ९.६३.१७, ९.६६.२३ तथा ९.९३.५ में उल्लेख आता है कि इन्दु आयु की प्राप्ति कराता है, जबकि आयु इन्दु का मार्जन करती है। आयु -पुत्र नहुष के संदर्भ में ऋग्वेद १.३१.११ की ऋचा विचारणीय है जहां अग्नि को नहुष का विश्पतिं रू पी प्रथम आयु कहा गया है। नह धातु बंधन के अर्थ में आती है। बंधनों अथवा पाशों के खुलने से आयु की प्राप्ति का वैदिक साहित्य में सार्वत्रिक उल्लेख है (उदाहरण के लिए अथर्ववेद १६.८.४)। उर्वशी - पुत्र आयु के लिए ऋग्वेद ४.२.१८ तथा ५.४१.१९ ऋचाओं के अर्थ विचारणीय हैं।

पुराणों व महाभारत वनपर्व १९२ में परीक्षित राजा द्वारा मण्डूकराज आयु की कन्या सुशोभना प्राप्त करने की कथा के संदर्भ में, ऋग्वेद ३.७.१ तथा १०.६५.८ में परीक्षितों (अर्थात परित: बिखरे हुए प्राणों) को पितरों की संज्ञा दी गई है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.३.३ में पितरों, पितामहों तथा प्रपितामहों से पवित्र करने और विश्वायु प्राप्त करने की कामना की गई है। दूसरी ओर दीर्घ आयु से पितरों के लिए स्वधा की प्राप्ति होती है (अथर्ववेद १२.३.३२)। इस प्रकार आयु द्वारा परिरक्षित का कल्याण और परिक्षित द्वारा आयु का कल्याण पौराणिक कथा में दर्शाया गया है। शाप द्वारा

आयु के मण्डूक राजा बनने के संदर्भ में, मण्डूक प्राण हैं जो पर्जन्य वृष्टि की कामना करते हैं (मैत्रायणी संहिता ३.१४.२, शतपथ ९.१.२.२१)। प्राणों का आयु में रूपांतरित होने का तथ्य ब्राह्मणों में सार्वत्रिक रूप से वर्णित है। परिक्षित के संदर्भ में शतपथ १३.५.४.३ के कथन का अर्थ विचारणीय है जहां ज्योति, गौ व आयु अतिरात्रों को पारिक्षिती कहा गया है।

आयुध भागवत १२.११.१४ (विष्णु के ० : तत्व रूप), स्कन्द १.१.१७ (दधीचि की अस्थियों से ० निर्माण), गरुड १.२०.१ (आयुधों के बीज मन्त्र), नारद १.७०.४८ (विष्णु के शंख चक्र आदि आयुधों के वर्ण), अग्नि २७०.३ (४ दिशाओं में आयुध सहित विष्णु के नाम), विष्णु १.२२.६८ (विष्णु के आयुधों के तात्विक अर्थ), विष्णु धर्मोत्तर १.५६.२६ (आयुधों में वज्र की श्रेष्ठता का उल्लेख), १.२३७.५ (विष्णु के आयुधों से रक्षा की प्रार्थना), विध ३.१४८ (० व्रत : विष्णु के ४ आयुधों से सम्बन्धित चतुर्व्यूह के नाम); द्र. अस्त्र, उग्रायुध, कुलिश ०, कुसुम ०, श्रुत ०, सर्व ०,

टिप्पणी : विष्णु के शंख आयुध के संदर्भ में अथर्ववेद ४.१०.४ में शंख मणि की स्तुति की गई है। इसके अतिरिक्त, आयु के संदर्भ में अथर्ववेद में दर्भ मणि, जंगिड मणि व वरण मणि का उल्लेख भी आता है जिनके निहितार्थ अन्वेषणीय हैं। सुदर्शन चक्र आयुध के संदर्भ में, सुदर्शन चक्र को काल चक्र का प्रतीक कहा गया है। वैश्वानर अग्नि को आयु प्राप्ति कारक कहा गया है। वैश्वानर संवत्सर का ही रूप है (जैमिनीय ब्राह्मण २.३७९)। गोपथ ब्राह्मण २.२.१९ में अग्नि को उपद्रष्टा कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण ४.१.४.१० में वरुण को ही संवत्सर आयु कहा गया है।

आयुर्वेद अग्नि २८०.१७ (वात, पित्त, कफ लक्षण), २८२ (वृक्ष ० विज्ञान), अग २८७ (हस्ति ०), २८९ (अश्व ०), २९२ (गौ ० कथन), भागवत ३.१२.३८ (० की ब्रह्मा के पूर्व मुख से सृष्टि), ब्रह्मवैवर्त १.१६ (ब्राह्मण रूपी विष्णु द्वारा मालावती को ० वर्णन), मार्कण्डेय ६३.४० (इन्दीवर विद्याधर द्वारा अदृश्य रूप धारण कर ब्रह्ममित्र से आयुर्वेद विद्या चुराना, शाप से राक्षस बनना), विष्णु धर्मोत्तर २.३० (वृक्ष चिकित्सा), २.४३ (गौ ०), २.४६ (अश्व ०), विध २.४९ (हस्ती ०), २.५२ (नर, नारी ०), २.५६ (पुरुष ०), लक्ष्मी नारायण २.१५७.१४ (० का दक्षिण भुजा में न्यास), २.२६४ (शार्गधर संहिता के निर्माता शार्गधर का जीवन चरित्र वर्णन); द्र. आरोग्य, ओषधि, चिकित्सा, शरीर

आयुष्मान पद्म १.६.४२ (प्रह्लाद - पुत्र), विष्णु १.२१.१ (संह्लाद -पुत्र, शिबि व बाष्कल -भ्राता), भागवत ८.१३.२० (अम्बुधारा -पति, ऋषभ अवतार -पिता), ब्रह्माण्ड १.२.३६.८९ (उत्तानपाद व सूनृता के चार पुत्रों में से एक)

टिप्पणी : प्रह्लाद - पुत्र आयुष्मान के संदर्भ में, अथर्ववेद ११.१०.२५ में आयु? प्राप्त होने पर आलापों, प्रलापों आदि के शरीर में प्रवेश करने का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त, अथर्ववेद ६.४७.१ में प्रातःसवन में वैश्वानर अग्नि द्वारा आयुष्मान बनने तथा द्वितीय माध्यन्दिन सवन में विश्वेदेवों, मरुतों तथा इन्द्र द्वारा आयुष्मान बनने का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण १३.८.४.८ में अग्नि को विकल्प से आयुष्मान कहा गया है।

आर लक्ष्मी नारायण २.११०.८८ (आरकर्ण ऋषि का आर देश का गुरु बनना)

आरक्त लक्ष्मी नारायण २.२९.१० (आरक्त देश के राजा शावदीन द्वारा बालक की बलि देने का वृत्तांत), २.३३.२८ (० देश में वल्लीदीन नामक व्याघ्र असुर का निवास)

आरण्यक पद्म ५.३५.२०+ (० ऋषि का शत्रुघ्न से मिलन, लोमश से रामचरित्र श्रवण, अयोध्या में राम के अश्वमेध में आगमन, ब्रह्म -स्फोट से मुक्ति), लक्ष्मी नारायण २.१७८.२३ (० ऋषि व उनके २ ५ सहयोगी ऋषियों का जन्मांतर में १४ मनु व १२ आदित्य बनना, आरण्यक ऋषि का क्रमशः तृतीय मनु व जरस्थली -राजा पृथु बनना); द्र. अरण्य

आरबीज लक्ष्मी नारायण २.५५.९२, २.५७.३७ (० दैत्य की यमदूत से युद्ध में मृत्यु), २.५८.१८ (रक्तबीज द्वारा बीजों के भक्षण पर उत्पन्न देव विरोधी राजा, यम द्वारा वध)

आराधना ब्रह्माण्ड ३.४.३४ (ललिता ०), भागवत २.३.२ (कामना अनुसार देव आराधना), भा ११.३.४७ (वैदिक, तान्त्रिक ० : आविर्होत्र द्वारा निमि को उपदेश), कूर्म २.४६.४१ (निर्गुण, सगुण, सबीज, निर्बीज ०); द्र. अर्चना, पूजा

आराम भविष्य २.३.१+ (आराम/बाग प्रतिष्ठा विधि वर्णन), २.३.१४ (पुष्पाराम प्रतिष्ठा विधि), लक्ष्मी नारायण ३.२३५.१ (० नगर में जीर्णायन कृषक का चैतन्यायन साधु के दर्शन से मोक्ष)

आरार्त्रिक लक्ष्मी नारायण ४.३२ (दीप वर्तियों की संख्या के अनुसार आरार्त्रिक/आरती फल कथन)

आरुणि ब्रह्मवैवर्त १.२२.१० (ऋषि, निरुक्ति), वराह ३७ (उग्रतपा/आरुणि के समक्ष व्याध की हिंसा वृत्ति का नष्ट होना, व्याध का आरुणि -शिष्य सत्यतपा बनना), ९८ (तप से शुद्ध हुए सत्यतपा शिष्य के साथ आरुणि का नारायण देह में लीन होना), वायु २३.१६६ (१५वें द्वापर में व्यास), ६१.९ (वैशम्पायन -शिष्य आरुणि द्वारा मध्य देश में यजुर्वेद की प्रतिष्ठा), मत्स्य १७१.४३ (साध्य देवों में से एक, साध्या व धर्म -पुत्र), विष्णु ३.२.३१ (११वें धर्मसावर्णि

मन्वन्तर में सप्तर्षियों में से एक) ब्रह्माण्ड ३.४.१.७९ (वही), लक्ष्मी नारायण १.५४२ (० द्वारा व्याध का वशीकरण प्रसंग), १.५६० (० का शिष्य सत्यतपा सहित स्वर्ग गमन)

टिप्पणी : महाभारत आदि पर्व ३.२२ में वर्णन आता है कि धौम्य उपाध्याय का शिष्य आरुणि केदार कुल्या से बहते जल को रोकने के लिए स्वयं जल में लेट गया। उपाध्याय के पुकारने पर आरुणि उठा। तब उपाध्याय ने उसका उद्दालक नामकरण किया। आरुणि दिव्य जल के क्षय को लेटकर कैसे रोक सकता है, इसके लिए तैत्तिरीय आरण्यक१.२६.१ का वर्णन संदर्भ के अनुरूप है। इसके अनुसार अरुणकेतु की प्रतिष्ठा पूर्व दिशा में करने से सूर्य की प्रतिष्ठा होती है, दक्षिण में करने से अग्नि की, पश्चिम में करने से वायु की, उत्तर में करने से इन्द्र की, मध्य में करने से पूषा की, ऊपर की दिशा में करने से देवों, मनुष्यों, पितरों, गन्धर्वों और अप्सराओं की प्रतिष्ठा होती है।

पुराणों में आरुणि के दर्शन पर व्याध की हिंसा वृत्ति समाप्त होने की कथा को समझने के लिए साधना में तथा तदनुरूप संवत्सर चक्र में अरुण के प्राकट्य को समझ लेना उपयोगी होगा। ऋग्वेद १.७३.७ व ८.७३.१६ इत्यादि के अनुसार अरुण का प्राकट्य सर्वप्रथम उषा काल के साथ होता है। उसके पश्चात आरोहण करते हुए सूर्य को भी अथर्ववेद १३.२.३६ तथा ऋग्वेद १.९२.२ में अरुण सुपर्ण कहा गया है। तैत्तिरीय आरण्यक १०.६३.१ में प्रजापति आरुणि सुपर्णेय को मोक्ष प्राप्ति हेतु सत्य, तप, दम, शम आदि का उपदेश देते हैं। तैत्तिरीय संहिता ४.५.१.२ के सार्वत्रिक मन्त्र असौ य: ताम्रो अरुण उत बभ्रु: सुमंगल: इति में जिस अरुण का उल्लेख है, वह सूर्य का रौद्र रूप ही लगता है। ऋग्वेद ९.४०.२ के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि अरुण के योनि में आरोहण करने के पश्चात उसका रूप सौम्य हो जाता है। ऋग्वेद ९.७८.४ में सोम के इस रूप को अरुण द्रप्स (अंग्रेजी में ड्रॉप) कहा गया है। ऋग्वेद १.१०५.१८ में अरुण रूपी चन्द्रमा या सोम को माया का भक्षण करने वाला (वृक) कहा गया है, जबकि ऋग्वेद १०.१४४.५ में उल्लेख है कि श्येन ने चारु, अवृक अरुण सोम का स्वर्ग से आहरण किया। अरुण सोम का कौन सा रूप वृक है और कौन सा अवृक, यह विचारणीय है। याज्ञिक दृष्टिकोण से हिरण्मय कोश, विज्ञान्मय कोश और मनोमय कोश की दैवी त्रिलोकी में चल रहा यज्ञ अध्वर कहलाता है। इसमें हिंसा की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसके विपरीत अन्नमय कोश, प्राणमय कोश और मनोमय कोश की मानुषी त्रिलोकी में चल रहे यज्ञ में आसुर शक्तियों की हिंसा की आवश्यकता होती है।

आरोग्य नारद १.११९.४७ (मार्गशीर्ष शुक्ल दशमी को ० व्रत -विधि व संक्षिप्त माहात्म्य), वराह ६२ (० व्रत माहात्म्य : मानसरोवर पर पद्म ग्रहण चेष्टा कुष्ठ से ग्रस्त अनरण्य राजा को आरोग्य प्राप्ति), विष्णु धर्मोत्तर २.५८ (० व्रत विधि व माहात्म्य : सूर्य -पूजा), २.५९ (० व्रत विधि व माहात्म्य : विष्णु -पूजा), ३.२०५ (० व्रत विधि व माहात्म्य : आश्विन में अनिरुद्ध -पूजा), देवीभाग. ७.३०.७१ (आरोग्या : वैद्यनाथ तीर्थ में स्थित देवी का नाम)

आरोहण कथासरित् ८.५.२७ (श्रुतशर्मा-सेनानी ० का सूर्यप्रभ -सेनानी कुंजरकुमार से युद्ध), कस ८.५.९६ (श्रुतशर्मा -सेनानी, भग देवता का अंश)

आर्तव ब्रह्माण्ड १.२.१३.१९ (ऋतु - पुत्र, स्थावर व जंगम प्राणियों का पिता), ब्रड १.२.२८.१६ (अर्धमास रूप, पितर रूप), वायु ३०.२३ (पितरों का रूप), मत्स्य १४१.१४ (वही)

टिप्पणी : साधारण रूप में जिस आर्तव का अर्थ ऋतुमती स्त्री का रज लिया जाता है, उसका वैदिक रूप क्या हो सकता है? आहवनीय अग्नि की पांच चितियों में से चौथी चिति चिनने के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण ८.४.३.८ में वर्णन आता है कि दश प्राण और ११वीं आत्मा के मिलन से ऋतुओं का जन्म हुआ जिनके अधिपति आर्तव थे। चौथी चिति सह व सहस्य मासों का, संभवत: विज्ञानमय कोश का , जहां सब प्राण परस्पर सहयोग करके उपस्थित रहते हैं, जहां अनेकता होते हुए भी एकता है, का प्रतीक है। वाचस्पत्यम् शब्दकोश में ऋतुमती स्त्री द्वारा आर्तव दर्शन के पश्चात १६ दिनों के अंदर विभिन्न दिनों में गर्भ धारण के जो परिणाम कहे गए हैं, उन्हें भी आध्यात्मिक दृष्टिकोण से परखने की आवश्यकता है। हो सकता है कि ऋतुएं जहां अग्नि या सूर्य से संबंधित हैं, आर्तव के माध्यम से चन्द्रमा की कलाओं का विकास दिखाया गया हो। लौकिक साहित्य में ऋतुमती पृथिवी का पर्याप्त वर्णन है और आर्तव को समझने के लिए इस साहित्य की सहायता ली जा सकती है। कालिदास के रघुवंश ८.३६ में एक माला का उल्लेख है जिसने अपनी मधुर गन्ध की अधिकता से आर्तवी विभूति को परास्त कर दिया।

अथर्ववेद ११.१७.६ में व्यान प्राण के क्रमिक विकास को ऋतुएं, आर्तव और संवत्सर कहा गया है। अथर्ववेद ११.३.१७ में बार्हस्पत्य ओदन को पकाने के संदर्भ में ऋतुओं को पकाने वाले व आर्तवों को समिन्धन करने वाले कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१२.९.४ तथा ताण्ड्य ब्राह्मण २५.१८.४ में ऋतुओं व आर्तवों को विश्वसृज नामक सत्र के ऋत्विजों में सदस्य और उपगाता कहा गया है।

आर्द्र मत्स्य ६४ (आर्द्रानन्दकरी तृतीया व्रत विधि : शिव -पार्वती न्यास), ब्रह्माण्ड २.३.७१.१२४ (धृति -पिता, सत्वत वंश), पद्म १.८.१३५ (विश्व -पुत्र, युवनाश्व -पिता, इक्ष्वाकु वंश), ६.११४.२२ (पाप के आर्द्र व शुष्क प्रकार), लक्ष्मी नारायण १.३१३ (आर्द्रद्युति/अद्रिद्युति : देवयव व देवजुष्टा -भृत्या, मन्दिर से देवद्रव्य का अपहरण करने से सर्वस्व नाश, षष्ठी व्रत प्रभाव से इन्द्र -पत्नी पुलोमा बनना), २.१०९.२८ (वैष्णवों द्वारा आर्द्रमान द्वीप के राजा कल्माषकेसरी का चक्र से वध), लन ३.१३८.२२ (आर्द्रानन्द लक्ष्मी नारायण व्रत : लक्ष्मी व नारायण का

न्यास, व्रत विधि व माहात्म्य); दृ. अदि, नक्षत्र

टिप्पणी : ब्राह्मण ग्रन्थों जैसे शतपथ ब्राह्मण १.३.४.१, ९.२.२.३, जैमिनीय ब्राह्मण २.६८ आदि में सार्वत्रिक उल्लेख है कि यज्ञ में समिधाओं को पहले आज्य/घृत से आर्द्र/गीला करते हैं। यदि जल से आर्द्र किया जाए तो अग्नि समिधाओं को जला नहीं पाएगी। अतः घृत से आर्द्र करते हैं। साथ ही, उदुम्बर काष्ठ, जो सर्वदा आर्द्र व क्षीरी रहता है (शतपथ ६.६.३.३, ९.२.२.७), की समिधा का उपयोग किया जाता है। अध्यात्म में समिधा का अर्थ गर्भ, दिव्य गर्भ लिया जाता है (शतपथ ६.६.२.१५) जो उल्ब रूपी घृत से आवृत्त रहता है। अस्थि को भी समित् कहा गया है (शतपथ ९.२.३.४६) जो रेत द्वारा आर्द्र होती है। यह आर्द्रीकरण क्या है, यह लोकभाषा में करुणार्द्र आदि शब्दों से इंगित होता है। शतपथ ब्राह्मण ७.३.१.३७ इत्यादि के अनुसार छन्द ही रस हैं और रस ही आर्द्र है। अतः जब समिधा अथवा गर्भ को आर्द्र करने का उल्लेख आता है, वह छन्दों से, रसों से आर्द्र किया जाता है। प्रश्न उठता है कि द्रविण शब्द, जो करुणा आदि से द्रवित होने के लिए है, और आर्द्र शब्द में क्या अन्तर है? इसका उत्तर तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१०.१.४ में दिया गया है जहां १२ मासों में कृष्ण पक्षों के नाम गिनाते समय द्रविण, द्रविणोद, आर्द्र, पवित्र, हरिकेश, मोद और प्रमोद का उल्लेख है। इसका अर्थ यह हुआ कि पुराणों में जिस आर्द्रानन्द तृतीया आदि का उल्लेख है, वहां आनन्द आर्द्र होने के पश्चात की अवस्था है। यह आर्द्र अवस्था कब उत्पन्न होती है, इसका उत्तर संभवतः अथर्ववेद १.३२.३ में दिया गया है कि रोदसी तथा भूमि के कांपने पर आर्द्र होते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.५.१.१ में पुनर्वसु नक्षत्र के संदर्भ में कहा गया है कि वातः परस्तात्, आर्द्रमवस्तात्। यह स्थिति नाद व बिन्दु के मिलन जैसी है। यह अन्वेषणीय है कि आर्द्रा नक्षत्र के पश्चात अदिति देवता वाले पुनर्वसु नक्षत्र के लिए इस स्थिति का उल्लेख क्यों है। ऊपर के लोक में तो सर्वदा आर्द्र और मोद/समुद्र की अवस्था रहती है (शतपथ ९.४.२.५)। यही नीचे की स्थिति में आर्द्र का दान करने वाला बनता है। फिर जब इस आर्द्र स्थिति का मिलन अग्नि या सूर्य से होता है तो यह स्वर्ग लोक को ले जाता है (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१०.९.१५)। ब्राह्मण ग्रन्थों में सोम और अग्नि के मिलन से सम्बन्धित क्रमशः आर्द्र और शुष्क अवस्थाओं का सार्वत्रिक वर्णन है। समिधाओं पर आज्य का लेप करके उन्हें अग्नि द्वारा जलने योग्य बनाते हैं। जलने पर दीप्ति, ज्योति आदि उत्पन्न होते हैं (तैत्तिरीय आरण्यक १०.१.१५, शतपथ १४.९.३.९)। इस संदर्भ में लक्ष्मी नारायण संहिता में अदिद्युति नाम उल्लेखनीय है। शतपथ ब्राह्मण ३.८.५.१० के अनुसार जहां शुष्क और आर्द्र की सन्धि होती है, वहां यज्ञ कार्य में यूप को स्थापित किया जाता है। यह यूप ऊपर कथित ज्योति की अवस्था हो सकता है। सोम और अग्नि के मिलन को ही पुराणों में पार्वती और शिव, लक्ष्मी व नारायण के मिलन के रूप में चित्रित किया गया है, ऐसी संभावना है। भक्त के स्वयं के शरीर के अंगों में ही पार्वती और शिव का न्यास करके यह स्पष्ट किया गया है कि भक्त का सारा शरीर ही उदुम्बर की समिधा या गर्भ बन गया है जिसमें आनन्द की अनुभूति हो रही है।

आर्य भागवत ८.१३.२६ (आर्यक : वैधृता पति, ११वें मन्वन्तर में धर्मसेतु अवतार के पिता), ब्रह्माण्ड २.३.७.३३ (आर्यक : प्रधान काद्रवेय नागों में से एक), लक्ष्मी नारायण २.६०.७ (आर्यायन ऋषि द्वारा उदय राजा को कृष्ण मन्त्र की दीक्षा), कथासरित् ३.४.३१९ (आर्यवर्मा : कर्कोटक नगर का राजा, राजकन्या से विवाह हेतु विदूषक के आगमन की कथा); दृ. अर्यमा

टिप्पणी : आर्य शब्द का प्रयोग ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में बहुत कम हुआ है, लेकिन वेद मन्त्रों में प्रचुरता से हुआ है। अग्नि, अश्विनौ और इन्द्र आर्य के लिए ज्योति का सृजन करते हैं (ऋग्वेद १.५९.२, ७.५.६, १.११७.२१ तथा २.११.१८)। अथर्ववेद ४.२०.४ तथा ४.२०.८ के अनुसार ओषधि को हाथ में धारण करने का प्रभाव ऐसा है कि उससे आर्य और शूद्र अलग-अलग दिखाई देते हैं। साधक के लिए यह महत्वपूर्ण है कि उसके व्यक्तित्व में शूद्रत्व कहां कहां छिपा है। ऐसी लोकधारणा है कि आर्य व्यक्तित्व पर कुत्ते नहीं भौंकते, जबकि दस्युओं पर भौंकते हैं। ऋग्वेद ७.३३.७ तथा जैमिनीय ब्राह्मण २.२४१ में तीन आर्य प्रजाओं का उल्लेख है जिन्हें वसु, रुद्र और आदित्य (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के प्रतीक?) कहते हैं और जिनका जन्म क्रमशः तब होता है जब अग्नि गायत्री द्वारा पृथिवी में रेतः सिंचन करती है, वायु अन्तरिक्ष के स्तर पर और आदित्यगण आकाश के स्तर पर। यह धर्म के तीन स्तर प्रतीत होते हैं। इन तीनों से ऊपर एक ज्योति है जिसे आदित्य कहा गया है।

ऋग्वेद के कई मन्त्रों में दास आर्य (ऋग्वेद १०.८३.१) तथा वृत्र आर्यों (ऋग्वेद ६.६०.६, १०.६९.६ आदि) के उल्लेख आए हैं जिन्हें इन्द्र नष्ट करता है। ऋग्वेद ९.६३.५ का प्रसिद्ध मन्त्र है जिसमें इन्द्र विश्व को आर्य बनाता है। अर्यमा और आर्य शब्दों में सम्बन्ध की पुष्टि तैत्तिरीय ब्राह्मण २.३.५.४ में अर्यमा और आर्य शब्दों के एक साथ उल्लेख से होती है।

आर्या भागवत ५.२०.२१ (आर्यका : क्रौंच द्वीप की एक नदी), १०.७९.२० (बलराम द्वारा तीर्थ यात्रा काल में द्वैपायनी आर्या देवी का दर्शन), हरिवंश २.१२०.४ (अनिरुद्ध द्वारा बाणासुर के नागपाश से मुक्ति हेतु आर्या/कोटवती देवी की स्तुति), भविष्य ३.४.१३.१२ (आर्यावती : कलियुग में आर्यावती देवशक्ति द्वारा काश्यप से १० पुत्र उत्पन्न करना), ३.४.२१.४ (आर्यावती : देवकन्या, कण्व -भार्या, १० पुत्रों के नाम), लक्ष्मी नारायण ४.९४.१९ (अर्यमा पितर -पत्नी), कथासरित् ८.५.१३२ (आर्या योगिनी

द्वारा श्रुतशर्मा -सूर्य प्रभ युद्ध में सिंहबल की मृत्यु का पूर्वकथन)

आर्यावर्त भागवत ९.६.५ (इक्ष्वाकु के १०० पुत्रों का आर्यावर्त के विभिन्न प्रदेशों का अधिपति बनना), ९.१६.२२ (परशुराम द्वारा यज्ञ में आर्यावर्त को उपदृष्टा ऋत्विज को दक्षिणा स्वरूप दान करना)

आर्ष मत्स्य १४५.६७ (० कर्म निरूपण), नारद १.२६.१६ (विवाह के आठ प्रकारों में एक), पद्म ५.९.४८ (आर्ष विवाह में शुल्क रूप में गोमिथुन का ग्रहण), लक्ष्मी नारायण २.२२२.७९ (आर्षजतनु राष्ट्र के अधिपति रायपति द्वारा श्रीहरि से स्वराष्ट्र में आगमन हेतु प्रार्थना), ३.७.२६ (परमेश्वर का आर्षदेव नाम से चलदेव का पुत्र बनना), ३.७.२९ (आर्ष ऋषि की कन्या आर्षपद्मा का आर्ष देव से विवाह), ३.१३.५ (ब्रह्मकुमार -शिष्य आर्षकुमार द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत का उपदेश), ३.२१.१ (आर्ष नामक वत्सर में अर्धनारीश्वर रूपी नारायण के प्राकट्य का वृत्तांत), ३.४५.२४ (संयम से आर्ष लोकों की प्राप्ति का उल्लेख), ३.१७०.१६ (आर्षभ : २२वें कृष्ण धाम का नाम), ४.१०१.१०२ (आर्षी : कृष्ण -पत्नी, गायत्री व प्रणव युगल की माता)

आर्ष्टिषेण ब्रह्म १.९.३४ (शल्ल - पुत्र, काश्यप - पिता, आयु -वंश), २.३७.१९ (ऋतध्वज -पिता), ब्र २.५७ (जया -पति, भर -पिता, मिथु दानव द्वारा यज्ञ से अर्ष्टिषेण का पुरोहित उपमन्यु सहित हरण, पुरोहित -पुत्र देवापि द्वारा रक्षा उद्योग), वायु ९१.११६ (तप से ऋषिता प्राप्त करने वाले राजर्षियों में एक), मत्स्य १४५.९९ (२१ मन्त्रकर्ता भार्गव ऋषियों में से एक), १९५.३४ (० गोत्र से अवैवाह्य अन्य गोत्र कथन), भागवत ५.१९.२ (० गन्धर्व द्वारा किम्पुरुष वर्ष में राम की उपासना), गर्ग ७.२६.३७ (० -भ्राता सुमति द्वारा हनुमान से रामायण की शिक्षा प्राप्ति)

टिप्पणी : आर्ष्टिषेण का अर्थ है ऋष्टिसेन का पुत्र। अतः आर्ष्टिषेण के गुणों को समझने के लिए ऋष्टि शब्द पर ध्यान देना होगा। ऋष्टि का सामान्य अर्थ है छडी। ऋग्वेद की कई ऋचाओं जैसे १.६४.४ में मरुतों के अंस प्रदेश में ऋष्टियों के होने का उल्लेख है। यह मरुतों का आयुध है। ऋग्वेद ८.२८.५ के अनुसार मरुतों के सात गणों की सात ही ऋष्टियां हैं और उन सात ऋष्टियों में सात दीप्तियां हैं। ऋग्वेद १.१६७.३ में मेघमाला में स्थित विद्युत को ऋष्टि कहा गया है। इन ऋष्टियों की सहायता से आकाश से च्युत न होने वाले जल को वृष्टि कारक बनाया जाता है (ऋग्वेद १.८५.४)। तप से इन ऋष्टियों को तेज बनाया जाता है जिससे वह राक्षसों का वध कर सके (ऋग्वेद १०.८७.२३)।

ऋग्वेद सूक्त १०.९८ के ऋषि आर्ष्टिषेण देवापि, अर्थात ऋष्टिसेन के पुत्र देवापि हैं। इस सूक्त में कई ऋचाओं में देवापि और शन्तनु शब्द आए हैं। यास्क निरुक्त २.१० में देवापि को ही आर्ष्टिषेण कहा गया है। लेकिन पुराणों और महाभारत में देवापि और आर्ष्टिषेण को मिलाया नहीं गया है। महाभारत में देवापि व शन्तनु को प्रतीप के पुत्र कहा गया है। देवापि को त्वचा रोग होने के कारण राज्य नहीं मिल पाता और शन्तनु राजा बनते हैं। देवापि तप करने वन में चले जाते हैं। राजा शन्तनु के राज्य में वृष्टि न होने पर देवापि पुरोहित बनकर शन्तनु का यज्ञ कराते हैं जिससे वृष्टि होती है (महाभारत उद्योग पर्व १४९.१५)। इस कथा में एक ओर देवापि है जिसे वृष्टि कराने की कला आती है, लेकिन तन में रोग है। दूसरी ओर शन्तनु है जिसका तन शान्त है लेकिन दिव्य वृष्टि से वंचित रहता है। दोनों के मिलन से ही तन और मन दोनों शान्त होते हैं। क्या आर्ष्टिषेण और देवापि एक ही हैं? इसका उत्तर हमें ऋग्वेद १०.९८.६ में मिलता है जिसके अनुसार आर्ष्टिषेण तो जल की सृष्टि करने में समर्थ हैं, जबकि देवापि उस जल का मर्त्य स्तर पर अवतरण कराने में समर्थ हैं।

पुराणों में आर्ष्टिषेण द्वारा किम्पुरुष वर्ष में राम की आराधना करते रहने का उल्लेख है। क्या ऋग्वेद १०.९८ के सूक्त में इस तथ्य का कोई संकेत मिलता है? इसका उत्तर यह हो सकता है : राम का अर्थ है आत्मा में रमण करने वाला। राम से पूर्व अवस्था रथ निर्माण करने की, राजमार्ग पर रथ द्वारा यात्रा करने की, जीवन में ओंकार का अवतरण कराने की, दशरथ बनने की होती है। इस सूक्त में सहस्रों अधिरथों का उल्लेख आया है। आत्मा में रमण तभी हो सकता है जब तन और मन दोनों में शान्ति का साम्राज्य हो। यह सूक्त इसी तथ्य से सम्बद्ध है। सूक्त की ऋचा ५ में मन के लिए सुमति शब्द का प्रयोग हुआ है।

पुराणों में आर्ष्टिषेण को शल-पुत्र कहा गया है। शल धातु कम्पन/गति तथा स्थिरता (जैसे शाला) के अर्थों में प्रयुक्त होती है।

आल कथासरित् १०.१.१३६ (मुख से स्वर्ण मुद्राएं वमन क रने वाले एक वानर का नाम; ईश्वर वर्मा द्वारा ० वानर की सहायता से नष्ट धन की प्राप्ति), स्कन्द ६.२४९.१६ (तुलसी के आलवाल/थांवले में जल देने से सकल कुल के तरने का उल्लेख), भविष्य ४.१२८.२१ (पादप रोपण हेतु आलवाल बनाने का उल्लेख), ब्रह्मवैवर्त ४.७५.७५ (आलवाल से उत्पन्न मिट्टी का शौच हेतु परित्याग का निर्देश)

टिप्पणी : आल का शब्दार्थ विष और चातुरी, धोखा होता है। कौशिक सूत्र ५१.१५ का कथन है कि अथर्ववेद ६.१६.४ का मन्त्र आल भेषज है। अथर्ववेद ६.१६.३ व ६.१६.४ से यह संकेत मिलता है कि आल कोई आनंद की अवस्था है। इसके पश्चात अलसाला(?) और उसके पश्चात शिरा जाल अवस्था है। आज भी ग्रामीण भाषा में आल शब्द किसी नटखटपन के लिए, गुदगुदी के लिए प्रयुक्त होता है। आला शब्द का प्रयोग

जल से गीला करने के अर्थों में भी होता है। ऋग्वेद ६.७५.१५ के अनुसार जो इषु/तीर आल (विष) से युक्त हैं, उसकी शान्ति पर्जन्य रेतस से हो सकती है (?) पुराणों में पादपों के आलवाल के उल्लेखों आदि से ऐसा अनुमान होता है कि आल गले की एक ज्वाला है, खुजली है जिसकी शान्ति पर्जन्य वर्षण से हो सकती है। यह आल पर्जन्य से उत्पन्न जल के लिए आलय बन सकता है। तब ज्वाला शान्त होकर जाल बन जाती है। यह एक वाल या वलय का रूप ले सकता है जिसे पुराणों में आलवाल कहा गया है। मनोमय कोश/वानर के स्तर पर इस आल जाल में इतनी शक्ति नहीं है कि यह अपरिमित आनंद प्रदान कर सके। कथासरित्सागर की भांति कादम्बरी ग्रन्थ (२८८, ३१०) में भी आल जाल शब्द का प्रयोग हुआ है।

आलम्ब ब्रह्माण्ड २.३.७.१३८ (आलम्बा : खशा - पुत्री, आलम्बेय गण राक्षसों की माता), ब्रड १.२.३३.६ (आलम्बि : यजुर्वेद के चरक उपनाम वाले श्रुतर्षियों में से एक), लक्ष्मी नारायण ३.९७.१२ (ब्रह्मतार विप्र - पुत्र आलम्बायन द्वारा माता -पिता से मोक्ष प्राप्ति की शिक्षा ग्रहण करना), ३.९७.९६ (आलम्बायन पार्षद का गोकर्ण तीर्थ में अवतरण, ऋषियों द्वारा नाम जप/कीर्तन के आलम्बन द्वारा मुक्ति प्राप्ति)

आलीस्मर लक्ष्मी नारायण २.२१०.२७ (० नगरी में कृष्ण का आगमन, आशा त्याग का उपदेश, तनु ऋषि का दृष्टान्त)

आल्हाद दृ. आह्लाद

आवरण ब्रह्माण्ड ३.४.२.२९४ (प्रत्याहार द्वारा उदक, तेज, वायव्य आदि आवरणों का परस्पर लीन होना), ब्रड ३.४.१९ (ललिता के रथ चक्र में पर्वों में स्थित ० देवियां), लिंग २.२७ (शिव अभिषेक में आवरण शक्तियां), शिव १.१७.११० (शिवलोक में सद्योजात, वामदेव आदि शिवों के पांच आवरण वर्णन), ७.२.२५.२ (शिव पूजा से पूर्व आवरण देवताओं की पूजा का विधान), ७.२.३०+ (शिव की आवरण देवताओं सहित पूजा का विस्तृत वर्णन), अग्नि ३३.३४ (विष्णु की आवरणों सहित पूजा विधि), भागवत ५.७.३ (भरत व पंचजनी के पांच पुत्रों में एक), लक्ष्मी नारायण (३.६३.२२ (श्रीहरि से तादात्म्य में आवरण भेद वर्णन); दृ. मण्डल

आवर्त भागवत ५.१९.३० (आवर्तन: सगर - पुत्रों द्वारा भूमि खनन से निर्मित आठ उपद्वीपों में से एक), गर्ग ७.४०.४२ (गरुड द्वारा आवर्तक द्वीप में सुधाकुण्ड में सुधा पान), हरिवंश २.८३.३ (आवर्ता : आवर्ता नदी तट पर ब्रह्मदत्त विप्र के यज्ञ में निकुम्भ आदि दैत्यों का विघ्न, प्रद्युम्न द्वारा रक्षा), वा.रामायण ७.८८.२० (इला -बुध प्रसंग में बुध द्वारा आवर्तनी विद्या से स्त्रियों को किम्पुरुषी बनाना), पद्म १.१६.६१ (यज्ञ वराह के संदर्भ में प्रवर्ग्य आवर्त्त भूषण का उल्लेख), योगवासिष्ठ १.२५.२१ (० मेघ: नियति के हाथ में डमरु का रूप); दृ. तृणावर्त

टिप्पणी : सामान्य भाषा में आवर्त जल की भंवरों को कहते हैं। उपनिषदों जैसे छान्दोग्य उपनिषद ४.१५.५, महोपनिषद ४.१०६ तथा मैत्रायणी उपनिषद २.५ आदि में संसार समुद्र में उत्पन्न आवर्तों में फंस कर मन के दूर चले जाने का उल्लेख है। उपनिषदों के अनुसार पितृयान पथ का अनुसरण करने पर जीव का इस लोक में पुन: आवर्तन होता है, लेकिन देवयान पथ का अनुसरण करने पर नहीं (प्रश्नोपनिषद १.९ इत्यादि)। ऋग्वेद १०.५८ सूक्त में गोपायन बन्धु सुबन्धु भ्राता के खोये हुए मन का विभिन्न दिशाओं से पुन: आवर्तन करते हैं। इसी प्रकार ऋग्वेद १०.१९ सूक्त में गौ अथवा आप: के आवर्तन का वर्णन है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं में इन्द्र, अग्नि, बृहस्पति, अश्विनौ, पूषा, अश्व, सूर्य आदियों के रथों के आवर्तन के उल्लेख हैं। लेकिन इन विभिन्न देवताओं के आवर्तनों से क्या होने वाला है, इसका उत्तर षडविंश ब्राह्मण ६.३.१ में मिलता है जहां विभिन्न दिशाओं में प्रकट होने वाले अद्भुतों/अरिष्टों का उल्लेख है।

पुराणों में अश्व के मस्तक पर आवर्त होना शुभ लक्षण माना गया है। सन्ध्या कर्म में अंगुलि को ब्रह्मरन्ध्र के परित: और शिर के परित: घुमा कर संभवत: सूर्य के आवर्तन का संकेत करते हैं। जैसे सूर्य इस लोक के चक्कर लगाता है वैसे ही स्थूल शरीर के स्तर पर भी संभवत: यह क्रिया घटित होती है। शतपथ ब्राह्मण ४.६.७.२१ में उल्लेख है कि जो सूर्य के आवर्तन को करने में समर्थ है, वही भार्या का भरण करने वाला भर्ता हो सकता है।

आवसथ्य वायु २९.१२ (शंस्य/आह्वनीय अग्नि - पुत्र), १०४.८४ (अग्नि, अधरोष्ठ में स्थिति), देवीभाग. ३.१२.४९ (आवसथ्य अग्नि का समान नामक वायु/प्राण से तादात्म्य), ११.२२.३१ (प्राणाग्नि होत्र में सभ्य व आवसथ्य अग्नियों की नाभि से नीचे स्थिति), मत्स्य ५१.१२ (संशति अग्नि-पुत्र, सभ्य-भ्राता), कूर्म २.३४.११२ (रावण द्वारा हरण पर सीता द्वारा आवसथ्य अग्नि की स्तुति, अयोध्या लौटने तक आवसथ्य अग्नि में वास, आवसथ्य अग्नि द्वारा सीता के स्थान पर छाया सीता की स्थापना)

टिप्पणी : श्रौत कार्य में आवसथ्य अग्नि का स्थान आहवनीय अग्नि के उत्तर में और सभ्य अग्नि का दक्षिण में होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में आवसथ्य का नाम न लेकर केवल आहवनीय के उत्तर में आदि कह कर ही काम चला लिया गया है (उदाहरण के लिए शतपथ ब्राह्मण १२.९.३.११)।

तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७.४.६ तथा आपस्तम्ब श्रौत सूत्र ४.२.१ आदि में कहा गया है कि सभ्य अग्नि सभा है जहां यजमान अक्ष क्रीडा/द्यूत करता है। सभ्य अग्नि यजमान को अक्षों को विजित करने में सहायता करती

है। इसके पश्चात यजमान आवसथ्य में आकर जीते हुए हिरण्य अक्षों द्वारा ऋत्विजों को अन्न प्रस्तुत करता है। आवसथ्य अग्नि को परिषद कहा गया है (आपस्तम्ब श्रौत सूत्र ६.३.४) जिसका देवता अहिर्बुध्न्य है जो पार्थिव स्तर के विष को पीकर उसे सोम द्वारा सिंचित करने योग्य बनाता रहता है। यजमान द्वारा आवसथ्य पर प्रस्तुत अन्न कोई साधारण अन्न नहीं है, अपितु दिव्य अन्न है जिसे यजमान या इन्द्र अपनी अक्षों रूपी एकान्तिक साधना द्वारा प्राप्त करता है। इस एकान्तिक साधना के फल का सभी स्तरों पर विस्तार करना है। ऐतरेय उपनिषद ३.१२ के अनुसार तीन आवसथ हैं जिनका इन्द्र दर्शन करता है। यह तीन कौन से हैं, यह स्पष्ट नहीं है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.४.९.४ का कथन है कि आवसथ्य में जिस अन्न का ग्रहण करते हैं, वह वह ऊर्जा है जिसे मनुष्य संचित करता है। सीता का जन्म भी पृथिवी के कर्षण द्वारा हुआ है। अत: वह भी मानवी ऊर्जा का रूप है। इस ऊर्जा का उपभोग अक्षों को विजित करके ही किया जा सकता है। हो सकता है कि अहिर्बुध्न्य अग्नि जिस पार्थिव विष का पान करता है, उस ऊर्जा से वह छाया सीता रूपी ऊर्जा का निर्माण करता हो।

आवह मत्स्य १६३.३२ (सात वायुओं में से एक), शिव २.५.८.२१ (आवह आदि सात वायु : शिवके रथ में सोपान का रूप), वायु ५१.३२ (आवह, प्रवह आदि वायुओं के वशीभूत मेघों की प्रकृति), ५१.४९ (आवह वायु का हिमाचल से उत्पन्न होकर हेमकूट पर्वत पर वर्षा करना), ६७.१११ (आवह आदि वायुओं की ब्रह्माण्ड में व्याप्ति कथन), ब्रह्माण्ड १.२.२२.३४ (आवह आदि वायुओं केवशीभूत मेघों की प्रकृति का कथन), २.३.५.८२ (आवह आदि वायुओं की ब्रह्माण्ड में व्याप्ति सीमा तथा प्रत्येक में उपस्थित मरुत गणों के नाम), अग्नि २१९ (आवह आदि सात स्कन्धों में स्थित ४९ मरुतों के नाम), विष्णु धर्मोत्तर १.१२७ (वही), शुक्ल यजुर्वेद १७.८० (वही), तैत्तिरीय संहिता ४.६.५.५ (वही),

टिप्पणी : वैदिक मन्त्रों में आवह, प्रवह, उद्वह, संवह, विवह, परावह, परिवह आदि शब्द, विशेष रूप से आवह शब्द, संयुक्त रूप में अथवा वियुक्त रूप में (आ ---- वह) प्रकट होते हैं जिनका समुचित अर्थ निकालना कठिन होता है। पुराणों ने इन शब्दों का सात विभिन्न स्तरों में वर्गीकरण करके एक नई दिशा प्रदान की है। आवह शब्द देवों का इस पृथिवी पर आवाहन करने से सम्बन्धित है। अग्नि देवों का आवाहन तभी करती है जब वह ज्योति स्वरूप होकर उषा बन जाए (शुक्ल यजुर्वेद ८.१९, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१०.८.१)।

प्रवह आप: के प्रवाह से सम्बन्धित है। आप: के उपस्थित होने पर भी उनका प्रवाह तब तक नहीं हो सकता जब तक पाप का नाश न हो (षड्विंश ब्राह्मण ३.४.३३, शुक्ल यजुर्वेद ४.२)। इस स्तर के मरुतों का नाम प्रघासी/प्रघोष है।

उद्वह ऊपर की दिशा में आप: के प्रवाह से संबंधित है। इस स्तर के मरुतों का नाम सान्तपन है। संवह/सुवह शब्द पृथिवी के पुष्करपर्ण पर स्थित होने के पश्चात वात द्वारा उसका संवहन करने के संदर्भ में आया है (शतपथ ब्राह्मण २.१.१.८, तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१.३.७)। अथर्ववेद ६.४८.१ में श्येन आदि द्वारा स्वस्ति का संवहन करने की कामना की गई है। इस स्तर के मरुद्गण का नाम गृहमेधी है।

विवह शब्द विवाह से सम्बन्धित है। इस स्तर के मरुतों का नाम क्रीडी अथवा रोषण है। ऐतरेय ब्राह्मण ४.२७, जैमिनीय ब्राह्मण १.१४५ तथा ताण्ड्य ब्राह्मण ७.१०.१ के अनुसार रथन्तर और बृहत् सामों का मिलन ही देव विवाह है।

परावह वायु से सम्बन्धित मरुत गण का नाम शाकी/सास्वी है। अथर्ववेद १०.४.२०, १६.६.३, १६.६.७ तथा १६.६.११ में द्वेष करने वाले शत्रुओं का परावहन होने की कामना की गई है।

परिवह शब्द ऋग्वेद १.११८.५ तथा १०.८५.३८ आदि में रथ या शकट के परिवहन से सम्बन्धित है। अंतिम स्तर के मरुतों के गण का नाम उज्जेषी/प्रेजेषण गण है।

आवाहन विष्णु धर्मोत्तर ३.१०२ (जीवरूपी प्रभु के आवाहन की विधि), ३.१०३+ (देवसंघ आवाहन विधान), ब्रह्माण्ड ३.४.४२.२ (आवाहनी महामुद्रा विधि), लक्ष्मी नारायण २.१५१ (मन्दिर प्रतिष्ठा में प्रत्यधिदेवता आवाहन मंत्र वर्णन)

आविर्होत्र भागवत ११.३ (ऋषभ व जयन्ती पुत्र, निमि को वैदिक आराधना पद्धति का उपदेश)

आशा स्कन्द ३.२.२२.६ (आशापुरी : काजेश द्वारा विनिर्मित मातृकाओं में से एक), स्क ४.१.५.३९ (काशी में आशा व गज नामक विनायकों की स्थिति कथन), ४.२.५७.१०८ (आशा विनायक का संक्षिप्त माहात्म्य), स्क ७.१.३४१ (आशापूर विघ्नराज का संक्षिप्त माहात्म्यं : चन्द्रमा की कुष्ठ से मुक्ति), भविष्य ४.६४ (० दशमी व्रत : दमयन्ती द्वारा पुन: पति प्राप्ति), वायु ६९.५ (आशी : ३४ मौनेया अप्सराओं में से एक), लक्ष्मी नारायण २.२१०.४४ (कृष्ण द्वारा आलीस्मर नगरी में आशा त्याग का उपदेश, पिंगला नारी का आशा त्याग कर सुख से सोना), २.२२३.८३ (आशासना : पारावत राष्ट्र में आशासना नगरी में पराड्व्रत राजा द्वारा श्रीहरि का सत्कार), योगवासिष्ठ ५.५० (आशा को त्याग कर स्व में स्थित होने का उपदेश); दृ. दिशा

टिप्पणी : संसार में कण-कण इस आशा में जी रहा है कि परम अस्तित्व का रसास्वादन करने का अवसर उसे भी मिलेगा (शतपथ ब्राह्मण ६.५.४.१२)। लेकिन महोपनिषद ५.१६६ तथा मैत्रेय्युपनिषद २.१२

इत्यादि के अनुसार जब तक व्यक्तित्व में अहंकार उपस्थित है, उसमें दिव्यता का अवतरण नहीं हुआ है, तब तक आशा त्याज्य है। यह मन को रंजित करती है (महोपनिषद ६.७५)। शतपथ ब्राह्मण २.३.१.२४ के अनुसार एक आगत है, एक आशा। एक अद्य (वर्तमान) है, एक श्व (भविष्य)। आत्मा ही आगत है, प्रजा ही आशा है। प्रजा अर्थात हमारे विचार आदि जिनका मन में प्रकृष्ट रूप से जन्म होता है, जिन पर हमारा नियंत्रण नहीं है। यह प्रजा हमारे पास तभी आ सकती है जब उसे हमसे कुछ रस प्राप्ति की आशा हो। इसके लिए आवश्यक है कि हम आत्मा को, वर्तमान क्षण को रसमय बनाएं। रजनीश और कृष्णामूर्ति के शब्दों में, वर्तमान क्षण में जीना सीखें। छान्दोग्य उपनिषद ७.१४.१ में संभवत: इस रस को ही प्राण कहा गया है जो आशा पर नियंत्रण रखता है। पुराणों में संभवत: इसी स्थिति को विनायक की संज्ञा दी गई है।

एक बार हम आत्मा में स्थित हो जाएं तो उसके पश्चात आशा ·पत्नी बन जाती है (मैत्रेयी उपनिषद २.१२)। वैदिक मन्त्रों में जिस विश्वा आशा का उल्लेख आता है, वह यही हो सकती है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.११.४.१ आदि के अनुसार विष्णु ही आशाओं के पति हैं। अथर्ववेद १०.५.२९ में विष्णु के क्रमण/चलने का उल्लेख है। विष्णु का क्रमण आशा के अनुदिश ही होता है। विष्णु को यज्ञ कहा जाता है, अत: जीवन का यज्ञमय बनना ही आशाओं की तृप्ति के लिए अपेक्षित है।

ऋग्वेद २.४१.१२ तथा अथर्ववेद १९.१५.६ आदि कुछ मन्त्रों में इन्द्र आदि से आशाओं को मित्र बनाने और अभय प्रदान करने की प्रार्थना की गई है। आशा मित्र कब बन सकती है? प्राणाग्निहोत्र उपनिषद ४.३ के अनुसार ओंकार का यूप हो जिससे काम रूपी पशु को आशा की रस्सी से बांधा जा सके। अथर्ववेद १.३१.३ में पहले चार आशापालों और फिर एक आशापाल का उल्लेख है। यह एक आशापालक जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय अवस्थाओं में से तुरीय देव है।

वैदिक और पौराणिक साहित्य की भाषा में दिशा को भी आशा कहते हैं। लेकिन अथर्ववेद ९.२.२१ तथा शतपथ ब्राह्मण ६.५.४.१२ आदि कुछ स्थलों पर दिशा और आशा शब्द साथ-साथ आए हैं। यह अन्वेषणीय है कि दिशा और आशा में क्या अन्तर है (अश् - व्याप्तौ)।

आशिष् भागवत ६.१८.२ (भग व सिद्धि - पुत्री), विष्णु धर्मोत्तर १.१०४ (शान्ति कर्म के अन्त में याजक द्वारा यजमान को आशीर्वाद वचन वर्णन)

आशुतोष लक्ष्मी नारायण ३.३४.७१ (आशुतोषिणी : निरंजन विप्र की पत्नी, श्री निरंजन नारायण अवतार की माता); दृ. आषुतोष

आशुश्रवा कथासरित् १०.३.६६ (उच्चैःश्रवा अश्व -पुत्र, सोमप्रभ राजकुमार द्वारा ० की सहायता से दिग्विजय)

आश्चर्य भविष्य ३.२.१८.१८ (मरणधर्मा भूतों में ममत्व होने का आश्चर्य), पद्म २.८५ (कुंजल शुक के चार पुत्रों द्वारा दृष्ट आश्चर्यों का वर्णन)

आश्रम वायु ८.१७७ (चतुराश्रम धर्म व्यवस्था), नारद १.४३.१०४ (ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के आचार निरूपण), विष्णु ३.९ (ब्रह्मचर्यादि आश्रम धर्म वर्णन), विष्णु धर्मोत्तर २.१३० (वानप्रस्थ आश्रम आचार निरूपण), २.१३१ (सन्यास आश्रम आचार निरूपण), पद्म १.१५ (ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों के धर्म व कर्तव्य), भागवत ७.१२ (वही), ब्रह्माण्ड १ .२.७.१६९ (वही), अग्नि १६० (वानप्रस्थ धर्म निरूपण), १६१ (सन्यास ० धर्म निरूपण), भविष्य १.१८२ (चतुराश्रम धर्म निरूपण); दृ. ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास, सिद्धाश्रम

आश्रय ब्रह्मवैवर्त ४.७५.२७ (पापी जनों का आश्रय लेने के दोष), लक्ष्मी नारायण ३.१७९ (नित्याश्रया नामक विधवा : केशी -माता, भगवद्भक्ति से मोक्ष पप्ति)

आश्वलायन शिव ३.५.४० (२६वें द्वापर में सहिष्णु अवतार – पुत्र), वायु २३.२१३ (वही), मत्स्य १९६.१३ (आश्वलायनि : गोत्रकार ऋषि), लन २.२३६.६० (अश्व रूप धारी ० मुनि का बर्बुर नृप द्वारा बंधन, नृप का शाप से बर्बुर वृक्ष बनना)

टिप्पणी : प्रश्नोपनिषद ३ में आश्वलायन पैप्पलाद ऋषि से प्रश्न करते हैं कि शरीर में प्राण किस प्रकार उत्पन्न होता है, कैसे प्रतिष्ठित होता है, कैसे उत्क्रमण करता है आदि। कैवल्य उपनिषद में आश्वलायन भगवान परमेष्ठी से पापों से छुटकारा पाकर परात्पर पुरुष को प्राप्त करने का उपाय पूछते हैं। सरस्वती रहस्योपनिषद में आश्वलायन अन्य ऋषियों को दशश्लोकी सरस्वती विद्या का उपदेश करते हैं। बर्बुर नृप के संदर्भ में बर्ब धातु गति के अर्थों में और बर्बन् वायु के लिए प्रयुक्त होते हैं।

आश्विन भविष्य ३.४.८.६१ (आश्विन मास के सूर्य का माहात्म्य : मेधावी व मंजुघोषा -पुत्र भगशर्मा द्वारा सूर्य लोक प्राप्ति, पुन: सत्यदेव -पुत्र वाणीभूषण बनकर मत्स्यखादक विप्रों का उद्धार करना); दृ. इष, मास

आषाढ देवीभाग ७.३८.२० (आषाढ क्षेत्र में रति देवी का वास), स्कन्द १.३.१.६.१२२ (आषाढ मास में विश्वेदेवों द्वारा अरुणाचल की पूजा), ४.२.५५.२७ (काशी में आषाढेश्वर लिंग स्थापना व माहात्म्य), ४.२.९७.१७७ (आषाढीश्वर लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य : अघनाशक), ५.३.२१४.४ (तपोरत शिव द्वारा आषाढी नाम प्राप्ति), ५.३.२१६ (आषाढी तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य : कामिक रूप धारी शिव की स्थिति, रुद्रलोक प्राप्ति), मत्स्य १९४.३० (वही), विष्णु धर्मोत्तर ३.१०६.१३६ (संकर्षण -प्रतीहार,

आवाहन मन्त्र कथन), भविष्य ३.४.८.७ (आषाढ मास के सूर्य का माहात्म्य : शक्रशर्मा द्विज का सूर्य बनना, कालांतर में वृन्दावन में माधव द्विज का पुत्र मधु/मध्वाचार्य बनना), कथासरित् २.५.८ (आषाढक : भद्रवती हस्तिनी का महावत, उदयन द्वारा वासवदत्ता हरण प्रसंग), ८.१.१३९ (आषाढेश्वर : दामोदर विद्याधर के पिता, विद्याधर -सूर्यप्रभ युद्ध प्रसंग), १४.१.६५ (आषाढपुर : पर्वत, विद्याधरों के अधिपति मानसवेग का निवास स्थान); दृ. प्रतिपदा आदि तिथियां, तिथि, मास

टिप्पणी : शब्दकोशों में शतपथ ब्राह्मण ७.४.२.३३ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण १.५.२.८ आदि में दी गई अषाढ/आषाढ शब्द की निरुक्ति का उल्लेख किया जाता है जिसके अनुसार जब देवों ने यज्ञ में असुरों की उपस्थिति को सहन करना अस्वीकार कर दिया, वही अषाढा नक्षत्र है। आषाढ शुक्ल देवशयनी एकादशी को वामन भगवान की पूजा की जाती है। इस दिन अदिति व कश्यप - पुत्र वामन ने बलि के यज्ञ को भंग कर दिया था और उसके पश्चात चार मास के लिए सो गए थे। इसके अतिरिक्त आषाढ पूर्णिमा का नाम व्यास पूर्णिमा तथा गुरु पूर्णिमा है। पुराणों के यह आख्यान ब्राह्मण ग्रन्थों में की गई अषाढ शब्द की निरुक्तियों की समुचित व्याख्या करते हैं। शतपथ ब्राह्मण ६.५.३.१ इत्यादि के अनुसार यह पृथिवी अषाढा बन सकती है। शतपथ ब्राह्मण ७.४.२.३४ आदि के अनुसार वाक् अषाढा बन सकती है। शतपथ ब्राह्मण ८.५.४.१ के अनुसार हमारे शरीर में जिह्वा वाक् का प्रत्यक्ष स्थान है। जिह्वा रस का आस्वादन कर सकती है। रस तब उत्पन्न होता है जब जिह्वा में आदित्य प्रतिष्ठित होता है। यह वाक् का भौतिक, स्थूल रूप है। हमारे अंग-अंग में विद्यमान सूक्ष्म वाक् भी रस का आस्वादन करने में समर्थ है। यह तब हो सकता है जब इस वाक् में हृदय और मन की प्रतिष्ठा हो जाए। तब इस वाक् का नाम अषाढा होगा। अषाढा अर्थात अखाडा, अखण्ड शक्ति। वही अखण्ड शक्ति अदिति कहलाएगी। इसी तथ्य को शतपथ ब्राह्मण ७.५.१.७ में इस प्रकार कहा गया है कि कूर्म वृषा है और अषाढा योषा/पत्नी है। कूर्म अर्थात कश्यप जो रस है, सूर्य है, प्राणों का रूप है। इसे धारण करने वाली अषाढा है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.५.१.४ में पूर्वाषाढा नक्षत्र के चरित्र का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वर्चः परस्तात् . समिति अवस्तात्। अर्थात ऊपर से जब ब्रह्मवर्चस की वर्षा हो तो उसे ग्रहण करने के लिए समिति, अखण्ड शक्ति अषाढा की आवश्यकता होती है। अषाढा का अदिति और कूर्म का कश्यप से तादात्म्य तो स्पष्ट है, लेकिन वामन कहां से आ गया? इसका उत्तर शतपथ ब्राह्मण ७.४.२.३५ के आधार पर खोजा जा सकता है जहां प्राणों को वाम/सुंदर और वाक् को वामभृत् अर्थात वाम का भरण करने वाली कहा गया है। यह वाम ही पुराणों का वामन हो सकता है।

आषाढ मास की व्यास पूर्णिमा के संदर्भ में ऋग्वेद ७.२०.३ में इन्द्र के अषाळ्ह और व्यास विशेषण उल्लेखनीय हैं। व्यास अर्थात विस्तीर्ण चेतना। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३८६ में उल्लेख है कि १२ दिन के द्वादशाह नामक यज्ञ में जिसका प्रत्येक दिन संवत्सर के एक मास का प्रतीक है, आषाढ पूर्णिमा चतुर्थ दिवस का प्रतीक है। चतुर्थ दिवस की व्याख्या के रूप में भागवत पुराण का चतुर्थ स्कंध मननीय है जिसकी मुख्य कथाएं हैं : दक्ष के यज्ञ भंग की कथा, ध्रुव का आख्यान, पृथु द्वारा पृथिवी का दोहन आदि, पुरंजन उपाख्यान और अंत में प्रचेताओं की कथा।

अषाढा नक्षत्र को पूर्वा और उत्तरा दो भागों में विभाजित करने का निहितार्थ अन्वेषणीय है। काशकृत्स्न धातु पाठ के अनुसार अषाढा की व्युत्पत्ति अष धातु से हुई है जो दीप्ति और आदान के अर्थों में प्रयुक्त होती है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद की ऋचाओं में इन्द्र के साथ अषाळ्ह विशेषण जोडने का निहितार्थ भी अन्वेषणीय है।

आषुतोष लक्ष्मी नारायण ४.१०१.९३ (कृष्ण व नन्दिनी -पुत्र); दृ. आशुतोष

आसन स्कन्द २.१.२७.५३ (पुराणज्ञ को आसनार्थ कम्बल, वस्त्र आदि प्रदान करने का फल), २.४.३६.३४ (वही), ३.३.२२.४५ (वही), ४.१.४१.५९ (अष्टांग योग के अन्तर्गत पद्मासन का संक्षिप्त वर्णन), ५.३.४९.४६ (ब्राह्मण को देय दान द्रव्यों में से एक), पद्म ५.११४.३१० (आसन के उपयुक्त द्रव्यों का कथन), ब्रह्म वैवर्त ४.२३.५१ (स्त्री की ऊरुओं की आसन के रूप में कल्पना), भविष्य ४.१३८.८० (सिंहासन मन्त्र कथन), .२५ (० पूजा मन्त्र), अग्नि ७४.४४ (शिव के सिंहासन का स्वरूप व पूजा विधि), २४५.३ (भद्रासन संरचना), विष्णु धर्मोत्तर ३.२१+ (अभिनय में शय्या आदि आसनों के संकेत चिन्ह), लक्ष्मी नारायण ३.७.२ (आसन नामक नवम वत्सर में चलवर्मा राजा द्वारा चल संसार में अचला भक्ति की प्राप्ति)

टिप्पणीः अथर्ववेद १५.३.१ से आरंभ करके कई सूक्तों में व्रात्य द्वारा आसन्दी पर आरूढ होकर दसों दिशाओं में भ्रमण करने का वर्णन है। इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण ८.५ व ८.१२ में आसन्दी के चार पादों का उल्लेख आता है जिनमें से दो तो बहिर्वेदी में और दो अन्तर्वेदी में स्थित होते हैं। विभिन्न देवगण इन पादों का वहन करते हैं। यह आसन्दी उदुम्बर वृक्ष के काष्ठ की बनी होती है। ऊर्जा को उदुम्बर कहा जाता है। शतपथ ब्राह्मण ६.७.१.१२ के अनुसार आसन्दी पृथिवी का रूप है जबकि उदुम्बर द्यौ का रूप। ऐतरेय आरण्यक १.२.४ के अनुसार श्री ही आसन्दी है। इन्द्र रूपी यजमान अभिषेकार्थ ऐसी आसन्दी पर आरूढ होता है। ऐतरेय ब्राह्मण ८.५ तथा ८.१२ के अनुसार अग्नि गायत्री छन्द द्वारा, सविता उष्णिक छन्द द्वारा, सोम अनुष्टुप द्वारा,

बृहस्पति बृहती छन्दों आदि के द्वारा इन्द्र को आसन्दी पर आरूढ करते हैं जिससे वह राज्य, साम्राज्य, भौज्य, स्वराज्य, वैराज्य आदि प्राप्त कर सके। ऐतरेय आरण्यक १.२.४ तथा जैमिनीय ब्राह्मण २.१९९ व २.४१८ आदि के अनुसार उद्गाता नामक ऋत्विज अनुष्टुप छन्द के अक्षरों से बनी आसन्दी पर आरूढ होता है, जबकि होता नामक ऋत्विज प्लेंखा/पंखा/दोला पर आरूढ होता है जो वायु या प्राणों का रूप है। प्लेंखा आसन्दी रूपी योषा से मिथुन करके उसमें गर्भ स्थापित करता है। असुरों द्वारा प्रस्तुत आसन्दी शिला बन कर जकडने वाली होती है (जैमिनीय ब्राह्मण ३.७३)।

लौकिक कथाओं में पर्यंक व उडनखटोले के रूप में आसन्दी का पर्याप्त वर्णन मिलता है। राजा भोज द्वारा विक्रमादित्य के सिंहासन पर आरूढ होने का प्रयत्न करने और ३२ पुत्तलिकाओं द्वारा राजा को बोध देकर अदृश्य होने आदि का वर्णन सिंहासन बत्तीसी आदि पुस्तकों में उपलब्ध है। यह ३२ पुत्तलिकाएं अनुष्टुप छन्द के ३२ अक्षरों की व्याख्या हो सकती है।

आसन्दिव ब्रह्म २.९७.३ (० विप्र का कंकालिनी राक्षसी द्वारा हरण व विवाह, गौतमी तट पर तप से नारायण द्वारा राक्षसी का वध)

आसुरि नारद १.४५.१२ (मुनि, पंचशिख - गुरु, सांख्यशास्त्र वेत्ता), गर्ग २.२४ (० मुनि की विष्णु दर्शन की लालसा, गोपी रूप धारण करके कृष्ण दर्शन), भागवत १.३.१० (० द्वारा विष्णु के पंचम अवतार कपिल ऋषि से सांख्य शिक्षा प्राप्ति), भा ४.२५.५२ (राजा पुरंजन के नगर के पश्चिम द्वार का नाम), ४.२९.१४ (शरीर में मेढ्र/लिंग की आसुरी द्वार रूप में प्रतीकात्मकता), ५.१५.३ (देवताजित् -भार्या, देवद्युम्न -माता), ब्रह्माण्ड १.२.३५.१२ (वैश्म्पायन -शिष्य, मध्य देश में यजुर्वेद के प्रवर्तक), शिव ३.४.३३ (अष्टम द्वापर में दधिवाहन अवतार -पुत्र)

टिप्पणी : अथर्ववेद १.२४ सूक्त की देवता आसुरी वनस्पति है। यह वनस्पति त्वचा के रोग दूर करती है और सरूपता लाती है। सरूपता शब्द आसुरि मुनि को समझने की कुंजी है। परमात्मा के स्वरूप का अवतरण आसुरी स्तर तक हो, तभी तन-मन के रोग दूर हो सकते हैं। अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूप यह अवतरण का क्रम है।

अथर्ववेद ६.१०० सूक्त की देवता आसुरी दुहिता है। इस सूक्त तथा शतपथ ब्राह्मण में आए आसुरी मुनि के कथनों का पुराण कथा से तादात्म्य अन्वेषणीय है।

आस्तीक देवीभाग. २.११ (जरत्कारु पिता व जरत्कारु माता से ० की उत्पत्ति, जनमेजय के सर्प सत्र में सर्पों की रक्षा), स्कन्द २.४.८.४६ (० गन्धर्व का लोमश ऋषि के शाप से वट वृक्ष बनना, तुलसी माहात्म्य श्रवण से मुक्ति), ५.१.६५ (० द्वारा जनमेजय के सर्प सत्र में नागों की रक्षा के पश्चात नागों को महाकाल वन में निवास का आदेश), ब्रह्मवैवर्त २.४६ (परीक्षित -तक्षक आख्यान), २.५२.२३ (० द्वारा सुयज्ञ नृप से कृतघ्नता दोष का निरुपण), लक्ष्मी नारायण १.४३६ (जरत्कारु पिता -जरत्कारु माता से उत्पत्ति कथा), महाभारत आदिपर्व ४७.२१ (सूर्यास्त समय में पत्नी द्वारा प्रबोधित किए जाने पर जरत्कारु ऋषि द्वारा पत्नी का त्याग), ४८.२० (जरत्कारु ऋषि द्वारा अस्ति कहकर गर्भ में बालक की पुष्टि करने से बालक द्वारा आस्तीक नाम प्राप्ति), ५५.१ (आस्तीक का जनमेजय के सर्प सत्र में आकर स्वस्ति गायन तथा सर्पों की रक्षा करना)।

टिप्पणी : यास्क के वैदिक निघंटु नामों में जरिता (स्तोता) और कारु: दोनों स्तोतृ नाम के अन्तर्गत आते हैं। वासुकि नाग की बहिन मनसा/जरत्कारु मानुषी त्रिलोकी और दैवी त्रिलोकी दोनों में जरत्कारु/स्तोत्र का सहस्रवण होगा, तभी आस्तीक पुत्र रूपी आस्तिक्य बुद्धि (परमब्रह्म के अस्तित्व वाली) उत्पन्न होगी। ऐसा आस्तीक यज्ञ की स्तुति करेगा। - फतहसिंह

सरस्वती रहस्योपनिषद ३.२३ में समाधि से व्युत्थान पर पांच अवस्थाएं गिनाई गई हैं : अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूप। इनमें पहली तीन ब्रह्म रूप हैं और अंतिम दो जगत रूप। तेजोबिन्दु उपनिषद ६.८४ के कथन से प्रतीत होता है कि अस्ति, ब्रह्म के अस्तित्व की अवस्था का जगत के स्तर पर अवतरण बहुत कठिन है। आस्तीक के माध्यम से अस्ति का जगत स्तर पर अवतरण दिखाया गया है। इससे अगला चरण स्वस्ति है जो आस्तीक सर्प यज्ञ में आकर करता है। यदि अस्ति का अवतरण जगत स्तर पर नहीं होता तो अस्त अर्थात मोक्ष, निर्वाण की घटना घटित होती है, स्वस्ति की नहीं।

आस्य द्र. हंसास्य

आहवनीय ब्रह्माण्ड १.२.१२.१२ (शंस्य अग्नि रूप, हव्यवाहन नाम), वायु २९.११ (अग्नि, शंस्य / हव्यवाहन नाम, सभ्य व आवसथ्य पुत्र, १६ नदियों से १६ धिष्ण्य अग्नियों को जन्म देना), देवीभाग. ३.१२.४८ (आहवनीय अग्नि अपान का रूप, गार्हपत्य प्राण का रुप आदि), ११.२२.३० (प्राणाग्नि होत्र के संदर्भ में ० अग्नि का मुख में निवास, गार्हपत्य अग्नि का हृदय में निवास इत्यादि), गरुड १.२०५.६६ (सन्ध्या होम के संदर्भ में विष्णु आहवनीय अग्नि, ब्रह्मा गार्हपत्य अग्नि आदि), १.२०५.१४८ (मुख में आहवनीय, उदर में गार्हपत्य अग्नि के स्थान आदि), लक्ष्मी नारायण २.१५७.३६ (वही), स्कन्द ५.३.२२.४ (मुख्य अग्नि व स्वाहा के तीन पुत्रों आहवनीय आदि का उल्लेख), पद्म १.१४.८० (आहवनीय अग्नि में ऋक्, यजु व साम नामों द्वारा हर

की अर्चना करने का उल्लेख), मत्स्य ५१.४ (हव्यवाह : पवमान अग्नि -पुत्र, १६ नदियों से धिष्ण्य पुत्रों को उत्पन्न करना), विष्णु धर्मोत्तर १.१३६.३१ (आहवनीय, दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य व उपसद की क्रमश: वासुदेव आदि चतुर्व्यूह से समानता), हरिवंश १.२६.४१ (पुरुरवा द्वारा अरणि मन्थन से अग्नि को त्रेधा विभाजित करना), २.१२२.१४ (शोणितपुर में कृष्ण -बाणासुर युद्ध प्रसंग में गरुड द्वारा गंगाजल से आह्वनीय अग्नि को शान्त करना)।

टिप्पणी : तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१.५.७ व १.२.१.१३ आदि का कथन है कि साधना की एक स्थिति आने पर सारे शरीर में दाह उत्पन्न हो जाता है। उस दाह की शान्ति का उपाय यह है कि उस अग्नि का गार्हपत्य, ओदनपचन व आहवनीय अग्नि आदि के रूप में विभाजन कर दिया जाए। यज्ञ कार्य में गार्हपत्य अग्नि के निकट यजमान पत्नी और आहवनीय अग्नि के निकट यजमान बैठता है। गार्हपत्य अग्नि की साधना द्वारा गृह की आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है - गृह कल्पवृक्ष बन जाए, जिस वस्तु की कामना हो वह तुरंत प्राप्त हो जाए। गार्हपत्य अग्नि का विकास पूर्ण होने पर आहवनीय अग्नि का विकास होता है। कहा गया है कि गार्हपत्य से १२ प्रक्रम की दूरी पर (ताण्ड्य ब्राह्मण २५.१०.४ के अनुसार ३६ प्रक्रम की दूरी पर) आहवनीय अग्नि की स्थापना करनी चाहिए। यह १२ प्रक्रम १२ मास के १२ सूर्यों के प्रतीक हो सकते हैं। गार्हपत्य और आहवनीय अग्नियों के बीच में दक्षिणाग्नि / ओदनपचन / अन्वाहार्यपचन अग्नि की स्थिति होती है। शतपथ ब्राह्मण २.३.२.२ के अनुसार गार्हपत्य अग्नि का अधिपति यम, अन्वाहार्यपचन का नल नैषध और आहवनीय का अधिपति इन्द्र होता है।

प्रश्नोपनिषद ४.३ तथा शतपथ ब्राह्मण २.२.२.१८ व ७.१.२.२१ के अनुसार गार्हपत्य अपान वायु का रूप है। अपान द्वारा भुक्त अन्न का पाचन होता है जिससे उदान प्राण विकसित होता है। उदान प्राण इष्ट फल है (उदित होते हुए आदित्य का रूप?)। अन्वाहार्यपचन अग्नि व्यान का और आहवनीय अग्नि प्राण का रूप है। छान्दोग्य उपनिषद ४.११.१ में इन अग्नियों के क्रमिक विकास का वर्णन किया गया है। गार्हपत्य का विकास पृथिवी, अग्नि, अन्न व आदित्य के रूप में, अन्वाहार्यपचन का आप:, दिशा, नक्षत्रों व चन्द्रमा के रूप में तथा आहवनीय का प्राण, आकाश, द्यौ व विद्युत के रूप में होता है।

आहवनीय अग्नि को सार्वत्रिक रूप से हव्यवाहन अर्थात यज्ञ में प्रदत्त आहुति का देवों तक वहन करने वाला कहा गया है। प्रश्न यह है कि आहवनीय अग्नि का यह रूप कैसे प्राप्त किया जा सकता है। जो आहुति आहवनीय अग्नि में देवताओं के हेतु दी जाती है, वह कोई साधारण अन्न की आहुति नहीं, अपितु श्रेष्ठतम अन्न की, जिसे वैदिक साहित्य में अन्नाद्य कहते हैं, आहुति होती है। पशुओं से प्राप्त होने वाले दधि, मधु, घृत आदि की गणना सर्वश्रेष्ठ अन्नों में की जाती है। अध्यात्म में स्वयं यजमान साधक ही पशु है। जैसा कि आहुति शब्द की टिप्पणी में कहा गया है, सारा शरीर दुन्दुभि की भांति नाद से ओत प्रोत होने पर साधक के अंदर एक घृत का जन्म होता है जो आहवनीय अग्नि में जल कर ज्योति उत्पन्न करता है। इस अवस्था का नाम आहुति है। पुराणों तथा वैदिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से आहवनीय अग्नि को मुख स्थानीय कहा गया है (काठक संहिता ८.७ का कथन है कि जो ओदन पचन अग्नि को जान लेता है उसके मुख में अग्नि उत्पन्न हो जाती है)। शतपथ ब्राह्मण १.४.१.१० में एक आख्यान आता है कि माथव नामक राजा ने अपने मुख में अग्नि धारण कर ली थी और इस कारण वह अपने गुरु गोतम राहूगण के पुकारने पर बोलता नहीं था। जब गुरु ने युक्ति पूर्वक घृत का नाम लिया तो अग्नि मुख से निकल कर सारी पृथिवी पर फैल गई और सब कुछ जला कर शुद्ध कर दिया। अग्नि को घृत बहुत प्रिय है। शरीर में इस घृत को उत्पन्न करने के लिए यजमान रूपी पशु का संस्कार करना होता है, उसको वरुण के पाशों से मुक्त करना होता है। काठक संहिता ३०.९ तथा ३६.१ के अनुसार पशु के अंगों को आहवनीय अग्नि पर पकाकर उसे वरुण पाश से मुक्त करते हैं। इस घृत को प्रकट करने के लिए नाद का, छन्दों का उत्पन्न होना क्यों आवश्यक है, इस संदर्भ में काठक संहिता ७.१० तथा ३१.८ का कथन है कि छन्द पशुओं के लिए व्रज / गोष्ठ हैं जहां रात्रि में पशु आकर विश्राम करते हैं (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.९.२३.२ आदि के अनुसार आदित्य रात्रिकाल में अश्व पशु बन कर आहवनीय अग्नि में निवास करता है)। शांखायन ब्राह्मण १८.६ के अनुसार आहवनीय अग्नि पशुओं की ज्योति है। जिसे देखकर प्रजारूपी पशु वापस लौट आते हैं (तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१.५.४)।

हरिवंश पुराण में गरुड द्वारा गंगा जल द्वारा आहवनीय अग्नि को शान्त करने के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण ३.३.४.२२ व ७.१.२.१२ में उल्लेख है कि आहवनीय अग्नि अग्नि और सोम या सूर्य और चन्द्र दोनों है (गार्हपत्य अग्नि सोम का रूप है : काठक संहिता २६.२)। शिव की जटा में गंगा की स्थिति कही जाती है। ब्राह्मण ग्रन्थों की भाषा में इन जटाओं रूपी अग्नि के स्तूप को प्रस्तर कहा जाता है (तैत्तिरीय संहिता २.६.५.५, शतपथ ब्राह्मण १.३.३.१२ व १.३.४.१०)। यह प्रस्तर समित् / समिधा का उत्तर रूप है, समिति अवस्था प्राप्त करने के पश्चात प्रस्तर रूप प्राप्त होता है। शिर पर केशों के प्रतीक के रूप में आहवनीय अग्नि के निकट वेदी पर तृण द्वारा प्रस्तर रूपी आच्छादन किया जाता है। इस प्रस्तर में गंगा की या सोम की स्थिति किस प्रकार से है, यह ब्राह्मण ग्रन्थों में स्पष्ट नहीं है।

शतपथ ब्राह्मण काण्ड ६ से लेकर काण्ड ९ तक अग्निचयन का वर्णन है। यह अग्नि चयन आहवनीय अग्नि पर किया जाता है जिसमें इष्टिकाओं / ईंटों के ५ स्तर या चितियां होती हैं। इष्टिकाओं का चयन इस प्रकार किया जाता है कि आहवनीय अग्नि को एक श्येन का रूप प्राप्त हो जाता है जो उडकर स्वर्ग से

सोम का आहरण कर सकता है। (गोपथ ब्राह्मण १.३.१० के अनुसार गायत्री वेदी है जिसका शिर आहवनीय है)। इन ५ चितियों में से प्रत्येक में मध्य में एक के ऊपर एक ५ स्वयमातृण्णा (स्वयं - आतृण्णा अर्थात प्राकृतिक रूप में छिद्रों से युक्त) इष्टिकाओं को रखा जाता है। चितियों में अन्य इष्टिकाओं के लिए, जिनके नाम ऋतव्येष्टिका, प्राणभृता, अपस्या, छन्दस्या आदि हैं, के लिए यह विधान है कि एक इष्टिका पर उसी नाम की दूसरी इष्टिका न रखी जाए। श्रीमती स्टेला क्रैमरिश ने अपनी पुस्तक दि हिन्दू टैम्पल्स में यह मत व्यक्त किया है कि मन्दिर में इष्टदेव हिरण्यगर्भ की प्रतिष्ठा स्वयमातृण्णा इष्टिकाओं की स्थापना का रूप हो सकता है।

ऋग्वेद का आरंभ अग्निमीळे पुरोहितं इत्यादि से होता है। यह पुरोहित अग्नि कौन सी है, इसके उत्तर में ऐतरेय ब्राह्मण ८.२४ का कथन है कि राजा के लिए आहवनीय अग्नि ही पुरोहित है, जाया गार्हपत्य है और अन्वाहार्यपचन अग्नि पुत्र का रूप है। इस पुरोहित अग्नि को किस प्रकार सेवा से संतुष्ट करना चाहिए, यह भी यहां वर्णन किया गया है। पुरोहित के तीन स्तर कहे गए हैं -पृथिवी पर अग्नि, अन्तरिक्ष में वायु और द्यौ में आदित्य। इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण ११.६.२.६ में भी अन्तरिक्ष, द्यौ, पृथिवी, पुरुष के मुख, स्त्री के उपस्थ को आहवनीय अग्नि का रूप दिया गया है।

आहवनीय व गार्हपत्य अग्नियों में कुछ अन्य अन्तर उल्लेखनीय हैं। आहवनीय क्षत्र का स्थान है, गार्हपत्य प्रजा का। आहवनीय ऐन्द्र व वैश्वानरीय है जबकि गार्हपत्य मारुत है (तैत्तिरीय संहिता २.२.५.६ व २.२.११.१)। आहवनीय अग्नि का नाम सम्राट है जबकि गार्हपत्य अग्नि का गृहपति (शतपथ ब्राह्मण२.४.१.९)। यव और व्रीहि पशुओं के रूप हैं (मैत्रायणी संहिता १.६.११)। आहवनीय पर यवमय अपूप और गार्हपत्य पर व्रीहिमय अपूप रखा जाता है (शतपथ ब्राह्मण २.२.३.१३)। आहवनीय पर आप: का प्रतीक पुष्करपर्ण रखा जाता है, जबकि गार्हपत्य पर पशुओं के प्रतीक ऊषाओं को रखा जाता है (शतपथ ७.३.१.९)। गार्हपत्य को पशुओं रूपी प्रजाओं के अंशुओं से सम्बद्ध किया जाता है, जबकि आहवनीय को द्रप्स और अंशु से (शतपथ ४.२.५.१)। आहवनीय अग्नि को अजैकपाद कहा गया है, जबकि गार्हपत्य को अहिर्बुध्न्य (काठक संहिता ७.१३)। असुर पहले आहवनीय, फिर गार्हपत्य और उसके पश्चात अन्वाहार्यपचन का आधान करते हैं। देवगण पहले अन्वाहार्यपचन, फिर अन्वाहार्यपचन और अन्त में आहवनीय का (तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१.४.७, काठक संहिता ८.४)। गार्हपत्य के स्तर पर इध्म व बर्हि की प्रतिष्ठा होती है जबकि आहवनीय पर समित् और प्रस्तर की। आहवनीय देवों का आयतन है, अन्तराग्नि पशुओं का, गार्हपत्य मनुष्यों का और ओदनपचन पितरों का (मैत्रायणी संहिता १.४.१०)। प्रणव में गार्हपत्य अकार का, दक्षिणाग्नि उकार का, आहवनीय मकार का और संवर्तक अग्नि अर्धमात्रा का प्रतिनिधि है (नृसिंहोत्तर तापनीयोपनिषद ३.४, ब्रह्मविद्योपनिषद ६, कालाग्निरुद्रोपनिषद १६)।

यज्ञकर्म में गार्हपत्य अग्नि का स्वरूप वृत्ताकार, दक्षिणाग्नि का अर्धवृत्त या चन्द्राकार और आहवनीय अग्नि का वर्गाकार होता है। तांत्रिक साहित्य में मन्त्रों के गूढ रहस्यों को प्रकट करने के लिए वृत्त, त्रिकोण, वर्ग आदि का बहुत प्रयोग हुआ है। विशेष रूपसे, कल्पतरु रिसर्च एकेडमी, बंगलौर से प्रकाशित श्रीसूक्त में इस विधा का सफ़ल प्रयोग किया गया है।

पुराणों में आहवनीय अग्नि के १६ धिष्ण्य रूपी पुत्र क्यों कहे गए हैं, जबकि यज्ञकर्म में केवल ८ धिष्ण्य अग्नियां होती हैं, यह विचारणीय है।

आहुक मत्स्य ४४.६६ (पुनर्वसु - पुत्र, चरित्र प्रशंसा), हरिवंश १.३७.२० (अभिजित् -पुत्र, पुनर्वसु -पौत्र), वायु ९६.१२० (पुनर्वसु -पुत्र, चरित्र महिमा), ब्रह्माण्ड २.३.७१.१२१ (वही), भागवत ९.२४.२१ (पुनर्वसु से आहुक पुत्र व आहुकी कन्या की उत्पत्ति), शिव ३.२८ (० भिल्ल की यति रुपी शिव द्वारा परीक्षा, आहुक का राजा नल के रुप में जन्म), ब्रह्म १.१३.४८ (अभिजित् -पुत्र, पुनर्वसु -पौत्र, काश्या -पति, उग्रसेन -पिता, चरित्र महिमा)

आहुकी वायु ९६.१२१ (पुनर्वसु - पुत्री, आहुक - भगिनी, आहुकान्ध -पत्नी, देवक व उग्रसेन -माता)

आहुति वायु १५ (आत्म हितार्थ ०), नारद १.५१.४६ (यज्ञ में आघार आदि आहुतियों से अग्नि शरीर के अंगों का कल्पन), १.७२.१५ (हयग्रीव हेतु होम में विभिन्न द्रव्य आहुतियों का फल), स्कन्द ४.२.९७.१०३ (आहुतीश लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य : होम फल प्रद), लक्ष्मी नारायण २.१५८.१ (यज्ञान्त में पूर्णाहुति विधि), २.१७१.९ (वही), २.२१२.२२ (वही), २.२२९.५८ (वही), देवीभाग. ११.२२.२७ (अंगुलियों द्वारा प्राण, उदान आदि की आहुति का विधान); द्र. होम

टिप्पणी : आहुति का स्वरूप समझने के लिए हमें दैनिक अग्निहोत्र विषयक कर्मकाण्ड को समझना होगा। सायंकाल सूर्य अस्त होने के पश्चात अग्नि में घृत की दो आहुतियां दी जाती हैं जिन्हें पूर्वाहुति और उत्तराहुति कहते हैं। यही क्रम प्रात: काल सूर्य उदित होने के पूर्व भी दोहराया जाता है। आहुति देने के मंत्र हैं : अग्निर्ज्योति: ज्योतिरग्नि: स्वाहा (सायंकाल)। सूर्यो ज्योति: ज्योति: सूर्य: स्वाहा (प्रात: काल)। वाक् द्वारा पूर्वाहुति दी जाती है और मन द्वारा तूष्णीं रूप में उत्तर आहुति दी जाती है (जैमिनीय ब्राह्मण १.१६)। वाक् के बारे में कहा जाता है कि वाक् सरस्वती रस वाली बन सकती है, ऐसी जैसे दुन्दुभि की वाक्, सारा शरीर दुन्दुभि की भांति संगीत से ओतप्रोत हो जाए। इस

स्थिति में हमारे अंदर एक घृत का जन्म होता है जो शरीर की अग्नि में जल कर ज्योति उत्पन्न करता है। इस अवस्था का नाम आहुति है। इसीलिए आहुति मन्त्र में कहा गया है कि अग्निर्ज्योतिः। यह पूर्वाहुति है। जैमिनीय ब्राह्मण १.१६ के अनुसार वाक् के अनुदिशं आत्मा होती है। वैदिक साहित्य में पूर्व और उत्तर का अर्थ क्रमशः एकांगी साधना या समाधि और सर्वांगीण साधना होता है (अथर्ववेद ६.५.१)। निहितार्थ यह है कि पूर्वाहुति से आत्मा का विकास होता है। इसके पश्चात मन द्वारा उत्तराहुति के संदर्भ में, मन के अनुदिश प्राण हैं। अतः उत्तराहुति से प्राणों का, आत्मा के अंगों का विकास होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तराहुति के रूप में शरीर के अंदर घृत का नहीं, अपितु स्तोकों का, सोम के सूक्ष्मरूप का प्राकट्य होता है (शतपथ ब्राह्मण ३.८.२.२२, ३.६.३.८, तैत्तिरीय ब्राह्मण १.४.१.२) जो अग्नि द्वारा पक कर आहुति बनते हैं। कहा गया है (तैत्तिरीय ब्राह्मण २.१.४.३) कि जो पूर्वाहुति है, वह अग्निहोत्र का स्थाणु (ज्योति पुंज?) है। उत्तराहुति देते समय इस बात का ध्यान रखना होगा कि उसके कारण इस स्थाणु को क्षति न पहुंचे। पूर्वाहुति अग्नि का रूप है, उत्तराहुति प्रजापति का (तैत्तिरीय ब्राह्मण २.१.७.१)। अग्नि में उत्तर आहुति के पश्चात ज्योति के कारण संभवतः रस की वर्षा होती है, यह प्राणों को तृप्त करती है जिससे सारे प्राण इसकी ओर खिंचे चले आते हैं। यही प्रजापति की प्रजा हैं (तैत्तिरीय संहिता २.४.९.२)।

आहुति से जो ज्योति प्रकट होती है, उस ज्योति का स्वरूप प्रतिदिन अलग-अलग होता है। इसी प्रकार अग्निहोत्र से आगे प्रत्येक मास में ज्योति का स्वरूप बदलता है। जब दर्श-पूर्णमास आदि यज्ञों में जाते हैं तो वहां आहुतियो का स्वरूप चन्द्रमा की कलाओं के अनुसार बदलता है। यहां तक कि छन्दों के प्रत्येक अक्षर के साथ आहुति का स्वरूप बदलता है (जैमिनीय ब्राह्मण १.२६)।

आहुति शब्द की निरुक्ति करते हुए ऐतरेय ब्राह्मण १.२ में कहा गया है कि चूंकि इससे यजमान देवों को आहूत अथवा आह्वान करता है, अतः इसका नाम आहुति है। शतपथ ब्राह्मण ११.२.३.६ के अनुसार चूंकि आहुति अन्य लोक में जाकर आत्मा बनती है और वहां से आह्वान करती है कि हे जीव, यहां मेरे पास आओ, अतः उसका नाम आहुति है। शतपथ ब्राह्मण १०.६.२.२ के अनुसार अग्नि भक्षक है। उसमें जो कुछ रखा जाता है वह आह्ति हो जाता है, अतः उसका नाम आहुति है। प्रथम निरुक्ति के संदर्भ में, आहुति देवों का आह्वान किस प्रकार करती है? इसका उत्तर ब्राह्मण ग्रन्थों में कई प्रकार से दिया गया है। यज्ञ में अग्नि के मुख्य रूप से दो रूप होते हैं - गार्हपत्य अग्नि जो पृथिवी पर स्थित है और आहवनीय अग्नि जो द्युलोक में स्थित रहती है। यहीं आदित्य स्थित है (सायंकाल होने पर आदित्य आहवनीय अग्नि में लीन हो जाता है)। लक्ष्य यह है कि गार्हपत्य, आहवनीय और आदित्य के स्तरों में तादात्म्य स्थापित हो जाए। दूसरे शब्दों में, प्राण उदान बन जाए, उदान प्राण बन जाए और व्यान उदान बन जाए (शतपथ ब्राह्मण ११.५.३.९)। यह कार्य आहुति के द्वारा सम्पन्न हो सकता है। आहुतियों से उत्पन्न रस अथवा अन्न की ओर संभवतः देवगण आकर्षित होते हैं (शतपथ ब्राह्मण १०.४.१.१९)।

आहुति के सम्यक प्रकार से ज्वलन के लिए यह आवश्यक है कि अग्नि का स्वरूप सम्यक् प्रकार से संचित किया गया हो तथा समिधा (यज्ञ काष्ठ) अग्नि का सम्यक् प्रकार से समिंधन करने में समर्थ हो। आहवनीय अग्नि, समिधा तथा आहुतियों आदि के रूप भिन्न-भिन्न हो सकते हैं जिसके लिए शतपथ ब्राह्मण ११.६.२.६, बृहदारण्यक उपनिषद ६.२.२ तथा जैमिनीय ब्राह्मण १.४५ दृष्टव्य हैं।

आहुति स्तर को उत्पन्न करने की एक और विधि का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों में आता है। जैमिनीय ब्राह्मण १.२५० के अनुसार गायत्री ने गर्भ धारण किया और पुरोनुवाक्या को जन्म दिया। उससे याज्या का, उससे वषट्कार का, वषट्कार से आहुति का और आहुति से दक्षिणा का जन्म हुआ। इसी तथ्य को तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.५.७ तथा शतपथ ब्राह्मण १२.८.३.३० में भी कुछ अन्तर से कहा गया है।

शतपथ ब्राह्मण११.५.६.४ के अनुसार पय की आहुति ऋग्वेद की ऋचाओं का, आज्य आहुति यजुर्वेद की यजुओं का, सोमाहुति सामों का, मेदाहुति अथर्ववेद का तथा मधु आहुति इतिहास- पुराण आदि का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें सोमाहुति ऐसी है जिसका विशेष महत्व है। अन्य आहुतियां आयतन में बद्ध हैं, लेकिन सोमाहुति आयतन से रहित है (तैत्तिरीय संहिता ३.१.९.२)। यह विस्तीर्ण चेतना की, प्रजापति की अवस्था है (शतपथ १२.६.१.१)। शतपथ ब्राह्मण १०.५.४.१७ के अनुसार यदि चन्द्रमा आहुतियां बन जाए, नक्षत्र समिधा हो जाएं और आदित्य अग्नि हो जाए तो चन्द्रमा और नक्षत्रों के संयोग से चन्द्रमा रूपी आहुति की प्रतिष्ठा हो जाती है, उसका क्षय नहीं होता।

पूर्णाहुति होम का वर्णन शतपथ ब्राह्मण ९.२.३.४४ तथा १३.४.१.१० में उपलब्ध है।

आह्निक स्कन्द २.४.५ (कार्तिक मास व्रत धारियों के लिए आह्निक/नित्य कर्म कथन), स्क ३.२.५, स्क ४.१.३५, देवीभाग. ११.२ (० वर्णन), गरुड १.९४ (याज्ञवल्क्य प्रोक्त ०), गड १.२०५.३०, नारद १.२७ (० कर्म), १.५०.२०८ (सामवेदी हेतु ० कर्म), न १.६६ (दीक्षा कर्म हेतु ०), २.५६.५५, हरिवंश २.१०९ (० स्तोत्र : बलराम द्वारा प्रद्युम्न को कथन), ब्रह्मवैवर्त १.२६, ४.७५ (० कर्म), शिव ६.४ (० आचार), विष्णु धर्मोत्तर २.१५१ (राजा के लिए ० कथन); दृ. आचार, नित्यकर्म, सदाचार

आह्लाद भविष्य ३.३.१.३३ (कृष्ण के वैकुण्ठ धाम का अंश ?), ३.३.९.१६ (देशराज -देवकी पुत्र,

आह्लाद के जन्म पर देवों का उत्सव, बलराम का अंश), भ ३.३.१०.५ (० द्वारा मृगया हेतु महीपति से कराल नामक दिव्य अश्व की प्राप्ति), ३.३.११.५ (पार्वती से वरदान रूप में सुरत्व की प्राप्ति), ३.३.१२.२८ (भ्राता कृष्णांश की सेना में गजों का आधिपत्य), ३.३.१२.३१ (माता को प्रसन्न करने के लिए डमरु धारण करना), भ ३.३.१३.२३ (नेत्रसिंह -कन्या स्वर्णवती पर आसक्ति, बंधन प्राप्ति), ३.३.१३.१०५ (नेत्रसिंह से युद्ध के लिए देव से पपीहक हय की प्राप्ति), ३.३.१३.१२० (नेत्रसिंह -भ्राता हरानन्द से बंधनग्रस्त होने पर स्वर्णवती पत्नी द्वारा मुक्ति का उद्योग), भ ३.३.१४.१ (स्वर्णवती से जयन्त -अंश इन्दुल पुत्र प्राप्ति), भ ३.३.१५.११ (देवी द्वारा ० की कुण्ड भरण रूपी परीक्षा, वरदान), ३.३.२४.६४ (० द्वारा गुरु गोरखनाथ से संजीवनी विद्या प्राप्ति), ३.३.२५.१८ (बलभद्र/राम का अंश), ३.३.३२.२०५ (युद्ध में रक्तबीज -अंश चामुण्ड का वध), भ ३.३.३२.२२३ (० द्वारा कलि का कार्य पूर्ण करने पर कलि द्वारा ० की स्तुति, ० द्वारा पृथ्वीराज की आंखों को नीला करना, गंधमादन पर्वत पर योग हेतु गमन)

इ स्कन्द ५.१.४.३३ (ब्रह्मा से उत्पन्न इकार अग्नि का भुक्त अन्न रूपी भोजन पाकर संतुष्ट होना), ५.१.४.४७ (इकार अग्नि का सौम्य तेज/चन्द्रमा में स्थान पाना)

इक्षु ब्रह्माण्ड १.२.१७.७ (किम्पुरुष/हरिवर्ष का एक वृक्ष, महिमा), १.२.१९.९६ (शाक द्वीप की एक नदी), ३.४.३१.१८ (इक्षुसार : सात महासमुद्रों में से एक), मत्स्य १२२.३२ (शाक द्वीप की एक नदी, कुहू उपनाम), १९१.४९ (इक्षु -नर्मदा संगम का संक्षिप्त माहात्म्य : गाणपत्य प्राप्ति), वायु ४५.९६ (हिमालय से उद्भूत एक नदी)

टिप्पणी : उणादि कोश ३.१५७ में इक्षु की व्युत्पत्ति इष्-इच्छायाम् धातु से कही गई है। यह हो सकता है कि इक्षु इषु या तीर की पूर्व रूप हो। साधक के अंदर जो दिव्य पर्जन्य वृष्टि होती है, उससे उसकी इन्द्रियों को इक्षु या मधु प्राप्त होता है। इस आनन्द को अन्तर्मुखी करके इसे ऊर्ध्वगामी इषु/तीर का रूप देना होता है। यह ऊर्जा उर्ध्वगामी तभी होगी जब पार्थिव स्तर की प्रवृत्तियां, जिन्हें पितर कह सकते हैं, तृप्त हो जाएंगी। मैत्रायणी संहिता १.१०.१७ में इक्षुशलाका को पितरों का रूप कहा गया है। भावनोपनिषद २३ में काम के धनुष को इक्षुधनुष कहा गया है जिससे वह शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गन्ध नामक ५ तन्मात्राओं रूपी ५ पुष्पबाण चलाता है। इसके अतिरिक्त मैत्रायणी संहिता ३.७.९ में प्रजापति के पक्ष्मों को अश्ववाल और भुवों को इक्षुकाण्ड कहा गया है जिसका निहितार्थ अपेक्षित है। अथर्ववेद परिशिष्ट ९.२.१ में तिलधेनु दान विधि के संदर्भ में तिल धेनु की जंघाओं में इक्षुकाण्ड रखने का उल्लेख है।

इक्षुक्षेप वराह ८०.१ (० पर्वत शिखर पर उदुम्बर वन महिमा कथन)

इक्षुमती मत्स्य २२.१७ (नदी, पितरों को प्रिय), विष्णु २.१३.५३ (० नदी के तट पर कपिल ऋषि के आश्रम में आने के लिए सौवीरराज का उद्योग, जडभरत प्रसंग), भागवत ५.१०.१ (वही), वा.रामायण १.७०.३ (० नदी तट पर राजा कुशध्वज की सांकाश्या नगरी की स्थिति), विष्णु धर्मोत्तर १.२१५.४८ (० नदी के चक्र वाहन का उल्लेख), कथासरित् ६.२.१२० (० नदी तट पर सुप्त राजपुत्र को देवियों द्वारा शाप की कथा)

इक्षुला मत्स्य ११४.३१ (महेन्द्र पर्वत से उद्भूत एक नदी)

इक्ष्वाकु मत्स्य ११.४० (वैवस्वत मनु के १० पुत्रों में एक, इल -अनुज), १२.१० (० द्वारा इल अग्रज को पुरुष रूप में लाने के लिए अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान), १२.२६ (० वंश वर्णन), पद्म १.८.११६ (स्त्रीरूप में परिणत सुद्युम्न को पुरुष रूप में लाने के

लिए ० द्वारा अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान), प २.४२+ (मनु -पुत्र, सुदेवा -पति, वन में शूकरराज का वध, शूकर का मृत्यु पर दिव्य गंधर्व रूप धारण करना), ५.१०९.२ (ब्राह्मण, मृत्यु पश्चात यम से संवाद, यम द्वारा पुराण श्रवण का परामर्श, पुनः संजीवन पर जाबालि ऋषि द्वारा शिव भक्ति का उपदेश), ६.२४१.७४ (० कुल की परशुराम के क्षत्रिय संहार से अप्रभाविता), देवीभाग ७.२.१७ (वैवस्वत मनु -पुत्र, वंश वर्णन), ७.८.५१ (मनु की छींक/क्षुव से उत्पत्ति, विकुक्षि आदि १०० पुत्र प्राप्ति, पुत्रों को विभिन्न दिशाओं में नियुक्त करना, विकुक्षि पुत्र को निर्वासित करना), स्कन्द ४.२.८४.७० (ऐक्ष्वाकव तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य : अघ नाशक), स्क ७.१.९०.१३ (० द्वारा वृषभेश्वर लिंग की आराधना से राज्य व पुत्र आदि प्राप्ति), वामन ६४.६२ (इक्ष्वाकु -पुत्र शकुनि द्वारा जाबालि ऋषि के बन्धन काटने का उद्योग), विष्णु धर्मोत्तर १.१४ (० चरित्र महिमा), वा.रामायण १.४७.११ (० वंश वर्णन), ७.७९.५ (० के अवरज पुत्र दण्ड के राज्य के नाश की कथा), वायु ८८.८ (० वंश वर्णन), विष्णु ४.२.११ (० वंश वर्णन), भागवत ९.६.४ (० वंश वर्णन), ब्रह्माण्ड २.३.६३.८ (० द्वारा १०० पुत्रों को दिशाओं में नियुक्त करना, ० -पुत्र विकुक्षि का वृत्तांत), भविष्य ३.४.२६.३२ (वैवस्वत मनु -पुत्र ० का देवों द्वारा भूमि पर राज्याभिषेक), योगवासिष्ठ ६.१.११७+ (इक्ष्वाकु द्वारा मनु से सांसारिक जंजाल से ऊपर उठने के उपाय की पृच्छा, मनु द्वारा देह भावना से ऊपर उठने का उपदेश, योग की सात भूमिकाओं का वर्णन, अहं भावना के त्याग का उपदेश), महाभारत शान्ति १९९+ (राजा इक्ष्वाकु का जापक ब्राह्मण से पुण्य दान सम्बन्धी विवाद, जापक ब्राह्मण के पुण्यों से जापक व इक्ष्वाकु, दोनों का ब्रह्म से मिलन),

टिप्पणी : इक्ष्वाकु शब्द केवल ऋग्वेद १०.६०.४ तथा अथर्ववेद १९.३९.९ में प्रकट हुआ है। ऋग्वेद की ऋचा के अनुसार पांच कृष्टियों /इन्द्रियों के अंतर्मुखी होने पर इक्ष्वाकु धन प्राप्त करता है। इक्ष्वाकु शब्द को वाक् के रूप में समझ सकते हैं अर्थात हमारी बाहरी अभिव्यक्तियां, इन्द्रियां इक्षु या मधु से जुडी हुई हैं। लेकिन यह इक्षु बाह्य संसार में नहीं, अपितु हमारे अंदर दिव्य वर्षा से उत्पन्न होता है। पुराणों में इक्ष्वाकु को इड/वर्षा का अनुज कहने का तात्पर्य यही है। पुराणों की अधिकांश कथाएं यम, नियम आदि द्वारा इस मधु को प्राप्त करने से सम्बन्धित हैं।

इच्छा विष्णु १.८.२० (इच्छा श्री का रूप, काम भगवान का रूप), शिव ६.१६.४९ (इच्छा, ज्ञान व क्रिया रूपी शिव की दृष्टि त्रय का जीव में इन्द्रिय ज्ञान बनना, आनंद शक्ति से नाद व बिन्दु, मकार से ० की क्रमिक उत्पत्ति वर्णन), स्कन्द ४.१.१३.१६ (ज्ञान शक्ति शिव, इच्छा शक्ति पार्वती ; ज्ञान व इच्छा के मिलन से क्रिया शक्ति का उदय), स्क ७.१.५७+ (इच्छा, क्रिया, ज्ञान, देवियों के प्रतीक रूप में उमा, भैरवी व अजा देवियां), नारद १.६३.२८ (शिव में इच्छा शक्तियों के लय होने पर सावयव शक्ति का उदय, सावयव शक्ति में ज्ञान व क्रिया शक्तियों का उत्कर्ष -अपकर्ष कथन), योगवासिष्ठ ६.२.१ (० चिकित्सा योग वर्णन), कथासरित् ९.४.१९३ (इच्छाभरण : भोगवर्मा वणिक का मित्र), लिंग १.३४.२१ (पाशुपत योग से अणिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, इच्छा, काम आदि की प्राप्ति), १.८८.२२ (वही), २.२७.१६ (नंदा व्यूह के प्रथम आवरण में स्थित ८ शक्तियों में से एक), द्र. कामना, अनिच्छासेन महाभारत आदि १००.१०२ (भीष्म द्वारा पिता से स्वच्छन्द मृत्यु का वरदान प्राप्त करना), वन २.३४ (रागाभिभूत पुरुष से काम, काम से इच्छा, इच्छा से तृष्णा आदि की उत्पत्ति का उल्लेख), भीष्म ३१.२७ (इच्छा व द्वेष के द्वन्द में सब भूतों के मोहित होने का उल्लेख), शान्ति १५९.७ (इच्छा, द्वेष, ताप आदि की अज्ञान के अन्तर्गत परिगणना), २७४.६ (धैर्य द्वारा इच्छा, द्वेष व काम के निवारण का उल्लेख),

टिप्पणी : पौराणिक साहित्य में इच्छा को शक्ति या देवी का जो रूप दिया गया है, वैदिक साहित्य में उसकी पुनरावृत्ति उपनिषदों के सिवाय अन्यत्र नहीं होती। वैदिक साहित्य में इच्छा शब्द का प्रयोग प्रायः क्रिया के रूप में (इच्छति आदि) हुआ है। भावनोपनिषद २ में क्रियाशक्ति को पीठ, ज्ञान शक्ति को कुण्डली और इच्छाशक्ति को महात्रिपुरसुन्दरी कहा गया है। इसका निहितार्थ यह हो सकता है कि कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने पर वह इच्छाशक्ति के जाग्रत होने का आधार बनती है। यह जानना महत्वपूर्ण है कि इच्छाशक्ति देवी का रूप कैसे धारण कर सकती है। सीतोपनिषद में इच्छा शक्ति का विभाजन तीन रूपों योग शक्ति, भोगशक्ति व वीरशक्ति में किया गया है। शिव पुराण में मकार से इच्छा शक्ति, उकार से ज्ञान शक्ति व अ कार से क्रिया शक्ति का प्रादुर्भाव कहा गया है जबकि कालाग्निरुद्रोपनिषद २ में त्रिपुण्ड्र की तीन रेखाओं के संदर्भ में क्रिया शक्ति का सम्बन्ध अकार व ऋग्वेद से, इच्छा शक्ति का उकार व यजुर्वेद से तथा ज्ञान शक्ति का मकार व सामवेद आदि से कहा गया है। मैत्रायणी उपनिषद ६.२८ में इच्छामय इषु/तीर का उल्लेख है। महोपनिषद ४.११४ के अनुसार अपनी आत्मा के अवलोकन की इच्छा मोह का क्षय करने वाली है, जबकि इच्छामात्र अविद्या है जिसका नाश करना ही मोक्ष को प्राप्त होना है। इच्छा, ज्ञान आदि के संदर्भ में कोशों में न्याय सिद्धांत से यह श्लोक प्रायः उद्धृत किया जाता है :

आत्मजन्या भवेदिच्छा इच्छाजन्या भवेत् कृतिः।
कृतिजन्या भवेच्चेष्टा चेष्टाजन्या भवेत् क्रिया।।

विष्णु पुराण में विष्णु के काम व लक्ष्मी के इच्छा शक्ति के उल्लेख के संदर्भ में तैत्तिरीय ब्राह्मण २.२.६.६ में उल्लेख है कि काम (आनन्द के) समुद्र की भांति है। शिव पुराण में भी इच्छा के मूल के रूप में आनन्द का उल्लेख है। काम से दक्षिणा की प्राप्ति होती है। ऋग्वेद १०.१७७.१ के अनुसार समुद्र के अन्दर कविगण विशिष्ट दर्शन करते हैं जबकि वेधागण (?) मरीचियों के पद की इच्छा करते हैं। जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण ३.६.७.६ इस ऋचा की व्याख्या में कहता है कि पुरुष ही समुद्र है। इस पुरुष में अन्तर्वाक् के दर्शन करने होते हैं। अग्नि, वायु, आदित्य और चन्द्रमा मरीचियों की भांति हैं। इन देवताओं के पद नहीं हैं। इनके जिन पदों की इच्छा की जाती है, उससे वह मर्त्य स्तर को प्राप्त होते हैं(?)। काम और इच्छा के संदर्भ में ऋग्वेद ३.५४.२ व ६.५८.३ की व्याख्या अपेक्षित है।

जिस प्रकार लोक में प्यासे को पानी की इच्छा, भूखे को अन्न की इच्छा होती है, इसी प्रकार ऋग्वेद की ऋचाओं में विभिन्न देवताओं की इच्छाओं का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद ३.१८.३ आदि के अनुसार अग्नि की इच्छा घृत प्राप्ति की रहती है। शतपथ ब्राह्मण के ६, ७, ८ व ९ काण्डों में आहवनीय अग्नि के चयन की पांच चितियों (परतों, प्रस्तारों) का वर्णन किया गया है जिनमें प्रत्येक चिति के लिए यही उल्लेख आता है कि चेतन होकर चिति की इच्छा करे। चिति की इच्छा होने के पश्चात स्वयमातृण्णा, नाकसद, कूर्म, छन्दस्या, अन्न आदि आदि नामों वाली इष्टकाओं (ईंटों) की स्थापना की जाती है। इच्छा, इष्, इष्टका, इष्टि आदि शब्दों के मूल में इच्छा शब्द ही निहित है। लेकिन विभिन्न चितियों में इष्टकाओं की स्थापना से अग्नि का विकास कैसे संभव है जब तक कि अग्नि को घृत (सोम और अग्नि का मिश्रित रूप) की प्राप्ति न होती हो? कालाग्निरुद्रोपनिषद २ में इच्छाशक्ति का सम्बन्ध दक्षिणाग्नि से स्थापित किया गया है। कर्मकाण्ड में दक्षिणाग्नि पर ओदन का पाक किया जाता है। शतपथ ब्राह्मण १४.९.४.१३ में भी विभिन्न गुणों वाले पुत्र-पुत्रियों की प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रकार के ओदनों के भक्षण का उल्लेख किया गया है। ओदन उदान प्राण का रूप होता है। अतः इष्टकाओं को भी उदान प्राण का रूप कहा जा सकता है।

जिस प्रकार अग्नि की इच्छा घृत प्राप्ति की होती है, उसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण ६.३.३.११ तथा तैत्तिरीय संहिता ४.१.२.३ आदि में अश्व/वाजी के लिए कहा गया है कि वह रुचि/दीप्ति द्वारा पृथिवी व अग्नि की इच्छा करे। वाजी जहां संकेत करता है, वहीं से यज्ञ कार्यार्थ मिट्टी का खनन किया जाता है। तैत्तिरीय संहिता ५.१.२.६ के अनुसार अश्व के चक्षुओं में वह शक्ति है जिससे वह अग्नि की दीप्ति/रुचि का ज्ञान कर लेता है। शतपथ ब्राह्मण १३.८.२.५ आदि में सविता द्वारा शरीर से पृथिवी लोक की इच्छा करने का उल्लेख है। ऊपर अग्नि के संदर्भ में जिन चितियों की स्थापना कही गई है, चितियों की स्थापना के द्वारा अग्नि को सुपर्ण का, वाजी का रूप देना होता है जो उडने में समर्थ हो सके।

ऋग्वेद १.२५.१६, ४.१८.१० व ६.२८.५ में गायों की इच्छा का उल्लेख है। ऋग्वेद १.२५.१६ में धीतियों/बुद्धियों की तुलना गायों से की गई है जो गव्यूति/गोष्ठ में जाकर विराट के दर्शन करना चाहती हैं। ऋग्वेद ४.१८.१० के अनुसार गौ का वत्स इन्द्र है जिसे वह चाटती है और इच्छा करती है कि उसके शरीर में गातु (यज्ञ का मार्ग) की स्थापना हो जाए। ऋग्वेद ६.२८.५ के अनुसार गौ साम का प्रथम भक्षण करती है (अर्थात सोम को प्रथम चरण में शुद्ध करके उसे पयः रूप में परिवर्तित करती है)। इस ऋचा के अनुसार जो गौ है, वही इन्द्र है। ऋग्वेद १.८४.१५ के संदर्भ में भाष्यकार सायण का अनुमान है कि सुषुम्ना नाडी में रश्मि/ज्योति का स्थापित होना ही गौ है।

ऋग्वेद ५.३१.१२ आदि ऋचाओं में सार्वत्रिक रूप से इन्द्र द्वारा सुतसोम की प्राप्ति की इच्छा का उल्लेख आता है जिसे वह अपने सखाओं से प्राप्त करता है। ऋग्वेद १०.१०२.४ में इन्द्र द्वारा श्रव की इच्छा का भी उल्लेख है। बदले में इन्द्र अपने सखाओं के लिए जीवन की (ऋग्वेद १.८०.६) इच्छा करता है। ऋग्वेद १.८४.१४ के अनुसार इन्द्र दधीचि ऋषि के उस अश्वशीर्ष की इच्छा करता है जिसके द्वारा दधीचि ने मधु विद्या का उपदेश दिया था। ऋग्वेद ५.३०.८ के अनुसार इन्द्र अपने स्तोता के लिए गातु की इच्छा करते हुए उसका नमुचि (न छोडने वाला हर्ष) का शिर काट देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्द्र नमुचि के शीर्ष के स्थान पर अश्व शीर्ष जोड देता होगा।

ऋग्वेद ९.११२.४ में मण्डूक द्वारा वारि की इच्छा, १०.६७.४ में बृहस्पति द्वारा तम से ज्योति की इच्छा तथा ९.४७.४ में सोम द्वारा विप्र के लिए रत्न की इच्छा आदि के उल्लेख हैं। जैमिनीय ब्राह्मण १.१४०, २.२०० व ३.११८ में आपः रूपी देवों की पत्नियों द्वारा देवों से मिथुन की इच्छा करने और पुष्कर आदि पुत्रों को जन्म देने का वर्णन है। तैत्तिरीय संहिता ४.७.१५.४ में अश्विनी-द्वय संसद की इच्छा करते हैं। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३३९ में द्वादशाह यज्ञ के संदर्भ में वर्णन आता है कि प्रजापति ने देवों से अनुरोध किया कि वे प्रजापति के शरीर की इच्छा करें। देवों द्वारा द्वादशाह के द्वारा इच्छा करने पर वह शरीर यज्ञमय बन गया।

स्वयं यजमान अपने लिए क्या इच्छा करता है, इस संदर्भ में ऋग्वेद ६.२८.५ में यजमान द्वारा हृदय और मन से इन्द्र की इच्छा की गई है (यह उल्लेखनीय है कि अधिकांश ऋचाओं में केवल मन से इच्छा करने का उल्लेख आता है। यह ऋचा विशिष्ट प्रकार की है)। ऋग्वेद ९.९३.३ व ४ में विप्र धी और गी/स्तुति द्वारा प्रमति की इच्छा करते हैं। ऋग्वेद ४.४१.९ में ऋषि मनीषा द्वारा इन्द्र और वरुण से द्रविण की इच्छा करता है। ऋग्वेद १०.५१.३ में आपः व ओषधियों आदि के अन्दर छिपी हुई अग्नि के प्रकट होने की इच्छा की गई है। ऋग्वेद ३.२.६ में ऋषि अग्नि से दुव/द्रविण की

इच्छा करता है। ऋग्वेद ७.१०२.१ में पर्जन्य से कामना की गई है कि वह हमारे लिए यवस की इच्छा करे। ऐतरेय ब्राह्मण १.८ तथा जैमिनीय ब्राह्मण २.२५ में वर्णन आता है कि आदित्य रूपी यजमान को किस दिशा से किस वस्तु की प्राप्ति की इच्छा करनी चाहिए। प्राची दिशा में तेज और ब्रह्मवर्चस की, दक्षिण में अन्न और रथ की, पश्चिम में पशु की तथा उत्तर दिशा में सोम पान, रूप और वर्ण की, उर्ध्व दिशा में क्षत्र व राष्ट्र की, अन्तरिक्ष में प्रकाश इत्यादि की इच्छा करनी चाहिए। संभव है कि इन सभी इच्छाओं का समावेश शतपथ ब्राह्मण ६-९ काण्डों में अग्निचयन के अंतर्गत किया गया हो। जैमिनीय ब्राह्मण १.२६६ में वर्णन आता है कि जब माध्यंदिन और सायं सवनों के माध्यम से क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में श्रद्धा जाग्रत होती है तो वे ब्राह्मण की इच्छा करते हैं।

लौकिक स्वप्नों में अतृप्त इच्छाओं के प्रकट होने के संदर्भ में अथर्ववेद १९.५६.३ व २०.१८.३ के मन्त्र दृष्टव्य हैं।

इडस्पति भविष्य ३.४.१८.४५ (आश्विनौ में से एक का नाम व महिमा), भागवत ४.१.७ (यज्ञपुरुष व दक्षिणा -पुत्र, १२ तुषित देवों में एक), ४.८.१८ (उत्तानपाद राजा का नाम)

इडस्पद वामन ३६.२४ (कुरुक्षेत्र के अंतर्गत इडास्पद तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य), पद्म ३.२६.७३ (वही)

इडा वायु ८५ (वैवस्वत मनु की इष्टि से ० की उत्पत्ति कथा), नारद २.४८.२२ (नाडी, काशी में वरुणा नदी का रूप), स्कन्द ४.१.५.२५ (नाडी, काशी में असी नदी का रूप); दृ. इला

टिप्पणी : वैदिक साहित्य में यज्ञ में प्रकट होने वाली इडा/आनंद का स्वरूप प्रतिदिन बदलता है। इस प्रकार आधी से लेकर आठ इडाओं तक का उल्लेख है। इन इडाओं से अश्विनौ देव गण भेषज कर्म करते हैं। इडाओं के एकीकृत रूप को, जो एकवचन में आता है, गौ, अदिति, देवी कहा जाता है और इस प्रकार वेदों में इडा, भारती व सरस्वती तीन देवियों के नाम एक साथ आते हैं, क्रम अलग हो सकता है। अग्नि को इडा रूपी गौ के पदों में रख देने से इडा के पद प्रकाशमय हो जाते हैं। इडा को पाक यज्ञिया कहा जाता है, अर्थात यज्ञ कर्म द्वारा इडा को सतत् पुष्ट करना होता है। यज्ञ में इडा के प्रतीक इड्ली नाम भोज्य वस्तु को भोजन के नाम पर केवल ओठों से छुआ लेने या अत्यल्प मात्रा में लेने का विधान है। उसका उपयोग तब तक नहीं किया जा सकता जब तक वह परिपक्व न हो जाए। श्री अरविन्द ने इडा को इन्ट्यूशन, अंतःप्रेरणा कहा है। जयशंकर प्रसाद की कामायनी का कथानक वस्तु इडा पर आधारित है जो शतपथ ब्राह्मण ११.२.७.२० पर आधारित है। श्रद्धा के पति मनु इडा की ओर आकृष्ट हो जाते हैं। अंत में श्रद्धा और इडा का एकीकरण हो जाता है और श्रद्धा मनु का हाथ पकड़कर स्वर्ग की ओर ले जाती है। - फतहसिंह

इडा भविष्य ३.४.१८.४४ (०का अश्विनौ की पत्नियां बनना, महिमा), अग्नि २१४.५ (शरीर की १० मुख्य नाड़ियों में से दो नाड़ियां), लक्ष्मी नारायण २.४८.८१ (इडा -पिंगला - सुषुम्ना नामक ब्रह्मा की पुत्रियों द्वारा कृष्ण का पति रूप में वरण); दृ. पिंगला

टिप्पणी : पुराणों, उपनिषदों और परवर्ती. योग साहित्य में जो इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाडियों का वर्णन आता है, वैदिक मन्त्रों में उसका रूप इडा, भारती और सरस्वती देवियों के रूप में प्रकट हुआ है (ऋग्वेद १.१४२.९, ३.४.८ आदि)। इन तीन देवियों के बर्हि में, इनके वास्तविक विराट रूप में स्थित होने की कामना की गई है (ऋग्वेद ५.५.८ आदि)। ब्राह्मण ग्रन्थों में अवि (असि व वरणा या पिंगला व इडा का प्रतीक) को सरस्वती का ग्रह कहा गया है, सरस्वती यहां आकर ठहर सकती है। ऐतरेय ब्राह्मण २.४ में प्राण, अपान और व्यान को तीन देवियां कहा गया है जिन्हें यजमान में स्थापित करने की आवश्यकता है। पुराणों में अविमुक्त क्षेत्र/काशी का विस्तार से वर्णन है। इडा की प्रकृति का विचार इला शब्द की टिप्पणी में किया गया है। ध्यान बिन्दु उपनिषद २०, योगतत्वोपनिषद ३७, त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद २.९६ योगशिखोपनिषद १.९३, योगचूडामणि उपनिषद ९८, तथा शाण्डिल्योपनिषद आदि में इडा-पिंगला द्वारा प्राणायाम के उसी प्रकार का वर्णन किया गया है जो लोक में भली भांति ज्ञात है और गौतम बुद्ध ने जिस पद्धति की निरर्थकता का अनुभव करके विपश्यना ध्यान की पद्धति को विकसित किया। चूंकि उपनिषदों के शब्द बहुत सारगर्भित होते हैं, अतः यह अपेक्षित है कि इडा-पिंगला को केवल शाब्दिक अर्थों में न लेकर उनके गूढ तत्व की ओर ध्यान दिया जाए।

जाबालदर्शनोपनिषद ४.३५ में इडा, पिंगला और कुण्डली में प्राणों के परस्पर योगों से उत्तरायण, दक्षिणायन, अमावास्या, सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण की स्थिति का वर्णन किया गया है।

इत्यक कथासरित् ४.३.५७ (वत्सराज उदयन का प्रतीहार/द्वारपाल, नित्योदित उपनाम, गोमुख - पिता), कस १५.२.७२ (कलिंग सेना -मदनवेग पुत्र), १६.२.७ (० द्वारा सुरतमंजरी का हरण), १६.२.२१२ (० द्वारा सुरतमंजरी हरण पर राजा नरवाहन दत्त द्वारा कठोर दण्ड का आदेश व क्षमा दान)

इध्म विष्णु १.८.२१ (इध्मा श्री का रूप, भगवान कुश का रूप), वराह १८.२५ (अग्नि का एक नाम, निरुक्ति) महाभारत आदिपर्व ३१.५ (कश्यप के पुत्रेष्टि यज्ञ में इन्द्र और बालखिल्य ऋषियों द्वारा इध्म आहरण का कार्य, इन्द्र द्वारा बालखिल्यों का अपमान)

इध्मजिह्व भागवत ५.१.२५ (प्रियव्रत व बर्हिष्मती -पुत्र), देवीभाग ८.४.२१ (प्रियव्रत व बर्हिष्मती -पुत्र, प्लक्ष द्वीप स्वामी)

इध्मवाह मत्स्य २०२.८ (अगस्त्य - पुत्र ० का क्रतु का दत्तक पुत्र बनना), भागवत ४.२८.३२ (दृढच्युत -पुत्र, अगस्त्य -पौत्र), स्कन्द ३.१.३५.१ (पाण्ड्य देश का ब्राह्मण, रुचि -पति, दुर्विनीत -पिता, पुत्र द्वारा अगम्यागमन अपराध व प्रायश्चित्त वर्णन)

टिप्पणी : यज्ञ कार्य में अध्वर्यु नामक ऋत्विज या उसका सहायक अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए वन से काष्ठ का आहरण करता है। यह काष्ठ इध्म कहलाता है। इध्म अर्थात जिससे अग्नि का इन्धन किया जा सके। यह इध्म या तो बिभीतक वृक्ष का हो सकता है (तैत्तिरीय संहिता २.१.५.७ आदि), या विकंकत वृक्ष का हो सकता है (अथर्ववेद ५.८.१) या न्यग्रोध, उदुम्बर, अश्वत्थ, प्लक्ष आदि वनस्पति कहे जाने वाले वृक्षों का (तैत्तिरीय संहिता ३.४.८.४, ५.२.५.६)। साधना में यह महत्वपूर्ण है कि किस वृक्ष की काष्ठ को इध्म बनाया जाए। उदाहरण के लिए हमारा व्यक्तित्व जो बिभीतक का वृक्ष बना हुआ है, जिसे चारों ओर से मृत्यु भयभीत कर रही है, से इध्म का चयन करना है। वनस्पति की यह विशेषता है कि वह सारे संवत्सर में ऊर्जा ग्रहण करती रहती है और फिर फल देती है। वह फल देने के पश्चात मरती नहीं है (दूसरी ओर, ओषधि जैसे गेहूं, चावल आदि की विशेषता यह है कि यह फल देने के पश्चात समाप्त हो जाती है)। अतः साधना में इध्म प्राप्ति के लिए यह अपेक्षित है कि तप द्वारा संवत्सर के ३६० अहोरात्रों की ऊर्जा का समावेश अपने अंदर किया जाए और उससे इध्म की प्राप्ति की जाए (काठक संहिता ६.६, ऋग्वेद ४.१२.२)।

वैदिक निघंटु में इध्म को पद नामों के अन्तर्गत रखा गया है। इसी तथ्य को शतपथ ब्राह्मण ३.६.३.९ में इस प्रकार कहा गया है कि इध्म को ऊपर उठाते हैं। तैत्तिरीय आरण्यक १०.६४.१ में शरीर को इध्म बनाने का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण १२.९.१.११ में अस्थियों को इध्म कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण ११.२.६.२ में प्राणों को इध्म कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.२.१०.३ में आत्मा को ही इध्म बनाने का उल्लेख है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.३.७.१ में २१ इध्म काष्ठों का उल्लेख है। यह सब इध्म की क्रमिक अवस्थाएं प्रतीत होती हैं।

विष्णु पुराण में इध्म को लक्ष्मी और कुश को विष्णु कहे जाने के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि यज्ञ में १० आयुधों की कल्पना की गई है जिनका उपयोग देवतागण असुरों के विरुद्ध करते हैं। इनमें से इध्म और बर्हि का युगल एक आयुध है। इध्म आत्मा का और बर्हि प्रजा का प्रतीक है (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.२.१०.३)। दूसरे शब्दों में, इध्म एकांगी साधना या तप का और बर्हि सर्वांगीण साधना का, जब व्यक्तित्व का अंग-प्रत्यंग परमेश्वर की स्तुति से आप्लावित हो जाता है, का प्रतीक है। बर्हि को आपः या जल का श्रेष्ठतम रूप कहा जाता है। इध्म और बर्हि के युगल की उपमा वनस्पति और ओषधि से भी की गई है (शतपथ ब्राह्मण ११.१.७.२ आदि)। अतः यह बर्हि घास ऐसी ओषधि है जो तन, मन सबकी चिकित्सा करती है। पुराण में विष्णु को कुश कहने का तात्पर्य इसी बर्हि से है।

पुराणों में इध्मजिह्व को प्रियव्रत और बर्हिष्मती के पुत्र कहे जाने के संदर्भ में, इध्मजिह्व अग्नि को कह सकते हैं। प्रियव्रत को एकांगी साधना या आत्मा का प्रतीक और बर्हिष्मती को सर्वांगीण साधना या बर्हि का प्रतीक कह सकते हैं। इन दोनों के मिलन से इध्मजिह्व का प्राकट्य होता है।

पुराणों में कथित अगस्त्य - पुत्र इध्मवाह के संदर्भ में, सामवेद १.१३३ साम का ऋषि दृढच्युत-पुत्र इध्मवाह है। इस साम का गान इध्म आहरण के समय किया जाता है। जैमिनीय ब्राह्मण ३.२७६ तथा आर्षेय ब्राह्मण१.१३३ में इस साम की व्याख्या उपलब्ध है। इस साम में उल्लेख आता है कि वे ही अग्नि का ईंधन करने में समर्थ होते हैं जिनका सखा युवा इन्द्र है। स्वयं इन्द्र शब्द की निरुक्ति भी इन्ध धातु के आधार पर की जाती है। इन्द्र अर्थात अपने कर्मों को जला देने वाला, कर्मों की निर्जरा कर देने वाला। अगस्त्य को संसार तरंगों से आप्लावित काल समुद्र का पान करने वाला कहा गया है। उनका पुत्र इध्मवाह है। अन्य संदर्भों की व्याख्या अपेक्षित है।

यज्ञ कार्य में इध्म और समिधा, दो प्रकार की काष्ठों का उल्लेख आता है जिन्हें सामान्य रूप में एक ही माना जाता है। लेकिन अथर्ववेद १९.६४.२ में इध्म और समिधा, दोनों के द्वारा अग्नि का वर्धन करने का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण १.३.५.१ के अनुसार यज्ञ में अध्वर्यु नामक ऋत्विज इध्म द्वारा अग्नि का इन्धन करता है, जबकि होता ऋत्विज सामिधेनी मंत्रों द्वारा अग्नि का समिन्धन करता है। गोपथ ब्राह्मण २.१.२ के अनुसार इध्म का पुरातन रूप समिधा है। इन कथनों से ऐसा प्रतीत होता है कि इध्म गार्हपत्य अग्नि और समिधा आहवनीय अग्नि या देवों की अग्नि से संबंधित है। -डा० अभय देव शर्मा से वार्तालाप के आधार पर

इनः ब्रह्माण्ड ३.४.१.१८ (अमिताभ देवगण में एक का नाम), भागवत १०.६.२२ (इनः विष्णु से कण्ठ की रक्षा की प्रार्थना)

टिप्पणी : इनः शब्द ऋग्वेद की कई ऋचाओं में प्रकट हुआ है। अग्नि व इन्द्र को इनः कहा गया है जिसका सायण भाष्य में अर्थ ईश्वर किया जाता है क्योंकि यास्क के निघण्टु में इनइनः शब्द ईश्वर नामों के अन्तर्गत आया है। अमरकोश आदि में इनः का अर्थ सूर्य व प्रभु किया गया है। यास्क निघण्टु में इनइनः शब्द के आधार पर यह प्रतीत होता है कि इनः क्रमशः विकसित होने वाली अवस्था है। ऋग्वेद १.१४९.१ में इनः के वसुओं के पद में आने पर अग्नि के इनः बनने (?) का उल्लेख है। यह अग्नि की सूर्य की ओर

विकासमान अवस्था हो सकती है। ऋग्वेद ३.४९.२ में सत्वों और बलों द्वारा इन्द्र के इनतमः होने का उल्लेख है। ऋग्वेद १.१६४.२१ में सूर्य को इनः कहा गया है। ऋग्वेद ९.७७.४ के अनुसार इन्दु सोम इनः के सदन में गर्भ स्थापित करता है। ऋग्वेद ७.३६.२ के अनुसार मित्रावरुण-द्वय में वरुण की पदवी इनः है जबकि मित्र की जनः है। इस आधार पर ऋग्वेद ८.३३.५ में इन्द्र के लिए इनः विशेषण को वरुण की पश्चिम दिशा से सम्बद्ध किया जा सकता है।

सेना/सेन शब्द की व्युत्पत्ति स-इनः, इनः सहित रूप में की जाती है। पौराणिक साहित्य के अनुसार सेना/सेन केवल सूर्यलोक तक ही सीमित नहीं रहती, अपितु चन्द्रलोक तक जाती है। अंग्रेजी भाषा के शब्द इन् के आधार पर इनः को अंदर प्रवेश करके क्रमशः प्रकाश का दर्शन करने वाली अवस्था कहा जा सकता है। धातु कोश में इणः धातु का अर्थ प्रतिध्वनि भी किया गया है।

इन्दिरा देवीभाग १२.६.१९ (गायत्री सहस्रनामों में से एक), नारद १.१२०.४१ (० एकादशी व्रत विधि), पद्म ६.५८ (० एकादशी व्रत विधि व माहात्म्य, राजा इन्द्रसेन के पितरों का उद्धार), भागवत १०.३१.१ (लक्ष्मी का नाम ?), ब्रह्माण्ड ३.४.३५.९८ (महापद्माटवी में क्रीडा करने वाली ललिता की एक सहचरी), वायु १०८.७९ (एक नदी का नाम), लक्ष्मी नारायण २.१८९.७१ (श्री हरि द्वारा ० नदी में स्नान पर वेतालों का प्राकट्य, कृष्ण द्वारा मोक्ष प्रदान)

इन्दीवर मार्कण्डेय ६३.१३ (इन्दीवराक्ष विद्याधर -कन्या मनोरमा के स्वरोचिष से मिलन की कथा), कथासरित् ७.८.७२ (इन्दीवरसेन : राजा परित्यागसेन व अधिकसंगमा -पुत्र, विमाता के कारण नगर से निर्वासन, दिव्य खड्ग प्राप्ति, यमदंष्ट्र राक्षस का वध, पूर्व जन्म वृत्तांत आदि), १२.२७.३३ (इन्दीवरप्रभा : कण्व मुनि की पुत्री ० का राजा चन्द्रावलोक की पत्नी बनना, पति द्वारा ब्रह्मराक्षस को संतुष्ट करने की कथा), कस १६.३.८ (चक्रवर्ती विश्वान्तर के पुत्र इन्दीवराक्ष द्वारा राजा वसन्ततिलक की पत्नी का सतीत्व नष्ट करने पर मरण)

इन्दु ब्रह्माण्ड १.२.१९.१३४ (चन्द्रमा का नाम, दक्ष द्वारा ० को २७ कन्याएं देना), ब्रड २.३.६५.२१ (वही), मत्स्य १२.२९ (विश्वग -पुत्र, युवनाश्व -पिता, इक्ष्वाकु वंश), लक्ष्मी नारायण २.१८८.१००, २.१८९.३८ (वायूना नगरी के राजा इन्दुराय द्वारा बालकृष्ण के स्वागत का वर्णन), कथासरित् ८.५.५१ (इन्दुमाली : विद्याधर -राजा, लीला पर्वत पर वास, सूर्यप्रभ -सेनानी प्रभास द्वारा वध), १२.५.२१९ (इन्दुप्रभ : मलय प्रभ राजा का पुत्र, दान पारमिता से सिद्धि प्राप्ति), कस १२.५.१६२, १२.५.३६९ (इन्दुकलश : राजपुत्र, भ्राता कनककलश द्वारा राज्य से निष्कासन पर विनीतमति बोधिसत्व से प्राप्त खड्ग व अश्व की सहायता से राज्य प्राप्ति), १२.५.२८६ (इन्दुयशा : राजा इन्दुकेसरी की पुत्री, वणिक पुत्र मलयमाली द्वारा चित्रपट में इन्दुयशा का साक्षात्कार, ध्यान पारमिता का दृष्टांत), कस १२.१८.४ (इन्दुलेखा : धर्मध्वज राजा -भार्या, कर्ण उत्पल के आघात से घायल होना), योगवासिष्ठ ३.८६.३ (इन्दु नामक ब्राह्मण का शिव कृपा से १० ब्रह्मा रूपी १० पुत्र प्राप्त करना), ६.२.१७८.२८ (वही); द्र. चन्द्रमा, सोम

टिप्पणी : ऋग्वेद के नवम मण्डल में इन्दु, इन्दो, इन्दवः आदि शब्दों का बहुलता से प्रयोग हुआ है। जैसा कि भौतिक जगत में दृष्टिगोचर होता है, इन्दु/चन्द्रमा आकाश में २७ नक्षत्र समूहों का सेवन करता हुआ आगे बढ़ता है। पुराणों में इन नक्षत्रों को दक्ष प्रजापति की कन्याएं कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण ९.४.४.५ इत्यादि के सार्वत्रिक मन्त्र के अनुसार अग्नि का एक पक्ष इन्दु है जो दक्ष बनने पर हिरण्य पक्ष वाला श्येन बन सकता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१.३.३ में नक्षत्र देव रूपी (?) इन्द्र के लिए इन्दु का आह्वान किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि सूर्य की अनुपस्थिति में ही नक्षत्रों का दर्शन होता है। सूर्य के प्रकट होने पर इन नक्षत्रों को क्षत्र भाग प्राप्त होता है (शतपथ ब्राह्मण २.१.२.१८)। सूर्य को ही ब्राह्मण ग्रन्थों में इन्द्र की संज्ञा दी गई है (शतपथ ब्राह्मण १.६.४.१८ इत्यादि)। ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं, विशेषकर ९.११२.१ में इन्दु से इन्द्र के लिए परिस्रवित होने की कामना की गई है।

ध्यानबिन्दूपनिषद ८८ में शशि में निवास करने वाले बिन्दु को ही इन्दु कहा गया है जिसका सूर्य से संयोग अपेक्षित है। योगशिखोपनिषद १.१३३ में सोहं के अजपा जप में ह को सूर्य और स को इन्दु कहा गया है जिनका संयोग अपेक्षित है। ऋग्वेद ९.६.४, ९.९७.५६ तथा तैत्तिरीय संहिता ३.४.१.२ में इन्दु को द्रप्स/बूंद का रूप कहा गया है। ऋग्वेद ९.९७.४१ के अनुसार इन्दु और सूर्य के संयोग से ज्योति उत्पन्न होती है।

कथा सरित्सागर में वर्णित इन्दुकलश की संक्षिप्त कथा ऋग्वेद की ९.६५.१४, ९.८५.४, ९.८६.२२, ९.९६.९ तथा ९.९७.२२ इत्यादि ऋचाओं का प्रतिनिधित्व करती है। कर्मकाण्ड में इन्दु को कलश में भरने के लिए उसे अवि के बालों से निर्मित छलनी द्वारा पवित्र करना पड़ता है। इन्दुकलश के भ्राता के रूप में जिस कनककलश का उल्लेख है, वह संभवतः शुक्लयजुर्वेद १८.२२ के सार्वत्रिक मन्त्र में उक्त हिरण्य पक्ष वाला इन्दु हो सकता है। यद्यपि हिरण्य पक्ष को अमृत कहा गया है, तथापि यह इन्दु रूपी आत्मा (ऋग्वेद ९.२.१०, ९.८५.३) का केंद्रीय स्थल नहीं है, पक्ष मात्र है। कलश में इन्दु रूप में प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि यह सुआयुध वाला बने (ऋग्वेद

९.३१.६) तथा इसका रूप अश्व का हो जिसे ऋग्वेद की बहुत सी ऋचाओं जैसे ९.६६.२३ में अत्य/अश्व नाम दिया गया है तथा जिसे कथा में विनीतमति बोधिसत्व से खड्ग और अश्व की प्राप्ति के रूप में दिखाया गया है। ऋग्वेद ९.८६.२४ में इन्दु को विश्व मतियों द्वारा परिष्कृत करने का उल्लेख है।

कथा सरित्सागर में वर्णित मलयमाली व इन्दुयशा की कथा के संदर्भ में तैत्तिरीय ब्राह्मण १.५.२.६ तथा जैमिनीय ब्राह्मण २.४२९ में उल्लेख है कि पृथिवी पर नक्षत्रों का रूप चित्र रूप में ही होता है। अत: मलयमाली रूपी मर्त्य स्तर (मलय = मर्य) पर नक्षत्रों का प्राकट्य चित्र-विचित्र रूप में ही हो सकता है। मलयमाली की प्रेयसी इन्दुयशा को इन्दु के यश से पूर्ण पृथिवी अथवा द्युलोक अथवा नक्षत्र कह सकते हैं। यह उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत संदर्भ की कथा की ध्यान पारमिता के समान ही योगवासिष्ठ में इन्दु ब्राह्मण के पुत्रों की कथा में धारणा द्वारा अपेक्षित फल की प्राप्ति कही गई है। योगवासिष्ठ में इन्दु ब्राह्मण के १० पुत्र पांच ज्ञानेन्द्रियों व ५ कर्मेन्द्रियों के रूप हो सकते हैं। ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं में इन्दु के इन्द्रियों में क्षरित होने की कामना की गई है। कथासरित्सागर में इन्दुप्रभ का प्रजा की कामना पूर्ति हेतु कल्प वृक्ष बन जाना भी इसी तथ्य को निरूपित करता है। इन्दुप्रभ की दान पारमिता के संदर्भ में ऋग्वेद ९.९७.५५ उल्लेखनीय है।

इन्दुमती स्कन्द २.४.७.४० टीका (वेश्या, मूषिका द्वारा ० का दीप प्रबोधन), स्क ७.१.३७.३ (बृहद्रथ -भार्या, पूर्व जन्म में शूद्री, सोम तीर्थ में कंकण क्षेपण से रानी बनना), ७.३.४८.११ (दुष्ट राजा अप्रस्तुत की भार्या, पितरों के उद्धार हेतु पति को सत्परामर्श देना), पद्म २.१०४.२ (आयु राज -भार्या, नहुष -माता, हुण्ड दैत्य द्वारा नवजात पुत्र नहुष के हरण पर शोक, नारद द्वारा सांत्वना), देवीभाग ५.१८.१ (चन्द्रसेन व गुणवती - पुत्री, मन्दोदरी -भगिनी), वराह ९५.१८ (दैत्य कन्या ० के दर्शन पर सिन्धु द्वीप मुनि के वीर्य का स्खलन व महिषासुर उत्पति कथा), भविष्य ४.५३ (० वेश्या द्वारा संसार की नश्वरता का चिन्तन, वसिष्ठ से अचला सप्तमी व्रत प्राप्ति), ब्रह्माण्ड ३.४.४०.१०० (राजा दशरथ की माता), लक्ष्मी नारायण ३.५२.३७ (आयु -भार्या, हुण्ड दैत्य द्वारा नहुष पुत्र के हरण का प्रसंग), कथासरित् १७.५.१४० (० वृद्धा दासी द्वारा स्वयंप्रभा रानी का संदेश दैत्यराज त्रैलोक्य माली को देना)

टिप्पणी : शतपथ ब्राह्मण २.२.३.२८ तथा २.२.३.२३ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि साधक के भीतर स्थित अग्नि और इन्दु नामक सोम के मिलन से शक्ति निर्माण होता रहता है। इस शक्ति को धारण करने वाली देह को इन्दुमती कहते हैं। अन्य कई ऋचाओं जैसे ऋग्वेद ८.५०.३ में ईं रूपी अग्नि द्वारा इन्दु को पवित्र करने का उल्लेख है। पुराणों में इन्दुमती के एक रूप को वेश्या कहने से यह स्पष्ट होता है कि जीवात्मा इस इन्दु से प्राप्त शक्ति का व्यय क्षुद्र लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए करती रहती है। शतपथ ब्राह्मण ९.४.४.५ इत्यादि की सार्वत्रिक ऋचा में अग्नि के इन्दु श्येन रूप से ध्रुव रूप में स्थित होने की कामना की गई है जो भविष्य पुराण में वर्णित अचला सप्तमी व्रत से तुलनीय है।

पुराणों में वर्णित आयु-भार्या इन्दुमती के संदर्भ में ऋग्वेद की कई ऋचाओं जैसे ९.६४.१७, ९.६६.२३, ९.६७.८ तथा ९.९३.५ इत्यादि में आयुओं द्वारा इन्दु का मार्जन करने तथा बदले में इन्दु द्वारा आयु देने का उल्लेख है। ब्राह्मण ग्रन्थों में आयु को संवत्सर कहा गया है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद ९.९१.२ में नहुषों द्वारा इन्दु को शुद्ध करने का उल्लेख है।

इन्दुल भविष्य ३.३.१४.१ (आह्लाद व स्वर्णवती - पुत्र, जयन्त -अंश, महिमा), ३.३.१६.५३ (इन्द्र से शिक्षा प्राप्त करके पृथ्वी पर प्रत्यागमन, वड्वामृत हय की सहायता से मृत बन्धुओं को जीवित करना), ३.३.२३.८ (चित्ररेखा द्वारा माया से इन्दुल के हरण का वृत्तांत), ३.३.२९.५६ (इन्द्र द्वारा इन्दुल के वड्वामृत हय का हरण), भ ३.३.३२.१३८ (इन्दुल द्वारा मंकण राजा का बन्धन, मंकण से युद्ध में इन्दुल व मंकण दोनों की मृत्यु)

टिप्पणी : इन्दुल का अर्थ है जो इन्दु का लालन करे, उसको नष्ट न होने दे। इन्दुल के आह्लाद-पुत्र होने का मूल ऋग्वेद ९.६४.१६, ९.६४.१७ तथा ९.६६.११ में उपलब्ध है जहां इन्दु समुद्र में ऐसे प्रवेश करते हैं जैसे अस्त में धेनुएं। जैमिनीय ब्राह्मण ३.२२२ में उल्लेख है कि यह समुद्र समुद् है, अर्थात मोद या आनंद का, आह्लाद का समुद्र है। इन्दुल का इन्द्र के पास जाकर अश्व प्राप्त करने का मूल ऋग्वेद ९.६६.२८ में उपलब्ध है जहां उल्लेख है कि इन्दु का सुवन करने पर वह पवित्र में क्षरित होता है, जबकि उसका पुनन करने पर वह इन्द्र को प्राप्त होता है। इन्दुल की प्राप्ति की कामना रखने वाली चित्रलेखा को इन्दु शीर्षक के अंतर्गत वर्णित पृथिवी पर नक्षत्रों के चित्र रूप के आधार पर समझा जा सकता है। चूंकि मन भी चित्र-विचित्र है, अत: यह भी चित्रलेखा का प्रतिनिधि हो सकता है। इन्दुल व मंकणक के युद्ध के संदर्भ में भविष्य पुराण में मंकणक को कणक नाम भी दिया गया है जिस पर इन्दु शीर्षक में वर्णित इन्दुकलश व कनककलश की कथा की भांति विचार किया जा सकता है।

इन्द्र स्कन्द १.१.१५.४ (असुरों का पक्ष लेने वाले त्रिशिरा विश्वरूप की इन्द्र द्वारा हत्या पर ब्रह्महत्या द्वारा इन्द्र का अनुगमन, इन्द्र का सरोवर में छिपना, नहुष का इन्द्रपद पर आसीन होना व इन्द्रपद से पतन का वृत्तांत), १.१.१६.१९ (० द्वारा त्रिशिरा की हत्या के कारण प्राप्त ब्रह्महत्या को पृथ्वी,

वृक्ष आदि में विभाजित करना), १.१.१७.१६९ (० का वृत्र से युद्ध, वृत्र द्वारा इन्द्र का निगरण, इन्द्र का वृत्र की कुक्षि का भेदन करके बहिर्गमन), १.१.१८.६४ (बलि द्वारा ३ घडी के लिए इन्द्र पद प्राप्ति का वृत्तांत), १.१.१८.१२१ (० द्वारा ब्राह्मण वेश में प्रह्लाद - पुत्र विरोचन से शिर की याचना), २.४.१४.५ (० द्वारा कैलास पर शिव का अन्वेषण, शिव पर वज्र क्षेपण, मृत्यु व पुनः संजीवन), २.७.२३.९ (० द्वारा उतथ्य -पत्नी से बलात्कार, वैशाख मास धर्माचार से पाप से मुक्ति), स्क ३.१.४.५३ (० द्वारा पर्वतों के पक्ष छेदन का वृत्तांत), ३.१.११.५ (० द्वारा कपालाभरण राक्षस के वध के कारण ब्रह्महत्या की प्राप्ति, सीता सरोवर में स्नान से मुक्ति), स्क ३.२.३+ (धर्मराज/यम के तप से इन्द्र का भयभीत होना, वर्धिनी अप्सरा का धर्म के तपोभंग हेतु गमन), ३.२.१९.१० (० द्वारा शिव से ब्रह्महत्या से मुक्ति का उपाय पूछना), ४.२.८१.३ (वृत्रहत्या के कारण प्राप्त ब्रह्महत्या के निवारण के लिए ० द्वारा धर्मेश लिंग के निकट तप), ५.२.३५ (वृत्र वध से उत्पन्न ब्रह्महत्या दोष की निवृत्ति के लिए इन्द्र द्वारा इन्द्रेश्वर लिंग स्थापना, लिंग माहात्म्य), ५.३.२८.११ (बाणासुर वधार्थ निर्मित शिव के रथ में इन्द्र का अक्ष बनना), ५.३.३२ (० द्वारा चित्रसेन गंधर्व -पुत्र पत्र को मृत्युलोक में जाने का शाप), ५.३.६१ (शक्र तीर्थ माहात्म्य : इन्द्र द्वारा शिव की आराधना), ५.३.११८ (इन्द्र तीर्थ माहात्म्य : इन्द्र द्वारा ब्रह्महत्या से मुक्ति हेतु तप), स्क ५.३.१३८ (शक्रेश्वर तीर्थ माहात्म्य : शक्र द्वारा गौतम के शाप से निवृत्ति हेतु स्थापना), ६.८.७३ (० द्वारा दधीचि की अस्थियों से निर्मित वज्र से वृत्र का वध, ब्रह्महत्या दोष निवृत्ति हेतु हाटक लिंग पूजा), ६.७९.१ (दक्ष यज्ञ हेतु समिधा वहन करते हुए बालखिल्यों का इ न्द्र द्वारा उपहास, बालखिल्यों द्वारा मन्त्रों से इन्द्र दर्प हन्ता गरु ड को उत्पन्न करने का वृत्तांत), ६.१८१.५३ (यज्ञ में ब्रह्मा की पत्नी की व्यवस्था हेतु ० द्वारा गोप कन्या को गौ शरीर द्वारा पवित्र करके गायत्री में रूपांतरित करने की कथा), ६.१९२.६५ (ब्रह्मा के यज्ञ में सावित्री द्वारा ० को शत्रुओं द्वारा बंधन का शाप), ६.२०६.४४ (० द्वारा गया में श्राद्ध करना, विश्वेदेवों का आह्वान होने पर भी न आने पर शाप दान), ६.२०७ (गौतम द्वारा स्पर्श से सहस्रभग का सहस्र नेत्रों में रूपान्तरित होना, मेष के वृषण लगना, इन्द्र पंचरात्र पूजा विधान), ७.१.२२४ (० द्वारा स्थापित लिंग का माहात्म्य : ब्रह्महत्या दोष से मुक्ति), स्क ७.१.२५५.६१ (ऋषियों की बिसों की चोरी पर शुनोमुख नामक इन्द्र द्वारा व्यक्त प्रतिक्रिया), ७.१.२९५ (इन्द्रेश्वर लिंग माहात्म्य), ७.४.१४ (इन्द्रेश्वर लिंग माहात्म्य, लिंग का वृद्धि लिंग उपनाम), ब्रह्म १.७९ (कृष्ण द्वारा इन्द्र याग के स्थान पर गोवर्धन पूजा की कथा), २.२३ (विश्वामित्र द्वारा श्व मांस भक्षण की चेष्टा पर ० द्वारा मांस युक्त थाली का हरण, मधुस्थाली प्रस्तुत करना, विश्वामित्र के कोप से मुक्ति के लिए मधुवर्षण करना), ब्र २.२६ (० तीर्थ माहात्म्य : ब्रह्महत्या से निवृत्ति के लिए देवों द्वारा इन्द्र का अभिषेक), ब्र २.३० (इन्द्र द्वारा बालखिल्यों के अपमान पर बालखिल्यों द्वारा कश्यप को इन्द्रदर्पहर पुत्र सुपर्ण व सर्प उत्पन्न करने की प्रेरणा), ब्र २.५२ (धन्वन्तरि नृप द्वारा तप से इन्द्र पद प्राप्ति, इन्द्र द्वारा राज्य से अच्युति के लिए हरि व हर की स्तुति), २.५४.४० (ब्राह्मण रूप धारण करके मय से मैत्री रूप वर प्राप्ति, दिति के गर्भ का छेदन), २.५५.७८ (दिति गर्भ छेदन पर अगस्त्य व दिति द्वारा शाप), ब्र २.५९.१३ (महाशनि द्वारा ० का बन्धन, अपमान व मुक्ति, ० द्वारा शिव व विष्णु की स्तुति, शिव -विष्णु रूप धारी पुरुष द्वारा महाशनि का वध), ब्र २.७० (इन्द्र से स्पर्धा में आत्रेय द्वारा कृत्रिम इन्द्रपुरी का निर्माण, असुरों द्वारा इन्द्र के भ्रम में आत्रेय का बन्धन, आत्रेय द्वारा इन्द्र की स्तुति व पूर्वावस्था में आगमन, दृ. ऋग्वेद २.१२.१), २.१०१ (राजा प्रमति से अक्ष क्रीडा में ० द्वारा उर्वशी व वज्र आदि को दांव पर हारना, चित्रसेन गंधर्व द्वारा प्रमति को हराना), पद्म १.४.११ (दुर्वासा द्वारा प्रदत्त माला की उपेक्षा से शाप प्राप्ति), १.२२.९ (० द्वारा वायु व अग्नि को समुद्र शोषण की आज्ञा, आज्ञा उल्लंघन पर वायु व अग्नि को अगस्त्य व वसिष्ठ ऋषि बनने का शाप), प २.३.३४ (शिव शर्मा -पुत्र विष्णुशर्मा द्वारा इन्द्र से अमृत कलश व पितृभक्ति रूप वर प्राप्ति), प २.५.७४ (विष्णु लोक निवासी सुव्रत ब्राह्मण का अदिति के गर्भ से जन्म लेकर वसुदत्त नामक इन्द्र बनना, देवों आदि द्वारा इन्द्र का अभिषेक), २.५३+ (इन्द्र द्वारा काम की सहायता से कृकल -पत्नी सुकला के पातिव्रत्य को भंग करने की चेष्टा, धर्म द्वारा सुकला की रक्षा), प ५.१६.१४ (शर्याति के सोम यज्ञ में अश्विनौ को भाग दान पर इन्द्र द्वारा वज्र ग्रहण, च्यवन द्वारा बाहु स्तंभन), प ६.६.१५ (इन्द्र का जालन्धर -सेनानी बल से युद्ध, ० द्वारा बल का रत्न रूपी शरीर प्राप्त करना), ६.९६ (० द्वारा शिव की खोज, शिव पर वज्र प्रहार, जालन्धर उत्पत्ति प्रसंग), ६.१५१.१ (० ग्राम तीर्थ माहात्म्य : धवलेश्वर शिव की स्थिति, युगान्तरों में नाम, नंदी - किरात वृत्तांत), ६.१९२ (नवीन इन्द्र के कारण ० का राज्य से च्युत होना, गीता के १८वें अध्याय के पाठ से वैकुण्ठ लोक प्राप्ति), ६.२००.४ (स्वराज्य प्राप्ति पर ० द्वारा खाण्डव वन में यज्ञ, इन्द्रप्रस्थ स्थापना, शिवशर्मा

-पुत्र विष्णुशर्मा बनना), वा.रामायण १.२४.१८ (वृत्र हत्या वध जनित दोष से युक्त इन्द्र का देवों द्वारा अभिषेक, अभिषेक से उत्पन्न मल की मलद व कारुष प्रदेशों में व्याप्ति, इन्द्र द्वारा देशों को वरदान), रा १.४८ (० का अहल्या से समागम, गौतम शाप से विफल होना, मेष के वृषण से युक्त होना), ३.५६ प्रक्षिप्त (लंका में सीता को दिव्य हवि प्रदान करना, देवत्व का प्रमाण देना), ७.२७ (रावण से भय, विष्णु से सहायता की प्रार्थना), ७.२८+ (रावण से युद्ध, मेघनाद द्वारा बन्धन, ब्रह्मा द्वारा मोचन का उद्योग), ७.८५ (वृत्र वध पर ब्रह्महत्या प्राप्ति, अश्वमेध अनुष्ठान से मुक्ति), अग्नि २३७ (राज्यलक्ष्मी की स्थिरता के लिए इन्द्र द्वारा श्री की स्तुति), २६८.५ (इन्द्र -शची पूजा विधान), नारद १.४०.१३ (० द्वारा सुधर्मा से अतीत के मन्वन्तरों के इन्द्रों आदि के विषय में पृच्छा), १.११६.२६ (ज्येष्ठ शुक्ल सप्तमी को इन्द्र नामक आदित्य के जन्म का उल्लेख), न १.१२४.४३ (शक्र पूर्णिमा व्रत विधि), भविष्य १.१२५.२४ (१४ मन्वन्तरों में १४ इन्द्रों के नाम), २.१.१८.१० (पुंसवन कर्म में अग्नि का इन्द्र नाम), भ ३.४.१८.१७ (संज्ञा स्वयंवर में ० द्वारा बल असुर से युद्ध), वराह १२६.८५ (कुब्जाम्रक तीर्थ के अन्तर्वर्ती शक्र तीर्थ का माहात्म्य), वर १४६.८ (देवदत्त ऋषि के तप में विघ्न हेतु ०द्वारा प्रम्लोचा अप्सरा का प्रेषण), कूर्म १.४३.२० (ज्येष्ठ मास में इन्द्र नामक आदित्य का तपना, ० आदित्य की रश्मि संख्या का कथन), विष्णु १.९ (दुर्वासा प्रदत्त माला के तिरस्कार से ० की असुरों से पराजय कथा), वि ३.१ (१४ मन्वन्तरों में इन्द्र, देवता व सप्तर्षियों का वर्णन), ४.२.२९ (पुरंजय राजा का वृषभ रूप धारी इन्द्र पर आरूढ होकर असुरों से युद्ध करना), वि ४.२.६० (इन्द्र की अमृत स्राविणी अंगुलि से मान्धाता बालक का पालन), वि ५.११ (गोपों द्वारा ० पूजा की उपेक्षा पर कोप, कृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण), गर्ग ३.४ (कृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण पर ० के गर्व का खंड्न, ० द्वारा कृष्ण -स्तुति), शिव ३.३० (इन्द्र द्वारा शिव अन्वेषण प्रसंग में भीषण पुरुष के दर्शन, इन्द्र द्वारा वज्र प्रहार, इन्द्र की मृत्यु व पुनः संजीवन, जालन्धर उत्पत्ति प्रसंग), ७.१.३५ (उपमन्यु बालक की परीक्षार्थ शिव का शक्र रूप धारण करके उपमन्यु के समीप गमन व शिव की निंदा), लिंग १.१०७ (वही), हरिवंश १.२७.१३ (० द्वारा कुशिक -पुत्र गाधि रूप में जन्म लेना), २.६३.३२ (नरकासुर को मारने के लिए ० का कृष्ण से अनुरोध), २.६६+ (पारिजात वृक्ष न देने पर कृष्ण द्वारा गदा प्रहार की धमकी, इन्द्र द्वारा युद्ध), ३.५.१३ (इन्द्र की जनमेजय की पत्नी में आसक्ति, जनमेजय द्वारा अश्वमेध में ० का यजन न होने का शाप), ह ३.५२.१० (देवासुर संग्राम में ० के रथ का वर्णन), भागवत ४.१९.११ (० द्वारा पृथु के अश्वमेध यज्ञ का अश्व चुराना), भा ६.९.४ (० द्वारा विश्वरूप का वध, ब्रह्महत्या प्राप्ति, ब्रह्महत्या का प्राणियों में वितरण), भा ६.११+ (० का वृत्र से युद्ध व वज्र द्वारा वध), ६.१३ (० पर ब्रह्महत्या का आक्रमण, ० का कमलनाल में प्रवेश, अश्वमेध द्वारा मुक्ति), ६.१८.५६ (० द्वारा दिति के गर्भ का छेदन, मरुत उत्पत्ति), भा ८.५.३ (पांचवें रैवत मन्वन्तर में विभु नामक इन्द्र), ८.५.८ (छठें चाक्षुष मन्वन्तर में मन्त्रद्रुम नामक इन्द्र), ८.१०.२८ (देवासुर संग्राम में ० का बलि से युद्ध), १०.२४ (कृष्ण द्वारा इन्द्र याग का निवारण व गोवर्धन पूजा), मत्स्य ६१.८ (समुद्र के शोषण के आदेश की अवहेलना पर इन्द्र द्वारा वायु व अग्नि को पृथ्वी पर जन्म लेने का शाप), म १०१.६९ (० व्रत की संक्षिप्त विधि व माहात्म्य), १०१.८० (० व्रत का संक्षिप्त माहात्म्य), १४८.९६ (० ध्वज पर हेम मातंग चिन्ह), म १७४.४ (तारकासुर संग्राम में ० रथ का वर्णन), देवीभाग ५.८.७१ (० तेज से देवी के मध्य भाग की उत्पत्ति), देभा ६.७ (फेन से सन्ध्या समय में वृत्र वध, ब्रह्महत्या भय से कमल नाल में छिपना, नहुष द्वारा इन्द्र पद प्राप्ति), गरुड १.८७ (१४ मन्वन्तरों में इन्द्र नाम, इन्द्र -शत्रु व शत्रु हन्ता विष्णु का रूप), वामन ५७.६४ (० द्वारा स्कन्द को २ गण भेंट करना), वम ६९.१२४ (जम्भ वध हेतु अग्नि से आयुध प्राप्ति, देवों से रथ, मातलि सारथी प्राप्ति), ७१.१४ (पाकशासन, पुरन्दर, गोत्रभिद् नाम प्राप्ति), ७६.१२ (दिति गर्भ छेदन के प्रायश्चित्त रूप में तप), विष्णु धर्मोत्तर १.२४ (बिस तन्तु में निवास प्रसंग), १.१७५+ (मन्वन्तरों में ० नाम), विध १.१७६+ (शाम्बरायणि से मन्वन्तर विषयक संवाद), विध १.२२२.३१ (मेघनाद द्वारा इन्द्र का बन्धन, कारण), १.२३०.३ (स्कन्द वधार्थ इन्द्र द्वारा ग्रहों की सृष्टि, स्कन्द द्वारा प्रतिग्रहों की सृ ष्टि), २.१५७ (इन्द्र ध्वज उत्सव काल में पठनीय मन्त्र व ० स्तुति), ३.५० (इन्द्र की प्रतिमा का स्वरूप), ३.१९६ (शक्र व्र त विधि व संक्षिप्त माहात्म्य), ब्रह्मवैवर्त ४.१४.४९ (इन्द्र द्वारा रंभा के अंश से उत्पन्न जनमेजय -भार्या से सम्भोग कथा), ब्रव २.२६.२३ (पारिजात पुष्प के निरादर करने पर दुर्वासा शाप से भ्रष्ट -श्री होना), ३.२०.९ (महेन्द्र का रम्भा से समागम, पारिजात पुष्प के निरादर से दुर्वासा द्वारा भ्रष्ट -श्री होने का शाप), ब्रव ४.२१ (व्रज में इन्द्रध्वज उत्सव का वर्णन, कृष्ण द्वारा इन्द्र उत्सव के स्थान पर गोवर्धन पूजा कराने पर इन्द्र का कोप, नन्द द्वारा इन्द्र की स्तुति, कृष्ण द्वारा वृष्टि निवारण हेतु गोवर्धन

धारण, इन्द्र द्वारा पराजित होने पर कृष्ण की स्तुति), ४.४७.१० (० द्वारा गुरु के अपमान पर शाप प्राप्ति, अहल्या गमन कथा, कृत्या भय से कमल तन्तु में प्रवेश, नहुष को राज्यप्राप्ति, इन्द्र द्वारा कवच प्राप्ति, लोमश आगमन), ४.५९ (० के दर्प भंग के प्रसंग में नहुषोपाख्यान), ४.६१ (कल्पांतर में इन्द्र दर्प भंग प्रसंग में इन्द्र द्वारा अहल्या धर्षण की कथा), मार्कण्डेय ५.११ (वृत्र हत्या पर इन्द्र के बल का मरुत में अवगमन), ५.१२ (अहल्या के धर्षण पर इन्द्र के रूप का नासत्यों में अवगमन), ब्रह्माण्ड ३.४.६ (इन्द्र द्वारा दुर्वासा प्रदत्त माला के तिरस्कार से लक्ष्मी द्वारा इन्द्र का त्याग, बृहस्पति द्वारा पशु यज्ञ का निरूपण), ३.४.७ (बृहस्पति द्वारा इन्द्र हेतु स्तेय/धन हरण व अन्न के गुण -दोषों का निरुपण), ब्रड ३.४.८ (बृहस्पति द्वारा अगम्यागमन दोष वर्णन), ३.४.९ (इन्द्र द्वारा विश्वरूप वध व ब्रह्महत्या के विभाजन की कथा, श्री प्राप्ति हेतु समुद्र मंथन), ब्रड ३.४.१२.६४ (भंडासुर पर विजय प्राप्ति हेतु इन्द्र द्वारा ललिता देवी की आराधना), ३.४.१५.२२ (० द्वारा ललिता को मधु पात्र भेंट करना), वायु ६८.८ (दनु के १०० पुत्रों में से एक), लक्ष्मी नारायण १.८९ (उर्वशी नर्तन उत्सव में इन्द्र द्वारा बृहस्पति की अवमानना, दुर्वासा प्रदत्त माला का तिरस्कार, दुर्वासा द्वारा इन्द्र की राज्य श्री नष्ट होने का शाप), १.९० (बृहस्पति द्वारा उत्पन्न कृत्या व दुर्वासा के शाप पुरुष द्वारा स्वर्ग के रत्नों को सागर में फेंकना, बलि व इन्द्र द्वारा समुद्र मंथन उद्योग का निश्चय), १.३२०.१६ (राधा -पुत्री सुदुघा का पयस से इन्द्र की वृद्धि करना), १.३२०.९० (मेधावी -पुत्री मेधावती द्वारा पांच इन्द्रों की पति रूप में प्राप्ति, पांच इन्द्रों का द्वापर में पांच पाण्डव बनना), लन १.३७४ (इन्द्र के राज्य से च्युत होने पर नहुष का इन्द्र पद पर आसीन होना), लन १.३७५ (वर्षा के कारण विनाश रोकने के लिए अहल्या द्वारा इन्द्र का आह्वान, इन्द्र की अहल्या पर आसक्ति, अहल्या को स्पर्श करने से गौतम शाप से भगांगता प्राप्ति), लन १.४४१.९६ (इन्द्र का शिरीष वृक्ष के रूप में अवतरण), १.४५९.८४ (विश्वानर -पुत्र गृहपति द्वारा इन्द्र का तिरस्कार करने पर इन्द्र द्वारा वज्र प्रहार, शिव द्वारा रक्षा), १.४८६ (विप्र बालक रूप धारी नारायण द्वारा इन्द्र से ब्रह्माण्ड के असंख्य इन्द्रों का कथन, इन्द्र का गर्व खंडन, लोमश द्वारा इन्द्र को आयु की अल्पता कथन), १.५१७.७९ (शिव द्वारा अन्धकासुर के भावी निग्रह पर इन्द्र द्वारा दृष्ट शुभ स्वप्न वर्णन), २.१४६.१२८ (वास्तुमण्डल के मेढ्र में इन्द्र देवता का आह्वान), ३.२५.६१ (देवसख, कीर्ति, कदम्ब आदि ५ भ्राताओं का भावी इन्द्र होना), ३.६०.५० (पुरुषोत्तम विष्णु द्वारा इन्द्र रूप धारण करके चिदम्बरा भक्ता की परीक्षा लेना), ३.९३(देवशर्मा -पत्नी रुचि से समागम के लिए इन्द्र द्वारा नानाविध रूप धारण करने का उल्लेख), कथासरित् ७.७.१४ (पुत्र की मृत्यु पर नागार्जुन द्वारा अमृत निर्माण का उद्योग, इन्द्र के आदेश से निर्माण से निवृत होना), ८.६.१९२ (सुलोचना -पति आदित्यशर्मा द्वारा इन्द्र का तिरस्कार, इन्द्र द्वारा मृत्यु लोक में जाने का शाप), १८.२.१२८ (कलावती द्वारा ठिण्ठाकराल को कर्ण उत्पल में छिपाकर इन्द्र सभा में रम्भा नृत्य में ले जाना, ज्ञात होने पर इन्द्र द्वारा कलावती को देवागार में सालभंजिका होने का शाप), योगवासिष्ठ ३.८९ (राजा इन्द्रद्युम्न की पत्नी अहल्या की इन्द्र नामक ब्राह्मण पर कामासक्ति पर इन्द्रद्युम्न द्वारा अहल्या व इन्द्र को यातनाएं देना, प्रेमियों का यातनाओं से अप्रभावित रहना, भरत ऋषि द्वारा प्रेमी युगल को शाप से नष्ट करना), ६.२.१३.१८ (शत्रुओं से युद्ध करते हुए थक जाने पर इन्द्र का किसी छिद्र में अंतःप्रवेश करके सूर्य की किसी किरण/त्रसरेणु में विश्राम पाना व अंतरस्थ लोकों के दर्शन करना); द्र. पुरन्दर, महेन्द्र, मौलेन्द्र

टिप्पणी : सारा वैदिक साहित्य इन्द्र पर आधारित है। इन्द शब्द की निरुक्ति का सर्वश्रेष्ठ रूप ऐतरेय उपनिषद १.३.१४ में उपलब्ध है। प्रजापति द्वारा उत्पन्न किए गए पुरुष के प्रत्येक अंग में देवताओं की प्रतिष्ठा हो गई और इसके पश्चात पुरुष ने प्रयत्न किया कि वह अन्न का आस्वादन अंगों की सहायता से ही, जैसे चक्षु द्वारा दर्शन से, त्वचा द्वारा स्पर्श से, कर्ण द्वारा श्रवण से करने में समर्थ हो जाए। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। जब उस पुरुष ने सीमा (ब्रह्मरन्ध्र?)का विदारण करके इद ब्रह्म के विस्तार का दर्शन किया, तब इदं द्रः के कारण उसका नाम इन्द्र हो गया। यहां इदं तथा द्रः दोनों शब्दों को भली प्रकार समझने की आवश्यकता है। यास्क निरुक्त में इन्द्र शब्द की निरुक्ति इरां दृणाति, इरां ददाति, इरां दधाति, इरां दारयति, इरां धारयति, इन्दवे द्रवति आदि १५ प्रकार से की गई है (तुलनीय : पुराणों में १४ मन्वन्तरों के १४ इन्द्र)। इससे निष्कर्ष निकलता है कि इदं शब्द, जिसे निघण्टु में उदक नामों के अन्तर्गत रखा गया है, से तात्पर्य इरा या इडा/आनन्द तथा इन्दु दोनों से हो सकता है। ईशावास्योपनिषद में तो ईशावास्यमिदं सर्वं कह कर इदं में ईश्वर का वास कहा गया है। ऐतरेय उपनिषद में जहां पुरुष द्वारा अन्न के दर्शन की बात कही गई है, वह अन्न भी इरा का ही रूप होगा।

पौराणिक कथाओं के अनुशीलन से यह पता चलता है कि जब भी इन्द्र ऐरावत पर आरूढ होकर असुरों से युद्ध करेगा, वह हार जाएगा। जब वह रथ पर आरूढ होकर युद्ध करता है तो असुरों को जीत लेता है (फतहसिंह)। इरा या इडा एक आनन्द की अनुभूति है

जिसे लगातार प्रयत्नों द्वारा पकाना पड़ता है (द्र. इडा पर टिप्पणी)। इस संदर्भ में कौशीतकि ब्राह्मणोपनिषद ४.२० का यह कथन महत्वपूर्ण है कि जब तक इन्द्र आत्मोन्मुखी नहीं हुआ, तब तक वह असुरों से हारता रहा। इन्द्र का रथ पर आरूढ होना आत्मोन्मुखी होना ही है।

इन्द्र सीमा का विदारण करके इरा का विदारण अथवा इन्दु का द्रवण कैसे कर सकता है? इस संदर्भ में पं० चन्द्रमणि द्वारा यास्क निरुक्त पर की गई यह टिप्पणी उपयोगी है कि मेघ रूपी वृत्र का द्रवण विद्युत रूपी इन्द्र करता है। तैत्तिरीय आरण्यक १.२४.१ के अनुसार आप: के ४ रूप हैं : मेघ, विद्युत, स्तनयित्नु और वृष्टि। ब्राह्मण ग्रन्थों में यत्र-तत्र इन्द्र को स्तनयित्नु/गर्जन करने वाला और वृष्टि करने वाला कहा गया है। षड्विंश ब्राह्मण १.२.६ में तो पर्जन्य को पुमान, वृष्टि या अशनि को स्त्री और विद्युत को नपुंसक रूप कहा गया है।

वैदिक और पौराणिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से इन्द्र को वृष्टि कराने वाला कहा गया है। इन्द्र वृष्टि किस प्रकार करा सकता है? ब्राह्मण ग्रन्थों में सार्वत्रिक उल्लेख आता है कि जो यह तपाता है, यह इन्द्र (अर्थात आदित्य) है। इन्द्र शब्द की १५ निरुक्तियों में से एक निरुक्ति "इन्धे भूतानि" भी है। इस तापन से घर्म नामक तेज उत्पन्न होता है जो बाद में आदित्य बन सकता है (मैत्रायणी संहिता २.२.९, शतपथ १४.२.२.६)। यही घर्म वर्षा के लिए उत्तरदायी है। सामान्य जीवन में जो कभी कभी सिर में गर्मी का आभास होता है, वह घर्म ही है। काण्व शतपथ ३.१.१.१ के अनुसार जब तक अग्नि मन्द-मन्द जलती है, तब तक वह वरुण या रुद्र का रूप होती है। जब वह पूरे वेग से वर्षा कराने वाले रूप में जलती है, तो वह इन्द्र का रूप होती है। इस पर्जन्य वृष्टि से, आनन्द की वृष्टि से क्या होता है, इसके लिए महाभारत में अर्जुन के चरित्र से समझने की आवश्यकता है (शतपथ ब्राह्मण ५.४.३.७)।

वैदिक और पौराणिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से इन्द्र द्वारा वृत्र के वध का उल्लेख आता है। शतपथ ब्राह्मण १.६.४.१३ आदि में उल्लेख आता है कि जो यह चन्द्रमा है, जो सोम का रूप है, जिससे हमारा मन और सोमात्मक शरीर बना है, यही वृत्र है, तम से आच्छादित करने वाला है। जैसे भौतिक जगत में अमावास्या के दिन सूर्य चन्द्रमा को पूरी तरह ग्रस लेता है, जैसे ही इन्द्र को भी सूर्य बन कर चन्द्रमा रूपी वृत्र का वध करना है। शतपथ ब्राह्मण १.६.४.१२ का कथन है कि अमावास्या, अर्थात मापनीय अथवा माया की स्थिति से अमाया की स्थिति को प्राप्त करना ही वृत्र वध है (मातलि : माया को तरने वाला?)। इन्द्र के सूर्य बनने के संदर्भ में तैत्तिरीय संहिता २.५.४.४ का कथन है कि संवत्सर इन्द्र का रूप है। मैत्रायणी संहिता ४.७.३ के अनुसार शक्वर साम की स्थिति इन्द्र और रैवत साम की स्थिति सूर्य की होती है। जैमिनीय ब्राह्मण १.३३१ तथा शतपथ ४.५.३.१ आदि में इन्द्र के वज्र को पंचदश और इन्द्र को षोडशी कहा गया है। यह विचारणीय है कि क्या ओंकार की १६ कलाओं पर आरूढ होकर इन्द्र वृत्र या सोम या चन्द्रमा की १६ कलाओं का पान करता है? ऋग्वेद की इन्द्र सम्बन्धी बहुत सी ऋचाओं में भी ऊं अथवा ओ सु जोडा गया है। तैत्तिरीय संहिता २.४.१४.१ आदि में उल्लेख है कि इन्द्र ने वृत्र का वध उदीची दिशा में किया (प्राची में वह राजा बना, दक्षिण में वृषभ)। इसका तात्पर्य यह है कि वृत्र वध के लिए इन्द्र को साधना की क्रमिक स्थितियों को पार करना होता है।

पुराणों में इन्द्र द्वारा ऋषि-मुनियों के तप से भयभीत होकर तप में विघ्न के लिए अप्सराओं को भेजने का उल्लेख आता है। इसकी सम्यक् व्याख्या अनुसंधेय है। वैदिक निघण्टु में इन्द्र शब्द की परिगणना पद नामों के अन्तर्गत की गई है। यह स्वाभाविक है कि तप से इन्द्र की उच्चतर अवस्थाओं को प्राप्त किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में यह संभव है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में जो ऋक् और साम को इन्द्र के रथ के दो हरि/अश्व कहा गया है (मैत्रायणी संहिता ३.१०.६ इत्यादि), उनमें साम रूप बहिर्मुखी आनन्द का, अप्सराओं का हो जो तप करने पर प्रकट होता हो और साधना में बाधक बनता हो।

पुराणों और महाभारत में पांच इन्द्रों के पांच पाण्डव बनने के उल्लेख की व्याख्या के लिए शतपथ ब्राह्मण ३.३.३.१० इत्यादि का यह कथन महत्वपूर्ण है कि यज्ञ में यजमान ही इन्द्र है। जितने भी यज्ञ वर्णित हैं, उनमें यजमान इन्द्र का ही रूप होता है। पहले यजमान गार्हपत्य अग्नि की पुष्टि करता है। तब वह यम का रूप होता है। यज्ञ के अन्त में जब वह देवों की आहवनीय अग्नि को प्राप्त करता है, तब वह इन्द्र का रूप होता है (शतपथ २.३.२.२)। भागवत पुराण में १४ मन्वन्तरों के इन्द्रों की गणना करते समय भी पहले इन्द्र के रूप में याम का नाम लिया गया है। महाभारत में कुन्ती द्वारा आत्मोन्मुखी साधना करते समय भी सबसे पहले यम अथवा धर्म का आह्वान किया जाता है जिससे युधिष्ठिर का जन्म होता है। यह विचारणीय है कि सरस्वती रहस्योपनिषद में वर्णित अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूप नामक व्युत्थान की पांच क्रमिक अवस्थाओं से पांच पाण्डवों का कितना साम्य है। इनमें अंतिम दो अवस्थाओं नाम और रूप के आधार अश्विनी द्वय के अवतार नकुल और सहदेव हो सकते हैं जो क्रमश: अश्वों और गायों के विशेषज्ञ हैं। भाति को विज्ञानमय कोश की स्थिति कहा जा सकता है जहां सारे प्राण, सारे बल सह रूप में, एक दूसरे से सहयोग करते हुए स्थित हैं। ऐसी स्थिति का प्रतीक भीम हो सकता है। भीम बल का प्रतिनिधि है। इन्द्र और मरुतों को, जिन्हें ओज और बल का प्रतीक कहा गया है, के संदर्भ में भी भीम के चरित्र पर विचार करने की आवश्यकता है। यह संभव है कि इन्द्र की स्थिति का इस प्रकार ५ स्तरों पर विभाजन करने से तात्पर्य ऋग्वेद की ऋचाओं में इन्द्र के साथ आए गौ, अश्व, बल आदि शब्दों की व्याख्या करना हो।

अहल्या और इन्द्र की कथा के संदर्भ की व्याख्या के लिए षड्विंश ब्राह्मण १.१.१७ आदि का वर्णन

उपयोगी है। अहल्या और इन्द्र के मिथुन की घटना देवत्व और असुरत्व की सीमा पर होती है। मिथुन के पश्चात इन्द्र का बिडाल होकर भागना, गौतम के शाप से पहले सहस्रयोनि और उसके पश्चात सहस्राक्ष बनना, पितरों द्वारा इन्द्र को मेष के वृषणों से युक्त करने आदि की व्याख्या षडविंश ब्राह्मण के इस कथन पर संभव प्रतीत होती है कि इन्द्र से सम्बन्धित वृष्टि, अशनि, पर्जन्य, विद्युत आदि में वृष्टि और अशनि स्त्री लिंग हैं, पर्जन्य पुं रूप है और विद्युत नपुंसक रूप है। दूसरी ओर इन्द्र के अश्वों में ऋक् रूपी अश्व स्त्री रूप है और साम अश्व नपुंसक रूप है (तीसरा यजु जो विष्णु से संबंधित है, पुं रूप है)। सहस्रयोनि, अर्थात सोम को, आनंद को धारण करने की सामर्थ्य। यह स्त्री रूप है। इसके पश्चात सहस्राक्ष को नपुंसक रूप कह सकते हैं। सहस्राक्ष को समझने के लिए जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण १.१४.२.१० में अक्षर इन्द्र की उपासना का उल्लेख उपयोगी है। अहल्या-इन्द्र कथा के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण ४.६.७.११ के इस कथन पर भी विचार की आवश्यकता है कि साम रूपी वृषा/पति तथा ऋचा रूपी योषा/पत्नी के मिथुन से इन्द्र की उत्पत्ति होती है, जैसे तेज से तेज उत्पन्न होता है।

पुराणों में इन्द्र द्वारा बल असुर के शरीर से रत्नों का निर्माण करना वैदिक साहित्य में इन्द्र द्वारा बल असुर के पराभव के उल्लेखों की एकमात्र व्याख्या है।

इन्द्रकील शिव ३.३७ (शैवास्त्र प्राप्ति के लिए अर्जुन के तप का स्थान), भागवत ५.१९.१६ (भारतवर्ष का एक पर्वत), मत्स्य २२.५३ (श्राद्ध हेतु प्रशस्त तीर्थों में से एक) महाभारत वन ३७ (अर्जुन द्वारा प्रतिस्मृति विद्या द्वारा इन्द्रकील पर्वत पर तप, मूक दैत्य का वध, किरात वेशधारी शिव से युद्ध आदि)

टिप्पणी : कील धातु बन्धन के अर्थ में आती है, आसुरी शक्तियों का बन्धन करना। कील से उच्च अवस्था है कीर, कीर्तन करना। शत्रुओं को कीलित करने के रूप में अर्जुन मूक असुर का वध करता है। मूक अर्थात वह अवस्था जो कीर्तन करने में असमर्थ है। अथवा ऐसा भी कहा जा सकता है कि कीर्तन से पूर्व मूक अवस्था प्राप्त करना आवश्यक है जिसमें आसुरी शक्तियां बाधक हैं। ऋग्वेद की ऋचाओं में कीर; और कीरःचित् यह दो शब्द आते हैं जिनमें से कीरःचित् का प्रयोग अधिक हुआ है। अग्नि, इन्द्र, विष्णु, बृहस्पति, अश्विनौ आदि का यजन कीरि चित् होकर करने पर साधक को आध्यात्मिक धन प्राप्त होते हैं (उदाहरणार्थ ऋग्वेद ७.९७.१०)। पुराणों में अर्जुन के समक्ष ईशान शिव के कल्याणकारी रूप के प्रकट होने से पूर्व शिव के किरात रूप के प्रकट होने की कथा से यह संकेत मिलता है कि कील और कीर (शाब्दिक अर्थ शुक या तोता पक्षी) के बीच में किरात की अवस्था और है। किर धातु विक्षेप अर्थात साधना में प्रकट हुए विघ्नों के निराकरण के अर्थों में आती है (उदाहरणार्थ, ऋग्वेद १.३२.१३ में उल्लेख है कि इन्द्र को मिह/वर्षा और ह्रादुनी भी विचलित नहीं कर सके)। पौराणिक कथा में अर्जुन के समक्ष पहले इन्द्र और फिर ईशान शिव के प्रकट होने के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि वैदिक भाषा में ईशान शिव इन्द्र का ही विकसित रूप है (दृष्टव्य ऋग्वेद ७.२१.८)।

कील शब्द पर विचार करते समय मन्त्रों के कीलित होने के संदर्भों पर भी विचार करना उपयुक्त होगा। शुक रहस्योपनिषद १.१८ में पहले सोहं (प्राणों की पराक् और अर्वाक् गति) को कीलक कहा गया है। उसके पश्चात सौः को तथा अन्त में परमात्मा को। यह शरीर में मूलाधार आदि चक्रों के प्रतीक भी हो सकते हैं। त्रिपाद् विभूति महानारायणोपनिषद ५.१२ में विभिन्न लोकों की यात्रा के संदर्भ में ऋषिलोक से सूर्य व सोम मण्डलों में जाकर वहां कीलक नारायण का ध्यान करके ध्रुव मण्डल का दर्शन करके फिर शिंशुमार चक्र का दर्शन करने का उल्लेख है । नारायण पूर्वतापिन्युपनिषद ४.१७ तथा तुलस्युपनिषद ७०.३ में भी नारायण को कीलक कहा गया है। पीताम्बरोपनिषद ४२२.२ तथा वनदुर्गोपनिषद ४३६.१४ में जिह्वा को कीलक कहा गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि कीलक अवस्था पराक्-अर्वाक् गति से क्रमशः ध्रुव अवस्थाओं को प्राप्त करने की अवस्थाएं हैं। ऋग्वेद ७.१००.४ में कीर साधक के ध्रुव होने का उल्लेख है। अथर्ववेद ४.११.१० में एक ऐसे अनड्वान (प्राण का प्रतीक) की कल्पना की गई है जो एक कील (कीलाल) के चारों ओर घूम रहा है और उसके पीछे-पीछे कृषक चल रहा है। इसी मन्त्र का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि अनड्वान श्रम से ही कीलालं अवस्था को प्राप्त करता है। कीलाल का सामान्य अर्थ अन्न रस किया जाता है जिसका देवगण पान करते हैं। ऋग्वेद १०.९१.१४ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण १.४.१.२ में अग्नि को कीलाल का पान करने वाला और सोम पृष्ठ वाला कहा गया है।

इन्द्रजाल अग्नि २३४.१४ (युद्ध में राजा द्वारा इन्द्रजाल माया का प्रदर्शन), योगवासिष्ठ ३.१०४+ (शाम्बरिक द्वारा उत्पन्न इन्द्रजाल के वशीभूत होकर राजा लवण का चाण्डाल कन्या के साथ वास करने का वृत्तांत),

टिप्पणी : अमरकण्टक शब्द की टिप्पणी में यह कहा जा चुका है कि मर्त्य स्तर पर तृषा, क्षुधा, क्रोध, काम आदि अग्नि की जो ज्वालाएं हैं, वह साधना में तुरीयावस्था प्राप्त करने पर शान्त होकर जाल या जल बन जाती हैं। अथर्ववेद ८.८.५ में इन्द्र के जाल का वर्णन किया गया है जिसकी सहायता से वह असुरों को वश में करता है। इस सूक्त में इन्द्र के जाल को बृहत् तथा अन्तरिक्ष आदि कहा गया है। जैमिनीय ब्राह्मण १.१३५ के अनुसार बृहत् जाल की साधना से पूर्व रथन्तर की साधना करनी पड़ती है। रथन्तर द्वारा अन्न प्राप्त होता है जो रथ रूपी अशना/क्षुधा को शान्त करता है। रथन्तर तथा अन्तरिक्ष आदि को स्व-निरीक्षण, अपने अंदर प्रवेश करना, एकान्तिक साधना का प्रतीक कहा जा सकता है। योगवासिष्ठ में राजा लवण का

आख्यान यह संकेत करता है कि एकान्तिक साधना में तो वासनाएं अपना सिर नहीं उठाती, लेकिन जब अश्व पर आरूढ होकर बृहत् की साधना करनी होती है तो अतृप्त पडी सारी वासनाएं जाग उठती हैं। अश्व के भाग जाने पर इन्हीं वासनाओं का सामना करना पडता है। यह वासनाएं दिव्य जल की मांग करती हैं। आख्यान में यही चाण्डाल कन्या हो सकती है। आख्यान के अनुसार जब राजा लवण ने चाण्डाली-पुत्रों की क्षुधा शान्ति हेतु स्व-शरीर का परित्याग करने का निश्चय कर लिया तो शाम्बरिक द्वारा उत्पन्न इन्द्रजाल अदृश्य हो गया। अतः यह कहा जा सकता है कि योगवासिष्ठ में इन्द्रजाल के आख्यान के माध्यम से जाल अवस्था से पूर्व रथन्तर की साधना को दर्शाया गया है। इसे इन्द्रजाल का पूर्व रूप कहा जा सकता है। इन्द्रजाल का उत्तर रूप क्या होगा, यह अथर्ववेद ८.८.५ के आधार पर अन्वेषणीय है। शब्दकल्पद्रुम कोश में इन्द्रजाल शीर्षक के अन्तर्गत इन्द्रजाल तन्त्र पुस्तक को उद्धृत किया गया है जिसमें इन्द्रजाल के अधिपति जालेश रुद्र का उल्लेख आया है। अथर्ववेद ६.५७.२ में जालाष को उग्र भेषज कहा गया है जो तन, मन सबकी चिकित्सा करती है। अथर्ववेद१९.१०.६ के शम्/शान्ति सूक्त में इन्द्र से वसुओं के द्वारा शान्ति करने, वरुण से आदित्यों के द्वारा व जलाष रुद्र से रुद्रों के द्वारा शान्ति करने की कामना की गई है। ऐसा कहा जा सकता है कि जल का चिकित्सा करने वाली ओषधि के रूप में परिणत होना इन्द्रजाल से उच्चतर स्थिति है।

महोपनिषद ४.४७ में इन्द्रजाल से मुक्ति पाने के संदर्भ में कहा गया है कि द्रष्टा व दृश्य का अलग-अलग आभासित होना ही जगत में इन्द्रजाल का प्रतीक है। यह इन्द्रजाल मन के कारण ही विस्तार पाता है और जब तक यह विद्यमान है, तब तक मोक्ष नहीं मिल सकता।

जाल के सन्दर्भ में पौराणिक साहित्य में जालन्धर का वर्णन उल्लेखनीय है जो योग साहित्य के जालन्धर बन्ध का प्रतीक है। भस्मजाबालोपनिषद २.२५ में चार जालों वाले ब्रह्मकोश का उल्लेख है। महोपनिषद ६.३२ में तृष्णा रूपी शबरी व वासना के जाल को तीक्ष्ण बुद्धि की शलाका से इस प्रकार छिन्न भिन्न कर देने का निर्देश है जैसे वायु जल के जाल को छिन्न भिन्न कर देती है। कात्यायन श्रौत सूत्र ७.४.७ में यज्ञ में यजमान-पत्नी के सिर पर तीन पर्यायों वाला जाल बांधने का निर्देश है। इसके अतिरिक्त, हाथ व पैरों की अंगुलियों के बीच की त्वचा का बतख पक्षी के पादों की भांति, जाल की भांति होना बुद्धत्व के लक्षणों में आता है। यास्क निरुक्त ६.२७ में मधु के जल में विचरण करने वाले मत्स्यों के जाल-बद्ध हो जाने का उल्लेख है।

शतपथ ब्राह्मण ३.३.२.१७ आदि में सार्वत्रिक रूप से सुब्रह्मण्या निगद का वर्णन आता है। सोम क्रय करने के समय यज्ञ के उच्छिष्ट फेंकने वाले गर्त में बैठ कर इन्द्र का आह्वान किया जाता है कि अहल्या के जार इन्द्र, हमारे आह्वान पर आओ। इन्द्र के अहल्या का जार होने की व्याख्या के बारे में विभिन्न कल्पनाएं की गई हैं। डा० फतहसिंह का विचार है कि जरा, जार आदि जृ-स्तुति धातु से सम्बन्धित है। ऐसा भी संभव हो सकता है कि इन्द्र के जार बनने की अवस्था इन्द्रजाल से उच्चतर अवस्था का प्रतीक हो। निम्नतर स्थिति में वासनाओं की कामना इन्द्र को प्राप्त करने की थी। उच्चतर स्थिति में गौतम की स्त्री अहल्या और इन्द्र दोनों ही एक दूसरे से मिलन की कामना करते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.४.४.१ के अनुसार संधि होना ही जार होना है। ऋग्वेद की ऋचाओं में अग्नि, अश्विनौ, सोम आदि को भी जार कहा गया है। ऋग्वेद १०.७.५ में अग्नि को अध्वर का जार कहा गया है।

इन्द्रजित वा.रामायण ५.४८ (प्रमदावन में हनुमान से युद्ध, हनुमान का बन्धन), रा ६.१५ (रावण के समक्ष ० की आत्मश्लाघा, ऐरावत का निग्रह कथन, विभीषण द्वारा ० की भर्त्सना), ६.३६.१८ (० द्वारा लंका के पश्चिम द्वार की रक्षा), ६.४४ (नाग पाश द्वारा राम -लक्ष्मण का बन्धन), ६.५९.१५ (रावण -सेनानी, स्वरूप), ६.७३ (ब्रह्मास्त्र से वानर सेना सहित राम -लक्ष्मण को मूर्छित करना), ६.८०+ (० द्वारा आभिचारिक होम से शक्ति प्राप्ति, मायामयी सीता का वध), मत्स्य ६.१९ (वही), १९०.३ (नर्मदा के तट पर गर्जन तीर्थ में मेघनाद ? द्वारा इन्द्रजित् नाम प्राप्ति), वायु ६८.६ (दनु -पुत्र), कथासरित् १८.२.२४० (रावण -पुत्र ० द्वारा जयन्त के क्रीडा मृग को स्वर्ग से लंका में लाना)

इन्द्रदत्त भविष्य ३.२.७.७ (शास्त्रों में निपुण द्विज, त्रिलोक सुन्दरी कन्या की प्राप्ति के इच्छुक चार जनों में एक), वायु ६९.३५ (नर मुख वाले एक किन्नर का नाम), कथासरित् १.२.४२ (देवस्वामी ब्राह्मण का पुत्र, व्याडि -भ्राता), १.४.२ (० द्वारा पाटलिपुत्र में वर्ष उपाध्याय से शिक्षा ग्रहण), ६.८.१० (चेदि देश का राजा, पर स्त्री पर आसक्ति, पतिव्रता स्त्री व राजा की मृत्यु)

इन्द्रद्युम्न स्कन्द १.२.७+ (ब्रह्मलोक से पतन पर राजा इन्द्रद्युम्न का चिरजीवियों मार्कण्डेय, नाडीजंघ बक, प्राकारकर्ण उलूक, गृध्र, कूर्म व लोमश ऋषि से संवाद व उनकी चिरजीविता के कारण जानना), २.२.४.५८ (० द्वारा स्थापित पुरुषोत्तम की दारुमय प्रतिमा की महिमा), २.२.७+ (इन्द्रद्युम्न चरित्र : विप्र के मुख से नीलमाधव की महिमा सुनकर विद्यापति नामक पुरोहित को पुरुषोत्तम क्षेत्र के अन्वेषण के लिए भेजना), स्क २.२.१०.१ (० द्वारा विद्यापति के मुख से जगन्नाथ का स्वरूप श्रवण व नारद से वार्तालाप), स्क २.२.११.११ (इन्द्रद्युम्न द्वारा नारद के साथ पुरुषोत्तम क्षेत्र की यात्रा का उद्योग, चर्चिका देवी की स्तुति, ओड्र नरेश से मिलन), २.२.१२.९४ (० द्वारा एकाम्र क्षेत्र में स्थित कोटिलिंगेश शिव की अर्चना), २.२.१२.१३०

(० द्वारा बिल्वेश व कपोतेश शिव की अर्चना), २.२.१४.३ (पुरुषोत्तम क्षेत्र यात्रा में अपशकुन होने पर ० की चिन्ता, नारद द्वारा चिन्ता निवारण), स्क २.२.१५.८ (० द्वारा नृसिंह वपु व न्यग्रोध के दर्शन, आकाशवाणी सुनकर अश्वमेध का निश्चय), स्क २.२.१५ (० के अनुरोध पर विश्वकर्मा द्वारा नृसिंह प्रासाद का निर्माण, ० द्वारा नृसिंह की अर्चना), २.२.१७ (० द्वारा सहस्र अश्वमेध यज्ञों के अनुष्ठान पर स्वप्न में विष्णु के दर्शन व स्तुति), २.२.१८.२१ (० द्वारा चार शाखाओं वाले दिव्य वृक्ष का दर्शन, विश्वकर्मा द्वारा वृक्ष से मूर्ति चतुष्टय का निर्माण), २.२.२१.६८+ (मूर्ति प्रतिष्ठा हेतु ब्रह्मा को आमन्त्रित करने के लिए ० का ब्रह्मलोक गमन), २.२.२४.४१+ (० द्वारा ब्रह्मा के पुत्र पद्मनिधि को व्यूह चतुष्टय के रथों का निर्माण करने का आदेश), २.२.२६.५ (० की गाल राजा से भेंट), २.२.२८.१ (० द्वारा ब्रह्मा से प्राप्त मन्त्रराज द्वारा नृसिंह वपु की आराधना), स्क ४.२.७७.७० (इन्द्रद्युम्नेश्वर लिंग का संक्षिप्त माहात्म्य : तेजोमय यान द्वारा स्वर्ग का भोग), स्क ४.२.८४.६८ (० तीर्थ में पिण्डदान का संक्षिप्त माहात्म्य), ५.२.१५.१ (राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा मार्कण्डेय के परामर्श पर स्थापित इन्द्रद्युम्नेश्वर लिंग का माहात्म्य), ६.२७१.१५ (स्कन्द १.२.७ के सदृश इन्द्रद्युम्न राजा का मार्कण्डेय, नाडीजंघ बक आदि चिरजीवियों से संवाद आदि), ७.४.२५ (० का मार्कण्डेय से द्वारका पुरी माहात्म्य श्रवण), ब्रह्म १.४१+ (अवन्ती -नरेश ० द्वारा पुरुषोत्तम क्षेत्र की यात्रा, अश्वमेध अनुष्ठान, स्तुति, मूर्ति निर्माण संबंधी स्वप्न), पद्म ६.३१ (वैश्य, चन्द्रावती -पति, जन्माष्टमी व्रत प्रभाव से जन्मांतर में हरिश्चन्द्र बनना), कूर्म १.१ (० द्विज द्वारा कूर्म रूप धारी विष्णु से दिव्य ज्ञान प्राप्ति, मोक्ष), नारद २.५२ (उत्कल क्षेत्र में राजा इन्द्रद्युम्न का गमन व मोक्ष प्राप्ति), न २.५३ (अश्वमेध के पश्चात प्रतिमा प्रतिष्ठा की चिन्ता, वासुदेव -स्तुति), न २.५४ (स्वप्न में पुरुषोत्तम से आदेश पाकर काष्ठ रूपी प्रतिमा निर्माण का उद्योग), २.६०.१ (० सरोवर महिमा वर्णन), भागवत ८.४.७ (द्रविड देश का राजा, अगस्त्य के शाप से गज बनना, गज -ग्राह कथा), वायु ३३.५४ (तैजस -पुत्र, परमेष्ठी -पिता, नाभि वंश), ४७.५४ (० सरोवर का गंगा की प्राची दिशा की धारा नलिनी द्वारा प्लावन), अग्नि १०७.१३ (सुमति -पुत्र, परमेष्ठी -पिता, नाभि वंश), विष्णु २.१.३६ (वही), वामन ६५.५८ (मनु -पुत्र, इक्ष्वाकु -भ्राता, ऋतध्वज मुनि की खोयी गयी कन्या के अन्वेषण में सहायता करना), ६५.१६० (० द्वारा पर्जन्य व घृताची की पुत्री वेदवती से विवाह), लक्ष्मी नारायण १.५१९ (उज्जयिनी राजा, ब्रह्मलोक से प्रत्यागमन पर मार्कण्डेय ऋषि, बक, उलूक, गृध्र व कच्छप चिरंजीवियों से वार्तालाप, कच्छप द्वारा ० की महिमा कथन), १.५२०.५२ (० कृत यज्ञ से कच्छप पृष्ठ का दग्ध होना), १.५२१ (लोमश से भगवान के स्वरूप, विभूति व महिमा का श्रवण), १.५२२ (लोमश द्वारा ० को नारद चरित्र कथन : नारद द्वारा सावित्री के दर्शन, वेदों की विस्मृति व सावित्री कृपा से पुनः स्मृति, नारद के पूर्व जन्म का वृतांत, नारद का नारदी स्त्री बनना आदि), लन १.५२३ (लोमश द्वारा ० को ब्राह्मी पराविद्या का उपदेश), १.५६१.६७ (इन्द्रद्युम्न राजा द्वारा नर्मदा तट पर ओंकार लिंग के निकट अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान, राजा द्वारा शिव व विष्णु से वर प्राप्ति), १.५८४+ (० द्वारा जगन्नाथ क्षेत्र यात्रा व पुरुषोत्तम आदि की प्रतिमाओं की स्थापना का विस्तृत वर्णन), २.७.१०८ (इन्द्रद्युति विप्र द्वारा विष्णु के दर्शन)

टिप्पणी : वेदों में अग्नि, इन्द्र, मित्र, अर्यमा, उषा, अश्विनौ आदि देवताओं के मन्त्रों में द्युम्न शब्द प्रकट हुआ है। लेकिन पुराणों में इन्द्रद्युम्न नाम रखकर द्युम्न को केवल इन्द्र के साथ जोड़ा गया है। इसका कारण यह है कि इन्द्र में सब देवताओं का समावेश हो जाता है। इसी कारण से वैदिक ऋचाओं में द्युम्न के जो गुण कहे गए हैं, वह सब इन्द्रद्युम्न के चरित्र में प्रकट होते हैं।

इन्द्रद्युम्न को समझने से पूर्व साधना में द्युम्न को समझना होगा। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३६१ के अनुसार जब साधना में एक ऐसा ज्योतिपुंज/अण्डा प्रकट हो जिसका निचला भाग हरा और ऊपरी भाग रजत हो तो उसे सौ देवसंवत्सरों तक सेने के पश्चात फोड़ने पर सहस्रों द्युम्न प्रकट होते हैं (ऋग्वेद ५.८६.१ से प्रतीत होता है कि द्युम्न नामक इस अण्ड का भेदन करने के लिए भी विशेष साधना की आवश्यकता होती है)। महाभारत में धृष्टद्युम्न को अग्नि का अवतार कहा गया है। जैमिनीय ब्राह्मण १.६ के अनुसार सविता ही द्युम्न है। अतः यह कहा जा सकता है कि अग्नि का संवर्धित रूप ही द्युम्न के रूप में सूर्य बनता है। तैत्तिरीय आरण्यक ४.१०.२ में प्रवर्ग्य (अतिरिक्त ऊर्जा) से दक्षिण दिशा में द्युम्न की उत्पत्ति कही गई है। शतपथ ब्राह्मण २.४.१.८ में गार्हपत्य और आहवनीय, दोनों अग्नियों से द्युम्न प्रदान करने की प्रार्थना की गई है। वैदिक निघण्टु में द्युम्न को पद नामों के अन्तर्गत रखा गया है जो संकेत करता है कि द्युम्न के विकास के विभिन्न स्तर हैं। इस विकास के क्रम में एक सीमा पर आकर द्युम्न सोम की वृष्टि कराने में समर्थ होता है। वृष्टि द्युलोक से होती है जबकि द्युम्न पृथिवी से जाता है (ऋग्वेद ९.८.८)। ऋग्वेद ९.१०८.९ की ऋचा अभि द्युम्नं बृहद्यश इत्यादि की व्याख्या ताण्ड्य ब्राह्मण १३.५.२ तथा जैमिनीय ब्राह्मण ३.११९ आदि में की गई है जिसके अनुसार अभि रथन्तर रूप है और बृहद् बृहत्

रूप। इस प्रकार वैदिक परम्परा में जहां अग्नि व सोम के विभिन्न युगलों की कल्पना की जाती है, वहां द्युम्न के युगल के रूप में यश को रखा गया है। अन्य ऋचाओं में द्युम्न के साथ श्लोक, श्रव आदि शब्द आते हैं (ऋग्वेद ८.९३.८ आदि) जो कीर्ति या यश के रूप कहे जा सकते हैं (ऋग्वेद ६.५.५, ६.१८.७ तथा ८.५.३२ में द्युम्न, श्रव/शव और राय शब्द साथ-साथ आए हैं जिनका निहितार्थ अपेक्षित है)।

स्कन्द पुराण के कौमारिका और नागर खण्डों में दी गई इन्द्रद्युम्न की कथा में कुछ तथ्य उल्लेखनीय हैं। सर्वप्रथम, इन्द्रद्युम्न का स्वर्ग से आनर्त्त देश में पतन इसलिए होता है कि वह धरातल पर अपनी कीर्ति फैला सके। कीर्ति फैलाने के लिए वह मार्कण्डेय, बक, उलूक आदि सात चिरजीवियों से मिलता है। ऋग्वेद ८.२८.५ में मरुतों के सात स्तरों के लिए सात द्युम्नों का उल्लेख है। हो सकता है कि यह सात स्तर अन्नमय कोश (मार्कण्डेय), प्राणमय कोश (नाडीजंघ बक या वाक्, पूर्वरूप विश्वरूप), मनोमय कोश (प्राकारकर्ण उलूक, पूर्व रूप घण्ट), विज्ञानमय कोश (गृध्र, पूर्व रूप वानर व कुशध्वज), सत् (मन्थरक नामक कूर्म, पूर्व रूप शाण्डिल्य तथा जयदत्त), चित् (लोमश, पूर्व रूप ईशान) व आनंद (संवर्त) के प्रतीक हों। इस कथा के सभी पात्रों के चरित्रों में यह महत्वपूर्ण है कि वह अपनी वृत्तियों को अन्तर्मुखी करने में तब तक असफल रहते हैं जब तक कि उनका इन्द्रद्युम्न से मिलन न हो जाए। उदाहरण के लिए, बक/वाक् उत्कृष्ट रूप प्राप्त करने के पश्चात गुरु-पत्नी से व्यभिचार में फंस गई है। अतः उसे अपनी नाडियों का शोधन (नाडीजंघ बक) करने की आवश्यकता पडी। उलूक घण्टानाद होते हुए भी विरूप है, अतः चित्तवृत्तियां उसका वरण नहीं करना चाहती। द्युम्न द्वारा चित्तवृत्तियों को अन्तर्मुखी करने की पुष्टि ऋग्वेद ६.१९.९ तथा ६.३५.२ की ऋचाओं से होती है। पुराणों में जो इन्द्रद्युम्न द्वारा कीर्ति फैलाने का उल्लेख है, इस संदर्भ में वैदिक व लौकिक साहित्य में कीर्ति और यश शब्दों का उल्लेख साथ-साथ आता है और इनके निहितार्थों में सूक्ष्म भेद के बारे में विवाद है। आप्टे के संस्कृत अंग्रेजी कोश के अनुसार कीर्ति शौर्य के विस्तार से और यश विद्या के विस्तार से सम्बन्धित है। यह तर्कसंगत प्रतीत होता है क्योंकि इन्द्रद्युम्न द्वारा पुरुषोत्तम क्षेत्र की यात्रा करते समय सर्वप्रथम विद्यापति नामक पुरोहित पुरुषोत्तम क्षेत्र की यात्रा करके नील माधव के दर्शन करता है। नील माधव के दर्शन वाली कथा, जहां इन्द्रद्युम्न द्वारा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति व तुरीय अवस्थाओं के प्रतीक वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न व अनिरुद्ध की दारुमय प्रतिमाओं की स्थापना की जाती है, को यश का विस्तार मान सकते हैं। नील माधव को नीड माधव, निलय माधव कह सकते हैं। यह अन्तर्मुखी वृत्ति का प्रतीक है जाग्रत, स्वप्न आदि चार अवस्थाओं के संदर्भ में ऋग्वेद ३.३७.८ तथा ३.२४.३ की ऋचाएं विचारणीय हैं जहां द्युम्न द्वारा जाग्रत अवस्था की ओर उन्मुख होने का उल्लेख है।

इन्द्रद्वीप मत्स्य ११४.८ (भारतवर्ष के ९ भेदों में से एक), १२१.५७ (गंगा की प्राची दिशा की धारा नलिनी का इन्द्रद्वीप के निकट लवण उदधि में प्रवेश), वायु ४५.७९ (भारतवर्ष के ९ खंडों में से एक), ४७.५५ (गंगा की प्राची दिशा की धारा पावनी का इन्द्रद्वीप के निकट लवण समुद्र में प्रवेश)

इन्द्रधनुष हरिवंश ३.२२.३० (शिव द्वारा मृग रूप धारी दक्ष के यज्ञ को बाण से विद्ध करना, यज्ञ से निःसृत रुधिर का इन्द्रधनुष बनना), लिंग १.७२.९१ (त्रिपुर दाह हेतु शिव के धनुष का आकाश में इन्द्रधनुष/हिरण्य धनुष की भांति सुशोभित होने का उल्लेख), वा.रामायण ६.५९.१५ (इन्द्रजित् के धनुष की इन्द्रधनुष से तुलना), विष्णु धर्मोत्तर ३.२३८.१४ (जल में शक्रचाप न होते हुए भी दिखाई देने पर तृतीय मास में मृत्यु होने का उल्लेख), महाभारत भीष्म १०८.३६ (संग्राम में भीष्म के धनुष के शक्रचाप की भांति दिखाई देने का उल्लेख), कर्ण २४.४७ (कर्ण द्वारा नकुल के कण्ठ में डाले गए धनुष की इन्द्रधनुष से उपमा), ५६.१२ (नकुल व सहदेव द्वारा शक्रचापों के समान धनुष ग्रहण करने का उल्लेख), शल्य ४.१६ (अर्जुन के वानरध्वज की इन्द्रकार्मुक के तुल्य आभा का उल्लेख)

टिप्पणी : शतपथ ब्राह्मण ५.३.५.२७ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण १.७.६.८ में इन्द्र के धनुष को वज्र कहा गया है जिससे वृत्र का हनन किया जाता है। तैत्तिरीय आरण्यक १.५.१ तथा उसके सायण भाष्य के अनुसार अरुणकेतु रूपी अग्निजिह्वा उस धनुष की ज्या का निर्माण करती है (?) जिसकी एक कोटि द्युलोक में तथा एक पृथिवी पर स्थित है। उस ज्या को इन्द्र ने वम्रि/दीमक बन कर काट डाला। तब उस धनुष का दण्ड सीधा होकर इन्द्रधनुष बन गया। यह ज्या से रहित होता है। आकाश में जब इन्द्रधनुष दिखाई देता है, वह भी ज्या से रहित होता है। पुराणों में शेषनाग अथवा वासुकि नाग को रुद्र के धनुष की ज्या कहा गया है (लिंग पुराण १.७२.२३ आदि)। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि धनुष की ज्या के माध्यम से शक्ति का सर्पण समाप्त हो जाए, ज्या कट जाए तो केवल धनुष का दण्ड शेष रह जाता है, सारी ऊर्जा धनुष के दण्ड से प्रवाहित होती है। मनुष्य शरीर में मेरुदण्ड धनुष के दण्ड की आकृति का होता है। इन्द्रधनुष में सात रंगों के समावेश की कल्पना वैदिक साहित्य में नहीं है, यह केवल पुराणों में ही है। हो सकता है कि मनुष्य शरीर में सात चक्रों अथवा सात कोशों के सात रंगों का व्याकृत रूप इन्द्रधनुष के माध्यम से चित्रित किया गया हो।

अथर्ववेद ५.१८.८ में वाक् को धनुष का दण्ड तथा जिह्वा को उसकी ज्या कहा गया है। हो सकता है कि यह धनुष का ब्राह्मण रूप हो। तैत्तिरीय संहिता ६.५.५.२ में धनुष, ज्या व इषु द्वारा क्रमशः प्राण.

अपान व आत्मा को प्राप्त करने का उल्लेख है।

इन्द्रध्वज वराह १६४.३९ (गोवर्धन तीर्थ के अन्तर्वर्ती ० तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य), ब्रह्म-वैवर्त ४.२१ (व्रज में इन्द्रध्वज उत्सव का वर्णन, कृष्ण द्वारा इन्द्र उत्सव के स्थान पर गोवर्धन पूजा कराने पर इन्द्र का कोप व नन्द द्वारा इन्द्र की स्तुति, कृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण का वर्णन), वा.रामायण ४.१६.३७ (आश्विन पूर्णिमा को इन्द्रध्वज उत्सव का उल्लेख), ४.१७.२ (राम के बाण से आहत बाली का इन्द्रध्वज के समान भूमि पर गिरने का उल्लेख), ५.४८.२४ (इन्द्रजित् के रथ पर इन्द्रध्वज का उल्लेख), भागवत १०.४४.२३ (श्री हरि द्वारा चाणूर मल्ल को भूमि पर पटकने के पश्चात चाणूर का इन्द्रध्वज के समान भूमि पर गिरने का उल्लेख), हरिवंश ३.२६.५५ (विष्णु से युद्ध में पृथिवी पर गिरे हुए मधु दैत्य का पृथिवीतल से इन्द्रध्वज की भांति उठ कर खडे होने का उल्लेख), वराह १६४.४० (मथुरा में गोवर्धन क्षेत्र में इन्द्रध्वज तीर्थ का संक्षिप्त माहात्म्य : स्नान से स्वर्ग प्राप्ति), विष्णु धर्मोत्तर २.१५४.१३ (विष्णु द्वारा असुरों पर विजय प्राप्ति हेतु देवों को शक्र ध्वज प्रदान करने का वर्णन), २.१५५.५ (वन से शक्र यष्टि को नगर में लाने तथा उसकी स्थापना व विसर्जन उत्सव का वर्णन), २.१५६.१ (इन्द्रध्वज के भंग होने पर शमन उपायों का कथन), २.१५७.१ (इन्द्रध्वज फहराने के समय पठनीय मन्त्रों का कथन), २.१६०.१० (ध्वजारोहण मन्त्र में ध्वज की शक्रकेतु संज्ञा का उल्लेख), मत्स्य २४२.९ (गमन के समय दृष्ट दुःस्वप्नों के अन्तर्गत स्वप्न में शक्र ध्वज पतन देखने का उल्लेख), २४२.२४ (शुभ स्वप्न दर्शन के अन्तर्गत शक्रध्वज आलिंगन व उसके आरोहण का उल्लेख), हरिवंश २.१५.४ (गोप द्वारा कृष्ण को इन्द्रध्वज उत्सव के कारण का कथन : इन्द्र द्वारा भूमि पर पर्जन्य वर्षण कराना), २.१६.१+ (कृष्ण द्वारा इन्द्रध्वज के स्थान पर गिरियज्ञ, गो पूजन तथा शरद ऋतु के यजन का निर्देश आदि), भविष्य ४.१३८.४९ (ध्वज मन्त्र में ध्वज की शक्रकेतु संज्ञा का उल्लेख), ४.१३९.१ (श्रावण मास में महेन्द्र ध्वजयष्टि प्रतिष्ठा विधि व महत्व का वर्णन : मेरु पर्वत पर प्रतिष्ठा से असुरों का नाश आदि; इन्द्रध्वज प्रतिष्ठा में विभिन्न विघ्नों का फल तथा उनके शमन का उपाय) महाभारत आदि १७२.३ (तपती कन्या के दर्शन पर राजा संवरण का मूर्छित होकर शक्रध्वज की भांति भूमि पर गिरने का उल्लेख), वन ४२.८ (अर्जुन द्वारा मातालि सारथी वाले इन्द्र के रथ पर वैजयन्त नामक ध्वजा का दर्शन; वैजयन्त ध्वजा का वर्णन), १४६.७० (कदलीवन में भीमसेन का मार्ग अवरुद्ध करने वाले हनुमान की पुच्छ की शक्रध्वज से तुलना), उद्योग ५९.१५ (कृष्ण के इन्द्रकेतु की भांति उठ बैठने का उल्लेख), भीष्म ११९.९१ (अर्जुन के बाणों से विद्ध होकर भीष्म के इन्द्रध्वज की भांति भूमि पर गिरने का उल्लेख), द्रोण१०५.११ (अश्वत्थामा के सिंह लांगूल से युक्त ध्वजं की शक्रध्वज से तुलना), शल्य ४.१६ (अर्जुन की वानरध्वज के इन्द्रकेतु के समान ऊंची होने का उल्लेख), १७.५३ (युधिष्ठिर की शक्ति से आहत होकर राजा शल्य का इन्द्रध्वज की भांति भूमि पर गिरने का उल्लेख), सौप्तिक ६.१६ (अश्वत्थामा द्वारा पाण्डव-शिविर के द्वार पर स्थित भूत पर इन्द्रकेतु के समान गदा से प्रहार करने का उल्लेख),

टिप्पणी : अथर्वपरिशिष्ट १९.१ तथा कौशिक सूत्र १४० में इन्द्र महोत्सव की विधि का वर्णन है। शब्दकल्पद्रुम शब्दकोश में देवी पुराण अध्याय २१ से इन्द्र महोत्सव की विधि उद्धृत की गई है। वाचस्पत्यम् शब्दकोश में बृहत्संहिता तथा कालिका पुराण से इन्द्र महोत्सव की विधि उद्धृत की गई है। अथर्वपरिशिष्ट १९.१.८ आदि में इन्द्र महोत्सव के संदर्भ में पूर्व में अग्नि भय, दक्षिण में यम भय, पश्चिम में वरुण भय और उत्तर में क्षुधा भय का उल्लेख है। अन्यत्र (तैत्तिरीय आरण्यक १.३३.६) उत्तर दिशा में इन्द्र के यजन का उल्लेख है। क्षुधा की पूर्ति अन्न से होती है। पुराणों में प्राय: सर्वत्र इन्द्रध्वज उत्सव चातुर्मास काल (आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन) में किसी मास में करने का उल्लेख आता है। अत: यह समझा जा सकता है कि इन्द्रध्वज उत्सव में चातुर्मास काल का पूरा कृत्य, जिसका वर्णन शतपथ ब्राह्मण २.५.१.१+ आदि में किया गया है, अन्तर्निहित है। चातुर्मास याग के चार पर्वों में पहले पर्व में वैश्वदेव याग अथवा अग्नि अनीकवती इष्टि की जाती है। दूसरा पर्व वरुणप्रघास पर्व, तीसरा साकमेध पर्व (मरुतों की इष्टि) तथा चौथा पर्व शुनासीर यज्ञ (इन्द्र का यजन) कहलाता है। चौथे पर्व शुनासीर यज्ञ के बारे में शतपथ ब्राह्मण २.६.३.२ में उल्लेख है कि शुनासीर शब्द में शुन:/श्री का सम्पादन साकमेध पर्व द्वारा किया जाता है जिसमें इन्द्र मरुतों की सहायता से वृत्र का वध करता है। शुन:सीर में सीर को प्रजित संवत्सर का रस कहा गया है (तुलनीय : तैत्तिरीय ब्राह्मण १.२.१.८ में शमीगर्भ में उत्पन्न अश्वत्थ की यज्ञीय केतु से उपमा?)। ऐसा प्रतीत होता है कि पुराणों में कृष्ण द्वारा इन्द्रयाग के स्थान पर गोवर्धन पूजा प्रचलित करने का सम्बन्ध साकमेध और शुनासीर पर्वों से है। भविष्य पुराण ३.४.२५.१६५ में गोकुल आदि १० ग्रामों को १० इन्द्रियों का तथा गोवर्धन को मनस् प्रकृति का प्रतीक कहा गया है। पुराणों में प्राय: असुरों आदि के इन्द्रध्वज की भांति भूमि पर गिरने का उल्लेख आता है। डा० फतहसिंह की विचारधारा के अनुसार यह कथन उन्मनी / उर्ध्वमुखी शक्ति के समनी/अधोमुखी शक्ति बनने से सम्बन्ध रखता है (तुलनीय : ऋग्वेद १.१०३.१)। मन के अनुदिश

शक्तिपात होने पर ही जो मन पहले इन्द्रियों रूपी गायों का हरण करने वाला था, गायों का वर्धन करने वाला बन जाएगा। तब इन्द्रियों रूपी गायों से परम अन्न की प्राप्ति होगी जो देवों की क्षुधा का निवारण करेगी। शुनासीर यज्ञ में यही अन्न सीर हो सकता है।

वैदिक साहित्य में अधिकांश स्थानों पर ध्वज शब्द के बदले केतु शब्द का प्रयोग हुआ है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१०.८.२ में मन्द्र अभिभूति को, जो यज्ञ की वाक् है, केतु कहा गया है तथा इसका वर्णन किया गया है। ऋग्वेद में अग्नि को कई स्थानों पर यज्ञ का केतु कहा गया है। धूम्र, उषा व आदित्य को भी अग्नि का केतु कहा गया है। अह, रात्रि, चन्द्रमा, वनस्पति आदि को भी केतु कहा गया है। जैमिनीय ब्राह्मण ३.५८ में छन्दों को केतु कहा गया है जो तभी उत्पन्न होते हैं जब अह रूपी ध्रुव स्थिति प्राप्त हो जाती है। यह ध्रुव स्थिति आकाश में तो प्राप्त हो जाती है, लेकिन मन रूपी अन्तरिक्ष अध्रुव बना रहता है (शतपथ ८.२.१.२)। यास्क के निघण्टु में केतः और केतु शब्दों की परिगणना प्रज्ञा नामों के अन्तर्गत की गई है (कित् -ज्ञाने)। यह केतु किस प्रकार उत्पन्न किया जा सकता है, यह विचारणीय प्रश्न है। हो सकता है कि अग्नि जिस रूप में ऊपर जाकर सोम का आहरण करता है, उसे अग्नि का केतु कहा गया हो। ऋग्वेद ९.८६.७ में सोम को यज्ञ का केतु कहा गया है। ऋग्वेद १०.८५.१९ में चन्द्रमा को अह/दिन का केतु कहा गया है। अह को केतु कहने का कारण यह है कि दिन निकलने पर ही सब प्राणियों को प्रज्ञान उत्पन्न होता है। इन्द्रध्वज उत्सव में वनस्पति को काट कर तथा उसे शकट पर ढोकर लाने आदि के पौराणिक वर्णन के संदर्भ में ऋग्वेद ३.८.८ में यज्ञ में आहवनीय अग्नि से पूर्व दिशा में स्थापित किए जाने वाले यूप को, जिसे वनस्पति का तक्षण करके बनाया जाता है, केतु कहा गया है। ऋग्वेद ५.७.४ में उल्लेख है कि जब पावक वनस्पतियों को जलाती है तो वह रात्रि का केतु बन जाता है जो दूर से भी दिखाई देता है। ऋग्वेद १.३६.१४ में यूप से सविता की भांति स्थित होने और केतु के द्वारा ऊर्ध्व दिशा में रक्षा की प्रार्थना की गई है। यह विचारणीय है कि वनस्पति रूपी यूप इन्द्रध्वज किस प्रकार बन सकता है ? ऐतरेय ब्राह्मण २.२ में यूप स्थापना का वर्णन किया गया है।

इन्द्रनील गरुड १.७२ (मणि : बल असुर के नेत्रों से उत्पत्ति, महिमा), गर्ग ७.६.३० (माहिष्मती -राजा, - प्रद्युम्न की आधीनता स्वीकार करना), १०.१४ (० का अनिरुद्ध -सेना से युद्ध व पराजय)

इन्द्रप्रतिम वायु ७०.८८ (वसिष्ठ व कपिंजली / घृताची -पुत्र, कुशीति उपनाम, वसु -पिता)

टिप्पणी : ऋग्वेद ९.९७.४ ऋचाओं के ऋषि का नाम वसिष्ठ - पुत्र इन्द्रप्रमति है। यदि पुराणों के इन्द्रप्रतिम का आशय इसी इन्द्रप्रमति से है तो पुराणों में इन्द्रप्रमति की उत्पत्ति का वर्णन इन्द्रप्रमति और उनके द्वारा दृष्ट ऋचाओं को समझने का एकमात्र आधार है।

इन्द्रप्रस्थ पद्म ६.१९९ (इन्द्र द्वारा खाण्डव वन में याग के पश्चात याग स्थल का इंद्रप्रस्थ नाम होना), ६.२०० (इन्द्रप्रस्थ क्षेत्र माहात्म्य, शिवशर्मा व इन्द्र के अंश विष्णुशर्मा द्वारा स्नान), ६.२०१ (शिवशर्मा द्वारा निगमोद्बोध तीर्थ में स्नान से पुत्र प्राप्ति, निगमोद्बोध तीर्थ जल के पान से राक्षस को पूर्व जन्म वृतांत का स्मरण, इन्द्रप्रस्थ तीर्थ में मरण से शरभ वैश्य को वैकुण्ठ लोक प्राप्ति), ६.२०५ (० तीर्थ में अम्बुहस्ती राक्षस द्वारा पंक में फंसी गौ के उद्धार के प्रयास में जल में डूबने से मृत्यु पर मुक्ति, शरभ वैश्य का शिवशर्मा रूप में जन्म, शिवशर्मा द्वारा निगमोद्बोध तीर्थ में देह त्याग से मुक्ति), ६.२०६ (इन्द्रप्रस्थ के अन्तर्वर्ती द्वारका तीर्थ का माहात्म्य : ६.२०७ (विमल विप्र द्वारा निगमोद्बोध तीर्थ में स्नान से पुत्र वर प्राप्ति), ६.२०८ (विमल विप्र द्वारा इन्द्रप्रस्थ के अन्तर्गत द्वारका में स्नान से विष्णु भक्ति प्राप्ति, द्वारका के जल से राक्षसियों का उद्धार), ६.२०९+ (इन्द्रप्रस्थ के अन्तर्गत कोशला तीर्थ माहात्म्य : कोशला तीर्थ में अस्थि पतन से मुकुन्द द्विज व सर्प योनि प्राप्त नापित की मुक्ति इत्यादि), ६.२१३+ (इन्द्रप्रस्थ के अंतर्गत मधुवन तीर्थ माहात्म्य : विश्रांति तीर्थ माहात्म्य), ६.२१६ (मधुवनस्थ बदरिकाश्रम माहात्म्य), प ६.२१७ (इन्द्रप्रस्थ के अंतर्गत हरिद्वार माहात्म्य), ६.२१८+ (इन्द्रप्रस्थ के अंतर्गत पुष्कर माहात्म्य : पुष्कर सेवन से भरत को विमान प्राप्ति, पुण्डरीक की मुक्ति), प ६.२२०+ (० के अंतर्वर्ती प्रयाग तीर्थ माहात्म्य : मोहिनी वेश्या का द्रविड देश के राजा की पत्नी बनना), ६.२२२ (० के अन्तर्गत काशी माहात्म्य; गोकर्ण तीर्थ माहात्म्य; शिव कांची माहात्म्य; युधिष्ठिर द्वारा इन्द्रप्रस्थ में राजसूय यज्ञ करना), ब्रह्माण्ड ३.४.१२.४४ (भंडासुर के भय से मुक्ति हेतु इन्द्र द्वारा पराशक्ति की आराधना का स्थान)

टिप्पणी : वैदिक साहित्य जैसे ऋग्वेद १०.११६.२, १०.११६.७ तथा अथर्ववेद २०.८७.२ आदि में इन्द्र से "प्रस्थित" सोम्य मधु पीने की प्रार्थना की गई है। प्रस्थिति क्या है, इसके लिए अथर्ववेद ४.७.४ में चरु जैसी गति को वाक् द्वारा स्थापित करने का उल्लेख आता है। चरु में एक तो तण्डुल होता है जो सोम का रूप है। दूसरा भाग घृत होता है जो अग्नि को प्रिय है। इस प्रकार चरु अग्नीषोमात्मक है। इस चरु को पांच बिलों वाले पात्र में ग्रहण किया जाता है। हमारे व्यक्तित्व के पांच कोशों को ही पांच बिलों वाला पात्र कहा जा सकता है। शांखायन श्रौत सूत्र ७.५.११ के टीकाकार के अनुसार यज्ञ कर्म में अध्वर्यु , प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा, आदि ऋत्विज प्रस्थित सोम्य मधु की प्राप्ति के लिए अपने-अपने पात्रों को तैयार रखते हैं। यह कार्य यज्ञ के अंतिम चरण में अग्नि को स्विष्टकृत (हिंसक प्रवृत्ति से रहित)

बनाने के पश्चात अनुयाज नामक कर्म में किया जाता है (अग्नि स्विष्टकृत और अनुयाज कर्म के बीच इडा आह्वान कर्म होता है)। वेद मन्त्रों में "प्रतिष्ठा" शब्द आता है जो संभवतः अग्नि को स्विष्टकृत बनाने से सम्बन्धित है - ऐतरेय ब्राह्मण २.१० (तैत्तिरीय ब्राह्मण १.३.३.४ व ७ तथा ३.१२.९.४ में आहवनीय अग्नि पर सोम ग्रह की प्रतिष्ठा द्वारा प्राणों की और गार्हपत्य अग्नि पर सुराग्रह की प्रस्थिति ? द्वारा अपान की व जाया की प्रतिष्ठाओं के उल्लेख हैं)। महाभारत आदिपर्व अध्याय २२१ में ब्राह्मण रूप धारी अग्नि द्वारा खाण्डव वन को जलाने का वर्णन है। यह प्रतिष्ठा के अन्तर्गत है। इसके पश्चात खाण्डव वन में इन्द्रप्रस्थ की स्थापना होती है। यह सुरा की प्रस्थिति है। महाभारत में इन्द्रप्रस्थ की तुलना नागों की भोगवती पुरी से की गई है। इन्द्रप्रस्थ की स्थिति नाग/हस्तिनापुर से बाहर यमुना तट पर कही गई है। यह विचारणीय है कि चरु की चरणशील स्थिति, नाग (न-अग) प्राणों की न स्थिर, न गतिशील स्थिति तथा प्रस्थिति आदि में क्या अंतर है।

महाभारत आदिपर्व २२१ में जिस अग्नि द्वारा खाण्डव वन जलाने का वर्णन है, वह अग्नि कौन सी है? ऐसा अनुमान है कि यह अग्नि तीसरे नेत्र का तेज है। पद्म पुराण में इन्द्रप्रस्थ तीर्थ के अन्तर्गत द्वारका, कोशला, मथुरा, काशी, शिवकांची, हरिद्वार आदि ७ तीर्थों की स्थिति का वर्णन आता है। ललाट में तीसरे नेत्र की स्थिति को योग शास्त्र में काशी का प्रतीक माना जाता है। गले में विशुद्धिचक्र की स्थिति को द्वारका माना जाता है। हृदय प्रदेश को मथुरा तथा मूलाधार को मायापुरी/हरिद्वार माना जाता है। ऐसी कल्पना की जा सकती है कि यह तीर्थ प्रतिष्ठा हेतु प्रशस्त हैं। लेकिन जब इन तीर्थों की प्रतिष्ठा इन्द्रप्रस्थ तीर्थ के अन्दर हो जाती है, तब यह "प्रस्थिति" के लिए प्रशस्त हो जाते हैं। यह अन्वेषणीय है कि क्या इन्द्रप्रस्थ को सहस्रार चक्र कहा जा सकता है?

पुराणों में इन्द्रप्रस्थ में निगमोद्बोध तीर्थ में ब्रह्मा द्वारा विस्मृत वेदज्ञान की प्राप्ति तथा अन्यों द्वारा पूर्व जन्मों की समृति प्राप्ति के उल्लेख के संदर्भ में तैत्तिरीय संहिता २.६.९.१, गोपथ ब्राह्मण २.१.४, शतपथ ब्राह्मण १.७.४.१९, २.५.२.४१, २.६.१.४४ आदि में उल्लेख आता है कि यज्ञ के अन्त में अनुयाज कर्म में अध्वर्यु ऋत्विज दक्षिण में स्थित ब्रह्मा नामक ऋत्विज से प्रस्थान की अनुमति मांगता है - "ब्रह्मन् प्रस्थास्यामः"। यहीं पर प्रश्न उठाया गया है कि ब्रह्मा उन्हें किस प्रकार अनुमति दे - हाथ उठाकर, सिर हिला कर या चुप रह कर? कहा गया है कि यह सब प्रकार यज्ञ को नष्ट करने वाले हैं। ब्रह्मा अपनी अनुमति वाक् द्वारा देता है। वाक् यज्ञीय है। ब्रह्मा यहां बृहस्पति का रूप है। यह यज्ञीय वाक् ही इन्द्रप्रस्थ निगमों का उद्बोध तथा पूर्व जन्मों की स्मृति हो सकती है। इस संदर्भ में ब्रह्माण्ड पुराण का यह उल्लेख कि इन्द्रप्रस्थ इन्द्र द्वारा परा शक्ति की आराधना का स्थान है, में पराशक्ति परा वाक् का रूप हो सकती है। इससे निचले स्तरों पर वाक् को पश्यन्ती, मध्यमा व वैखरी कहा जाता है। डा० फतहसिंह का कथन है कि ब्रह्माण्ड पुराण का यह उल्लेख इन्द्रप्रस्थ को समझने की कुंजी है। पराशक्ति की उपासना इन्द्र भण्डासुर के भय से करता है। यहां भण्डासुर के भण्डारण की प्रवृति में असुरत्व की तुलना इन्द्रप्रस्थ में रत्नों की प्रस्थिति/ढेर से करना अपेक्षित है। पद्म पुराण में पुत्र प्राप्ति हेतु वैश्य-पत्नी द्वारा गौरी की आराधना व दिलीप द्वारा गौ की सेवा के संदर्भ में गौरी भी ओंकार रूपी वाक् का ही प्रतीक है। गौ-सेवा के संदर्भ में अथर्ववेद ३.१७.३ तथा तैत्तिरीय संहिता ४.२.५.६ में कृषि द्वारा गौ व अवि को पुष्ट करने आदि के उल्लेख दृष्टव्य हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.४.३.१३ में इन्द्र के वज्र के गव्यु होने की कामना की गई है।

ऋग्वेद १.९३.७, तैत्तिरीय संहिता २.३.४.२ तथा ऐतरेय ब्राह्मण २.१० आदि में अग्नीषोम- के हवि द्वारा प्रस्थित होने का उल्लेख आया है। इसका निहितार्थ अन्वेषणीय है। इस संदर्भ में यह महत्वपूर्ण है कि महाभारत में खाण्डव दाह करते समय अर्जुन को जिस रथ व धनुष की प्राप्ति हुई थी, वह पहले सोम के पास थे। सोम से वरुण को प्राप्त हुए और वरुण से अर्जुन को। ऋग्वेद ९.६९.९ में भी सोमों के रथों की भांति इन्द्र के प्रति आने का उल्लेख है। पद्म पुराण में इन्द्रप्रस्थ के अन्तर्गत मथुरा/मधुरा में श्राद्ध का निर्देश है। ऋग्वेद ९.६९.८ में सोम को ही पितर कहा गया है।

ऐतरेय ब्राह्मण ६.१० से ६.१२ तथा गोपथ ब्राह्मण २.२.२० में प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन व तृतीय सवनों में इन्द्र रूपी यज्ञ की प्रस्थिति का वर्णन किया गया है और यह समझाने का प्रयत्न किया गया है कि तीनों सवनों में विभिन्न ऋत्विजों द्वारा विभिन्न देवों का आह्वान होते हुए भी किस प्रकार वह सब इन्द्र देवता के लिए ही हैं। इस वर्णन का निहितार्थ समझ कर उसके पौराणिक संदर्भ की खोज अपेक्षित है।

वेद मन्त्रों में यद्यपि मुख्य रूप से इन्द्र से ही प्रस्थित सोम्य मधु पान करने की प्रार्थना की गई है, लेकिन कुछ मन्त्रों में अन्य देवताओं का भी उल्लेख है। उदाहरणार्थ अथर्ववेद ४.१.३ में बृहस्पति, १८.२.२ में यम; २०.६७.५ व ७ में अग्नि। ऋग्वेद ८.३५.२३ में नमोवाक् द्वारा अश्विनी-द्वय के प्रस्थित होने का उल्लेख है। ऋग्वेद १.२३.१ तथा ७.९२.२ में वायु से प्रस्थित सोमों को पीने की प्रार्थना की गई है। महाभारत व पुराणों में इन्द्रप्रस्थ के वर्णन के संदर्भ में बहुत से प्रसंग अनुत्तरित रह जाते हैं जिनकी व्याख्याएं अपेक्षित हैं।

इन्द्रलोक वराह १४१.१० (बदरी तीर्थ के अंतर्गत ० तीर्थ माहात्म्य)

इन्द्रवाह देवीभाग. ७.९.२८ (इन्द्र के ककुद पर आरूढ होकर असुरों से युद्ध के कारण ककुत्स्थ राजा का नाम), लक्ष्मी नारायण ३.१५८.१ (भूति द्वारा ० मनु पुत्र की प्राप्ति का वृत्तांत); दृ. ककुत्स्थ

इन्द्रसावर्णि ब्रह्म वैवर्त ४.४१.१११ (चौदहवें मन्वन्तर में मनु, वंशानुकीर्तन), भागवत ८.१३.३३ (० मनु के समय में सप्तर्षि व अवतार कथन), लक्ष्मी

नारायण ३.१५८.१ (भूति द्वारा ० मनु पुत्र की प्राप्ति का वृत्तांत); दृ. मन्वन्तर

इन्द्रसेन स्कन्द १.१.५.६४ (अज्ञान में हर नाम उच्चारण से ० नृप का चण्ड नामक शिव गण बनना), स्क ३.३.८.४० (नल व दमयन्ती का पुत्र, चित्रांगद - पिता, पुत्र की मृत्यु हो जाने की कल्पना में शत्रुओं द्वारा ० का राज्य छीनना), ६.३१.४४ (सर्प दंश से मृत्यु पर ० को प्रेत योनि प्राप्ति, नागतीर्थ में श्राद्ध से मुक्ति), ७.३.३१ (सुनन्दा -पति, पति की मृत्यु के मिथ्या समाचार से पत्नी का मरण, ० द्वारा पत्नी विनाश पाप का प्रायश्चित्त), प ६.५८.५ (माहिष्मती पुरी -राजा, इन्दिरा एकादशी व्रत से स्वर्ग प्राप्ति), भागवत ५.२०.४ (प्लक्ष द्वीप में सात मर्यादा पर्वतों में से एक), भा ६.६.५ (देवऋषभ -पुत्र, धर्म -पौत्र), ८.२२.३३ (राजा बलि का एक नाम), ९.२.१९ (कूर्च - पुत्र, वीतिहोत्र -पिता, वैवस्वत मनु/नरिष्यन्त वंश), मत्स्य ५०.६ (ब्रह्मिष्ठ -पुत्र, विन्ध्याश्व -पिता, मुद्गल/भद्राश्व वंश), लक्ष्मी नारायण १.२५८.४८ (चन्द्रावती पुरी राजा, इन्दिरा एकादशी व्रत के पुण्य दान से पिता चन्द्रसेन का उद्धार), १.२६०.७८ (चन्द्रसेन -पुत्र शशिसेन का उपनाम, रमा एकादशी व्रत के प्रभाव से स्वर्ग लोक प्राप्ति)

टिप्पणी : ऋग्वेद १.८१.२ तथा ७.३०.२ में इन्द्र को "सेन्य" कहा गया है। ऐसा अनुमान है कि यह पुराणों में इन्द्रसेन शब्द का मूल है। सेन्य अर्थात जिसे सेना से युक्त किया जा सकता है। इन्द्रसेन की प्रकृति के निर्णय से पूर्व सेना शब्द को समझना होगा। उणादिकोश में सेना की व्युत्पत्ति सिनोति इति सेना अर्थात जो (शत्रु को) बांधती है, वह सेना है, इस प्रकार की गई है। सेना की दूसरी व्युत्पत्ति सायण भाष्य आदि में स-इनः, ईश्वर सहित, रूप में की जाती है। सेना की यह दोनों व्युत्पत्तियां विभिन्न स्तरों पर ठीक हो सकती हैं। शतपथ ब्राह्मण ८.६.१.१६ में पंचचूडा इष्टिकाओं की स्थापना के संदर्भ में पांच दिशाओं में पांच प्रकार की इष्टिकाओं की स्थापना की जाती है। पूर्व दिशा में स्थापित इष्टका अग्नि से सम्बन्धित है, दक्षिण दिशा में वायु से, पश्चिम दिशा में आदित्य से, उत्तर दिशा में यज्ञ से और मध्य या ऊर्ध्व दिशा में पर्जन्य से। इन इष्टिकाओं की स्थापना करते समय इन दिशाओं में सेनानी और ग्रामणी के नामों का भी उल्लेख किया गया है। पूर्व दिशा में रथगृत्स सेनानी है, दक्षिण में रथस्वन, पश्चिम में रथप्रोत, उत्तर में तार्क्ष्य व मध्य में सेनजित्। जैमिनीय ब्राह्मण २.३१८ के अनुसार ऐन्द्री सेना तीन मुख वाली होती है - पृथिवी पर अग्नि मुख वाली, अन्तरिक्ष में वायु मुख वाली और द्युलोक में आदित्य मुख वाली। सेना के इन तीन मुखों से युक्त होने पर ही इन्द्र शत्रुओं पर विजय पा सकता है। पृथिवी पर स्थित अग्नि की सेना को, जो शत्रुओं को जला कर नष्ट कर देती है, सिनोति इति सेना वाली व्युत्पत्ति से सम्बद्ध किया जा सकता है। द्युलोक में आदित्यों की सेना को स-इनः वाली व्युत्पत्ति से सम्बद्ध किया जा सकता है (रामपूर्वतापिन्युपनिषद ७० में १२ आदित्यों को इनाः कहा गया है)। पंच चूडा इष्टिकाओं के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण ८.६.१.१९ में यज्ञ की उत्तर दिशा में तार्क्ष्य को सेनानी (सेना का नेता या मुख, शतपथ ५.३.१.१) कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सेना का ऊर्ध्व विकास श्येन बनने में है जो स्वर्ग से सोम ला सकता है या पर्जन्य वर्षण करा सकता है। स्कन्द पुराण में इन्द्रसेन की सर्प दंश से मृत्यु आदि की व्याख्या इसी आधार पर की जा सकती है। यह इन्द्रसेन की श्येन बनने से पूर्व की स्थिति है। पौराणिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से इन्द्रसेन का सम्बन्ध चन्द्रमा से स्थापित किया गया है। यह कहा जा सकता है कि यह सेना के श्येन रूप से सम्बन्धित है। स्कन्द पुराण में आहर, प्रहर आदि शब्दों के उच्चारण मात्र से इन्द्रसेन के चण्ड नाम शिव गण बनने के संदर्भ में चण्ड भी चन्द्रमा का विकृत रूप है।

नल व दमयन्ती - पुत्र इन्द्रसेन के संदर्भ में ऋग्वेद ७.२०.५ की ऋचा विचारणीय है।

इन्द्रसेना हरिवंश २.६१.७ (नारायण - पुत्री), वायु ९९. २०० (ब्रह्मिष्ठ -पत्नी, बध्यश्व-माता), कथासरित् ९.६.२८६ (नल व दमयन्ती -पुत्री, चन्द्रसेन -भगिनी) महाभारत विराट २१.११ (नारायण-पुत्री, वृद्ध मुद्गल ऋषि-पत्नी)

टिप्पणी : जैमिनीय ब्राह्मण २.६९ के अनुसार यज्ञ में जो देवों की स्तुति आदि की जाती है, वह प्रजापति की सेना है (तुलनीय : पुराणों में सेना के नारायण - पुत्री होने का उल्लेख), जबकि जो वीणा द्वारा गाया जाता है, नृत्य किया जाता है, वृथा आचरण किया जाता है, वह सब मृत्यु की सेना है। तैत्तिरीय संहिता २.२.८.१ के अनुसार इन्द्राणी ही देव सेना की देवता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.४.२.७ के अनुसार पृथिवी का ही नाम सेना है जहां पृथिवी को धनंजया, विश्वव्यचा, अदिति, इन्द्राणी आदि विशेषण दिए गए हैं। गोपथ ब्राह्मण २.२.९ में पृथिवी को अग्नि की पत्नी, वाक् को वात की, सेना को इन्द्र की, धेना को बृहस्पति की पत्नी आदि कहा गया है। आपस्तम्ब श्रौत सूत्र ११.३.१४ में सेना को इन्द्र की धेना कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण ३.२२ में सेना के इन्द्र की वावाता प्रकार की पत्नी होने का वर्णन है। शतपथ ब्राह्मण १४.५.१.६ तथा कौशीतकि ब्राह्मणोपनिषद ४.७ के अनुसार जब इन्द्र वैकुण्ठ लोक प्राप्त कर लेता है, तभी उसकी सेना अपराजित बनती है। नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषद ३.१ में गौ, षष्ठी विद्या को इन्द्रसेना कहा गया है।

अथर्ववेद १५.९.२ से यह संकेत मिलता है कि सेना और सुरा में कोई सम्बन्ध है, वैसे ही जैसे सभा और समिति में। अथर्ववेद के कई सूक्त जैसे ५.२०, ६.६६, ८.८ आदि शत्रुनाशन कर्म से सम्बन्धित हैं जिनमें सेना शब्द का प्रयोग भी हुआ है। अथर्ववेद ११.१२.४ -७ में

त्रिसन्धि की सेना का वर्णन है। जैमिनीय ब्राह्मण २.७३ में देवों की सेना को संख्यानम् और अमृत कहा गया है। निहितार्थ अन्वेषणीय है।

इन्द्राग्नि विष्णु धर्मोत्तर १.८२.४ (१२ खण्ड्युगेश्वरों में से एक), १.८३.१७ (विशाखा नक्षत्र के इन्द्राग्नि देवता का उल्लेख), १.१०२.१७ (विशाखा नक्षत्र के लिए इन्द्राग्नी रोचना दिवं इति होम मन्त्र (ऋ ३.१२.९) का उल्लेख), वामन ८७.२९ (केशव के वदन से इन्द्राग्नि की उत्पत्ति का उल्लेख), मत्स्य १७.३८ (पितरों के श्राद्ध में पठित सूक्तों में इन्द्राग्नि सूक्त का उल्लेख), नारद १.८९.१४३ (ललिता देवी के सहस्र नामों में से एक), स्कन्द ४.१.१० (इन्द्राग्नि लोक वर्णन के अन्तर्गत चन्द्रमा की ज्योतिष्मती पुरी, इन्द्र की अमरावती पुरी तथा अग्नि की अर्चिष्मती पुरी प्राप्ति के उपायों का वर्णन; विश्वानर द्विज द्वारा वीरेश्वर शिव की आराधना से वैश्वानर पुत्र प्राप्ति की कथा), महाभारत उद्योग १५.३१ (अग्नि द्वारा जल में छिपे हुए इन्द्र का पता लगाना), १६.३२ (इन्द्र द्वारा अग्नि को यज्ञ में इन्द्राग्नि नामक भाग प्रदान करने का उल्लेख), द्रोण १०१.२४ (रण में द्रोण व कृतवर्मा की अस्त्र वर्षा से मुक्त हुए कृष्ण व अर्जुन की इन्द्राग्नि सदृश शोभा का उल्लेख)

टिप्पणी : ऋग्वेद में १.२१, १.१०८, १.१०९, ३.१२, ५.८६, ६.५९, ६.६०, ७.९३, ७.९४, ८.३८, ८.४०, १०.१६१ आदि सूक्त इन्द्राग्नि-द्वय देवता के हैं। यह समझना महत्वपूर्ण है कि वेद में अग्नि और इन्द्र देवताओं को मिलाकर इन्द्राग्नी का नामकरण करने से किस उद्देश्य की पूर्ति की गई है। यज्ञ कार्य में तीन सवन होते हैं - प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन और तृतीय या सायं सवन। प्रातः सवन में अग्नि का विकास होता है, माध्यन्दिन में इन्द्र का और तृतीय में विश्वेदेवों का। यह सामान्य स्थिति है। लेकिन यदि अग्नि और इन्द्र का विकास चरम सीमा तक हो जाए, पुराणों की भाषा में इन्द्र वृत्र का वध कर दे और अग्नि इतनी प्रबल हो जाए कि वह (हिरण्यय कोश के ?) जल में छिपे हुए इन्द्र को खोजने के लिए जल में प्रवेश करने में समर्थ हो जाए, तो तृतीय सवन में विश्वेदेवों का स्थान इन्द्राग्नि ले लेते हैं। शतपथ ब्राह्मण २.४.३.६, २.५.४.८, ४.२.२.४, १०.४.१.९ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.९.१६.३ में अग्नि को ब्राह्मण, इन्द्र को क्षत्रिय तथा विश्वेदेवों को विशः या प्रजा कहा गया है। अग्नि का ब्राह्मण स्वरूप कैसा होगा, इस विषय में ऋग्वेद की प्रथम ऋचा अग्निं ईडे पुरोहितम् इत्यादि उल्लेखनीय हैं। पुरोहित क्षत्रिय यजमान के विकास में सहायता करता है। पद्म पुराण ५.८४.८४ के अनुसार अग्नि ज्वाला से कर्मों को जलाकर विषयों को काला बना देना है। वैदिक भाषा में अग्नि का कार्य मुख्य रूप से यजमान द्वारा अर्पित हवि को देवताओं तक पहुंचाना तथा गायत्री सुपर्ण बन कर स्वर्ग से सोम लाना होता है। इन्द्र का कार्य, वृत्र आदि शत्रुओं का वध करना तथा अग्नि द्वारा प्रस्तुत हवि का सेवन करना, अपनी इन्द्रियों द्वारा उस हवि में मधु की अनुभूति करना होता है। इन्द्राग्नि का स्वरूप कैसा होगा, इस संदर्भ में तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१.१.११ तथा तैत्तिरीय संहिता ४.४.१०.२ आदि में विशाखा नक्षत्र के देवता के रूप में इन्द्राग्नि-द्वय का उल्लेख आता है। इन्द्राग्नि से सम्बन्धित वैदिक ऋचाओं में विशाखा का नाम नहीं आता, अतः प्रश्न उठता है कि इन्द्राग्नि और विशाखा में क्या सामंजस्य है? इसका उत्तर तैत्तिरीय ब्राह्मण में विशाखा नक्षत्र के राधा उपनाम से मिलता है। विशाखा नक्षत्र के पश्चात अनुराधा नक्षत्र आता है। अनुराधा से पूर्व के नक्षत्र को राधा नाम दिया गया है और वैदिक ऋचाओं में इन्द्राग्नि के संदर्भ में राधा या राधस् शब्द का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है (यद्यपि इन्द्राग्नि ललिता देवी के सहस्रनामों में से एक है, किन्तु यह उल्लेखनीय है कि पुराणों में ललिता, विशाखा व राधा के अपने विशिष्ट स्थान है)। इस प्रकार इन्द्राग्नि देवता के स्वरूप को समझने के लिए विशाखा नक्षत्र के स्वरूप को समझने की आवश्यकता है। पद्म पुराण ५.८४ - ५.१०३ में वैशाख मास माहात्म्य का वर्णन है (वैशाख मास की पूर्णिमा को चन्द्रमा की स्थिति विशाखा नक्षत्र के निकट होती है, जबकि इस मास में सूर्य मेष राशि में रहता है)। वैशाख मास में मधु दैत्य के हनन के पश्चात जलशायी विष्णु/माधव की महिमा का गुणगान किया गया है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि सारा जीवन विष्णुमय, यज्ञमय हो गया है तथा यज्ञ में माधुर्य में जो मधु दैत्य रूपी आसुरी तत्व था, वह नष्ट हो गया है। यह स्थिति वैदिक साहित्य के तृतीय सवन का वर्णन करती है जहां इन्द्र मधु की अनुभूति करने में समर्थ होता है। तैत्तिरीय संहिता १.६.२.४, १.६.११.६ तथा बौधायन श्रौत सूत्र ३.१८.१७ में इस स्थिति की इन्द्राग्नि को इन्द्रियावी तथा अन्नाद, अन्न का भक्षण करने वाली कहा गया है। जैमिनीय ब्राह्मण २.१३२, २.१३३ व शांखायन श्रौत सूत्र १४.२९ आदि में इस अवस्था का वर्णन इन्द्राग्नि के कुलाय अर्थात मधु के छत्ते के रूप में किया गया है।

पद्म पुराण में वैशाख मास में अश्वत्थ वृक्ष के मूल का सिंचन करने तथा विष्णु को तुलसी पत्र अर्पित करने का निर्देश है। इसका अर्थ होगा कि अश्वत्थ वृक्ष और तुलसी वृक्ष ही विशाखाएं हैं जिनके मूल में, हिरण्यय कोश में (द्र० शतपथ ब्राह्मण १०.४.१.६) विष्णु शयन कर रहे हैं। हिरण्यय कोश में जल ही जल है, मधु ही मधु है जिसका निचले कोशों में अवतरण कराना होता है, उसे अश्वत्थ और तुलसी वृक्षों का रूप देना होता है। पद्म पुराण ५.९४.७५ में मुनिशर्मा नामक ब्राह्मण को पर्युषित, सूचक आदि प्रेतों के दर्शन होते हैं। पर्युषित नामक प्रेत के पर्युषित नाम का कारण यह है कि पूर्व जन्म में वह स्वयं तो स्वादिष्ट भोजन करता था तथा दूसरों को पर्युषित/बासी भोजन देता था। हिरण्यय कोश से जिस मधु का अवतरण होता है, उसे नित्यप्रति नया करने की आवश्यकता है, हिरण्यय कोश में पहुंच

कर उस मधु के अवतारण की आवश्यकता है, अन्यथा वह बासी हो जाएगा। शतपथ ब्राह्मण ४.३.१.२३, गोपथ ब्राह्मण २.२.१, तैत्तिरीय ब्राह्मण १.६.४.३ आदि में इन्द्राग्नि को प्राणापानौ अथवा प्राणोदानौ कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण ५.२.३.८ में इन्द्राग्नि को वृषभ/अनड्वान कहा गया है। इसका सामान्य अर्थ यह लिया जाता है कि यह प्राणों की पराक् और अर्वाक् गति का प्रतीक है। लेकिन पुराणों का उपरोक्त आधार इसकी अद्भुत व्याख्या प्रस्तुत करता है। वैदिक साहित्य में मित्रावरुणौ देवता - द्वय आदि के लिए भी प्राणापानौ आदि गतियों का उल्लेख आया है। लेकिन मित्रावरुण की स्थिति वरुण के पाश खुलने के पश्चात मित्र द्वारा अनुग्रह की स्थिति है, जबकि इन्द्राग्नि की स्थिति वरुण के पाश खुलने और वृत्र का वध होने के पश्चात यज्ञ के विष्णुमय होने की स्थिति है।

यजुर्वेद १२.५४ तथा तैत्तिरीय संहिता ४.२.९.४, ५.७.६.३ आदि में इन्द्राग्नि और बृहस्पति का साथ-साथ उल्लेख आया है। शतपथ ब्राह्मण ८.७.२.६ आदि में इन्द्राग्नि और बृहस्पति को अलग - अलग माना गया है लेकिन तैत्तिरीय संहिता ५.५.६.२ के अनुसार इन्द्राग्नि ही बृहस्पति है (पुराणों में बृहस्पति इन्द्र के पुरोहित हैं)। तैत्तिरीय संहिता ५.७.१५.१ में कटि प्रदेश से नीचे के प्राणों के रूप में इन्द्राग्नि को शिखण्ड तथा इन्द्राबृहस्पति को ऊरु कहा गया है। इसको इस प्रकार समझा जा सकता है कि शिखण्ड अवस्था चेतना की गर्भावस्था है, जबकि ऊरु चेतना की विस्तीर्ण अवस्था है।

शतपथ ब्राह्मण १.८.३.४, २.४.३.५ आदि में अमावास्या के देवता के रूप में इन्द्राग्नि का उल्लेख आता है। वर्णन आता है कि अमावास्या को सूर्य रूपी इन्द्र चन्द्रमा रूपी वृत्र को ग्रस लेता है, तथा चन्द्रमा पृथिवी पर ओषधियों आदि में विलीन हो जाता है। वैदिक साहित्य में अमावास्या को इन्द्राग्नि हेतु १२ कपाल पुरोडाश अर्पित करने का उल्लेख आता है जिसका निहितार्थ अपेक्षित है। पुराणों में अमावास्या तथा पूर्णिमा का सम्बन्ध क्रमशः निष्काम और सकाम भक्ति से जोड़ा गया है।

इन्द्राग्नि के स्वरूप को समझने का तीसरा सूत्र वैदिक साहित्य में अच्छावाक् ऋत्विज की प्रकृति से प्राप्त होता है। शतपथ ब्राह्मण ३.६.२.१२ के अनुसार जब गायत्री ने स्वर्ग से सोम का हरण किया, उस समय सोम की रक्षा का भार अच्छावाक् ऋत्विज पर था। अपने कर्तव्य से च्युति के कारण अच्छावाक् को स्वर्ग प्राप्त नहीं हो सका, लेकिन इन्द्राग्नि की सहायता से वह स्वर्ग प्राप्त कर सका। शतपथ ब्राह्मण ४.३.१.१ में अच्छावाक् ऋत्विज इन्द्राग्नि-द्वय की सहायता से ऋतुओं और संवत्सर को उत्पन्न करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि ऋतुएं इन्द्राग्नि के लिए गृह अथवा प्रतिष्ठा का स्थान बनती हैं। अच्छावाक् ऋत्विज की वाक् यज्ञ के अन्त में अनुष्टुप छन्द की वाक् होती है (जैमिनीय ब्राह्मण १.३११) जिसके द्वारा प्रकट हुए इष्ट देवता की स्तुति की जाती है।

इन्द्राणी ब्रह्म २.५९.४४ (महाशनि असुर द्वारा इन्द्र का बन्धन व विमोचन, इन्द्र व इन्द्राणी द्वारा गौतमी तट पर शिव की आराधना से वृषाकपि का प्राकट्य, वृषाकपि द्वारा महाशनि का वध, इन्द्र की वृषाकपि से प्रगाढ मैत्री पर शची को आपत्ति, इन्द्र द्वारा शची को आश्वासन), ब्रह्म वैवर्त ४.४५.३२ (शिव -पार्वती विवाह में शची द्वारा शिव से हास्य), ४.५९+ (नहुष की शची पर आसक्ति, शची द्वारा प्रबोधन, शची द्वारा बृहस्पति की सहायता से नहुष का स्वर्ग से पतन कराना आदि), विष्णु धर्मोत्तर १.२४.६ (संक्षिप्त नहुषोपाख्यान), २.१३२.८ (ऐन्द्री शान्ति के रुक्म वर्ण का उल्लेख), ३.५०.२ (शक्र व शची के स्वरूप का कथन), देवीभाग. ५.२८.२३, ५.२८.५३ (शुम्भ असुर से युद्ध में इन्द्राणी मातृशक्ति का ऐरावत गज पर आरूढ होकर आगमन तथा असुरों का संहार), स्कन्द १.१.१५.७५ (नहुष की इन्द्राणी / शची पर आसक्ति, नहुष का सप्तर्षियों द्वारा वाहित शिबिका पर आरूढ होकर शची से मिलन हेतु गमन आदि), १.२.१३.१६७ (शतरुद्रिय प्रसंग में शची द्वारा बभ्रुकेश नाम से लवण लिंग की आराधना का उल्लेख), २.१.८.६ (श्रीनिवास व कमला के विवाह में इन्द्राणी द्वारा श्री हरि पर छत्र धारण करना), ५.३.४६.३३ (अन्धकासुर द्वारा शक्र से शची को छीनकर ले जाना, विष्णु द्वारा अन्धक वध का उद्योग), नारद १.५६.४१० (कन्या विवाह के समय शची से भाग्य, पुत्र आदि देने की प्रार्थना), मार्कण्डेय ५.२५ (शची का पाण्डव -पत्नी द्रौपदी के रूप में जन्म लेने का उल्लेख), भागवत ६.१८.७ (पौलोमी शची के तीन पुत्रों जयन्त, ऋषभ व मीढुष का उल्लेख), हरिवंश १.२०.१३३ (शची के पुलोमा दानव की पुत्री होने का संकेत), २.७५.४२ (पारिजात हरण प्रसंग में पौलोमी शची द्वारा कृष्ण -पत्नियों के लिए दिव्य उपहार देना), लक्ष्मी नारायण १.३७४ (नहुषोपाख्यान, शची का जन्मांतरों में १४ इन्द्रों की पत्नी होने का कथन), १.४७३.५२ (पौलोमी शची द्वारा मनोरथ तृतीया व्रत से इन्द्र की पति रूप में प्राप्ति), अग्नि १४६.२४ (० देवी की आठ शक्तियों के नाम), मत्स्य ६९.६० (कल्याणी व्रत के प्रभाव से वैश्य कुलोत्पन्न पौलोमी के इन्द्र-पत्नी होने का उल्लेख), २६१.३१ (० मातृका की प्रतिमा का स्वरूप कथन), २८६.७ (० देवी का स्वरूप), वराह २७.३६ (० मातृका : मत्सर का रूप), भविष्य ३.४.३.५६ (० मातृका का वेणु व कन्यावती की पुत्री सिन्दूरा के रूप में जन्म); द्र. ऐन्द्री

टिप्पणी : अथर्ववेद १५.६.२० (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.५.१३.३ भी दृष्टव्य) में दिति - अदिति तथा इडा - इन्द्राणी युगलों का उल्लेख आता है। इसका अर्थ होगा कि जो सम्बन्ध दिति और अदिति में है, वही इडा और

इन्द्राणी में भी है। इडा खण्डित मानव व्यक्तित्व की शक्ति है तो इन्द्राणी अखण्डित देव व्यक्तित्व की। पौराणिक साहित्य में इस तथ्य को इन्द्राणी देवी के वाहन ऐरावत के रूप में चित्रित किया गया है। इस आधार पर वराह पुराण के इस कथन की भी व्याख्या हो जाती है कि इन्द्राणी मत्सर का रूप है। इडा आनंद हैं, मद है। मद से अगली अवस्था मत्सर (सात्विक रूप) की आती है।

तैत्तिरीय संहिता २.२.७.१ आदि में सार्वत्रिक रूप से इन्द्राणी को सेना की देवता कहा गया है। वह सेना का शंसन (संश्यति) करने वाली है, तैत्तिरीय संहिता १.७.१३.१ के सायण भाष्य के अनुसार सेना को स्वकार्यक्षम बनाने वाली, उसे तीक्ष्ण बनाने वाली है। सेना की व्युत्पत्ति निम्न स्तर पर सिनोति इति सेना, अर्थात जो बांधने वाली है वह, के रूप में की जाती है। हमारी इन्द्रियां भी सेना हो सकती हैं जो अपने कार्य में अक्षम हैं, अतः हमें बांधती हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.४.२.७ में धनंजया, विश्वव्यचा, अदिति आदि विशेषणों वाली पृथिवी को सेना कहा गया है। यह सेना की उच्चस्थिति हो सकती है जिसकी व्युत्पत्ति स - इनः, ईश्वर सहित, के रूप में करते हैं। तैत्तिरीय संहिता १.१.२.२ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.२.१.७ में बर्हि आहरण कर्म में बर्हि को रस्सी से बांधते समय कहा गया है कि जो रस्सी (रास्ना) है, वह अदिति का रूप है और जो बांधने (संनहन) का कार्य है, वह इन्द्राणी देवी का है। शतपथ ब्राह्मण १४.२.१.८ के अनुसार यज्ञ कर्म में इडा रूपी गौ के दोहन के समय उसे बांधने वाली रस्सी को अदिति की रास्ना और इन्द्राणी का उष्णीष (शिरोवस्त्र, पगडी) कहा गया है। इसी प्रकार का संनहन कर्म यज्ञ में दीक्षा के समय यजमान - पत्नी की कटि में योक्त्र बांधते समय भी होता है (शतपथ ब्राह्मण १.३.१.१३)। यह संनहन कर्म इडा रूपी आनंद को, मद को बांधना, उसे नियंत्रित करना है। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक साहित्य के संनहन का पौराणिक साहित्य में प्रस्फुटन नहुषोपाख्यान के रूप में हुआ है। नहुष शब्द की व्युत्पत्ति भी नह - बन्धने धातु से हुई है। पुराणों में वर्णन आता है कि इन्द्राणी ने नहुष की प्रिया बनना इसलिए अस्वीकार कर दिया कि वह मानव है, उसने केवल ९९ क्रतुओं का ही अनुष्ठान किया है, वह शतक्रतु इन्द्र नहीं है, जबकि इन्द्राणी शची केवल इन्द्र की ही सेवा कर सकती है। नहुष द्वारा शची को प्राप्त करने का उपाय सप्तर्षियों द्वारा वाहित शिबिका में आरूढ होकर शची के पास जाना है। वैदिक साहित्य में सप्तर्षियों का सबसे पहला रूप २ कान, २ आंख, २ नाक व एक मुख के रूप में कहा जाता है। नहुष को इन सात सप्तर्षियों को अपनी शिबिका का वाहक बनाना है, इन्हें विराट रूप प्रदान करना है, इन्हें शची शक्ति की ओर गमन के लिए आकृष्ट करना है। लेकिन पौराणिक कथा के अनुसार यह सप्तर्षि ऐसे हैं कि नहुष को इनका ताडन करना पड रहा है। आख्यान का स्रोत अथर्ववेद १.२७ सूक्त प्रतीत होता है जहां प्रथम मन्त्र में ३ x ७ पृदाकुओं / सर्पों की बाह्य त्वचा (जरायु) द्वारा पापियों की आंखों को अन्धा करने का उल्लेख है (आर्षेय ब्राह्मण ६.२.१.४ में इन्द्राणी के उल्ब और जरायु नामक सामों का उल्लेख आया है। अतः जरायु पर इस दृष्टि से विचार की आवश्यकता है)। इस सूक्त के चतुर्थ मन्त्र में वाहन को वहन करते समय पादों में स्फुरण होने का उल्लेख है।

ऋग्वेद १०.८६/अथर्ववेद २०.१२६ सूक्त इन्द्र, इन्द्राणी तथा वृषाकपि के परस्पर संवाद के रूप में है। इस सूक्त की व्याख्या को आरंभ करने के लिए भाष्यकारों द्वारा निरर्थक कल्पनाएं की गई हैं। ब्रह्मपुराण में वर्णित महाशनि असुर द्वारा इन्द्र का हरण वाला आख्यान इस सूक्त की सम्यक् भूमिका प्रस्तुत करता है। शनि असुर का अर्थ होता है शनैः शनैः गति करने वाला। महाशनि का वध करने वाले वृषाकपि का अर्थ है आनंद की वर्षा से कंपा देने वाला। कपि का अर्थ मन रूपी वानर भी है। ऋग्वेद के सूक्त में इन्द्राणी इन्द्र के पुत्र वृषाकपि का अस्त/अन्त देखना चाहती है। वह नहीं चाहती कि इन्द्र का मन इन्द्राणी को छोडकर कहीं अन्यत्र आसक्त हो। इसका निहितार्थ होगा कि वृषाकपि द्वारा महाशनि का वध होने के पश्चात वृषाकपि अवस्था को भी समाप्त करना होता है। श्रौत ग्रन्थों के अनुसार वृषाकपि सूक्त के पश्चात कुन्ताप सूक्त के पठन का विधान है। यह अन्वेषणीय है कि क्या शची की अवतार द्रौपदी के कुन्ती-पुत्रों की पत्नी बनने और कुन्ताप सूक्त में कोई सम्बन्ध है?

वराह पुराण में इन्द्राणी व मत्सर के सम्बन्ध के उल्लेख के संदर्भ में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, पाप और पुण्य नामक आठ पाशों का उल्लेख आता है। मद शब्द इन्द्रियों अथवा इन्द्रियातीत रस के लिए है (जैमिनीय ब्राह्मण १.२१५), जबकि मत्सर का अर्थ होगा इन्द्रियों के स्तर का अतिक्रमण करके सोम रस के सरण करने, फैलने की स्थिति, सम्पूर्ण भक्ति। दूसरे शब्दों में मद आसुरी व्यक्तित्व से सम्बन्धित है, जबकि मत्सर दैवी व्यक्तित्व से। ऋग्वेद के नवम मण्डल में स्थान-स्थान पर सोम के साथ मत्सर शब्द आता है जिसका सामान्य अर्थ मादनशील किया जाता है।

ऋग्वेद २.३२.८, अथर्ववेद ७.५१.२, ऋग्वेद ५.४६.८ तथा तैत्तिरीय संहिता ५.६.१८.१ में कुहू, सिनीवाली नामक अमावास्या की देवियों, राका नामक पूर्णिमा की देवी (अनुमति का नाम नहीं आता), वरुणानी, आग्नायी आदि देवियों के नाम एक साथ आते हैं। यह विचारणीय है कि क्या अमावास्या और पूर्णिमा की देवियां इन्द्राणी से पूर्व की अवस्था हैं? शतपथ ब्राह्मण १०.५.२.९ के मण्डल पुरुष उपासना ब्राह्मण में इन्द्र को दक्षिण अक्षि में स्थित पुरुष (तथा इन्द्राणी को सव्य अक्षि में स्थित) कहा गया है जिनका दिव्य मिथुन हृदयाकाश में होता है जिससे परम आनन्द की प्राप्ति होती है। सव्य अक्षि को सोम का रूप कहा जाता है। यह ध्यान देने योग्य है कि इडा का अतिरेक अमावास्या को ही होता है, जबकि इन्द्राणी के संदर्भ में अमावास्या और पूर्णिमा, दोनों के उल्लेख हैं।

पुराणों में इन्द्राणी देवी से सौभाग्य आदि की कामना के संदर्भ में वैदिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से इन्द्राणी को सुभगा, अविधवा आदि विशेषण दिए गए

हैं (उदाहरण के लिए अथर्ववेद २०.१२६.११, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७.५.१० आदि) जिनके क्रियात्मक रूप विचारणीय हैं। ऋग्वेद १०.१४५ सूक्त की ऋषि इन्द्राणी है जो अपने पति इन्द्र की सपत्नी के नष्ट होने की कामना करती है। ऋग्वेद १०.१५९ की ऋषिका पौलोमी शची है।

इन्द्रिय शिव २.५.८.१५ (शिवरथ में आभूषणों का रूप), पद्म २.७+ (आत्मा द्वारा ज्ञान, ध्यान का संग त्याग पंचेन्द्रियों से मैत्री करने पर दुःख प्राप्ति), मत्स्य ३.१८ (मनसहित एकादश इन्द्रिय कथन), वायु ६२.३९ (चतुर्थ तामस मन्वन्तर में देव -गण), लक्ष्मी नारायण ३.१७५.४२ (अलर्क द्वारा प्रयुक्त बाणों से इन्द्रियों का अप्रभावित रहना, श्री हरि द्वारा प्रदत्त बाणों से इन्द्रियों का निग्रह), योगवासिष्ठ ५.८२+ (वीत हव्य मुनि द्वारा इन्द्रियों को प्रबोधन / अनुशासन), योव ५.८६ (वीतहव्य मुनि द्वारा समाधि प्राप्त करने से पूर्व इन्द्रिय वर्ग का निराकरण वर्णन), ६.१.५१ (इन्द्रियों के अर्थों के मिथ्यात्व का विचार), ६.२.६ (विद्याधर द्वारा इन्द्रियों की निन्दा), ६.२.१६३ (० जय उपाय कथन), विष्णु धर्मोत्तर ३.३४०.१६ (पुरुष के आधार भूत २५ तत्वों के अंतर्गत श्रोत्र, चक्षु आदि ५ बुद्धीन्द्रियों व शब्द, रूप आदि ५ कर्मेन्द्रियों की गणना), भविष्य १.१४५.९ (प्राण निग्रह से इन्द्रिय कृत दोषों के दहन का उल्लेख), ३.४.६.३२ (इन्द्रिय, मन व बुद्धि का अव्यक्त प्रकृति के १२ अंगों के रूप में उल्लेख; समाधि द्वारा अव्यक्त से परे सूक्ष्म ब्रह्म की प्राप्ति तथा अव्यक्त को व्यक्त करने का निर्देश), ३.४.२५.१६१ (१० इन्द्रिय ग्रामों के प्रतीकों के रुप में गोकुल आदि १० ग्रामों का उल्लेख आदि), भागवत २.५.२४ (ईश्वर द्वारा स्वयं को व्यक्त करने के प्रक्रम में वैकारिक अहंकार से मन व इन्द्रियों के १० अधिष्ठातृ देवों, तैजस अहंकार से ५ ज्ञानेद्रियों व ५ कर्मेन्द्रियों तथा तामस अहंकार से पांच महाभूतों की उत्पत्ति का वर्णन), . २.१०.१७ (वही), ३.२६.१३ (काल पुरुष के २५ तत्वों के अन्तर्गत १० इन्द्रियों की गणना), ४.१८.१४ (ऋषियों द्वारा बृहस्पति को वत्स बनाकर पृथिवीरूपी गौ से इन्द्रियों रूपी पात्र में छन्दोमय दुग्ध का दोहन), ४.२२.३० (इन्द्रियों द्वारा विषयों की ओर आकृष्ट होने के दोषों का वर्णन), ४.२३.१७ (पृथु द्वारा शरीर त्याग के संदर्भ में मन को इन्द्रियों में तथा इन्द्रियों को उनके कारणरूप तन्मात्राओं आदि में लीन करने का वर्णन), ७.१०.८ (कामना के उदय होने से इन्द्रियों, मन, प्राण आदि के नष्ट होने का उल्लेख), ९.१८.१ (देह में इन्द्रियों की भांति नहुष के ६ पुत्रों यति, ययाति आदि का उल्लेख), १०.६.२४ (हृषीकेश से इन्द्रियों की रक्षा की प्रार्थना), ११.३.१५ (प्रलय के क्रम वर्णन में महाभूतों का तामस अहंकार में,इन्द्रियों व बुद्धि का राजस अहंकार में तथा मन का सात्विक अहंकार में लीन होने का वर्णन), ११.८.२० (निराहार द्वारा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेने पर भी रसनेन्द्रिय के अविजित रहने का कथन), ११.१४.४२ (मन द्वारा इन्द्रियों का उनके अर्थों से कर्षण करके बुद्धि को सारथी आदि बनाने का कथन), ११.२४.२४ (प्रलय के क्रम में इन्द्रियों का अपनी योनियों में लीन होने का कथन), १२.११.१६ (विष्णु के आयुधों के वर्णन के संदर्भ में इन्द्रियों का बाणों के रूप में, कर्म का तरकस व काल रूप धनुष का उल्लेख), लिंग १.३४.१४ (इन्द्रियों को न जीतने वाले की नग्न संज्ञा होने का उल्लेख), कूर्म २.११.३८ (विषयों में विचरण करती हुई इन्द्रियों के निग्रह का प्रत्याहार नाम), २.४६.१७ (प्रलय के क्रमिक वर्णन में इन्द्रियों के तैजस अहंकार में क्षय होने का कथन), नारद १.४२.६५ (वृक्ष आदि में पांच इन्द्रियों के होने के प्रमाणों का कथन), महाभारत वन २११.१२ (इन्द्रियों के संदर्भ में पृथिवी, उदक आदि पांच महाभूतों के शब्द, स्पर्श आदि गुणों का वर्णन तथा इन्द्रियों द्वारा इन गुणों को सम्यक प्रकार से धारण करने का निर्देश; उद्योग ३४.५९ (इन्द्रिय रूपी अश्वों को आत्मा द्वारा नियंत्रित करने का निर्देश आदि), ६९.१८ (इन्द्रियों की भोग कामनाओं के त्याग का निर्देश आदि), १२९.२६ (इन्द्रियों को नियन्त्रित करने की प्रशंसा), भीष्म २७.४१ (इन्द्रियों पर नियंत्रण करके इन्द्रियों को मोहने वाले काम का नाश करने का निर्देश), ३४.२२ (कृष्ण का स्वयं को इन्द्रियों में मन कहना), शल्य २२.३६ (कृपाचार्य के पांच द्रौपदी-पुत्रों से युद्ध की देहधारी जीवात्मा के पांच इन्द्रियों से युद्ध से तुलना करना), शान्ति २१३.२० (रजोगुण/राग से इन्द्रियों की उत्पत्ति व लय का कथन), २१४.२३ (इन्द्रिय शब्द की निरुक्ति कथन), २१६.६ (इन्द्रियों के थक जाने पर तथा मन के लीन न होने के कारण स्वप्न आने का कथन), २१९.१० (श्रवण, स्पर्शन, जिह्वा आदि ५ ज्ञानेंद्रियों व हस्त, पाद आदि ५ कर्मेन्द्रियों से विषयों का विसर्जन करने का निर्देश), २३९.१० (कर्ण, त्वचा आदि पांच ज्ञानेंद्रियों के अर्थों/विषयों शब्द, स्पर्श आदि का कथन), २४६.६ (मन सहित इन्द्रियों को अन्तरात्मा में लीन करने पर अमृत पद प्राप्ति का उल्लेख), २४७.९ (इन्द्रियों व उनके अर्थों के मूल महाभूतों पृथिवी आदि का कथन; सतोगुण आदि का विवेचन), २४८.२ (इन्द्रियों से परे अर्थ, अर्थ से परे मन, मन से परे बुद्धि और बुद्धि से परे आत्मा के होने का उल्लेख; इन्द्रियों के साथ मन और बुद्धि का संयोग होने पर ही इन्द्रियों द्वारा विषयों का ग्रहण होने का वर्णन), २७५.११ (प्रत्येक ज्ञानेंद्रिय व कर्मेन्द्रिय के

पृथक्-पृथक् कार्यों का वर्णन), ३०१.८६ (स्वप्न में आत्मा द्वारा इन्द्रियों की सहायता से सूक्ष्म विषयों के भोग का वर्णन), ३११.१६ (इन्द्रियों में मन की प्रधानता का वर्णन : मन के सहयोग न देने पर इन्द्रियों का निरर्थक होना), ३१६.१३ (समाधि प्राप्ति के प्रक्रम में इन्द्रियों को मन में तथा मन को अहंकार में विलीन करने आदि का वर्णन), ३२९.४९ (इन्द्रियों से ग्रहण होने वाले विषयों की व्यक्त तथा न होने वालों की अव्यक्त संज्ञा का उल्लेख; इन्द्रियों के नियंत्रण से तृप्ति प्राप्त होने का उल्लेख), आश्वमेधिक २२.२ (घ्राण, चक्षु आदि ५ इन्द्रियों, मन व बुद्धि सहित ७ होताओं का परस्पर संवाद : प्रत्येक होता की प्रधानता का वर्णन), ३०.७ (अलर्क द्वारा मन, घ्राण, जिह्वा आदि इन्द्रियों रूपी शत्रुओं पर बाणों का प्रहार, इन्द्रियों का बाणों से अप्रभावित रहना, ध्यान योग के एक बाण द्वारा इन्द्रियों का विद्ध होना), ४२.१८ (इन्द्रियों का आकाश आदि महाभूतों के अध्यात्म के रूप में वर्णन; इन्द्रिय निरोध से महानात्मा के प्रकाशित होने का उल्लेख आदि)

टिप्पणी : ऋग्वेद ८.३.१३, ८.५९.५ व १०.११३.१ आदि कुछ ऋचाओं में उल्लेख आता है कि इन्द्र ने सोम पीकर महिमान इन्द्रियों को प्राप्त किया। इन्द्रियों को महत् का रूप देना वैदिक साहित्य में इन्द्रियों के वर्णन का एक मुख्य भाग है। पौराणिक साहित्य में इस ग्रन्थि को समझने की कुंजी प्राप्त होती है जब कहा जाता है कि इन्द्रिय आदि अव्यक्त प्रकृति का अंग हैं जिन्हें व्यक्त रूप में लाना है। दूसरे शब्दों में अव्यक्त प्रकृति का जितना अंश इन्द्रियों के माध्यम से व्यक्त हो रहा है, उसे व्यक्त करने की संभावनाएं उससे कहीं अधिक हैं; जैसा कि आजकल के विज्ञान से सिद्ध हो रहा है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियों का विकास केवल सिर में ही नहीं हुआ है, अपितु शरीर के निचले भागों में भी पांच ज्ञानेंदियों के चिन्ह मिलते हैं, जैसे दो चक्षुओं के स्थान पर दो स्तन, मुख के स्थान पर नाभि आदि।

इन्द्रियों को महत् रूप देने का एक उपाय यह है कि मन, प्राण और वाक् को इन्द्रियों में समाहित कर दिया जाए। ऐतरेय ब्राह्मण २.२४ का कथन है कि इन्द्रियां अपूप हैं, मधु के छत्ते की भांति हैं जिनमें मधु का संचय किया जा सकता है, जबकि प्राण इन्हें आनंद से, मधु से भरने वाले हैं। प्राणों के अतिरिक्त मन, वाक् और चक्षुओं का उपयोग भी इन्द्रियों के विकास के लिए किया जा सकता है। गोपथ ब्राह्मण १.५.१६ का कथन है कि वाक् भर्ग, पृथिवी लोक और ऋग्वेद आदि से सम्बन्धित है। प्राण मह, अन्तरिक्ष लोक, त्रैष्टुभ छन्द और यजुर्वेद से सम्बन्धित हैं। चक्षु यश, द्युलोक, आदि से तथा मन सर्व, अथर्ववेद आदि से सम्बन्धित हैं। ताण्ड्य ब्राह्मण १.५.४ आदि के अनुसार मन, प्राण, चक्षु और वाक् का इन्द्रियों में विलय स्वयं नहीं हो जाता, अपितु पहले इन्द्र रूपी साधक या यजमान को इन्दु का पान करने की सामर्थ्य का विकास करना होता है। प्रातः सवन की साधना में इस इन्दु सोम से यह अपेक्षा की जाती है कि यह हमारे शरीर की पितर शक्तियों को तृप्त करेगा। माध्यन्दिन सवन की साधना में इन्दु के पान से संभवतः वायु/प्राण का इन्द्रियों से संयोग हो जाता है। तृतीय सवन में इन्दु के पान से मन जो दूर-दूर भाग रहा था, का इन्द्रियों से संयोग हो जाता है, अनन्त में दर्शन करने वाले चक्षुओं तथा अनुष्टुप् छन्द की वाक् का विकास होता है।

शतपथ ब्राह्मण १२.७.१.१ में सौत्रामणी यज्ञ के संदर्भ में वर्णन आता है कि इन्द्र ने त्वष्टा के यज्ञ में स्थित सोम का जबरदस्ती पान कर लिया। वह इन्द्रियों के वीर्य के रूप में उसके अंग-अंग से स्रवित हुआ और उससे विभिन्न पशु और औषधियों की सृष्टि हुई। तब नमुचि असुर ने सुरा द्वारा इन्द्र के इन्द्रिय वीर्य का अपहरण कर लिया। अश्विनौ और सरस्वती ने इन्द्र की चिकित्सा की और इन्द्रिय वीर्य को पुनः इन्द्र में स्थापित किया। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.२.१, २.६.७.४, २.६.११.१, २.६.१४.१ तथा २.६.१७.१ में सौत्रामणी यज्ञ के संदर्भ में इन्द्रियों में स्थापित किए जाने वाले सोम के शोधन के लिए विभिन्न देवताओं का आवाहन किया गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.१.३ के अनुसार ब्रह्म शक्ति द्वारा सुरा रूपी क्षत्र का शोधन किया जाता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.१७.१ में अग्नि, सोम, अमृत, विश्व, सयुज्, पति, भग और क्षत्र नामक इन्द्रों के लिए सुरा शोधन के लिए अलग अलग देवताओं की सहायता से इन्द्रियों के अलग-अलग छन्दों का उल्लेख है।

वैदिक साहित्य में इन्द्रियों के गौ और अश्व, दो रूप मिलते हैं जिनमें गौ रूप की अपेक्षा अश्व रूप का अधिक स्पष्ट वर्णन मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण ८.२७ में उल्लेख है कि ब्राह्मण के दक्षिण पाद के प्रक्षालन से इसमें राष्ट्र (और ?) इन्द्रिय को धारण करते हैं, जबकि सव्य पाद के प्रक्षालन से इसमें राष्ट्र (और ?) इन्द्रिय का वर्धन करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि धारण करना गौ का और वर्धन करना अश्व का प्रतीक है। ऐतरेय ब्राह्मण ८.२० आदि के अनुसार इस लोक में इन्द्रिय का प्रतीक दधि है। दधि आज्य को धारण करती है (दधाति), अतः दधि कहलाती है। यह गौ का प्रतीक हो सकता है। दूसरी ओर दधि को बिखेरने का काम अश्व करता, जिसे वेदों में दधिक्रावा अश्व नाम दिया गया है (ताण्ड्य ब्राह्मण १.६.१७)। शतपथ ब्राह्मण ५.४.३.१० में इन्द्रिय वीर्य को गौ कहा गया है जिसे आत्मा में धारण करते हैं, जबकि शतपथ ब्राह्मण ५.४.५.१० आदि में सार्वत्रिक रूप से इन्द्रिय वीर्य को इन्द्र कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.१३.३ में उल्लेख है कि अश्विनौ ने गायों द्वारा इन्द्र को इन्द्रिय से युक्त किया जबकि अश्वों द्वारा वीर्य और बल से। भागवत पुराण में बृहस्पति द्वारा इन्द्रिय पात्र में गौ से दोहन के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण ४.४.२.१२ दृष्टव्य है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.४.१.५ में उल्लेख है कि इन्द्र ने उक्थस्थाली द्वारा इन्द्रिय का दोहन किया। तैत्तिरीय ब्राह्मण

२.६.११.३ के अनुसार ऋषभ द्वारा गौ रूपी इन्द्रिय का वर्धन होता है।

इन्द्रियों के अश्व रूप के संदर्भ में ऋग्वेद ९.१०७.२५ में इन्द्रियों को हय कहा गया है। कठोपनिषद १.३.३ में इन्द्रियों को हय कहा गया है जो देह रूपी रथ में जुडे हैं। यह विषयों में चरते हैं। बुद्धि सारथी है और मन प्रग्रह(?) है। विज्ञान से जुड कर अथवा बुद्धि को विज्ञानमय कोश से जोडकर मन द्वारा इन हयों का नियंत्रण किया जा सकता है, अन्यथा नहीं। दधि, मधु और घृत को अन्नों में श्रेष्ठतम माना जाता है। दधि संचय तक का कार्य गौ रूपी इन्द्रियों का है और मधु का संचय और उसके प्रसार का कार्य अश्व का है (तुलनीय : दधीचि ऋषि द्वारा अश्वमुख से मधु विद्या की शिक्षा देने की कथा)। ऐतरेय ब्राह्मण ८.२० में ओषधि और वनस्पतियों के रस को मधु कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.७.५ तथा २.६.१४.५ में भी हिरण्यपर्ण वाली वनस्पति अश्विनौ और सरस्वती के सहयोग से ऐसी इन्द्रियों की स्थापना करती है जो इन्द्र के लिए मधु उत्पन्न करती हैं। शतपथ ब्राह्मण १४.३.१.३१ में सूर्य को बृहत् इन्द्रिय संज्ञा दी गई है। यह भी अश्व का रूप हो सकता है।

सुबालोपनिषद १४.१ में अन्न व अन्नाद का वर्णन करते हुए पांच महाभूतों को क्रमशः अन्न व अन्नाद कहा गया है। इसके पश्चात आकाश को अन्न व इन्द्रियों को अन्नाद (अन्न का भक्षण करने वाला) कहा गया है। इसके पश्चात मन इन्द्रियों रूपी अन्न का भक्षण करता है। इसके पश्चात बुद्धि मन रूपी अन्न का भक्षण करने वाली होती है, इत्यादि।

ब्राह्मण ग्रन्थों में अलग-अलग स्थानों पर इन्द्रिय वीर्य को अलग-अलग नाम दिया गया है। शतपथ ब्राह्मण ३.९.१.१५ में इन्द्र को इन्द्रिय वीर्य कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण ५.२.३.८ में तेज या अग्नि को, १२.७.२.११ में कर्म को, १३.१.१.४ आदि में आयु को, तैत्तिरीय ब्राह्मण १.८.५.३ में प्राणों को, जैमिनीय ब्राह्मण १.२४९ में बहिष्पवमानों को, ताण्ड्य ब्राह्मण ६.९.२६ में छन्दों को, ऐतरेय ब्राह्मण ८.३ तथा ८.४ में ओज को इन्द्रिय वीर्य कहा गया है। जैमिनीय ब्राह्मण १.१३२ आदि में इन्द्रिय वीर्य को त्रिष्टुप् तथा २.३७८ में त्रैककुभ कहा गया है। जैमिनीय ब्राह्मण १.१६० के अनुसार देवों ने सभा द्वारा ही असुरों के तेज, बल, इन्द्रिय वीर्य आदि को अपने आधीन किया। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१.१०.५ में भी इन्द्रिय और सभा के सम्बन्ध का उल्लेख है। ऐतरेय ब्राह्मण ८.९ में आहवनीय अग्नि में समिधा प्रक्षेप मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि हे समित् , तू इन्द्रिय वीर्य से हमें संयुक्त कर।

ऋग्वेद १.८४.१ में इन्द्र और इन्द्रिय के संदर्भ में सायणाचार्य ने इन्द्रिय की व्याख्या सोमपान से उत्पन्न प्रभूत सामर्थ्य के रूप में की है। संभव है कि इन्द्रिय गार्हपत्य अग्नि से और इन्द्रिय वीर्य या इन्द्र आहवनीय अग्नि से सम्बन्धित हों। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.१२.३ में उषासानक्ता देवियां दिन में इन्द्र को तथा सायंकाल इन्द्रियों द्वारा (इन्द्र को ?) पुष्ट करती हैं (?)। दूसरी ओर तैत्तिरीय ब्राह्मण १.१.४.३ में उल्लेख है कि दिन में आहवनीय में आहुति से इन्द्र सम्बन्धी इन्द्रिय को प्राप्त करते हैं, जबकि रात्रि में गार्हपत्य में आहुति से अग्नि सम्बन्धी पशुओं को प्राप्त करते हैं। रात्रि और दिन का यह प्रसंग पुराणों में इन्द्रियों के थक जाने पर निद्रा आने के कथन को समझने में उपयोगी हो सकता है। मैत्रायणी उपनिषद ६.२५ के अनुसार जो साधक दिन-रात अपनी बुद्धि द्वारा इन्द्रियों पर निद्रावस्था की भांति नियंत्रण रखता है, वह निद्रा, जरा और मृत्यु को जीतने में सफल होता है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण १.८.३.३ में इन्द्रिय को गर्भ कहा गया है जिसे अदिति धारण करती है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.१७.१ के अनुसार अदिति द्वारा धारण किया गया गर्भ शुचिव्रत व तनूनपात है जिसके लिए इन्द्रिय का उष्णिक् छन्द है। मरुत सम्बन्धी गर्भ का निषेध है क्योंकि वह विशः, प्रजाएं हैं। शतपथ ब्राह्मण १४.९.४.७ तथा १४.९.४.९ में गर्भ धारण करने या न करने सम्बन्धी वर्णन की व्याख्या अपेक्षित है।

जैमिनीय ब्राह्मण १.१८६ तथा ३.२७७ में पुरुष में तीन इन्द्रियों - आत्मा, प्रजा और पशुओं का उल्लेख है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.८.६.६ में यज्ञ की तीन इन्द्रियों अध्वर्यु, होता व ब्रह्मा का उल्लेख है। ऐतरेय ब्राह्मण५.२ में ऋग्वेद २.१२ के स जनास इन्द्रः टेक वाले सूक्त को इन्द्र की इन्द्रियों से सम्बन्धित कहा गया है।

इन्द्रोत हरिवंश १.३०.१० (परीक्षित - पुत्र इन्द्रोत जनमेजय द्वारा गार्ग्य के पुत्र का वध, ब्रह्महत्या प्राप्ति, शौनक द्वारा अश्वमेध अनुष्ठान से शान्ति), वायु ९३.२५ (इन्द्रोत शौनक द्वारा जनमेजय राजा के अश्वमेध का अनुष्ठान, जनमेजय की ब्रह्महत्या से मुक्ति), ब्रह्माण्ड २.३.६८.२५ (वही)

इरा विष्णु धर्मोत्तर १.२५१.९ (पुलह-पत्नी इरा द्वारा २ अण्डकपालों से आठ गजों को उत्पन्न करना), वायु ६९.३३९ (० से वनस्पतियों की सृष्टि वर्णन), विष्णु १.१५.१२५ (कश्यप -भार्या), १.२१.२४ (इरा से वृक्ष, लता, वल्ली, तृण आदि की उत्पत्ति), ब्रह्माण्ड २.३.७.४५९ (लताओं आदि की माता), २.३.७.४६८ (० की अनुग्रहशीला प्रकृति); द्र. एरका

टिप्पणी : इरा की टिप्पणी से पूर्व इला पर टिप्पणी का पठन उपयोगी होगा। यास्क के निघंटु में इरा का परिगणन अन्न नामों के अन्तर्गत किया गया है। जैमिनीय ब्राह्मण २.४१२ तथा तैत्तिरीय संहिता ७.५.९.१ का कथन है कि यज्ञ विशेष में एक दिन के यज्ञ की समाप्ति इलान्त साम द्वारा करके ही प्रजापति ने प्रजा के लिए अन्नों में सर्वश्रेष्ठ अन्न इरा प्रदान किया। इसका तात्पर्य होगा कि अचेतन मन के स्तर पर इला रूपी आनन्द का विकास पूर्ण होने पर ही इरा का विकास आरंभ होता है। इला शब्द में ल पृथिवी तत्व का, स्थिरत्व का सूचक है जबकि इरा में र अक्षर अग्नि का, गति का सूचक है। ऋग्वेद ५.८३.४ के अनुसार जब

पृथिवी पर पर्जन्य वृष्टि होती है तो विश्व में इरा उत्पन्न हो जाती है (ओषधि - वनस्पतियों को भी इरा कहते है)। तैत्तिरीय संहिता २.६.७.२ से संकेत मिलता है कि यदि यज्ञीय इडा, इडा की पकी हुई अवस्था को प्राप्त करना है तो इरा को बृहद् रूप देकर उसे द्युलोक में स्थापित करना पडेगा। इसके पश्चात इरा गौ बन कर पृथिवी पर, मन के स्तर पर इडा गौ पशु के रूप में अवतरित होगी जिसके पद-पद से घृत की सृष्टि होगी। इस प्रकार इडा और इरा का विकास एक दूसरे पर आश्रित है।

आध्यात्मिक साधना में प्रगति तभी होती है जब पार्थिव अन्न का उपभोग न्यूनतम किया जाए। लेकिन ऐसा करने से प्राण अतृप्त रह जाते हैं। ऐसा अनुमान है कि साधना में अतृप्त प्राणों की तृप्ति का स्रोत इरा प्राण हैं। तैत्तिरीय संहिता ४.१.१०.२, १.५.६.३, छान्दोग्य उपनिषद ८.५.३, तथा शतपथ ब्राह्मण ६.६.३.९ आदि में इरंमदं शब्द आया है जिसे द्युलोक में स्थित कहा गया है और कामना की गई है कि वह मा के स्तर पर (मनोमय अथवा माया से बद्ध जीव के स्तर पर) अवतरित हो। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१०.१.१ में दर्श से लेकर पूर्णमास तक १५ तिथियों में क्रमिक विकास का वर्णन है जिसमें इरा का स्थान १०वां है। इरा से पूर्व सूनृता नाम आया है। तैत्तिरीय संहिता ४.१.१०.२ से तो ऐसा प्रकट होता है कि जैसे समित् से संयोग करके अग्नि जल उठती है, इसी प्रकार इरा रूपी समित् प्राप्त करके अग्नि मद को उत्पन्न करती है। छान्दोग्य उपनिषद के अनुसार इरंमद अवस्था को प्राप्त करने से पूर्व अर और ण्य (अरण्य) रूपी नीचे के दो अर्णव रूपी लोकों को पार करना पडेगा। तैत्तिरीय संहिता १.५.६.३ से ऐसा आभास भी होता है कि इडा का विकास ही इरम्मद बनता है। ऐतरेय आरण्यक २.१.३ में इरामय को ही हिरण्मय कोश का नाम दिया गया है।

शतपथ ब्राह्मण ७.२.२.२ में सीर/हल शब्द की निरुक्ति स-इरा, इरा सहित के रूप में की गई है। सीर में इरा को धारण करने के लिए सीर को उदुम्बर काष्ठ का बनाते हैं। उदुम्बर ऊर्जा को धारण करता है।

ऋग्वेद ७.१३.३ तथा ८.४१.४ में क्रमश: अग्नि व वरुण के लिए इर्य शब्द का प्रयोग हुआ है। वह इर्य होकर पशु के रक्षक/गोप बनते हैं। यह ऋचाएं वैदिक साहित्य में अन्य स्थानों पर, जैसे तैत्तिरीय संहिता १.५.११.२ व ७.१.२०.१ आदि में भी प्रकट होती हैं। सायण भाष्य में इर्य का अर्थ प्रेरक, ईश्वर, स्वामी आदि किया गया है। इर्य का अर्थ होगा जिसे इरा से युक्त किया जा सके। ऋग्वेद में अग्नि, वरुण, सोम, पूषा व अश्विनौ के लिए तथा अथर्ववेद ३.८.४ में विश्वेदेवों के लिए भी इर्य विशेषण का प्रयोग हुआ है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.५.१.१ के अनुसार प्राण ही इर्य होकर इस जगत में व्याप्त होते हैं। अथर्ववेद ४.११.१० में अनड्वान् (बैल, प्राणों का प्रतीक?) को जंघाओं द्वारा इरा को खोदने वाला (उत्खिदन्) कहा गया है।

पुराणों में ब्रह्मा द्वारा अण्डकपालों से सूर्य रूपी तेज को अलग करने के पश्चात खाली अण्ड कपालों को इरा को प्रदान करने और इरा द्वारा उनसे दिग्गजों को उत्पन्न करने के वर्णन के संदर्भ में तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७.५.३ तथा बौधायन श्रौत सूत्र १.१४.१८ आदि का वर्णन उपयोगी हो सकता है। दर्शपूर्ण मास यज्ञ में पहले पुरोडाश का दधि आदि से अलंकरण करते हैं और उसके पश्चात पुरोडाश को धारण करने वाले मिट्टी से बने कपालों पर आज्य का लेप करते हैं और उस समय मन्त्र पढते हैं कि इरा जो भूति है, पृथिवी का रस है, उत्क्रमण न करे, विलुप्त न हो। हो सकता है कि अण्ड कपाल से सूर्य और दिग्गजों के प्राकट्य के रूप में अग्नि और सोम का विकास दिखाया गया हो। पौराणिक चित्रण में प्राय: देवताओं की मूर्ति का दिग्गजों द्वारा अभिषेक होते हुए दिखाया जाता है। साधना पक्ष में स्वयं की इन्द्र या सूर्य के रूप में कल्पना की जा सकती है जिसका दिग्गज अभिषेक करते हैं।

पुराणों में इरा को कश्यप की तथा पुलह की पत्नी कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१२.९.५ में इरा को विश्वसृजों/देवताओं की पत्नी कहा गया है। बौधायन श्रौत सूत्र १७.१९.१ में विश्वसृज सत्र के वर्णन में इरा को तप नामक गृहपति की पत्नी कहा गया है। अन्यत्र इडा की तुलना दिति से और इन्द्राणी / शची की तुलना अदिति से की गई है (अथर्ववेद १५.६.२०)। अत: यह संभव है कि इरा की स्थिति दिति और अदिति के बीच की हो।

इरावती विष्णु धर्मोत्तर १.१४९ (पुरुरवा द्वारा ० नदी का द र्शन, माहात्म्य), १.२१५.४६ (० नदी का दन्ती वाहन), वामन ५७.७७ (० द्वारा स्कन्द को गण प्रदान), स्कन्द ४.१.२९.२६ (गंगा के सहस्र नामों में से एक), देवीभाग. १२.६.१९ (गायत्री सहस्रनामों में एक नाम), वायु २९.१३ (आह्वनीय अग्नि की १६ नदी रूपी भार्याओं में एक), ४५.९६ (हिमाचल के पाद से निस्सृत नदी), ६९.२०५ (क्रोधा की १२ कन्याओं में से एक), ब्रह्माण्ड २.३.७.२८९ (इरावती द्वारा २ अण्डकपालों से चार दिग्गजों को उत्पन्न करना), २.३.७.३२३ (ब्रह्मा द्वारा इरावती को रथंतर साम से प्रबलीकृत अंडकपाल प्रदान करना, अंडकपालों से चार दिग्गजों की उत्पत्ति), मत्स्य २२.१९ (नदी, पितृतीर्थ अधिवासिनी), ५१.१३ (आह्वनीय अग्नि की १६ नदी रूपी पत्नियों में से एक), ११६ (ऐरावती : पुरुरवा द्वारा ० नदी दर्शन, शोभा वर्णन), म १३३.२३ (त्रिपुरारि के रथ में वेणु स्थान पर नियुक्त १२ नदियों में से एक), भागवत १.१६.२ (उत्तर -पुत्री, परीक्षित -भार्या, जनमेजय आदि की माता), ३.१२.१३ (एकादश रुद्रों में से नवम काल नामक रुद्र की पत्नी), वा.रामायण ३.१४.२४ (भद्रमदा -कन्या, ऐरावत -माता), लक्ष्मी नारायण २.१११.५९ (इरावती की ब्रह्मदेश में स्थिति का उल्लेख), कथासरित् ७.८.५३ (इरावती नगरी के राजा परित्यागसेन के दो पुत्रों इन्दीवरसेन व अनिच्छसेन का वृत्तांत

टिप्पणी : पुराणों की भांति यास्क निघण्टु में भी इरावती की परिगणना नदी नामों के अन्तर्गत की गई है। ऋग्वेद ५.६३.६ के अनुसार जब पर्जन्य वर्षण होता है तो इरावती वाक् सुनाई पडती है। ऋग्वेद ७.९९.३ तथा शतपथ ब्राह्मण ३.५.३.१४ में उल्लेख है कि विष्णु द्वारा तीन पगों में ब्रह्माण्ड मापन के समय इरावती धेनुमती हो सकती है। इससे पूर्व यज्ञ कार्य में यजमान-पत्नी हविर्धान शकट के अक्षों में आज्य लगाती है जिससे धुरे व अक्ष के घर्षण से उत्पन्न होने वाली क्रूर वाक् समाप्त हो जाए (बौधायन श्रौत सूत्र ६.२४.३४)। हो सकता है कि यही क्रूर वाक् विष्णु के क्रमण के पश्चात इरावती हो जाती हो। ऋग्वेद ५.६९.२ के अनुसार वरुण की धेनुएं इरावती हैं जिनका दोहन करके मित्र देवता मधु के सिन्धु प्राप्त करते हैं। अथर्ववेद ८.११.४ व ८.१३.९ में विराज गौ का आह्वान मनुष्य इरावती के नाम से करते हैं और उसका दोहन करके उससे कृषि और सस्य प्राप्त करते हैं। इस प्रकार इरावती के नदी, वाक् और धेनु, तीन रूप प्राप्त होते हैं। वैदिक विद्वानों का विचार है कि नदी का सम्बन्ध नाद से है। इसी प्रकार यास्क निघण्टु में धेनु शब्द की परिगणना भी वाक् नामों के अन्तर्गत की गई है। अतः इरावती के तीनों ही रूप वाक् के तीन प्रकार हैं जिनमें सूक्ष्म अन्तर विचारणीय है। जैमिनीय ब्राह्मण १.१७५ के अनुसार वयो यज्ञा वो अग्नये गिरा गिरा च दक्षसे ऋचा को साम में रूपांतरित करने पर गिरा गिरा शब्दों के स्थान इरा इरा कहा जाता है जिससे गिरा (वाणी) की क्रूरता समाप्त हो जाए। ऐतरेय ब्राह्मण ७.१३ में पुत्र की तुलना भव सागर से तारने वाली इरावती नौका से की गई है। यह नौका किस प्रकार बन सकती है, यह अन्वेषणीय है।

ऋग्वेद ७.४०.५, ७.६७.१० व ७.६९.८ में अश्विनी देवता-द्वय से इरावत् होकर वर्ति में जाने की प्रार्थना की गई है। हो सकता है कि दीपक की यह वर्ति सुषुम्ना नाडी हो जो हिरण्यय कोश में जाकर फिर लौटती है और वहां से मधु लाती है।

अथर्ववेद ७.६२.६ में गृहों के इरावान, सूनृतावान् आदि होने की कामना की गई है। सूनृता और इरा का साथ-साथ उल्लेख तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७.६.११, ३.१०.१.१ तथा आपस्तम्ब श्रौत सूत्र ४.८.२ आदि में भी हुआ है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१०.१.४ में अरुण, अरुणरजा आदि १३ मासों के अन्तर्गत १०वें मास को इरावान् नाम दिया गया है।

इल पद्म १.८.७५ (वैवस्वत मनु - पुत्र, इला - बुध आख्यान), भविष्य ३.४.१७ (द्विज, इल नृप की पत्नी मदवती पर आसक्ति, अनिल नाम प्राप्ति, तप से ४९ मरुत बनना), ४.५४ (बुध अष्टमी व्रत के संदर्भ में इल का इला बनने का वृत्तांत), मत्स्य ११.४०+ (वैवस्वत मनु -पुत्र, शरवण में प्रवेश से इला स्त्री बनना, बुध से समागम, इल -भ्राता इक्ष्वाकु द्वारा अश्वमेध के अनुष्ठान से पुरुषत्व प्राप्ति, पुत्रों को राज्य देना), मार्कण्डेय १११.११ (मनु द्वारा मित्रावरुण की दृष्टि से उत्पन्न कन्या इला का इल/सुद्युम्न बनना, पुनः इला बनने पर पुरूरवा पुत्र को उत्पन्न करना), ब्रह्म २.३८ (इल का यक्षों से युद्ध, मृगी रूपी यक्षी के कारण उमावन में प्रवेश, इला बनना आदि), वा. रामायण ७.८७+ (कर्दम -पुत्र, स्त्री बनना, इला -बुध समागम से पुरूरवा का जन्म)

इलविला भागवत ४.१.३७ (इडविडा : विश्रवा -पत्नी, कुबेर -माता), ९.२.३१ (इडविडा : तृणबिन्दु व अलम्बुषा की कन्या, विश्रवा -भार्या, कुबेर -माता), विष्णु ४.१.४७ (तृणबिन्दु व अलम्बुषा की कन्या), वायु ७०.३१ (इडिविला : तृणबिन्दु -कन्या, विश्रवा -भार्या, कुबेर -माता), भविष्य ३.३.१२.१०१ (ऐलविली : योग सिद्धि युक्त कामी राक्षस, चित्र राक्षस का अवतार, कृष्णांश आदि द्वारा वध), ३.४.१५.१ (इल्वला : विश्रवा मुनि की तामसी शक्ति, यक्षशर्मा द्वारा आराधना, जन्मांतर में यक्षशर्मा का कर्णाटक -राजा व इल्वला -पुत्र कुबेर बनना), विष्णुधर्मोत्तर ३.१०४.५९ (मृगशिरा नक्षत्र का नाम, आवाहन मन्त्र), लक्ष्मी नारायण २.८४+ (पुलस्त्य -पत्नी ऐलविला द्वारा पति मुख से चारों युगों के धर्म सुनकर पौत्रों के रूप में चारों युगों को देखने की कामना, तप, कृष्ण से अक्षर क्षेत्र माहात्म्य श्रवण व अक्षर क्षेत्र में गमन, रावण आदि राक्षस पौत्रों के रूप में कामना की पूर्ति होना)

टिप्पणी : जब इळ रूपी आनंद की वृष्टि अलम्बुसा रूपी आसुरी क्षेत्र में होती है, तो उससे इळविळा का जन्म होता है जो कुरूप/वैरूप कुबेर आदि की माता है। दूसरी ओर, देव क्षेत्र में इळ/वृष्टि से इळा का जन्म होता है जो वैराज गौ बनती है। वैरूप कुबर भी वसुओं का स्वामी है और इळा भी वसुमती है।

इला मत्स्य ११.४८ (इल का इला बनना, बुध से समागम), १२ (इक्ष्वाकु द्वारा अश्वमेध से इला का किम्पुरुष रूप में रूपांतरण), वायु २.६ (विश्वसृजन यज्ञ में तप नामक गृहपति की पत्नी), वा ८५.७ (मनु की इष्टि से प्राकट्य), भागवत २.३.५ (पुष्टि कामना हेतु इला देवी की आराधना), ४.१०.२ (वायु -पुत्री, ध्रुव -पत्नी, उत्कल -माता), ९.१.१६ (वैवस्वत मनु की इष्टि से प्राकट्य आदि), ९.२४.४५ (वसुदेव/आनकदुन्दुभि की पत्नियों में से एक), स्कन्द ४.२९.२८ (गंगा सहस्रनामों में से एक), ब्रह्माण्ड २.३.३६.२९ (इलापति : कृष्ण के १०८ नामों में से एक), भविष्य ३.२.४.२० (इलापुर निवासी दुष्ट चरित्र वाले मदपाल वैश्य द्वारा पत्नी की हत्या की कथा), ३.३.१७.१० (० का पृथ्वीराज की कन्या वेला के रूप में अवतरण), देवीभाग. ०.३ (श्रद्धा द्वारा पुत्री

की कामना, इष्टि से इला का प्राकट्य, देवी के वरदान से पुंस्त्व प्राप्ति), देभा १.१२ (शिव वन में प्रवेश से सुद्युम्न का इला बनना, फिर मास -मास रूपांतरण), मार्कण्डेय १०४.९ (दक्ष-पुत्री व कश्यप -भार्या इला से पादपों की उत्पत्ति का उल्लेख), पद्म १.८.७५ (सुद्युम्न का इला बनना, अश्वमेध से इला का किम्पुरुष में रूपांतरण, इला व बुध से पुरूरवा का जन्म), विष्णु ४.१ (मैत्रावरुण इष्टि आख्यान), ब्रह्म १.५ (मैत्रावरुण प्रसाद से उत्पत्ति, बुध से समागम, पुरूरवा का जन्म, ० द्वारा पुरुषत्व प्राप्ति), २.३.११ (शिव विवाह में ० द्वारा भूमि कर्म करना), १११ (मित्रावरुण इष्टि से प्राकट्य आख्यान), ११३, शिव ५.३६ (मैत्रावरुण इष्टि से उत्पत्ति, बुध से समागम, पुरूरवा जन्म प्रसंग) लक्ष्मी नारायण २.५७.७४ (अद्रिमालय नामक यमदूत द्वारा इलाक दैत्य का वध), २.१०९.९७ (शिव द्वारा इला देश के राजा मण्ड्लाक्षि का वध), २.११०.७३ (ब्रह्मा द्वारा इला देश का राज्य प्राप्त करना), ३.३२.४७ (इलोदर : राहु -पुत्र इलोदर द्वारा अमरता प्राप्ति हेतु तप, रस पान, श्री रस नारायण द्वारा वध की युक्ति); दृ. इडा, एला, सुपर्णेला

टिप्पणी : पुराणों में मनु और उनकी पत्नी श्रद्धा द्वारा जिस पुत्रेष्टि यज्ञ का उल्लेख है, ब्राह्मण ग्रन्थों में उसका रूप यह है कि श्रद्धा ही यज्ञ है (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७.४.१)। महानारायणोपनिषद २५.१ के अनुसार आध्यात्मिक यज्ञ में आत्मा यजमान है तो श्रद्धा उसकी पत्नी है। श्रद्धा का सामान्य अर्थ आस्था, निष्ठा आदि लिया जाता है लेकिन वैदिक भाषा में इसका अर्थ होगा शृत दधाति इति श्रद्धा, अर्थात जो अन्न के पके रूप को, शुद्ध रूप को धारण करने में समर्थ हो सके, वह श्रद्धा है। भक्त की भक्ति भी पके हुए आध्यात्मिक अन्न का रूप है, अतः वह भी श्रद्धा है। इस श्रद्धा के पास इळा रूपी मद की, आनंद की कमी है, अतः मनु-पत्नी श्रद्धा की कामना है कि यज्ञ में पुत्री का जन्म हो। प्रत्येक आमावास्या तिथि को श्राद्ध के अवसर पर श्रद्धा प्रबल होती है और तभी इळा का जन्म होता है, लेकिन दीपावली के अवसर पर और मुस्लिम समुदाय में ईद के अवसर पर इळा का जन्म विशेष महत्वपूर्ण है। जैसे श्रद्धा को लगातार प्रयत्नों से प्रबल बनाना होता है, ऐसे ही इळा रूपी मद का आनंद का भी श्रद्धा के साथ विकास होता है। अंत में श्रद्धा और इळा मिल कर एक हो जाते हैं (शतपथ ब्राह्मण ११.२.७.२०)। पुराणों में मैत्रावरुण की इष्टि द्वारा इळा की उत्पत्ति के उल्लेख के पीछे कारण यह है कि साधना में श्रद्धा की उत्पत्ति को साधना का पूर्व रूप, दक्षिण दिशा, दक्षता प्राप्त करने की दिशा माना जाता है (बृहदारण्यक उपनिषद ३.९.२१), जबकि मित्रावरुण की इष्टि साधना का उत्तर रूप, आनंद का रूप है (शतपथ ब्राह्मण १.३.४.३)। कथा में श्रद्धा के साथ मनु को रखने का तात्पर्य छान्दोग्य उपनिषद ७.१९.१ के कथन से, कि श्रद्धा के धारण करने पर ही मनु अर्थात ऊर्ध्वमुखी मन का जन्म होता है, समझा जा सकता है।

पुराणों में इळा के पुरुष रूप को सुद्युम्न नाम दिए जाने के संदर्भ में, इन्द्रद्युम्न शीर्षक की टिप्पणी में द्युम्न शब्द की व्याख्या पठनीय है। द्युम्न अग्नि का ऐसा विकिसित रूप है जो आनंद की वर्षा, जिसे इळ कहते हैं, कराने में समर्थ है। अग्नि के इस द्युम्न रूप को प्राप्त करने के लिए साधक को अपने शरीर की अग्नि का उत्तरोत्तर विकास करना होता है। विकास के क्रम में अग्नि हमारे पशु रूपी व्यक्तित्व में स्थित समस्त पाशों को, वासनाओं को काट डाले। फिर वह वासनाएं रूपांतरित होकर दिव्य वसु , धन बन जाएंगी। याज्ञिक कर्मकाण्ड में इस प्रक्रिया का विस्तार शतपथ ब्राह्मण ११.२.६.१० तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.११.६ आदि में दर्शपूर्ण मास यज्ञ के अन्तर्गत दिया गया है। इसी प्रक्रिया को आप्री अर्थात पशु को पूर्णतः प्रसन्न करने की प्रक्रिया भी कहा गया है। इस प्रक्रिया के मुख्य चरणों के रूप में २ आघार, ५ प्रयाज, २ आज्यभाग, आग्नेय पुरोडाश, अग्नीषोमीय उपांशुयाज, अग्नीषोमीय पुरोडाश, अग्नि स्विष्टकृत, इळा, ३ अनुयाज, सूक्तवाक् और शंयुवाक् हैं (शतपथ ब्राह्मण ११.२.६.१०)। इस प्रकार इळा के उत्पन्न होने से पूर्व अग्नीषोमीय पुरोडाश व अग्नि स्विष्टकृत का उत्पन्न होना आवश्यक है। पुरोडाश पशु के उदान प्राण का रूप होता है। स्विष्टकृत अग्नि वह है जिसे अब हिंसा करने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है, सब ओर सौम्य ही सौम्य है, आसुरी प्रवृत्तियों का विनाश हो चुका है। शतपथ ब्राह्मण १.९.२.१४ में इस अग्नि को गृहपति (या आहवनीय अग्नि) कहा गया है। तब इस अग्नि का विकास इळा के रूप में, मद के रूप में होता है। यह इळा इस गृहपति अग्नि के लिए पत्नी के समान है (?)। यह इळा वसुमती है (शुक्ल यजुर्वेद २८.१८)। ऋग्वेद ३.१५.७ की सार्वत्रिक ऋचा में अग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह साधक के लिए ऐसी इळा को उत्पन्न करे जो गौ हो। इळा के गौ रूप का वैदिक साहित्य में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। ऐतरेय ब्राह्मण २.९ आदि में बार-बार कहा गया है कि पशु इळा बन सकते हैं।

पुराणों में यक्ष की धूर्तता के कारण सुद्युम्न के उमावन में प्रवेश करने और स्त्री इळा बन जाने के आख्यान के संदर्भ में हमें ऋग्वेद ९.१०८.९ की ऋचा अभि द्युम्नं बृहद् यश: पर ध्यान देना होगा। द्युम्न के बृहत् रूप को प्राप्त करने से पूर्व एकान्तिक साधना की आवश्यकता होती है। यह एकान्तिक साधना पुराणों में यक्ष के रूप में दर्शाई गई है। ऐतरेय ब्राह्मण आदि के प्रतिपादित नियम के अनुसार क्ष को श कर देने पर बृहत् रूप प्राप्त हो जाता है, जैसे उक्ष से उषा। इसी प्रकार यक्ष से यश बन जाता है।

इळा शब्द के तात्पर्य को समझने के संदर्भ में, ईर धातु प्रेरण के लिए प्रयुक्त होती है। कहीं-कहीं भय से अथवा आनंद से कांपने के अर्थों में भी इळ शब्द का प्रयोग हुआ है (जैसे शतपथ ब्राह्मण ३.९.२.५)। शतपथ ब्राह्मण १.५.३.११ आदि में वर्षा को इळ कहा गया है।

इस आनंद की वर्षा को पाकर सारे पशु प्राण ईड्ति होते हैं, प्रसन्न होते हैं। अग्नि का विकसित रूप जिसे सुद्युम्न कहते हैं, यह वर्षा तो करा देगा, लेकिन इस वर्षा को, परम अन्न को, धारण करने में कौन समर्थ होगा? शतपथ ब्राह्मण ११.२.६.८ (तथा ऋग्वेद ६.५२.१६) का कथन है कि जैसे उदर समस्त अन्न को धारण करता है, वैसे ही इळा भी यज्ञ का उदर है। यह विश्वरूप अन्न को धारण करने में समर्थ होती है (तुलनीय : लक्ष्मी नारायण संहिता में इलोदर असुर)। शतपथ ब्राह्मण १.५.३.११ आदि के अनुसार जैसे वर्षा के पश्चात शरद ऋतु आती है, ऐसे ही इळा भी शरद ऋतु जैसी ही है। ऋग्वेद २.१.११ में कहा गया है कि दक्षता प्राप्त करने पर अग्नि ही शतहिमा इळा बन जाती है। वैदिक साहित्य में दूध देने वाली गौ के रूप में इळा का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। अथर्ववेद ८.११ तथा ८.१३ सूक्त इसी विराज गौ से सम्बन्धित हैं। देवता, मनुष्य, नाग, गन्धर्व आदि सभी इस गाय का अपने-अपने हित के लिए दोहन करते हैं। ऋग्वेद ५.६९.२ के अनुसार इरावती गाएं उत्पन्न करने का काम तो वरुण का है, जबकि उनसे मधु के सिन्धुओं का दोहन करने का काम मित्र का है। अग्निहोत्र आदि कर्म में जिस दुग्ध की आवश्यकता पडती है, उसकी प्राप्ति का साधन इळा ही है (इळैव मे मानवी अग्निहोत्री : शतपथ ब्राह्मण ११.५.३.५)। वैदिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से एक पहेली का सृजन कर दिया गया है (जैसे तैत्तिरीय संहिता १७.१.१+) कि यह इळा गौ जहां जहां अपने पद रखती है, वहीं वहीं घृत उत्पन्न हो जाता है। चूंकि अग्नि को घृत अत्यन्त प्रिय है, अतः जहां जहां घृत उत्पन्न होता है, वहीं अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। यह विचारणीय है कि इळा गौ के दुग्ध दोहन तथा उसके पश्चात उसे गर्म आदि करने के संदर्भ में दुग्ध की जिन १६ कलाओं का उल्लेख किया गया है (गोपथ ब्राह्मण १.३.१२, शतपथ ११.५.३.५ आदि), क्या वही इळा के पद हैं अथवा क्या दुग्ध की १६ कलाओं के अन्त में घृत की उत्पत्ति होती है? ऋग्वेद ३.२९.४ की सार्वत्रिक ऋचा के अनुसार पृथिवी के ऊपर नाभि में इळा के पद में जब अग्नि का दीपन होता है, तभी अग्नि यज्ञ में प्रदत्त हवि को देवताओं तक वहन करने में समर्थ होती है। ऐतरेय ब्राह्मण १.२८ के अनुसार इळा का यह पद उत्तरवेदी बन सकता है। वैदिक मन्त्रों में जहां-जहां भी इळस्पद में पृथिवी की नाभि में अग्नि के समिन्धन का उल्लेख आया है, वहां सायण भाष्य में इळस्पद का अर्थ उत्तरवेदी ही किया गया है (यज्ञ में गार्हपत्य अग्नि की वेदी के ऊपर दक्षिणाग्नि, उससे ऊपर आहवनीय, उससे ऊपर उत्तरवेदी और सबसे ऊपर यूप का स्थान होता है)। उत्तरवेदी में हमारी संज्ञाओं का रूप विराटता को प्राप्त कर लेता है। शुक्ल यजुर्वेद २१.१४ से प्रतीत होता है कि इळाओं द्वारा अग्नि का ईळन होने के पश्चात अग्नि सोम का रूप धारण कर लेती है। अथर्ववेद ७.२८.१ के अनुसार जिस इळा के पद घृत जैसे हैं, उसकी पीठ सोम जैसी है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.१७.२ के आधार पर ऐसा भी कहा जा सकता है कि इळस्पद इळा का बृहद् रूप यश हो सकता है। अग्नि के ईळन का वैदिक साहित्य में इतना महत्व है कि ऋग्वेद की प्रथम ऋचा अग्नि मीळे पुरोहितं है तथा ऋग्वेद के अंतिम सूक्त का आरंभ भी अग्नि को इळस्पद में स्थापित करने से आरंभ होता है। ऋग्वेद ३.२९.२ के अनुसार जो अग्नि गर्भ में छिपी हुई है, उस अग्नि का ईळन साधक को प्रतिदिन जागते हुए रहकर करना है।

श्री अरविन्द द्वारा इळा को अन्तःचेतना, इन्ट्यूशन या अचेतन मन कहना कितना उचित है? इळा की कल्पना अचेतन मन के रूप में करने पर बहुत सारी उलझी हुई गुत्थियां सुलझ जाती हैं। सर्वप्रथम, श्रद्धा तो शृत/पके अन्न को धारण करती है, अपक्व अन्न को कौन धारण करेगा? अचेतन मन इसी अन्न को धारण करता है। वैदिक साहित्य में जो बार-बार कहा गया है कि पशवो वा इळा, इस संदर्भ में पशुओं के पास चेतन मन नहीं होता, वह अपना सारा काम अचेतन मन से ही करते हैं। पुराणों में इळ या सुद्युम्न के उमा वन में प्रवेश से इळा बन जाने का जो वर्णन है, उमा वन प्रकृति का प्रतीक है। वहीं अचेतन मन की स्थिति होती है। गौ के रूप में अचेतन मन का दोहन मनुष्य कृषि और सस्य रूपी दुग्ध के रूप में करते हैं (अथर्ववेद ८.१३.९)। अचेतन मन का ही कर्षण करना होता है। ऋग्वेद १.३१.११ में उल्लेख है कि देवों ने इळा को मनुष्य का शासन करने वाली बनाया। अचेतन मन के संदर्भ में यह व्यावहारिक है कि मनुष्य अपने कर्मों को अचेतन मन द्वारा नियंत्रित करना सीखे, केवल मन पर निर्भर न रहे। इस संदर्भ में पद्मपुराण में गीता के १७वें अध्याय के माहात्म्य के संदर्भ में दुःशासन हाथी (इरा प्राण का प्रतीक) की कथा पठनीय है जो श्रद्धा के सात्विक, राजसिक आदि भेदों से सम्बन्धित गीता के १७वें अध्याय का श्रवण करने से रोगमुक्त हो गया। उपनिषदों में जो इळा का सम्बन्ध चन्द्र नाडी से जोडा गया है (शण्डिल्योपनिषद १.५ आदि), वह भी तर्कसंगत बन जाता है क्योंकि चन्द्रमा मन का स्वामी है। चेतन बुद्धि के प्रतीक बुध और इळा के संयोग से पुरूरवा के उत्पन्न होने का रहस्य भी इसी प्रकार समझा जा सकता है। अथवा हो सकता है कि चन्द्र-पुत्र बुध की क्रिया अचेतन मन रूपी इळा पर ही होती हो।

पुराणों में ध्रुव-पत्नी इळा के उल्लेख के संदर्भ में ऋग्वेद ३.५४.२० ऋचा विचारणीय है। भविष्य पुराण में इळ राजा की पत्नी मदवती के संदर्भ में, ऋग्वेद ३.५३.१, ३.५४.२० आदि तथा शुक्ल यजुर्वेद २०.६३ आदि में इळा द्वारा मादन के उल्लेख दृष्टव्य हैं। संभव है कि लोक में प्रचलित मादक द्रव्यों की क्रिया भी इळा रूपी अचेतन मन पर ही होती हो।

जैमिनीय व ताण्ड्य ब्राह्मणों में सामों से सम्बद्ध इळा की सम्यक् व्याख्या अपेक्षित है।

इलावर्त / इलावृत्त देवीभागवत ८.५.५ (इलावृत वर्ष वर्णन), ८.८.८ (इलावृत वर्ष में रुद्र द्वारा संकर्षण की आराधना), गर्ग १.४३.४ (इलावृत वर्ष में नंदी व वन वर्णन), भागवत ५.४.१० (ऋषभ व जयन्ती के १०० पुत्रों में से एक, भरत -भ्राता), वायु ३३.३९ (इलावृत : आग्नीध्र के नौ पुत्रों में एक, प्रियव्रत वंश),

४६.११ (इलावृत वर्ष महिमा), मत्स्य ११३.१९ (इलावृत वर्ष वर्णन), ११४.७० (इलावृत वर्ष महिमा), १३५.२ (इलावृत वर्ष महिमा), भविष्य ३.४.१७ (० माहात्म्य, शिव द्वारा० को अगम्य बनाना), विष्णु २.२.१५ (इलावृत वर्ष वर्णन), वराह ६९ (अगस्त्य द्वारा इलावृत वर्ष में दृष्ट आश्चर्य वर्णन : तापस द्वारा अगस्त्य का सत्कार)

टिप्पणी : ऋग्वेद १.४०.५, १.६७.१० तथा १.६९.८ में अश्विनीद्वय से इरावत् होकर वर्ति में प्रवेश करने की प्रार्थना की गई है। शाण्डिल्य उपनिषद आदि के अनुसार इडादि मार्ग का त्याग कर सुषुम्ना मार्ग से जाए, यह विष्णु का परम पद है। हो सकता है कि सुषुम्ना वर्ति का प्रतीक हो।

इलिना मत्स्य ४९.९ (यम - कन्या, त्रिवन - पत्नी, ऐलिन -माता)

इल्वल मत्स्य ६.२६ (विप्रचित्ति व सिंहिका का पुत्र), वा. रामायण ३.११.५६ (इल्वल -वातापि - अगस्त्य कथा), स्कन्द ७.१.२८५ (० -वातापि - अगस्त्य कथा), पद्म १.६.५९ (विप्रचित्ति व सिंहिका के ९ पुत्रों में से एक), भागवत ६.१८.१५ (ह्राद व धमनि का पुत्र), ८.१०.३२ (बलि -सेनानी, ब्रह्मा के पुत्रों से युद्ध), १ ०.७८.३८ (बल्वल दानव का पिता), वामन ६९.५६ (अन्धक -सेनानी, अष्ट वसुओं से युद्ध), भविष्य ४.११८.८ (० -वातापि -अगस्त्य कथा), गर्ग ८.८.१६ (इल्वल के पुत्र बल्वल का चरित्र), लक्ष्मी नारायण १.५४५.४ (मणि मति नगरी में वास, अगस्त्य से महेन्द्र सदृश पुत्र प्राप्ति की याचना, आतापी -वातापी -इल्वल के नष्ट होने की कथा

इष भविष्य १.५२.४० (इष व ऊर्ज मासों में सूर्य रथ में पर्जन्य व पूषा आदित्यों, भरद्वाज व गौतम ऋषियों, चित्रसेन व वसुरुचि गन्धर्वों आदि का निवास कथन), २.२.८.१३२ (कौमुदी नामक आश्विन पूर्णिमा को लक्ष्मी पूजा का निर्देश), ३.४.८.६१ (आश्विन मास के सूर्य का माहात्म्य : मेधावी व मंजुघोषा-पुत्र भगशर्मा द्वारा सूर्यलोक प्राप्ति, पुन: सत्यदेव-पुत्र वाणी भूषण बनकर मत्स्यखादक विप्रों का उद्धार करना), स्कन्द १.२.६५.१११ (आश्विन शुक्ल अष्टमी को वत्सेश्वरी देवी की पूजा), ६.८६.१५ (आश्विन शुक्ल नवमी को चन्द्रमा की नक्षत्र रूपी पत्नियों द्वारा सौभाग्य प्राप्ति के लिए चण्डी देवी की पूजा), ६.१०३.१३ (आश्विन शुक्ल चतुर्दशी को आनर्त्त कूप पर देव व पितरों का तर्पण; आनर्त्त कूप महिमा के अन्तर्गत राजा श्वेत की कथा), ६.११६.५७ (आश्विन शुक्ल नवमी को अम्बा रेवती देवी की पूजा : शेष-पत्नी रेवती द्वारा शाप से मुक्ति पाने के लिए अम्बा देवी की पूजा का वृत्तांत), ६.१५४.१० (आश्विन कृष्ण चतुर्दशी को वीर व्रत से युक्त होकर २७ लिंगों की पूजा करने का विधान व माहात्म्य), ६.१५५.१६ (आश्विन पूर्णिमा को अश्विनी-द्वय की पूजा का निर्देश), ६.१६४.४५ (आश्विन शुक्ल नवमी को शाकंभरी देवी की पूजा), ६.१९९.५१ (आश्विन कृष्ण चतुर्दशी व अमावास्या को कूपिका तीर्थ में स्नान व श्राद्ध का माहात्म्य), ७.१.२२५.४६ (आश्विन कृष्ण चतुर्दशी को प्रभास क्षेत्र में अनरकेश्वर लिंग के दर्शन का माहात्म्य : यम द्वारा देवशर्मा द्विज को नरक प्रापक कर्मों का वर्णन), ७.१.२७३.१० (आश्विन कृष्ण चतुर्दशी को प्रभास क्षेत्र में कपालमोचन तीर्थ में श्राद्ध का माहात्म्य), ७.१.२८३.१३ (आश्विन पूर्णिमा के संदर्भ में च्यवन-सुकन्या आख्यान, अश्विनौ को सोम प्राप्ति), ७.१.३०१.९ (आश्विन कृष्ण चतुर्दशी को सिद्धेश्वर लिंग की पूजा का माहात्म्य), ७.३.३६.१६८ (आश्विन कृष्ण चतुर्दशी को चण्डिका आश्रम में पिण्डदान का माहात्म्य : चण्डिका द्वारा महिषासुर वध की कथा), ७.३.४५ (आश्विन अमावास्या को देवखात तीर्थ में श्राद्ध का निर्देश), अग्नि १८५.१ (आश्विन शुक्ल नवमी को गौरी नवमी व्रत, दुर्गा, नवदुर्गा आदि की पूजा), २०४ (आश्विन शुक्ल एकादशी से लेकर कार्तिक शुक्ल एकादशी तक विष्णु जागरण पर्यन्त ३० दिनों का मास उपवास व्रत करने का निर्देश), २६८.१३ (आश्विन शुक्ल अष्टमी को भद्रकाली देवी की पूजा), २९०.३ (आश्विन पूर्णिमा को अश्व शान्ति विधि का वर्णन), गरुड १.१२२ (आश्विन शुक्ल एकादशी को मास उपवास व्रत वर्णन), पद्म ४.१६.१२ (आश्विन पूर्णिमा को श्री हरि हेतु घृत, लाजा व वराटिका दान का माहात्म्य : काल नामक द्विज की नाग योनि से मुक्ति), लक्ष्मी नारायण १.२५८.४ (इन्दिरा नामक आश्विन कृष्ण एकादशी का माहात्म्य : इन्द्रसेन नृप के पिता चन्द्रसेन आदि की यमलोक से मुक्ति), १.२५९.७ (इष शुक्ल पाशांकुशा एकादशी का माहात्म्य : वामदेव ऋषि के शिष्य वेदशिरा द्वारा धर्म कर्म वर्जन से यमलोक प्राप्ति, व्रत प्रभाव से मुक्ति), १.२६६.४१ (आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को अशोक वृक्ष की पूजा का निर्देश, नवरात्र का आरंभ), १.२६८.७१ (इष शुक्ल तृतीया को बृहद्गौरी व्रत विधि), १.२७०.५० (आश्विन शुक्ल पंचमी को उपांगललिता व्रत विधि), १.२७१.३४ (इष शुक्ल षष्ठी को कात्यायनी देवी की पूजा का महत्व), १.२७२.४० (आश्विन शुक्ल सप्तमी को पंचगव्य व्रत का निर्देश), १.२७३.८६ (आश्विन शुक्ल अष्टमी को दुर्गा व्रत का निर्देश), १.२७४.२२ (आश्विन शुक्ल नवमी को नवरात्र व्रतान्त में देवियों की पूजा व विसर्जन का निर्देश), १.२७५.१४ (आश्विन

शुक्ल दशमी / विजयदशमी व्रत की विधि), १.२७७.२८ (आश्विन शुक्ल द्वादशी को पद्मनाभ की अर्चना का निर्देश), १.२७८.३९ (इष शुक्ल त्रयोदशी को त्रिरात्र अशोक व्रत विधि), १.२७९.७१ (इष कृष्ण चतुर्दशी को विष, शस्त्र आदि से मृत पुरुषों के श्राद्ध का निर्देश), १.२७९.७५ (इष शुक्ल चतुर्दशी को धर्मराज की अर्चना का निर्देश), १.२८०.८२ (आश्विन अमावास्या को महाश्राद्ध करने का निर्देश), १.२८०.८८ (आश्विन पूर्णिमा को राधा-कृष्ण की रासलीला रचाने का वर्णन तथा कोजागर व्रत विधि), विष्णु २.१०.११ (आश्विन मास में सूर्य के रथ में पूषा नामक आदित्य, वसुरुचि, गन्धर्व, वात राक्षस आदि का निवास आदि कथन), लिंग १.५९.३४ (आश्विन मास में सूर्य का पर्जन्य नाम), भागवत ४.१३.१२ (वत्सर व स्वर्वीथि के ६ पुत्रों में से एक, ध्रुव वंश), ब्रह्माण्ड १.२.२३.१५ (आश्विन व कार्तिक मास में सूर्य रथ में पर्जन्य व पूषा आदित्यों, भारद्वाज व गौतम ऋषियों आदि का वास कथन), १.२.३६.२८ (तीसरे उत्तम मन्वन्तर में सुधामा नामक देवगण में से एक), ३.४.३२.३४ (इष श्री : मन्दार वाटिका के रक्षक की एक पत्नी, ललिता देवी की सेविका), मत्स्य ९.१२ (तीसरे मन्वन्तर में उत्तम मनु के मास नाम वाले १० पुत्रों में एक), ५३.२४ (आश्विन पूर्णिमा को नारद पुराण दान का निर्देश), ८०.२ (आश्विन शुक्ल सप्तमी को शुभसप्तमी व्रत विधि : कपिला गौ का दान आदि), नारद १.२२.२ (आश्विन शुक्ल एकादशी से मास उपवास व्रत का निर्देश), १.११३.४० (आश्विन मास का नाम)

टिप्पणी : ऋग्वेद की १५० से अधिक ऋचाओं में इष शब्द प्रकट हुआ है। यास्क निघण्टु में इषम् की परिगणना अन्न नामों के अन्तर्गत की गई है। इसी कारण से वैदिक साहित्य के सायण भाष्य में अधिकांश स्थानों पर इष का अर्थ अन्न किया गया है। इष् धातु इच्छा के अर्थ में भी आती है, अतः कुछेक स्थानों पर इष का अर्थ इच्छानुसार प्रकट होने वाला अन्न भी किया गया है। ऋग्वेद १.१३०.३ तथा शतपथ ब्राह्मण १.२.२.६ आदि के अनुसार इष वर्षा है, जो अद्रियों में फंसकर रह गई है और इन्द्र इष को अद्रियों से मुक्त करके इसे बहने योग्य बनाता है, यहां तक कि यह इष नदी (नाद का प्रतीक) का रूप धारण कर लेती है (ऋग्वेद ४.१६.२१ तथा अगले सूक्तों में इसकी पुनरावृत्तियां)। तैत्तिरीय संहिता ४.६.१.१ में मरुद्गण जलों, ओषधियों व वनस्पतियों से इष व ऊर्ज का संभरण करके हमें प्रदान करते हैं। शतपथ ब्राह्मण १.८.१.१४ में इष का सम्बन्ध इडा/इला से स्थापित किया गया है। होता इडा को लेकर ओष्ठ से छूता है। छूते समय वह कहता है कि इष और प्राण की प्राप्ति के लिए वह मनस्पति होकर यज्ञीय इडा का भक्षण कर रहा है। इसके पश्चात वह पुनः इडा को ओष्ठों से छूकर कहता है कि ऊर्जा व उदान की प्राप्ति के लिए वह वाचस्पति होकर यज्ञीय इडा का भक्षण कर रहा है। शतपथ ब्राह्मण ४.३.१.१७ में इष का सम्बन्ध अध्वर्यु से और ऊर्ज का सम्बन्ध प्रतिप्रस्थाता ऋत्विज से जोडा गया है। अध्वर्यु यजमान से और प्रतिप्रस्थाता यजमान - पत्नी से संबंधित होता है। इस प्रकार इडा के इष और ऊर्ज नामक दो भाग किए गए हैं। लौकिक व्यवहार में आश्विन मास का नाम इष और कार्तिक मास का नाम ऊर्ज है। इष के बारे में जो भी व्यावहारिक ज्ञान हमें प्राप्त हो सकता है, वह आश्विन मास के क्रियाकलापों के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। आश्विन मास का कृष्ण पक्ष पितृश्राद्ध से सम्बन्धित है और शुक्ल पक्ष विशेष रूप से नवरात्रों से। श्राद्धों में पितरों को श्रद्धा (श्रुत दधाति इति) रूपी अन्न प्रस्तुत किया जाता है। अतः यह विचारणीय है कि क्या इष भी श्रद्धा रूपी अन्न ही है? यह संभव है कि श्रद्धा के विकसित होते हुए उत्तरोत्तर रूपों का निरूपण इष के द्वारा किया गया हो। अथर्ववेद ४.३९.२ में पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ और दिशाओं रूपी धेनुओं के वत्स क्रमशः अग्नि, वायु, आदित्य व चन्द्रमा बनते हैं और इन धेनुओं से प्रत्येक बार इष, ऊर्ज और काम का दोहन किया जाता है। लेकिन यह अन्तर्निहित है कि वत्स के अनुसार इष आदि के रूप में भी परिवर्तन हो जाएगा। इस प्रकार पृथिवी से लेकर दिशाओं तक हमें इष के ४ रूप प्राप्त होते हैं। पुराणों में आश्विन मास के संदर्भ में चण्डिका देवी द्वारा महिषासुर के वध के वर्णन में चण्डिका देवी चन्द्रिका का रूप हो सकती है। ऋग्वेद की बहुत सी ऋचाओं में इष के साथ मही विशेषण का प्रयोग हुआ है (उदाहरणार्थ ऋग्वेद २.३४.८, ३.२२.४, ३.३०.१८, ४.३२.७, ९.९५.७)। मही पृथिवी को भी कहते हैं। अतः यह संभव हो सकता है कि महिषासुर इष के मही अथवा पृथिवी वाले रूप से सम्बन्धित हो, जबकि चण्डिका चन्द्रमा वाले रूप से। महिष के पृथिवी वाले रूप की पुष्टि शतपथ ब्राह्मण ७.३.१.२३ से होती है जहां इष व ऊर्ज के संदर्भ में अग्नि को महिष कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण ८.३.४.१० में इष, ऊर्ज, रयि व पोष, इन चार को अन्न रूपी पशु के चार पाद कहा गया है क्योंकि पशु चार पाद वाला ही होता है।

लक्ष्मी नारायण संहिता में आश्विन् पूर्णिमा को राधा व कृष्ण के रास के संदर्भ में ऋग्वेद १.४.६.६, ७.५.८ तथा अथर्ववेद १९.४०.४ की ऋचाएं उल्लेखनीय हैं।

ऋग्वेद में इष के साथ बहुत से विशेषणों का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद ८.२३.२९ में अग्नि को गोमती इषः कहा गया है। ऋग्वेद १.४८.१५ तथा ५.७९.८ में उषा से गोमती इषः प्रदान करने की प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद ९.१०१.११ में गो त्वचा पर चित्/चेतन की गई इष के प्राप्त होने की प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद ८.८.१५ में अश्विनौ से घृत को चुआने वाले इष को देने की प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद ८.२२.९ में अश्विनौ से पीवरी इष को रथ में जोड कर

हिरण्यय कोश तक आरोहण करने की प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद ७.७०.३ में पर्वत की मूर्धा पर स्थित अश्विनौ से भक्तों के लिए इष को बहाने की प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद १.१११.२, ४.५३.७, व ९.२३.३ में प्रजावती इष को प्राप्त करने की कामना की गई है। यद्यपि तैत्तिरीय संहिता आदि में भी प्रजावती इष का उल्लेख हुआ है, किन्तु प्रजावती इष क्या है, यह स्पष्ट नहीं हो पाया है। प्रजावती इष का अर्थ हमारी वह प्रजा, इच्छा, विचार आदि हो सकते हैं जो हमसे इष रूपी अन्न की प्राप्ति होने के लालच में हमारे आसपास ही मंडराते रहते हैं, अन्यथा ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गया है कि प्रजापति की प्रजा उत्पन्न होने ही उससे दूर चली जाती है। प्रजावती इष का निहितार्थ प्रज्ञावती इष भी हो सकता है (पुराणों में प्रज्ञा को श्रद्धा की पुत्री कहा गया है)। ऋग्वेद ६.५२.१६ में अग्नि और पर्जन्य से इडा और गर्भ के उत्पन्न होने का उल्लेख है जिसके पश्चात प्रजावती इष प्राप्त होने की कामना की गई है। तैत्तिरीय संहिता ७.५.९.२ से ऐसा संकेत मिलता है कि जब इष व ऊर्ज का वितरण यजमान की प्रजा हेतु समाप्त हो जाता है, प्रजाएं तृप्त हो जाती हैं, तो इष व ऊर्ज को आत्मा में धारण करना पडता है। ऐसा करने से शततन्तु वाली वीणा की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

ऋग्वेद ६.६०.१२ में इन्द्राग्नि से वाजवती इष: देने की प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद ३.६२.१४, १०.१७.८ आदि में अनमीवा इष का उल्लेख आया है। यह रोग से युक्त और रोग से मुक्त इष कौन सी है, यह अन्वेषणीय है। तैत्तिरीय संहिता ४.२.४.३ में गार्हपत्य अग्नि चयन के संदर्भ में अनमीवा इष: शब्द का प्रयोग हुआ है। शतपथ ७.१.१.२५ में अशना को अमीवा कहा गया है। ऋग्वेद १.१६५ सूक्त से आरंभ होने वाले अगस्त्य ऋषि के सूक्तों में "विद्यामेषं वृजनं जीरदानुं" यह सूक्तों की अन्तिम ऋचा की टेक है। ऋग्वेद ४.२० से आरंभ होने वाले सूक्तों की टेक इषं जरित्रे नद्यो न पीपे: है। इष: के अन्य विशेषणों में पूर्वी (३.३०.१८, ९.८७.९ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.६.१०.५), रथिनी (१.९.८), शश्वती (१.२७.७), अश्वावती (१.३०.१७ व ८.५.१०), चित्रा (१.६३.८), सखुषी (१.८६.५), वीरवती (१.८६.८ व ८.४३.१५) सहस्रिणी (१.१८८.२, २.६.५ व ९.६१.३), बृहती (३.१.२२, ९.१३.४, ९.४२.६, ९.४९.१, ९.७२.९, ९.९७.२५), मानुषी (३.२.१०), वामी (३.५३.१), श्रवाय्य (५.३८.२), ऊर्जयन्ती (५.४१.१८), रेवती (९.७२.९), पिप्युषी (८.७.१९, ८.५४.७, ८.७२.१६, ९.८६.१८, १०.१४३.६), पीवरी (८.५.२०), त्रिष्टुभ (८.६९.१) आदि का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद ६.६९.१ तथा अथर्ववेद ३.१५.८, १९.५५.२ व २०.२१.४ आदि में समिषा शब्द प्रकट हुआ है जिसकी व्याख्या के रूप में ऐतरेय ब्राह्मण ६.१५ का कहना है कि इष तो केवल अन्न ही है, समिष तो अन्नाद्य, अन्नों में श्रेष्ठतम है। ऋग्वेद ३.५४.२२ की ऋचा स्वदस्व हव्या समिषो दिदीहि इत्यादि का विनियोग ऐतरेय ब्राह्मण २.९ में स्विष्टकृत अग्नि के लिए प्रस्तुत पुरोडाश के लिए किया गया है। तैत्तिरीय संहिता १.४.२.१ व १.४.३.१ में उपांशु व अन्तर्याम ग्रहों के वर्णन के अन्तर्गत अन्तर्याम की स्थिति में समिष का प्रयोग हुआ है। दोनों ही ग्रहों की स्थिति में इष के मधुमती होने की कामना की गई है। तैत्तिरीय संहिता २.१.११.३ में प्रकट हुए सं इष: शब्द की व्याख्या सायण भाष्य में स्विष्टकृत अग्नि के संदर्भ में ही की गई है। तैत्तिरीय संहिता ३.४.११.१ में अग्नियों के सुगार्हपत्य स्थिति प्राप्त करने के पश्चात उनसे समिष: होने की कामना की गई है। तैत्तिरीय संहिता ४.१.१०.१ में अग्नि के राय:, पोष व समिष के द्वारा मादित होने पर रिष से रहित होने की कामना की गई है। तैत्तिरीय संहिता ४.६.२.१ के अनुसार समिष स्थिति तब होती है जब हमारे व्यक्तित्व में सप्तर्षि (२ आंखें, २ कान, २ घ्राण व मुख) मिल कर एक हो जाते हैं।

गोपथ ब्राह्मण १.१.२९ के अनुसार ऋग्वेद की प्रथम ऋचा अग्निमीडे पुरोहितं इत्यादि का विनियोग ऋग्वेद के अध्ययन से पूर्व किया जाता है, इषे त्वोर्जे त्वा इत्यादि (यजुर्वेद १.१) का विनियोग यजुर्वेद के अध्ययन से पूर्व तथा अग्न आयाहि वीतये इत्यादि (सामवेद पू० १.१) का विनियोग सामवेद से पूर्व किया जाता है।

ऋग्वेद ८.१००.११ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण २.४.६.१० आदि में देवों द्वारा वाक् को उत्पन्न करने का उल्लेख है जिसको प्रसन्न करने पर वह धेनु बन कर हमारे लिए इष व ऊर्ज रूपी दुग्ध प्रदान कर सकती है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २.६.१२.२ में अश्विनौ द्वारा इडाओं से इष, ऊर्ज आदि के दोहन करने का उल्लेख है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.३.५.५ में यज्ञ के पात्रों की ही गौ के रूप में कल्पना की गई है। इस प्रकार सुचा पात्र ही गौ है, यजमान से सम्बन्धित ४ जुहू पात्र ही उसके ४ पाद हैं, यजमान पत्नी या असुरों से सम्बन्धित ८ उपभृत नामक पात्र ही उसके ८ शफ हैं, चार ध्रुवा पात्र ही उसके ४ स्तन हैं जो इष व ऊर्ज रूपी दुग्ध प्रदान करते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७.७.१२ में सुब्रह्मण्या वाक् को देवों की धेनु कहा गया है जिसके पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ, दिशाएं व परोरजा नामक पांच पाद हैं। यह इन्द्र के लिए इष, ऊर्ज आदि दुग्ध देती है।

आपस्तम्ब श्रौत सूत्र १०.२२.१२ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७.७.११ में सोमक्रयणी के ६ पदों में विष्णु के क्रमण का उल्लेख है। इनमें पहला पद इष, दूसरा ऊर्ज, तीसरा व्रत, चौथा मयोभव, पांचवा पशु व छठा रायस्पोष है। बौधायन गृह्य सूत्र १.१.२८ में इसी सूत्र का विनियोग विवाह कर्म में विष्णु क्रमण के लिए किया गया है। तैत्तिरीय संहिता ३.२.६.१ में पृषदाज्य के संदर्भ में एक इष में विष्णु के क्रमण का उल्लेख है। इस प्रकार इष की अवस्था विष्णु के क्रमण का आरंभ है। यह विचारणीय है कि यह तथ्य पुराणों में इष शुक्ल एकादशी को विष्णु के शयन आदि की व्याख्या कर सकता है या नहीं ?

इषीका स्कन्द १.२.२१.९२ (तारकासुर संग्राम

में इन्द्र द्वारा वज्रास्त्र से असुरों पर शिला वर्षण करने पर जम्भ असुर द्वारा इषीकास्त्र से वज्रास्त्र का नाश करना, इषीकास्त्र के तेज से देवों की सेना के जलने पर इन्द्र द्वारा आग्नेयास्त्र से इषीकास्त्र का नाश करना), ४.१.१५.४२ (बृहस्पति - पत्नी तारा द्वारा चन्द्रमा से धारित गर्भ को इषीका स्तम्ब पर त्यागना तथा बुध के जन्म का वृत्तांत), ६.१७१.६ (वसिष्ठ द्वारा विश्वामित्र को द्विज न कहने पर विश्वामित्र द्वारा ब्रह्मास्त्र से वसिष्ठ पर प्रहार, वसिष्ठ द्वारा इषीका पर ब्रह्मास्त्र को अभिमन्त्रित करके विश्वामित्र के ब्रह्मास्त्र को नष्ट करना), देवीभाग. ५.२६.५१ (चण्डिका देवी द्वारा मुण्ड असुर के शरों को ईषिकास्त्रों से नष्ट करने का उल्लेख), मत्स्य १५३.९८ (तारकासुर संग्राम के संदर्भ में जम्भ असुर द्वारा ऐषीकास्त्र से इन्द्र के वज्रास्त्र को नष्ट करना, इन्द्र द्वारा आग्नेयास्त्र से ऐषीकास्त्र को शान्त करना), वायु ९०.३८ (तारा द्वारा ईषिका स्तम्ब पर सोम के वीर्य से प्राप्त गर्भ को त्यागना?), ब्रह्म १.७.२७ (वही), १.१२९.८९ (आत्मा व इन्द्रियों के पृथकत्व -अपृथकत्व की इषीका और मुंज की पृथकता -अपृथकता से तुलना), ब्रह्म वैवर्त ३.१४.२९ (अग्नि द्वारा शिव के वीर्य को शरकानन में त्यागना, शरों से कुमार कार्तिकेय की उत्पत्ति का वृत्तांत), भागवत १०.१९.२ (गोपों की गायों का गर्मी से व्याकुल होकर इषीका/मुंज वन में प्रवेश, मुंजवन में आग लगना, कृष्ण द्वारा गोपों आदि की दावानल से रक्षा का वृत्तांत), महाभारत आदि ६३.९४ (पूर्व जन्म में पक्षी को इषीका द्वारा विद्ध करने के कारण अणी माण्डव्य ऋषि द्वारा इस जन्म में शूली पर चढना), १३०.२७ (आचार्य द्रोण द्वारा इषीका मुष्टि की सहायता से पाण्डवों की कूप में पडी वीटा/गुल्ली को बाहर निकालने का वृत्तांत), उद्योग ९६.२९ (नर व नारायण द्वारा इषीकास्त्र से ही दम्भोद्भव राजा के गर्व का खण्डन करना), सौप्तिक १३.१९, १५.३१ (अश्वत्थामा द्वारा इषीका पर ब्रह्मास्त्र का अभिमन्त्रण करके उसे पाण्डवों के गर्भ पर छोड्ना), शान्ति २४८.२४ (आत्मा व बुद्धि में सम्बन्ध प्रदर्शन के लिए इषीका व मुंज के सम्बन्ध वाला सार्वत्रिक श्लोक), ३४२.११५ (नर द्वारा रुद्र के विघातार्थ इषीका को मन्त्रों से योजित करने पर इषीका का परशु बनना, रुद्र द्वारा परशु को खण्डित करने का उल्लेख), आश्वमेधिक १९.२२ (शरीर की मुंज व आत्मा की इषीका से तुलना; इषीका को मुंज से निकाल कर देखने का निर्देश), ६६.१७+ (इषीकास्त्र से मृत उत्तरा के गर्भ का कृष्ण की कृपा से जीवित होने का वृत्तांत)

टिप्पणी : महाभारत में अणि माण्डव्य ऋषि द्वारा बालावस्था में इषीका द्वारा शकुनि/पक्षी को विद्ध करने का आख्यान इषीका शब्द को समझने का केन्द्रबिन्दु है। कौशिक सूत्र ३२.१७, ४०.४ तथा ४८.४० में उल्लेख आता है कि इषीका - अंजि अर्थात इषीका -ज्योति या रेखा वाले मण्डूक को नीललोहित सूत्र से बांधकर शकुनि की भांति व्यवहार करे। जैसा कि इष शब्द की टिप्पणी में कहा जा चुका है?, इष में अचेतन मन का समावेश है जिसका उत्तरोत्तर विकास करना है। इषीका के संदर्भ में यह विकास उस स्तर तक होना चाहिए कि मन रूपी शकुनि उससे विद्ध हो जाए, वह इधर -उधर न भागे। माण्डव्य अथवा मण्डूक की एक ही अभीप्सा रहती है कि दिव्य जल की वर्षा हो जिससे पापों का नाश हो। माण्डव्य के आख्यान से ऐसा लगता है कि यह वर्षा तभी संभव है जब पहले शकुनि का वेधन इषीका से हो जाए। उसके पश्चात जब वर्षा होती है तो इषीका का भी वर्धन होता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.२.५.१० व शतपथ ब्राह्मण १.१.४.१९ इत्यादि के अनुसार इषीका वर्षवृद्ध है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.८.४.३ के अनुसार इषीका आयु और अमृत बन सकती है। ऐसा लगता है कि इषीका का इस स्तर तक विकास वर्षा से ही संभव है। इषीका के अविकसित स्तर का अनुमान जैमिनीय ब्राह्मण ३.३५१ से लगाया जा सकता है जहां इषीका/सींक को मृदा पिण्ड में घुसी हुई सींक कहा गया है (जो मर्त्य मानुषी स्तर को एक साथ जोडे रखती है)। कठोपनिषद २.३.१७ में कहा गया है कि हृदय में जो अंगुष्ठ मात्र पुरुष अन्तरात्मा है, उसको अपने शरीर से धैर्यपूर्वक इस प्रकार अलग करे जैसे मुंज से इषीका को करते हैं। इषीका को मुंज से अलग करने की अथवा उसको विकसित करने की विधि क्या हो सकती है, इसका संकेत छान्दोग्य उपनिषद ५.२४.३ तथा जैमिनीय ब्राह्मण १.९ से मिलता है जहां उल्लेख है कि जैसे इषीका का पुंज अग्नि से सम्पर्क करने पर जल उठता है, इसी प्रकार अग्निहोत्र करने से सारे पाप जल जाते हैं। अथर्ववेद १२.२.५४ में भी जलती (जरतीम्) हुई इषीका की इष्टि करने का उल्लेख आता है। द्राह्यायण श्रौत सूत्र ११.१.७ तथा जैमिनीय ब्राह्मण २.४५ व २.४१८ में इन्द्र द्वारा नत इषीका द्वारा मनः ज्योतिः, वाक् सत्यम् आदि लिखने का निर्देश है। अग्निहोत्र के संदर्भ में मन और वाक् द्वारा आहुतियां देने का उल्लेख आता है। अतः यह कहा जा सकता है कि इषीका में इन्द्र रूपी आदित्य का समावेश करके उसके द्वारा मन को ज्योति और वाक् को सत्य का रूप देना है। पुराणों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि अथर्ववेद और ब्राह्मणों में इषीका के अग्नि से जलने के जो उल्लेख हैं, उनमें अग्नि कोई साधारण अग्नि नहीं है, अपितु वह तो शिव का वीर्य है, शिव की पापों को जलाने वाली शक्ति है जिससे सम्पर्क होने पर इषीका का वर्ण स्वर्णमय हो जाता है। पुराण कथाओं में तारा द्वारा चन्द्रमा के वीर्य को इषीका स्तम्ब पर त्यागने से बुध की उत्पत्ति का कथन भी इषीका से मन के विकास की ओर संकेत करता है क्योंकि ज्योतिष में बुध ग्रह सामान्य स्तर पर मन की सामान्य वृत्तियों और उच्च स्तर पर बोध प्राप्ति का प्रतिनिधित्व करता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों व श्रौत ग्रन्थों में इषीका - निर्मित

शूर्प/छाज का उल्लेख आता है जिस में करम्भ पात्र रखकर यजमान और यजमान - पत्नी क्रमशः उत्तरवेदी और दक्षिण वेदी पर आहुति देते हैं (आपस्तम्ब श्रौत सूत्र ८.६.२३, बौधायन श्रौत सूत्र५.५.५, ५.५.१६, ५.७.९, ५.८.५, शतपथ १.१.४.१९ आदि)। अथर्ववेद के मन्त्र के अनुसार दिति शूर्प है और अदिति शूर्पग्राही। अदिति रूपी अखण्डित शक्ति दिति रूपी खण्डित शक्ति से निर्मित शूर्प की सहायता से अन्न में से तुष/भूसी को अलग करती है। शूर्प और इषीका का सम्बन्ध यह संकेत करता है कि इषीका का सम्बन्ध मर्त्य स्तर से है। लेकिन शतपथ ब्राह्मण ४.३.३.१६ में इषीका को मुंज से अलग करने की तुलना इन्द्र द्वारा मर्त्य स्तर के प्रतीक मरुतों से मुक्ति पाने से की गई है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इषीका को मुंज से अलग करने का सार्वत्रिक उल्लेख है (उदाहरणार्थ गोपथ ब्राह्मण २.४.६, शतपथ ब्राह्मण १२.९.२.७ आदि)। जैमिनीय ब्राह्मण ३.३५१ में वामन (विकल्प से मन) स्थिति प्राप्त करने की तुलना मृत्यु से की गई है। मृत्यु भी प्राणों का शरीर से संग्रह करके ऊर्ध्व उत्क्रमण करती है। शतपथ ब्राह्मण ५.१.२.१८ में इषीका और मुंज की तुलना सोम और सुरा से की गई है। गोपथ ब्राह्मण २.४.६ तथा जैमिनीय ब्राह्मण १.९, १.१०, २.१३४ आदि में इषीका द्वारा मुंज को त्यागने की तुलना अहि/सर्प द्वारा अपनी त्वचा को त्याग कर पापमुक्त होने से क्यों की गई है, यह अन्वेषणीय है।

इषु भागवत १.८.१० (अश्वत्थामा द्वारा अभिमन्यु-पत्नी उत्तरा के गर्भ पर छोडे गए तप्तायस शर के संदर्भ में उत्तरा द्वारा कृष्ण से गर्भ की रक्षा तथा शर से स्व-काम के दहन की प्रार्थना), ४.११.३ (ध्रुव व यक्षों के युद्ध के संदर्भ में ध्रुव द्वारा नारायण अस्त्र के प्रयोग से सुवर्ण पुंख व कलहंस वास वाले बाणों का निकलना), ६.९.१३ (वृत्रासुर का उत्पन्न होने के पश्चात प्रतिदिन इषुमात्र वर्धन करने का उल्लेख), ७.१०.६६ (शिव द्वारा त्रिपुर दहन के संदर्भ में तप के धनुष व क्रिया के शर का उल्लेख), ७.१५.४२ (ओंकार रूपी धनुष पर जीव रूपी शर व परम के लक्ष्य का उल्लेख), ८.११.२३ (नमुचि द्वारा इन्द्र पर स्वर्ण पुंख वाले १५ महा इषुओं द्वारा प्रहार का उल्लेख), १०.७६.१८ (प्रद्युम्न द्वारा शाल्व को १००, शाल्व-सेनापति को २५, शाल्व सैनिकों को १-१, सारथियों को १०-१० तथा वाहनों को ३-३ शरों से पीडित करने का उल्लेख), ११.९.१३ (दत्तात्रेय द्वारा मन को वश में करने के लिए इषुकार से प्राप्त शिक्षा का वर्णन), ११.३०.३३ (जरा व्याध द्वारा मुसल-खण्ड से युक्त इषु द्वारा चतुर्भुज कृष्ण के पाद का वेधन करना), हरिवंश १.४१.१३२ (रामचन्द्र द्वारा विराध व कबन्ध राक्षसों पर प्रयोग किए गए शरों का स्वरूप कथन), १.४४.३३ (तारकासुर संग्राम में सर्पों का देवों के शर बनने का उल्लेख), २.५९.५६ (कृष्ण द्वारा रुक्मिणी हरण प्रसंग में कृष्ण व रुक्मी के महारथियों द्वारा एक-दूसरे पर प्रयुक्त किए गए शरों की संख्याओं का कथन), २.६०.८ (रुक्मी व कृष्ण आदि द्वारा एक दूसरे पर प्रयुक्त शरों की संख्याओं का कथन), २.९६.४६ (प्रद्युम्न द्वारा वज्रनाभ असुर के सैनिकों पर प्रयुक्त शरों के स्वरूप का कथन), २.१२७.९ (अनिरुद्ध-बाणासुर-उषा प्रसंग में गरुड को देखकर अनिरुद्ध के शरीर में स्थित शर रूप महासर्पों का प्राकृत शरों में रूपांतरित होने का कथन), ३.३२.२३ (दक्ष यज्ञ विध्वंस प्रसंग में शिव द्वारा क्रतु/यज्ञ को शर से विद्ध करना, क्रतु का आकाश में मृगशिरा नक्षत्र के रूप में स्थित होना, शर के कारण आघात से निःसृत रुधिर का इन्द्रधनुष रूप में रूपांतरण), ३.५७.३४ (देवासुर संग्राम में असिलोमा दानव व हरि नामक देवता द्वारा एक दूसरे पर प्रयुक्त शरों के स्वरूपों का कथन), ३.९४.२९ (पौण्ड्रक-सेनानी एकलव्य द्वारा यादव वीरों पर प्रयुक्त शरों की संख्याओं का कथन), ३.९६.२५ (सात्यकि द्वारा पौण्ड्रक वासुदेव पर १० तथा शलभाकार ७० बाणों द्वारा प्रहार करने का कथन), ३.१३३.७६ (त्रिपुर दहन हेतु शिव द्वारा बाण को सत्य, ब्रह्मयोग तथा तप नामक तीन वीर्यों से संधान करने का कथन), विष्णु ५.३८.२३ (कृष्ण के स्वर्गधाम गमन के पश्चात कृष्ण-पत्नियों की म्लेच्छों से रक्षा करने में अर्जुन के अग्नि-प्रदत्त शरों का असफल होना), स्कन्द १.१.२१.५९ (कामदेव द्वारा तपोरत शिव को मोहित करने के लिए पांच बाणों का सन्धान करना, मोहन नामक शर से विद्ध करना, दक्षिण दिशा में स्थित काम का दग्ध होना आदि), १.२.२१.७४ (तारकासुर संग्राम में जम्भ असुर द्वारा शक्र के जत्रु, हृदय व स्कन्ध में क्रमशः १०, ३ व २ शरों द्वारा आघात करने का उल्लेख), १.२.२१.१४८ (इन्द्र द्वारा अघोर मन्त्र से अभिमन्त्रित बाण द्वारा जम्भ का वध करना), ६.१८५.६६ (अतिथि द्वारा इषुकार से चित्त निरोध की शिक्षा प्राप्त करने का वर्णन), पद्म ५.२३.६३ (रामाश्वमेध प्रसंग में राजा सुबाहु-पुत्र विक्रान्त तथा शत्रुघ्न-सेनानी राजा प्रतापाग्र्य द्वारा एक दूसरे पर बाणों द्वारा प्रहार; विक्रान्त द्वारा छोडे गए बाणों की भक्ति से विमुख होने की संज्ञा), ६.२०६.५ (पुष्पेषु : काम्पिल्य नगरी में पुष्पेषु ब्रह्मचारी के रूप पर स्त्रियों की आसक्ति का वर्णन), देवीभाग. ५.९.१४ (महिषासुर वधार्थ देवों के तेज से उत्पन्न देवी को मारुत/वायु द्वारा बाणों से पूर्ण इषुधि भेंट करने का उल्लेख), १२.७.१९ (दीक्षा कर्म में शरमन्त्र? के उच्चारण का निर्देश), विष्णु धर्मोत्तर १.२१३.९ (विन्ध्याचल पर्वत द्वारा तप करके ब्रह्मा से प्रतिदिन इषुपात के बराबर वर्धन करने का वर प्राप्त करना), २.१६.२० (शरत्काल में शरों के संग्रह करने का निर्देश तथा

उनको संस्कारित करने की विधि), ३.३२८.५८ (जल द्वारा पुरुष की शुद्धि की परीक्षा? के अन्तर्गत इषुमोक्षण तथा प्रतिग्रहण तक के समय तक पुरुष के जल में निमग्न रहने का कथन), मत्स्य १३३.४१ (शिव द्वारा त्रिपुर दहन हेतु संवत्सर रूपी धनुष, उमा रूपी ज्या तथा विष्णु, सोम व अग्नि देवों से इषु की रचना; वासुकि नाग द्वारा इषु में विष का संचार), १३६.५८, १३६.६५ (विष्णु द्वारा शिव रथ को संभालने के लिए व त्रिपुर में अमृत वापी पान के लिए शर से बाहर निकलने और पुनः शर में प्रवेश करने का उल्लेख), १४०.५३ (शिव के इषु द्वारा त्रिपुर को अग्नि, सोम व नारायण रूप में तीन प्रकार से जलाने का उल्लेख), १५०.१ (तारकासुर संग्राम में यम व ग्रसन असुर के बीच शर युद्ध का सार्वत्रिक वर्णन), १५३.१८७ (तारकासुर द्वारा शक्र पर १००, नारायण पर ७०, अग्नि पर ९०, वायु पर १०, यम पर १०, कुबेर पर ७०, वरुण पर ८, निर्ऋति पर २० तथा ८, मातालि पर ३ तथा गरुड पर १० बाणों द्वारा प्रहार), १८८.३ (बाणासुर के त्रिपुर को नष्ट करने के लिए शिव द्वारा गाण्डीव धनुष में विष्णु को शर बनाकर शल्य में अग्नि तथा मुख में वायु की प्रतिष्ठा करना), ब्रह्म १.१०३.२३ (दस्युओं से कृष्ण के स्त्रीधन की रक्षा करने में अर्जुन के शरों का असफल होना), ब्रह्म वैवर्त २.२९.१४ (शरकुण्ड :- यम की संयमिनी पुरी में स्थित ८६ कुण्डों में से एक), ४.१.३५.४२ (ब्रह्मा द्वारा स्वपुत्र काम को सम्मोहन, समुद्वेग आदि बाण प्रदान करना, कामदेव द्वारा ब्रह्मा पर बाणों की परीक्षा का वृत्तान्त), शिव २.५.२१.३ (जलंधर वध प्रसंग में निशुम्भ द्वारा कार्तिकेय के वाहन मयूर पर पांच बाणों द्वारा प्रहार, कार्तिकेय द्वारा पांच बाणों द्वारा निशुंभ के सारथी पर प्रहार आदि), ५.४६.२२ (मारुत द्वारा महिषासुर वधार्थ उत्पन्न देवी को चाप तथा बाणों से पूर्ण इषुधि प्रदान करना), ७.१.२१.३४ (वीरभद्र द्वारा बाण से दक्ष के मृग रूप धारी-यज्ञ का शिर काटना), भविष्य २.२.७.२७ (बाण-विद्ध षष्ठी तिथि के त्याग का निर्देश), ३.३.२४.९२ (सुखखानि द्वारा हव्यदेव की आराधना द्वारा पावकीय शर की प्राप्ति तथा उसके द्वारा रक्तबीज के अवतारों का नाश कथन), ३.४.१२.४० (त्रिपुर नाश हेतु शिव के पिनाक धनुष में शेष का गुण बनना, शुक्र का बाण होना, वह्नि व वायु का शर के पक्ष बनना तथा विष्णु का शल्य बनना), लिंग १.७२.२३ (त्रिपुर विनाश हेतु शिव द्वारा मेरु पर्वत से निर्मित धनुष पर संधान किए गए इषु का वर्णन : विष्णु इषु, सोम शल्य,, कालाग्नि अनीक/मुख, वायुएं वाजक/पुच्छ), वा. रामायण १.३०.२० (विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के प्रसंग में राम द्वारा मारीच राक्षस पर मानवास्त्र/ शीतेषु का प्रयोग करके उसे लंका में फेंकने का उल्लेख), १.७६.८ (मिथिला में धनुष भंग व सीता से विवाह के पश्चात राम द्वारा वैष्णव धनुष पर शर का सन्धान करके परशुराम के तप से अर्जित तेज व वीर्य का नाश करना), ३.२७.१३ (राम द्वारा त्रिशिरा राक्षस पर १४ शरों द्वारा प्रहार का उल्लेख), ३.२८.३१ (राम द्वारा खर राक्षस पर १३ शरों द्वारा प्रहार करके उसके रथ आदि को नष्ट करना), ३.३०.२५ (राम द्वारा इन्द्र-प्रदत्त शर द्वारा खर के वध का उल्लेख), ४.१२.३ (बाली वध से पूर्व राम द्वारा एक बाण से ७ साल वृक्षों व ७ भूमियों का भेदन), ५.४७.१४ (अक्षकुमार द्वारा हनुमान के सिर में तीन बाणों द्वारा प्रहार), ५.४८.३४ (अशोकवाटिका में इन्द्रजित् के शरों के व्यर्थ होने पर इन्द्रजित् द्वारा ब्रह्मास्त्र से हनुमान को बांधना), ६.२२.३६ (राम द्वारा समुद्र पर प्रयुक्त ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित बाण का द्रुमकुल्य देश में गिर कर पृथिवी पर मरुभूमि की सृष्टि करना), ६.४५.१२ (इन्द्रजित् द्वारा राम व लक्ष्मण को कंक पत्र युक्त इषु जाल में बद्ध करना), ६.४५.२३ (इन्द्रजित् द्वारा राम का बन्धन करने के पश्चात उन्हें नाराच, भल्ल, अंजलिक, वत्सदन्त आदि बाणों से विद्ध करना), ६.४६.१८ (इन्द्रजित् द्वारा नील पर ९, मैन्द व द्विविद पर ३-३, जाम्बवान् पर १, हनुमान पर १० तथा गवाक्ष व शरभ पर २-२ बाणों द्वारा प्रहार का उल्लेख), ६.५०.३७ (सुपर्ण गरुड के आगमन पर शर रूपी नागों द्वारा राम व लक्ष्मण का बन्धन त्याग कर पलायन, शर रूपी नागों का कद्रू-पुत्र होने का उल्लेख), १०.६७.१५५ (राम द्वारा वायव्य अस्त्र से कुम्भकर्ण की दक्षिण बाहु, ऐन्द्रास्त्र से अभिमन्त्रित बाण से सव्य बाहु, अर्धचन्द्र बाणों से पादों तथा इन्द्रास्त्र से अभिमन्त्रित बाण द्वारा सिर काटना), ६.७१.९१ (अतिकाय व लक्ष्मण द्वारा एक दूसरे पर ऐषीकास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, याम्यास्त्र, वायव्यास्त्र से अभिमन्त्रित बाण छोड़ना, लक्ष्मण द्वारा ब्रह्मास्त्र से अतिकाय का वध), ६.७३.४६ (इन्द्रजित् द्वारा गन्धमादन पर १८, नल पर ९, मैन्द पर ७, गज पर ५, जाम्बवान पर १०, नील पर ३० बाणों द्वारा प्रहार), ६.७६.६ (रावण- सेनानी शोणिताक्ष द्वारा अंगद पर क्षुर, क्षुरप्र, नाराच, वत्सदन्त आदि शरों द्वारा प्रहार), ६.७९.३८ (राम द्वारा पावकास्त्र से अभिमन्त्रित शर से मकराक्ष का वध), ६.९०.४६ (इन्द्रजित् व लक्ष्मण द्वारा एक दूसरे पर याम्यास्त्र व कुबेरास्त्र, रौद्रास्त्र व वारुणास्त्र आग्नेयास्त्र व सौर्यास्त्र, आसुरास्त्र व माहेश्वरास्त्र से अभिमन्त्रित बाणों का प्रयोग, लक्ष्मण द्वारा ऐन्द्रास्त्र से इन्द्रजित् का वध, ऐन्द्रास्त्र की प्रशंसा), ६.९९.४१ (रावण द्वारा राम पर आसुरास्त्र के प्रयोग से सिंह, व्याघ्र, कंक, कोक आदि आदि मुखों वाले शरों का प्रकट

होना, राम के आग्नेयास्त्र से आसुरास्त्र की शांति), ६.१०२.२० (रावण द्वारा राम पर प्रयुक्त राक्षसास्त्र से सर्प रूप धारी शरों की सृष्टि, गरुडास्त्र से राक्षसास्त्र की शान्ति), ६.१०२.६२ (रावण के शूल द्वारा राम के बाणों को व्यर्थ करना), ६.१०८.६ (राम द्वारा रावण वध हेतु प्रयुक्त ब्रह्मास्त्र से निर्मित शर के स्वरूप का वर्णन : आकाशमय शरीर, फल में अग्नि व सूर्य की स्थिति आदि आदि), ७.६९.१८ (शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर के वध के लिए प्रयुक्त विष्णु-निर्मित शर के स्वरुप का वर्णन व प्रशंसा), गर्ग ७.६.१६ (कृष्ण-पुत्र दीप्तिमान् द्वारा राजा मय के सारथी को १, ध्वजा को २, रथ को २०, कवच को ५ तथा धनुष को १०० बाणों द्वारा नष्ट करना), ७.९.१६ (शिशुपाल द्वारा दत्तात्रेय से प्राप्त ब्रह्मास्त्र, परशुराम से प्राप्त अंगारास्त्र तथा अगस्त्य से प्राप्त गजास्त्र का प्रद्युम्न पर प्रयोग, प्रद्युम्न द्वारा क्रमश: ब्रह्मास्त्र, पर्जन्यास्त्र व नृसिंहास्त्रों द्वारा उपरोक्त अस्त्रों को शान्त करना), ७.१८.१७ (राजा दीर्घबाहु की कन्या के स्वयंवर में कृष्ण के प्रद्युम्न, साम्ब, अनिरुद्ध आदि १८ पुत्रों व पौत्रों द्वारा कांच के जलपूर्ण पात्र का बाणों से भेदन का वृत्तांत), ७.२१.२५ (कौरव-यादव युद्ध में कृष्ण-पुत्र भानु द्वारा वायव्यास्त्र से द्रोणाचार्य के पर्वतास्त्र को शान्त करना), ७.२१.२७ (कौरव-यादव युद्ध में कृष्ण-पुत्र साम्ब द्वारा पर्जन्यास्त्र से बाह्लीक के आग्नेयास्त्र को शान्त करना; पर्जन्यास्त्र की ज्ञान से व आग्नेयास्त्र की अहंकार से उपमा), ७.२१.३२ (साम्ब द्वारा कौरव-वीर अश्वत्थामा पर १०, धौम्य पर १६, लक्ष्मण पर १०, शकुनि पर ५, दुःशासन पर २०, संजय पर २०, भूरिश्रवा पर १०० तथा यज्ञकेतु पर १०० बाणों द्वारा प्रहार करना), ७.२४.१४ (नलकूबर यक्ष द्वारा कृतवर्मा पर ५, अर्जुन पर १० तथा दीप्तिमान् पर २० बाणों से प्रहार), ७.२४.४७ (साम्ब द्वारा कार्तिकेय पर प्रहार करने वाले बाण का एक से १०, १००, सहस्र व कोटि रूप धारण करने का उल्लेख), ७.२९.१४ (प्रद्युम्न द्वारा वायव्यास्त्र के प्रयोग से मधुमक्खियों से मुक्ति पाना), ७.३८.२३ (असुर शकुनि द्वारा अर्जुन पर १०, गद पर २०, अनिरुद्ध पर ४० तथा साम्ब पर १०० बाणों द्वारा प्रहार, प्रद्युम्न द्वारा शकुनि के धनुष की प्रत्यंचा को १०, अश्वों को सहस्र, रथ को सौ विशिखों तथा सारथी को २० बाणों द्वारा नष्ट करना), ७.३९.१३ (शकुनि द्वारा प्रद्युम्न-सेना पर मयासुर से प्राप्त रौरवास्त्र का प्रयोग, प्रद्युम्न द्वारा गरुडास्त्र से शान्ति), ७.३९.१९ प्रद्युम्न द्वारा शकुनि द्वारा प्रयुक्त पैशाची माया की सत्वास्त्र द्वारा, गुह्यकी माया की शूकरास्त्र द्वारा, गान्धर्वी माया की ज्ञानास्त्र द्वारा, राक्षसी माया की नृसिंहास्त्र द्वारा शान्ति का वर्णन), ७.४१.३७ (शकुनि के मृत शरीर के भूमि पर गिरने पर पुन: जीवित होने की विचित्रता के कारण दीप्तिमान, साम्ब आदि यादव वीरों द्वारा उसके शिर को बाणों से आकाश में उछालने का वर्णन), ७.४७.३४ (शक्रसख द्वारा अर्जुन पर १०, साम्ब व अनिरुद्ध पर १००-१००, गद पर २०० व सारण पर १००० बाणों द्वारा प्रहार), १०.१५.१२ (नीलध्वज द्वारा साम्ब के धनुष को १०, चारों अश्वों को ४, रथध्वज को २, रथ को १०० और सारथि को १ बाण से नष्ट करना), १०.२०.११ (साम्ब द्वारा बक असुर पर ५ नाराचों द्वारा प्रहार), १०.२४.२९ (अनुशाल्व द्वारा साम्ब के ४ अश्वों को ४, ध्वज को २, सारथि को ३, धनुष को ५ तथा रथ को ३० बाणों से नष्ट करना; साम्ब द्वारा १०० बाणों से अनुशाल्व पर प्रहार, अनिरुद्ध द्वारा अनुशाल्व के मयासुर से प्राप्त ब्रह्मास्त्र को ब्रह्मास्त्र से शान्त करना, आग्नेयास्त्र को वारुणास्त्र तथा वायव्यास्त्र को पर्वतास्त्र से शान्त करना), १०.२७.९ (यादव वीरों द्वारा पांचजन्य द्वीप पर पहुंचने के लिए समुद्र पर बाणों का सेतु बनाने के संदर्भ में केवल अनिरुद्ध, साम्ब और दीप्तिमान् के बाणों का समुद्र के पार तक पहुंचने का वर्णन), १०.३१.३० (साम्ब द्वारा दिव्यं बाण से असुर कुशाम्ब को रथ सहित सूर्यमण्डल में पंहुचा देने का वर्णन), १०.३४.१९ (बल्वल असुर द्वारा यादव-सेनानिंयों में से इन्द्रनील पर ३, हेमांगद पर ६, अनुशाल्व पर १०, अक्रूर पर १०, गद पर १२, युयुधान पर ५, कृतवर्मा पर ५, उद्धव पर १० तथा प्रद्युम्न पर १०० बाणों द्वारा प्रहार), १०.३४.३३ (कुनन्दन असुर कुमार द्वारा साम्ब पर १०, मधु पर ५, बृहद्बाहु पर ३, चित्रभानु पर ५, वृक पर १०, अरुण पर ७, संग्रामजित् पर ५, सुमित्र पर ३, दीप्तिमान पर ३, भानु पर ५, वेदबाहु पर ५, पुष्कर पर ७, श्रुतदेव पर ८, सुनन्दन पर २०, विरूप पर १०, चित्रभानु पर ९, न्यग्रोध पर १० तथा कवि पर ९ बाणों द्वारा प्रहार), १०.३५.२८ (बल्वल असुर द्वारा यादव सेना पर मयासुर की माया का प्रयोग, अनिरुद्ध द्वारा मोहनास्त्र से माया की शान्ति, बल्वल द्वारा प्रयुक्त गान्धर्वी माया का प्रभाव वर्णन), १०.३६.२३ (कृष्ण-पुत्र सुनन्दन द्वारा कुनन्दन असुर कुमार पर १० बाणों द्वारा प्रहार, बाणों द्वारा असुर कुमार का रक्त पीकर भूमि पर गिरना, बाणों के भूमि पर गिरने की तुलना मिथ्या साक्षी देने वाले पुरुष के पितरों के गिरने से करना), १०.३६.३८ (सुनन्दन द्वारा कुनन्दन पर प्रयुक्त बाण के आधे अग्र भाग द्वारा ही कुनन्दन के सिर के कटने का वर्णन), योगवासिष्ठ ३.४८.२८+ (राजा सिन्धु व राजा विदूरथ द्वारा एक-दूसरे पर प्रयुक्त नागास्त्र -सुपर्णास्त्र, तमोस्त्र -सूर्यास्त्र, राक्षसास्त्र -नारायणास्त्र, आग्नेयास्त्र -वारुणास्त्र, शोषणास्त्र -

पर्जन्यास्त्र, वायव्यास्त्र -पर्वतास्त्र, वज्रास्त्र -ब्रह्मास्त्र, पिशाचास्त्र -पूतनास्त्र, वेतालास्त्र -राक्षसास्त्र, वैष्णवास्त्र -वैष्णवास्त्र द्वारा सृष्ट उपद्रवों व शान्तियों का वर्णन),

महाभारत आदि ६१.४८ (खाण्डव वन के दाह से संतुष्ट अग्नि द्वारा अर्जुन को गाण्डीव धनुष व बाणों से पूर्ण इषुधि आदि प्रदान करने का उल्लेख), १३०.३१ (पाण्डव कुमारों की कूप में पतित मुद्रिका को द्रोण द्वारा शर की सहायता से बाहर निकालने का वर्णन), १३१.४० (एकलव्य द्वारा ७ बाणों से श्वान के मुख को भरना तथा द्रोणाचार्य को अंगुष्ठ दक्षिणा में देना आदि), १३२.४ (लक्ष्य भेदन प्रतियोगिता में अर्जुन का गृध्र के भेदन में सफल होना; बाणों द्वारा जल में द्रोणाचार्य को ग्राह के बन्धन से मुक्त करने पर ब्रह्मशिर अस्त्र प्राप्त करना), १८४.१०, १८७.२० (द्रौपदी के स्वयंवर में अर्जुन द्वारा लक्ष्य वेध करके द्रौपदी को प्राप्त करना), २२६.१३ (खाण्डव वन दाह के समय इन्द्र द्वारा अर्जुन पर ऐन्द्रास्त्र के प्रयोग से जल धारा आदि की सृष्टि करना, अर्जुन द्वारा वायव्यास्त्र की सहायता से ऐन्द्रास्त्र का निवारण; अर्जुन द्वारा बाणों से समस्त देवताओं के आयुधों का निवारण), सभा ८०.१६ (द्यूत क्रीडा के पश्चात वन गमन के समय अर्जुन द्वारा मार्ग में सिकता/बालू के वपन का रहस्यार्थ शत्रुओं पर शर वर्षा करना होने का उल्लेख), वन ३९.३६ (वराह रूप धारी मूक दानव वध प्रसंग में किरात रूप धारी शिव द्वारा अर्जुन के समस्त शरों को आत्मसात् करना), ४०.१५ (अर्जुन को शिव से पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति), ४१.२५ (अर्जुन द्वारा यम से दण्डास्त्र, वरुण से वरुण पाश तथा कुबेर से अन्तर्धान अस्त्र प्राप्त करना), ४४.४ (अर्जुन द्वारा इन्द्र से वज्रास्त्र व अशनि अस्त्रों की प्राप्ति), विराट ५४.२० (कौरवों द्वारा अपहृत राजा विराट की गायों की रक्षा के संदर्भ में कर्ण द्वारा अर्जुन पर १२ बाणों से प्रहार आदि), ५५.३६ (अर्जुन द्वारा द्रोण पर ७३ त्रिसप्तति, दुःसह पर १०, अश्वत्थामा पर ८, दुःशासन पर १२, कृपाचार्य पर ३, भीष्म पर ६० तथा दुर्योधन पर १०० बाणों आदि से प्रहार), ६१.२६ (अर्जुन द्वारा दृढ मुष्टि का ज्ञान इन्द्र से तथा कृतहस्तता का ज्ञान ब्रह्मा जी से प्राप्त करने का उल्लेख) ६६.८ (अर्जुन द्वारा कौरव सेना के विरुद्ध सम्मोहन अस्त्र का प्रयोग), उद्योग ३३.४३ टिप्पणी (विदुर-धृतराष्ट्र संवाद के अन्तर्गत विदुर द्वारा १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १० संख्याओं का रहस्यार्थ प्रकट करना), ९६.४२ टिप्पणी (काम क्रोध आदि ८ दोषों के निवारणार्थ काकुदीक प्रस्वापन, शुक/मोहन नाक/उन्मादन आदि अर्जुन के ८ अस्त्रों का उल्लेख) १४१.३८ (रण रूपी यज्ञ में कर्णि, नालीक, नाराच तथा वत्सदन्त आदि बाणों के प्रकारों की उपबर्हण से तुलना; अर्जुन, द्रोणाचार्य आदि द्वारा छोडे गए इषुओं की परिस्तोमों से तुलना), १८०.११ (अम्बा कन्या के कारण हुए भीष्म-परशुराम युद्ध में भीष्म द्वारा प्रयुक्त वायव्यास्त्र को परशुराम द्वारा गुह्यकास्त्र द्वारा तथा आग्नेय अस्त्र को वारुणास्त्र द्वारा शान्त करने का उल्लेख), १८३.१२ (भीष्म द्वारा परशुराम पर प्रहार के लिए अष्ट वसुओं से प्रस्वाप व सम्बोधनास्त्र प्राप्त करना), भीष्म ११८.५० (शिखण्डी के स्त्रीत्व के कारण भीष्म द्वारा उस पर बाणों से प्रहार न करना), ११९.६१ (शिखण्डी की ओट में अर्जुन द्वारा भीष्म पर प्रहार करने पर भीष्म द्वारा पुनः-पुनः उन बाणों के शिखण्डी के बाण न होना कहना), १२०.४५ (शर-शय्या पर पडे भीष्म के लिए अर्जुन द्वारा तीन शरों से उपधान/तकिये का निर्माण करना), १२१.२३ (शर-शय्या पर पडे भीष्म द्वारा जल मांगने पर अर्जुन द्वारा पर्जन्यास्त्र से प्राप्त दिव्य जल से भीष्म को तृप्त करना), द्रोण २९.४५ (अर्जुन द्वारा बाण मारकर राजा भगदत्त द्वारा नेत्रों को खुला रखने के लिए बांधी गई पट्टी को छिन्न करना, राजा भगदत्त के नेत्र रुद्ध होना व अर्जुन द्वारा अर्धचन्द्र बाण से भगदत्त का वध), ४३.७ (अभिमन्यु द्वारा व्यूह भंग प्रसंग में जयद्रथ द्वारा पाण्डव-वीरों पर चलाए गए बाणों की संख्याएं : सात्यकि-३, भीम-८, धृष्टद्युम्न-६०, विराट-१० आदि आदि), ९७.२९ (द्रोणाचार्य द्वारा द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न के आयुधों आदि को नष्ट करने के लिए प्रयुक्त बाणों की संख्याएं : १०० से शतचन्द्र ढाल?, १०से खड्ग, ६४ से हय आदि), १४६.५ (जयद्रथ वध प्रसंग में अर्जुन द्वारा कौरव सेना पर ऐन्द्रास्त्र के प्रयोग से हजारों अग्निमुख बाण निकलना), १४६.१०१ (जयद्रथ वध के लिए अर्जुन द्वारा शर को इन्द्र के वज्रास्त्र से अभिमन्त्रित करना, बाण द्वारा जयद्रथ के कटे सिर को ढोने का वर्णन), १८९.११ टिप्पणी (धृष्टद्युम्न-द्रोण युद्ध में कर्णी, नालीक, लिप्त, बस्तिक, सूची आदि इषुओं का प्रयोग निषिद्ध होना), कर्ण २०.२२ टिप्पणी (बाणों की १० गतियों और उनके द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों पर आघात का वर्णन), ३४.४९ (त्रिपुर दाह प्रसंग में शिव के संवत्सर रूपी धनुष के लिए विष्णु, अग्नि व सोम का इषु बनना), ८९.१७ (कर्ण द्वारा अर्जुन के आग्नेयास्त्र की वारुणास्त्र द्वारा शान्ति, वारुणास्त्र की वायव्यास्त्र से शान्ति, अर्जुन द्वारा प्रयुक्त इन्द्र के वज्रास्त्र को कर्ण द्वारा भार्गवास्त्र से शान्त करना), ८९.८९ (कर्ण द्वारा सारथि कृष्ण पर पांच सर्पों रूपी पांच बाण मारना, अर्जुन द्वारा भल्लों से उन्हें त्रेधा विभक्त करना आदि), ९०.२० (कर्ण द्वारा अश्वसेन सर्प को शर बनाकर अर्जुन पर छोड्ना, कृष्ण की युक्ति के

कारण अर्जुन के केवल किरीट भंग होने का वर्णन, अश्वसेन द्वारा पुनः कर्ण का बाण बनने में असफलता तथा स्वयं ही अर्जुन पर आक्रमण करना, अर्जुन द्वारा बाणों से उसे नष्ट करना), ९०.८२ (कर्ण की मृत्यु के समय भार्गवास्त्र का शाप के कारण विस्मृत होना), ९०.१०४ (अर्जुन द्वारा कर्ण के वध के लिए रौद्रास्त्र का प्रयोग तथा कर्ण के रथ चक्र का पृथिवी में धंसना), ९१.४० (अर्जुन द्वारा कर्ण वध के लिए प्रयुक्त अंजलिक नामक बाण के स्वरूप का वर्णन), शल्य ११.३२ (पाण्डवों द्वारा राजा शल्य पर प्रयुक्त बाणों की संख्या : भीम द्वारा ७, सहदेव द्वारा ५, नकुल द्वारा १० आदि), सौप्तिक १३.१९+ (अश्वत्थामा द्वारा पाण्डवों के वध के लिए इषीकास्त्र का तथा अर्जुन द्वारा प्रतिकारार्थ ब्रह्मास्त्र का प्रयोग, वेदव्यास के निर्देश पर अर्जुन द्वारा ब्रह्मास्त्र को लौटाने में सफल होना व अश्वत्थामा का असफल होना, ब्रह्मास्त्र के लौटाने के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता का उल्लेख), शान्ति २९५.३२ (रसना, दर्शन, घ्राण आदि इन्द्रियों से इषुप्रपात मात्र रति सुख मिलने का उल्लेख), अनुशासन १४.२५८ (शिव के पिनाक धनुष के लिए पाशुपत शर के स्वरूप का वर्णन : सर्पाकार, एकपाद, सहस्रशिर, भुजाएं, जिह्वाएं, नेत्र आदि; त्रिपुर दाह के लिए शिव द्वारा पाशुपत अस्त्र का प्रयोग), इत्यादि; द्र. इष, इषीका, धनुष, बाण, शर, पुष्पेषु

टिप्पणी : इषु की प्रकृति को समझने के लिए उपलब्ध मुख्य सूत्रों में से एक यह है कि क्षत्रिय जो युद्ध करता है, वैसा ही वह ब्राह्मण होकर यज्ञ में भी करता है (ऐतरेय ब्राह्मण ७.१९)। जब क्षत्रिय दीक्षित होकर यज्ञ के लिए बैठता है, तो वह ब्राह्मण का ही रूप होता है। क्षत्रिय के जो अश्व, रथ, कवच, इषु, धनु आदि आयुध होते हैं, यज्ञ में भी उनके प्रतिरूप होते हैं; जैसे रथ का प्रतीक हविर्धान शकट होता है (बौधायन श्रौत सूत्र १८.३६.१३)। इषु की प्रतीक ब्राह्मण की वाक् में शाप या वरदान देने की सामर्थ्य होती है (जैमिनीय ब्राह्मण २.२९१, अथर्ववेद ५.१८.१५)। पुराणों में प्रायः इषु द्वारा सर्प का अथवा सर्प द्वारा इषु का रूप धारण करने तथा गरुडास्त्र द्वारा उसकी शान्ति का उल्लेख आता है। इषु के संदर्भ में यह अपेक्षित है कि वह सर्प की भांति सर्पण न करे, अपितु अपने लक्ष्य की ओर सीधा, क्षिप्र गति से आगे बढे। अथर्ववेद ४.६.६ में गरुड द्वारा इषु से विष निकालने का उल्लेख है। तैत्तिरीय संहिता ४.२.८.३ के अनुसार यातुधानों, वनस्पतियों तथा अवटों में सर्प रूप इषु होते हैं। आत्मिक शक्ति का सर्प की गति को त्याग कर लक्ष्य की ओर सीधे अग्रसर होना इषु को समझने के लिए दूसरा सूत्र है। अथर्ववेद १.१३.४ में देवों द्वारा विद्युत को इषु बनाने का उल्लेख है। अथर्ववेद ३.२५, ३.२६ व ३.२७ सूक्त इषुओं से सम्बन्धित हैं जिनमें प्रथम सूक्त में काम के इषु से ऊपर की ओर गति करने की अपेक्षा की गई है (डा० फतहसिंह के वैदिक सविता पत्रिका में प्रकाशित लेख के अनुसार यह काम साधारण काम नहीं है, अपितु अनंग काम का वह ऊर्ध्वमुखी रूप है जो शिव के तीसरे नेत्र की अग्नि से दग्ध होने के पश्चात उत्पन्न हुआ है)। इससे अगले दो सूक्तों में ६ दिशाओं के अधिपतियों और उनके इषुओं का वर्णन है। इस प्रकार ऊपर की ओर त्वरित गति करना और दिशाओं में व्याप्त होना, यह इषुओं के दो रूप मुख्य रूप से वैदिक साहित्य में मिलते हैं। तैत्तिरीय संहिता ४.५.११.२ तथा शतपथ ९.१.१.३५ के अनुसार पृथिवी पर अन्न इषु हैं, अन्तरिक्ष में वात और द्युलोक में वर्षा। इनसे सम्बन्धित रुद्रों के नामों का भी उल्लेख हुआ है। शतपथ ब्राह्मण ५.३.५.२९ के अनुसार पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक में इषवों के नाम क्रमशः दृबा, रुजा व क्षुमा हैं। एक दृष्टिकोण से यह साधना में त्वरित गति से, तीर की गति से प्रगति करने का मार्ग है। पुराणों में शिव द्वारा त्रिपुर दाह का जो सार्वत्रिक प्रसंग आता है तथा जिसकी पुनरावृत्ति तैत्तिरीय संहिता ६.२.३.१ तथा काठक संहिता २४.१० में भी मिलती है, साधना के इसी मार्ग का परिचायक हो सकता है। द्राह्यायण श्रौत सूत्र १६.२.१० आदि के अनुसार इषु नामक अग्निष्टोम से पूर्व श्येन अग्निष्टोम यज्ञ का अनुष्ठान किया जाता है। काठक संहिता २५.१ में इषु नामक इष्टि का विस्तृत वर्णन है जिसमें उल्लेख है कि इस इष्टि में सामान्य यज्ञ के अन्य अंगों प्रयाज, अनुयाज आदि का अनुष्ठान नहीं किया जाता। यह सब इस तथ्य के संकेतक हैं कि इषु नामक इष्टि के अनुष्ठान से पूर्व अग्नि द्वारा श्येन का रूप धारण करके स्वर्ग से या द्युलोक से सोम की प्राप्ति करना अनिवार्य है। शिव द्वारा त्रिपुर दाह के लिए जिस इषु की रचना की गई है, उसके तीन अंगों में से २ अग्नि और सोम हैं। अग्नि शृंग है तथा सोम शल्य। ऐतरेय ब्राह्मण १.२५ में इषु की एक अथवा दो अथवा तीन संधियों का वर्णन है। इनमें से एक संधि अग्नि व सोम की हो सकती है जिसके लिए अग्नीषोम शब्द की टिप्पणी दृष्टव्य है। अग्नि व सोम की यह संधि तभी संभव है जब एक ओर तो अग्नि श्येन का रूप धारण करके ऊपर जा रहा हो और दूसरी ओर श्येन सोम प्राप्त करके नीचे उतर रहा हो। हो सकता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में जो द्युलोक में वर्षा/पर्जन्य वर्षण को इषु कहा गया है, उसका तात्पर्य इसी सोम से हो। पृथिवी पर अन्न को इषु कहने से तात्पर्य उस अन्न से हो सकता है जो अग्नि अपने मुख में धारण करके देवताओं तक ले जाती है।

ऊर्ध्वमुखी एकान्तिक साधना के पश्चात साधना को सार्वत्रिक, सब दिशाओं में व्याप्त होने वाली बनाना होता है। अथर्ववेद ३.२६, ३.२७, १२.३.५५ तथा १५.५ सूक्त, पैप्पलाद संहिता ३.२४ सूक्त, तैत्तिरीय संहिता ५.५.१०.४ आदि में ६ दिशाओं में जिन इषुओं और उनके अधिपति रुद्रों के नामों का उल्लेख आता है, उनमें अन्तर पाया जाता है। शतपथ ब्राह्मण ९.१.१.३५ के अनुसार ऊर्ध्वमुखी साधना के पश्चात दसों दिशाओं में विस्तार करना शरीर में प्राणों

के, अग्नि के संचार करने की भांति है। पौराणिक दृष्टि से दिशाओं में इषुओं का यह वर्णन बहुत महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए अथर्ववेद १२.३.५५ व पैप्पलाद संहिता ३.२४ में पूर्व दिशा में अग्नि अधिपति तथा आदित्य इषु , दक्षिण दिशा में इन्द्र अधिपति व यम/पितर / वसुगण इषु , पश्चिम दिशा में वरुण अधिपति व अन्न/मित्र इषु , उत्तर दिशा में सोम अधिपति व अशनि/वात इषु , ध्रुवा दिशा में विष्णु अधिपति व ओषधि/वीरुध इषु , तथा ऊर्ध्वा दिशा में बृहस्पति अधिपति व वर्षा/अशनि इषु का उल्लेख है। तैत्तिरीय संहिता ५.५.१०.४ के अनुसार ६ दिशाओं में इषु क्रमशः अग्नि, पितर, स्वप्न, आपः, अन्न व वर्षा हैं। पुराणों में बाणों को आग्नेयास्त्र, याम्यास्त्र, कौबेरास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, ब्रह्मास्त्र, वायव्यास्त्र, पर्वतास्त्र, पर्जन्यास्त्र आदि द्वारा अभिमन्त्रित करने का वर्णन आता है। देवगण और असुर, दोनों ही इन अस्त्रों का उपयोग करते हैं। अतः यह जानना महत्वपूर्ण है कि अग्नि, यम, कुबेर, इन्द्र, ब्रह्मा, वायु, पर्वत आदि के विनाशकारी और कल्याणकारी रूप कौन से हैं। उदाहरण के लिए पर्वतास्त्र पर विचार करते हैं। असुरगण पर्वतास्त्र द्वारा लोष्टों/पाषाण खण्डों की वर्षा करते हैं। पर्वतास्त्र का निवारक या तो वायव्यास्त्र है या इन्द्र का वज्र। अथर्ववेद ११.८.१० के अनुसार पर्वतों, यक्षों, समुद्रों, नदियों आदि की स्थिति भूमि पर है। पर्वत का कल्याणकारी रूप हमें तब देखने को मिलता है जब पर्वत पर जीवनदायिनी ओषधियां उत्पन्न हो जाती हैं। इषुओं के वर्णन में यह ध्रुवा दिशा, स्थिर दिशा है (तुलनीय : रामायण में लक्ष्मण की मूर्च्छा का पर्वत से प्राप्त ओषधि से उपचार)। पहले पर्वत उड़ते फिरते थे। उनके पक्ष इन्द्र ने काटे, तब वह स्थिर हुए। मन का प्रतीक मैनाक पर्वत अभी भी पक्षवान है। वायव्यास्त्र से तात्पर्य प्राण वायु का विकास प्राण, अपान, व्यान आदि ५ वायुओं में करने से सम्बन्धित हो सकता है (तुलनीय : द्राह्यायण श्रौत सूत्र ११.१.९ में बाण द्वारा प्राण, अपान व व्यान लिखने का उल्लेख)। आग्नेयास्त्र व उसके निवारक पर्जन्यास्त्र की व्याख्या गर्ग संहिता में क्रमशः अहंकार व ज्ञान के रूप में की गई है। भविष्य पुराण में पावकास्त्र/आग्नेयास्त्र द्वारा रक्तबीज (कर्मों के फलों के बीज?) का नाश कह कर एक अन्य व्याख्या प्रस्तुत की गई है। रामायण में राम के आग्नेयास्त्र द्वारा रावण के सिंह, व्याघ्र, कंक आदि मुख वाले शर प्रकट करने वाले आसुरास्त्र के निवारण की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि सिंह, व्याघ्र आदि यह सब अहंकार के विभिन्न रूप हैं। जिस प्रकार अर्जुन ने अग्नि की सहायता से खाण्डव वन को जलाया था, उसी प्रकार आग्नेयास्त्र से आसुरास्त्र को भी नष्ट करना है। एक ओर अग्नि का मुख है जो देवों के लिए हवि का वहन करता है। दूसरी ओर सिंह आदि मुख हैं। पुराणों में ब्रह्मास्त्र के कल्याणकारी स्वरूप के संदर्भ में अथर्ववेद १२.३.६० में ऊर्ध्वा दिशा में वर्षा इषु के साथ बृहस्पति अधिपति होने का उल्लेख विचारणीय है। ऐन्द्रास्त्र के संदर्भ में इन्द्र के शौर्यपूर्ण कृत्यों जैसे दधीचि की अस्थियों से वज्र का निर्माण और उसके द्वारा वृत्र का वध करना विचारणीय है। इसके अतिरिक्त महाभारत में अर्जुन द्वारा इन्द्रसभा में ऐन्द्रास्त्र की प्राप्ति के उल्लेख के साथ साथ ही अर्जुन द्वारा संगीत की शिक्षा प्राप्त करने और उर्वशी द्वारा शाप आदि के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि ऐन्द्रास्त्र का उज्जवल पक्ष संगीत से भी जुडा है। इन्द्र शब्द की टिप्पणी में ऐतरेय उपनिषद से यह उद्धृत किया गया है कि इन्द्र ने अपनी इन्द्रियों द्वारा अन्न को ग्रहण करने का प्रयत्न किया लेकिन वह तब तक सफल नहीं हुआ जब तक कि उसने सीमा (ब्रह्मरन्ध्र?) का विदारण नहीं कर लिया। अतः यह हो सकता है कि इन्द्रियों द्वारा आन्तरिक संगीत का श्रवण, नाद का श्रवण ही इन्द्रियों का वास्तविक अन्न हो। रामायण में राम द्वारा ऐन्द्रास्त्र से कुम्भकर्ण की सव्य बाहु के छेदन का उल्लेख है। इस संदर्भ में अथर्ववेद ११.१२.१६ मन्त्र विचारणीय है जिसमें कहा गया है कि इन्द्र शत्रुओं की बाहुओं को भग्न कर दे जिससे वे इषु न छोड सकें। ऋग्वेद ८.७७.७ में इन्द्र के इषु को शतब्रध्न तथा सहस्र पर्णों वाला कहा गया है।

महाभारत में अर्जुन द्वारा बाण से प्रहार कर राजा भगदत्त की आंखों को खुली रखने वाली पट्टी को छिन्न कर देने और उसके पश्चात बंद नेत्रों वाले भगदत्त का वध करने के संदर्भ में ऋग्वेद १०.१०३.२ में अनिमिष शब्द के उल्लेख पर विचार की आवश्यकता है कि क्या इषु का संबंध नेत्रों के निमेष-उन्मेष से भी हो सकता है?

हरिवंश पुराण में शिव द्वारा दक्ष के यज्ञ के बाण से भेदन और यज्ञ के आकाश में मृगशिरा नक्षत्र के रूप में स्थित होने के रहस्यार्थ को ऐतरेय ब्राह्मण ३.३३ आदि में दिए गए वर्णन के आधार पर समझने की आवश्यकता है।

भागवत पुराण आदि में वृत्र द्वारा उत्पन्न होने के पश्चात इषुमात्र वर्धन करने का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण १.६.३.११, तैत्तिरीय संहिता २.४.१२.२ तथा २.५.२.२ में भी आता है। इषु का प्रयोग शत्रु के नाश के लिए किया जाता है, लेकिन वृत्र इषु में भी प्रवेश कर गया है। ऐसी स्थिति में इन्द्र अग्नीषोमात्मक सन्धि को अपनी ओर मिलाकर किस प्रकार वृत्र को समाप्त करता है, यह विचारणीय है।

तैत्तिरीय संहिता ६.२.३.१ तथा काठक संहिता २५.१ आदि में यज्ञ में उपसद को इषु कहा गया है जिसके शृंग पर अग्नि, शल्य पर सोम व तेज में विष्णु का रूप होता है। कहा गया है कि यज्ञ में उपसद रूपी ग्रीवा पर अतिथि रूपी शिर की स्थापना करनी होती है। उपसद को अहोरात्र, पक्षों, मासों, ऋतुओं व संवत्सर का रूप कहा गया है (काठक संहिता २४.१०)। अतिथि रूपी शिर मनुष्य में विकसित अतिरिक्त ऊर्जा, जिसे घर्म कहते हैं, का प्रतीक है। ऐसा कहा जा सकता है कि जैसे सूर्य प्रतिदिन उदय व अस्त होता है, ऐसे ही घर्म सूर्य उपसद रूपी ग्रीवा या इषु के माध्यम से उदय-अस्त होता है। उपसद रूपी ग्रीवा से नीचे सद रूपी उदर होता है। सद में औदुम्बरी शाखा की स्थापना की जाती है (काठक संहिता २५.१०)।

अतः यह हो सकता है कि उदुम्बर रूपी ऊर्जा उपसद के माध्यम से आरोहण-अवरोहण करती हो, अथवा दोनों ओर से ऊर्जा का प्रवाह उपसद रूपी ग्रीवा में होता हो।

शतपथ ब्राह्मण २.३.३.१० के अनुसार जैसे इषु का अनीक/मुख है, वैसे ही अग्निहोत्र है; जैसे इषु मुख के द्वारा आगे जाता है, ऐसे ही अग्निहोत्र के अनुष्ठान द्वारा सब यज्ञक्रतुओं का अनुष्ठान हो जाता है। अग्निष्टोम के संदर्भ में इषु इष्टि का वर्णन भली प्रकार से मिलता है। इसके अतिरिक्त १२ दिनों वाले द्वादशाह यज्ञ को भी इषु में रूपांतरित करने के लिए उसके चार-चार दिनों को इषु की एक संधि मान कर उनमें गौ के क्रमशः ३, २ या १ स्तन का पान किया जाता है। इस प्रकार लगता है कि अधिकांश यज्ञों को इषु का रूप दिया जा सकता है।

मैत्रायणी उपनिषद ६.२८ में इच्छा को इषु कहा गया है। रुद्रहृदयोपनिषद ३८, ध्यानबिन्दु उपनिषद १४ तथा मुण्डकोपानेषद २.२.४ में आत्मा को शर तथा प्रणव को धनुष कहा गया है जिनके द्वारा परम ब्रह्म को लक्ष्य बनाना है। मैत्रायणी उपनिषद ६.२८ में अनभिमान को इषु कहा गया है। लिंगोपनिषद तथा मैत्रायणी उपनिषद ६.२८ में ऊं को शर कहा गया है शांखायन श्रौत सूत्र ४.२०.१ में हृदय को धनुष और मन को इषु कहा गया है। राजसूय के संदर्भ में बौधायन श्रौत सूत्र १२.९.१० के अनुसार मन से ही दिशाओं के अनुदिश क्रमण होता है तथा मन से ही ऊर्ध्वा दिशा को जीता जाता है। पुराणों में अतिथि इषुकार से मन को ऊर्ध्वमुखी करने की शिक्षा प्राप्त करता है।

पुराणों में काम के सम्मोहन आदि पांच बाणों का व्यापक उल्लेख मिलता है। भावनोपनिषद २३ में शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गन्ध नामक ५ तन्मात्राओं को काम के ५ पुष्पबाण कहा गया है तथा मन को इक्षुधनु कहा गया है।

इषुधि/तरकस के संदर्भ में ऋग्वेद ६.७५.५ की ऋचा दृष्टव्य है। आपस्तम्ब श्रौत सूत्र २०.१६.८ में इस ऋचा का विनियोग पीठ पर इषुधि बांधने के लिए किया गया है। इस ऋचा में बाणों को इषुधि के पुत्र रूप कहा गया है।

इष्टका अग्नि ४१.१६ (गृह प्रतिष्ठा में नीव में इष्ट का स्थापना मन्त्र), ६५.२२ (वही), ६६.२९ (इष्टका का संक्षिप्त माहात्म्य : सेतुकारी), विष्णुधर्मोत्तर ३.९१ (पक्व इष्टका निर्माण विधि), वराह १५५.६३ (अग्निदत्त ब्राह्मण का इष्टका हरण से ब्रह्मराक्षस बनना, सुधन द्वारा पुण्य दान से मुक्ति)

इष्टलव लक्ष्मी नारायण २.१६६.३२ (गंगा व कृष्ण के २० पुत्रों में से एक), २.१६७.२६ (जिनवर्द्धि नृप का ० ऋषि के साथ यज्ञ में आगमन), २.१८१.८८ (० ऋषि का जिनवर्द्धि राजा द्वारा शासित इष्टालि राष्ट्र में वास, श्री हरि का आगमन व स्वागत)

इष्टापूर्त भागवत ३.२४.३२ (दिव्य पूर्त के रूप में ऐश्वर्य, वैराग्य, यश आदि का उल्लेख), १०.६४.१५ (राजा नृग द्वारा यज्ञों द्वारा इष्ट व पूर्त करने का उल्लेख), ११.११.४७ (इष्टापूर्त द्वारा कृष्ण का यजन करने पर कृष्ण की भक्ति प्राप्त करने का उल्लेख), नारद १४.६४ (इष्ट से स्वर्ग और पूर्त से मोक्ष प्राप्त होने का उल्लेख: वित्तक्षेप इष्ट तथा तडाग आदि पूर्त होने का उल्लेख), ब्रह्माण्ड ३.४.२.१७५ (इष्टापूर्त व्रत के लोप से संदंश नामक नरक प्राप्त होने का उल्लेख), स्कन्द २.७.२.८ (माधव/वैशाख मास में जल, छत्र, पादुका आदि दान न करने से इष्टापूर्त व्यर्थ होने का वर्णन), ४.२.५९.३८ (ऊर्ज/कार्तिक मास में धर्मनदी में स्नान के फल का जन्म भर इष्टापूर्त करने के फल से अधिक होने का उल्लेख), ४.२.७३.५७ (काशी में १४ महालिंगों के दर्शन से इष्टापूर्त के फल की प्राप्ति का उल्लेख), वराह १७२.३६ (इष्ट से स्वर्ग व पूर्त से मोक्ष प्राप्ति का उल्लेख; वापी, कूप, तडाग आदि के उद्धार से पूर्त फल प्राप्ति का वर्णन), वायु २०.१८ (ओंकार की मात्राओं से इष्टापूर्त आदि के फल की प्राप्ति), वामन ९२.२१ (वामन -बलि प्रसंग में विराट विष्णु के जठर में इष्टापूर्त आदि की स्थिति का उल्लेख), मार्कण्डेय १८.८/ १६.१२५ (अग्निहोत्र, तप, सत्य आदि की इष्ट व वापी, कूप, तडाग आदि की पूर्त संज्ञा का कथन), ३४.६२/३१.६३ (पर दारा सेवन से इष्टापूर्त आदि के नष्ट होने का उल्लेख), अग्नि २५५.५० (संशय की स्थिति में इष्टापूर्त की शपथ का विधान), भविष्य १.१३०.९ (सलिल आगमन के स्थान पर देव आयतन निर्माण से इष्टापूर्त फल की प्राप्ति का उल्लेख), ४.१२७ (जलाशय आदि निर्माण माहात्म्य), महाभारत सभा ६८.८० (धर्म विषयक असत्य बोलने से इष्टापूर्त के नष्ट होने का उल्लेख), वन ३२.३० (पुरुषार्थ के अस्तित्व के कारण ही इष्टापूर्त के फल की प्राप्ति होने का उल्लेख), शान्ति २६३.९ (असाधु पुरुषों के इष्टापूर्त से प्रजा के विगुण होने का उल्लेख), महाप्रस्थान ३.१० (स्वर्ग में श्वान के सहित जाने पर क्रोधवश राक्षसों द्वारा इष्टापूर्त हरण का उल्लेख),

टिप्पणी : वैदिक साहित्य में जहां-जहां इष्टापूर्त शब्द आया है, उसके सायण भाष्य में इष्ट से श्रौत व पूर्त से स्मार्त का अर्थ लिया गया है। श्रौत व स्मार्त शब्दों को आप्टे के संस्कृत कोश के आधार पर समझा जा सकता है। साधना के फलस्वरूप श्रुत ज्ञान की प्राप्ति होना, ऐसा ज्ञान जिसका जीवात्मा को पहले कोई अनुभव नहीं था, श्रौत कहलाता है। इसके विपरीत, ऐसे ज्ञान की स्मृति को, संस्कार को जाग्रत करना जिसका अनुभव

जीवात्मा कभी कर चुकी है, स्मार्त कहलाता है। इष्ट ज्ञान की प्राप्ति के लिए अग्नि को देवयान अर्थात देवों का रथ बनाना होता है (तैत्तिरीय संहिता ४.७.१३.४, ५.७.७.२, शतपथ ९.५.१.४७, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७.१३.४ आदि), उसे सुपर्ण बनाना होता है जिससे वह उड़कर स्वर्ग से सोम का हरण कर सके। इसी कारण से पुराणों में अग्निहोत्र आदि से इष्ट की प्राप्ति का उल्लेख आता है। आपस्तम्ब श्रौत सूत्र ६.१.३ में अग्निहोत्र के सार्वत्रिक मन्त्र उद्बुध्यस्व अग्ने इत्यादि में उद्बोधन शब्द श्रुत ज्ञान की ओर संकेत करता है (तुलनीय : निगमोद्‌बोध)। इसी मन्त्र में इष्टापूर्त शब्द भी प्रकट हुआ है। स्वाभाविक रूप से अग्नि या गायत्री द्वारा अपने देवरथ पर रखकर लाए गए इस सोम की प्राप्ति पर जीवात्मा को आनंद, आह्लाद, आकूति की प्राप्ति होगी। तैत्तिरीय संहिता ४.७.१३.२ में इस सोम की प्राप्ति को पर्जन्य वर्षा के रूप में चित्रित किया गया है। ऐसा अनुमान है कि यह पर्जन्य वर्षा हर क्षण नहीं हो सकती। अत: आनंद की वर्षा के इस जल को संगृहीत करके सुरक्षित रखना होता है जिससे वर्षा के पश्चात के क्षणों में भी आनंद प्राप्त होता रहे। इस जल की सुरक्षा के लिए जिस पात्र के निर्माण की आवश्यकता होती है, उसे ही संभवत: पुराणों में प्रपा, -कूप आदि का नाम दिया गया है जिससे पूर्त की प्राप्ति होती है। ब्राह्मण ग्रन्थों का कहना है कि यदि पर्जन्य वर्षा की अनुभूति प्रत्येक क्षण नहीं होगी तो आसुरी शक्तियां, वासनाएं आकर घेर लेंगी। इसी कारण से पुराणों में पूर्त को मोक्ष भी कहा गया है - मोक्ष अर्थात वासनाओं से मुक्ति, पाशों से मुक्ति।

जल संग्रह के लिए उपरोक्त पात्र का निर्माण कैसे हो, इस संदर्भ में तैत्तिरीय संहिता १.७.३.३, गोपथ ब्राह्मण २.१.५ तथा काठक संहिता ८.१३ आदि में वर्णन आता है कि यजमान यज्ञ के अन्त में दक्षिणाग्नि या अन्वाहार्यपचन अग्नि पर ओदन पकाकर उसे दक्षिणा के रूप में ऋत्विजों को खिलाता है। यज्ञ में देवताओं के लिए तो आहुति रूपी भोजन प्रस्तुत किया जाता है, जबकि मनुष्य रूप में यजमान के समक्ष जो ऋत्विज रूपी ब्राह्मण देवता उपस्थित हैं, उनके लिए यह अन्वाहार्यपचन नामक ओदन है। इसी का नाम इष्टापूर्त है। अपने उदान प्राण को पकाना ही ओदन है। मनुष्य के शीर्ष भाग में चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, नासिका आदि जिन प्राणों का विकास हुआ है, वह सब उदान प्राण के ही रूप हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों का कहना है कि हमारा उदान प्राण अक्षित रहे, इसके लिए यह आवश्यक है कि इन उदान प्राणों की रक्षा का कार्य होता, अध्वर्यु, मन आदि ऋत्विजों को सौंप दिया जाए - होता को वाक्/अग्नि, अध्वर्यु को प्राण/वायु, उद्गाता को चक्षु/आदित्य, इन्द्र को इन्द्रिय आदि आदि (जैमिनीय ब्राह्मण २.५४)। यह दिव्य जल के संग्रह के लिए कूप निर्माण का एक उपाय है। लेकिन शतपथ ब्राह्मण १३.१.५.६ तथा तैत्तिरीय संहिता ३.९.१४.३ आदि का कथन है कि इष्टापूर्त पर ब्राह्मण का अधिकार है, जबकि यज्ञ में यजमान प्राय: क्षत्रिय होता है। अत: उसे इष्टापूर्त कैसे प्राप्त हो ? इसका उत्तर यह कह कर दिया गया है कि दीक्षा द्वारा क्षत्रिय भी ब्राह्मण का रूप धारण कर लेता है। जैमिनीय ब्राह्मण २.५३ में दीक्षा द्वारा इष्टापूर्त को अक्षित बनाने के रूप में दीक्षा के स्वरूप का वर्णन किया गया है। केवल यजमान की दीक्षा नहीं होती, अपितु अग्नि, वायु, आदित्य और प्रजापति की दीक्षा भी साथ ही साथ हो जाती है (गोपथ २.४.९)। ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व, दोनों मिलकर राष्ट्र की रक्षा करते हैं। यह कूप निर्माण का दूसरा उपाय कहा जा सकता है।

वैदिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से, जैसे ऋग्वेद १०.१४.८ में दीक्षाकाल में यजमान की मृत्यु पर उसके इष्टापूर्त को अक्षित बनाने का प्रश्न उठाया गया है। उसके द्वारा वह परम व्योम (वि - ओम) को प्राप्त होता है। मृत्यु का अर्थ होगा कि अब पर्जन्य वर्षण से नए जल की प्राप्ति नहीं होगी, अपितु पहले से संगृहीत जल द्वारा ही सारी यात्रा पूरी करनी है। इस संदर्भ में अथर्ववेद ३.२९.१ में यम के सभासदों द्वारा इष्टापूर्त के १६वें भाग का विभाजन करने और अवि द्वारा उसकी रक्षा करने का उल्लेख आता है जिसका निहितार्थ अपेक्षित है। इसी संदर्भ में अथर्ववेद १८.२.५७ भी दृष्टव्य है। छान्दोग्य उपनिषद ५.१०.३, प्रश्नोपनिषद १.९ तथा मुण्डकोपनिषद १.२.१० में इष्टापूर्त के संदर्भ में दक्षिणायन और उत्तरायण पथ का वर्णन किया गया है। कहा गया है कि जो साधक अपनी अग्नि को सूर्य का रूप देकर संवत्सर में एकाकार हो जाता है, वह उत्तरायण पथ से यात्रा करता है, जबकि वह साधक जो इष्टापूर्त से ही संतुष्ट होकर रह जाता है, वह दक्षिणायन मार्ग से यात्रा करता है।

अग्नि पुराण आदि में इष्टापूर्त की शपथ के उल्लेख के संदर्भ में ऐतरेय ब्राह्मण ८.१५ में भी दीक्षा के संदर्भ में यजमान अपने इष्टापूर्त की शपथ लेता है।

कठोपनिषद १.१.८ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.११.८.५ में यम और नचिकेता के संदर्भ में इष्टापूर्त को अक्षित बनाने का वर्णन है। महाभारत में श्वान सहित स्वर्ग में प्रवेश के निषेध के संदर्भ में ऋग्वेद १०.१४.१० दृष्टव्य है।

इष्टि अग्नि १६१.२ (संन्यास ग्रहण से पूर्व अपेक्षित प्राजापत्य इष्टि), भविष्य ३.४.१९.२ (इष्टिका नगरी में गुरुदत्त -पुत्र रोपण का वास), ४.१७३ (अग्नीष्टिका/अंगीठी दान विधि) लक्ष्मीनारायण २.१५७.३४ (पशु इष्टि का अंगुलियों में न्यास), २.२४५.३५ (सोम याग में उपसद इष्टि विधि" द्र. यज्ञ, होम